ओ३म्

ऋग्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)



मुद्रक—

दी फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर.

...dal Ltd.,

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)

भाष्यकार
श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा
विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्त्ता
श्री विश्वनाथजी विद्यालङ्कार
भूतपूर्व प्रोफेसर गुरुकुल कांगड़ी

प्रकाशक
आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

द्वितीयावृत्ति १०००   सं० २०१० वि०   मूल्य ६)

प्रकाशक:—
आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर.

मुद्रक—
शिरीशचन्द्र शिवहरे एम० ए०,
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

प्रथम मण्डल । सू० [१२२]—आचार्य के प्रति शिष्यों का कर्त्तव्य । (२) 'उषासानक्ता' रूप में पति-पत्नी का वर्णन । (३–१०) पिता, आचार्य का शिष्यवत् पुत्रों के प्रति और शिष्यों और पुत्रों का गुरु, आचार्य, माता और पिता जनों के प्रति कर्त्तव्य का वर्णन । (११–१५) महान् परमेश्वर का वर्णन । (१२) दशतय का रहस्य । (१४) हिरण्यकर्ण मणिग्रीव का रहस्य । (१५) 'मशर्शार' के चार शिशुओं का रहस्य । (पृ० १—७)

सू० [१२३]—उषा के दृष्टान्त से नववधू का आदर और उसके तथा गृहपत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) पति के कर्त्तव्य । (७) रात्रि दिन के दृष्टान्त से पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ७—१२)

सू० [१२४]—उषा के दृष्टान्त से युवती कन्या तथा युवा पुरुष को गृहस्थ प्रवेश का उपदेश, और उनके गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का वर्णन । पक्षान्तर में सेना और योगज विशोका का दिग्दर्शन । (पृ० १२—१८)

सू० [१२५]—आयु के पूर्व भाग में ब्रह्मचर्य का और अनन्तर गृहस्थ का उपदेश, और उनके कर्त्तव्य । (पृ० १८—२१)

सू० [१२६]—वीरों के दृष्टान्तों से जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । ६–७) राजा, राजनीति, राजसत्ता का वर्णन, पक्षान्तर में चेतना,

अध्यात्म शक्तियों का वर्णन। 'भावयव्य' और 'रोमशा' का रहस्य। (पृ० २१—२४)

सू० [१२७]—अग्नि के दृष्टान्त से अग्रणी नायक राजा और उसके कर्त्तव्यों का वर्णन। पक्षान्तर में विद्वान् आचार्य शिष्य के कर्त्तव्यों का वर्णन। (८) विश्पति का वर्णन। दम्पति विश्पति का रहस्य। (पृ० २४—३०)

सू० [१२८]—विद्वान्, आचार्य, गुरु, और राजा का वर्णन। (३) अग्नि, विद्युत्, सूर्य, सांड आदि के दृष्टान्तों की योजना, बलवान् सेनापति का वर्णन। विद्वान् पुरोहित, गुरु और यज्ञाग्नि सेनापति का वर्णन। (पृ० ३०—३४)

सू० [१२९]—सभापति, सेनापति, अग्रणी नायक मार्गदर्शी का वर्णन। (४) शूरवीर पुरुष और ऐश्वर्यवान् राजा का कर्त्तव्य। (८) विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। वीर राजा रक्षक का वर्णन। (पृ० ३४—४०)

सू० [१३०]—अभिषिक्त राजा विद्वान्, और सभापति सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ४०—४५)

सू० [१३१]—अग्नि वा विद्युद्वत् राजा के कर्त्तव्य। सूर्यवत् राजा का वर्णन। (पृ० ४५—४९)

सू० [१३२]—सूर्यवत् विद्वान् गुरु का शिष्यों के प्रति ज्ञानदान, अध्यापन और विनय की शिक्षा, (५) पक्षान्तर में शूर पुरुषों, नायकों के कर्त्तव्य। (पृ० ४९-५२)

सू० [१३३]—न्यायप्रिय, दण्डकुशल राजा के कर्त्तव्य। राज्य का कण्टकशोधन द्वारा पवित्रीकरण। पक्षान्तर में अध्यात्म में वासनाओं को क्षय करके शान्ति लाभ करने का उपदेश। शत्रुओं और दुष्टों का दमन। वैल-स्थान, बदूर, महावदूर आदि का रहस्य। (५) पिशङ्गभृष्टि पिशाचि का रहस्य (पृ० ५३—५५)

सू० [१३४]—शूर पुरुष का प्रयाण, समृद्धि की वृद्धि, तथा सहोद्योग। आचार्य का कर्मों और ज्ञानों का उपदेश। वायु, सूर्य, सारथि, आदि के दृष्टान्त से गुरु का कर्त्तव्य, (४) उपाओं के दृष्टान्त से शिष्यों का गुरु की कीर्ति प्रसारित करना, वायु के दृष्टान्त से उनको ऐश्वर्य प्राप्त करने का उपदेश। (५) राजा के अधीनस्थ अधिकारियों के कर्त्तव्य। राजा को दुष्टों के नाश का उपदेश। (६) राजा का सर्वोपर पालन और ऐश्वर्यभोग का अधिकार। (पृ० ५५–५८)

सू० [१३५]—प्रधान पदवीधर के आदर की विधि, (२) उसकी वेष भूषा, और कर्त्तव्य, सेनानायक होने योग्य पुरुष। (३) शतिनी, सहस्रिणी सेनाओं सहित सेनापति की नियुक्ति, राज्यव्यवस्थापक अध्वर्युजनों का कर्त्तव्य। (४) सेनापति, सभापति आदि का रथों से गमन, उत्तम ऐश्वर्यों में प्रथमाधिकार। (५) प्रधान पुरुष की राष्ट्र में, देह में आत्मा के समान स्थिति, देह में वीर्यों के समान राष्ट्र में बलवान् शासकों की स्थिति। (७) सूर्य, वायु, वृष्टि आदि के दृष्टान्त से शासक के प्रजापालन के कार्यों का वर्णन। (८) पक्षियों के आश्रय-वृक्षवत् शासक प्रधान पुरुष की स्थिति और राष्ट्र की समृद्धि का वर्णन। (९) मेघवत् पराक्रमी, ऐश्वर्यवान् पुरुषों को प्रजापालन का उपदेश। (पृ० ५९–६४)

सू० [१३६]—अधीन प्रजाओं का उत्तम प्रधान शासकों के प्रति पुत्रवत् कर्त्तव्य। शासकों को न्यायोचित व्यवहार का उपदेश। सूर्य-चन्द्रादिवत् व्यवस्थापकों का कर्त्तव्य। राजाप्रजा का प्रेममय व्यवहार। परस्पर पाप से रक्षा करने का कर्त्तव्य। (६) श्रेष्ठ जनों का आदर सत्कार। (७) समृद्ध होकर उत्तम सुख प्राप्त करने का उपदेश। (पृ० ६४–६७)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [१३७]—देह में प्राण-उदानवत् मित्र और वरुण दो अधि-

कारियों और अन्न-औषधिरसवत् सोम नाम विद्वानों के कर्त्तव्य। वैदिक श्लेषमय वाक्यों का स्पष्टीकरण। (३) सोम और गोदोहन के दृष्टान्त से भूमिदोहन। (पृ० ६७–६९)

सू० [१३८]—पूषा, नाम प्रजापोषक अधिकारी राजा के कर्त्तव्य (४) पूषा के 'अजाश्व' होने का कारण। [६९–७१)

सू० [१३९]—विद्वान् आचार्य के अधीन वेदाभ्यास करने का उपदेश। (२) मित्र वरुण का सत्यासत्य विवेक, न्याय का कर्त्तव्य। (३) उत्तम स्त्री पुरुषों के प्रति अन्य जनों के सद्व्यवहार का उपदेश। (४) रथ में दो अश्वों के समान शासनादि कार्य में उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। (५) ज्ञानी, कर्मिष्ठ पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (७) विद्वान् नेता के कर्त्तव्य। (८) व्यापारियों और वीरों का कर्त्तव्य। ९ विद्वानों के कर्त्तव्य। दध्यङ् अङ्गिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु, आदि की व्याख्या। (१०) सूर्य, मेघ दृष्टान्त से विद्या धनादि देने लेने वाले के कर्त्तव्य। (११) ११, ११, ११, करकेदे ३३ व, ३३ अधिकारी (७१–७७)

सू० [१४०]—यज्ञाग्निवत् राजा को पोषण करने का उपदेश। (२) द्विजन्मा और त्रिवृत् अग्नि, विद्वान् और राजा। (३) बालक के प्रति माता पिता के समान राजा प्रजावर्ग के कर्त्तव्य। (४–५) मुमुक्षु जनों का वर्णन (६) सूर्य और अग्नि के दृष्टान्त से राजा वा नायक का प्रजा के ग्रहण पालनादि का वर्णन। (७–८) राजा प्रजा का पति-पत्नीवत् परस्पर स्नेहवान् होकर रहने का वर्णन। (९) भूमि और राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (१०–११) मेघस्थ विद्युत् के दृष्टान्त से विद्वान् नायक वा राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१२) नौकावत् सेना का निर्माण, पक्षान्तर में 'पद्वती नौ' का रहस्य। (१३) उषाओं के दृष्टान्तों से विद्वान् वीर पुरुषों का कर्त्तव्य। (पृ० ७७—८३)

सू० [१४१]—सत्य प्रकाश में अग्नि और गौओं के दृष्टान्त से

विद्वान् और वेदवाणियों का वर्णन। (२) जीवात्मा और मनुष्य की तीन दशाएं (३) असंग आत्मा के ज्ञान करने का उपदेश। (४) वनस्पतिवत् जीवों के जन्म लेने आदि का वर्णन। (५-७) अविनाशी आत्मा का जन्म लेने का रहस्य। (८) उसके बन्धनों के नाश का उपदेश। (९, १०) नायकवत् प्रभु का वर्णन। (१०-१२) वीर नायक और आत्मा का वर्णन। (पृ० ८३-८९)

सू० [१४२]—अग्निवत् नायक के कर्त्तव्य। तनूनपात् का रहस्य। (५) यज्ञाग्निवत् उपासना कर्म, यज्ञकर्त्ता जनों के समान उपासक का वर्णन। द्वारों के समान प्रजाओं और सेनाओं का वर्णन। (७) रात दिन के समान माता पिता का वर्णन। (८) दैव्य होता, विद्वानों का कर्त्तव्य। (९) भारती, इळा, सरस्वती, और होत्रा का वर्णन। (१०) त्वष्टा, शिल्पी, (१२) वनस्पतिवत् राजा का वर्णन। (१२) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१३) विद्वानों के आदर का उपदेश। (पृ० ८९-९३)

सू० [१४३]—विद्यार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) अग्नि सूर्यवत् आचार्य की स्थिति, (४) सर्वपापनाशक अग्नि प्रभु की स्तुति। (५) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (६-७) तपस्वी विद्यार्थी का कर्त्तव्य। (८) विद्वान् को अप्रमादी रहने का उपदेश। (पृ० ९३-९६)

सू० [१४४]—अग्नि-व्रत का वर्णन। विद्यार्थी के आचार्य शुश्रूषा व्रत का वर्णन। आचार्य शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन। (३) माता, पिता, आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। (४) माता पिता का बालक के प्रति कर्त्तव्य। (५) प्रजाओं का रक्षक के प्रति व्यवहार और रक्षक का कर्त्तव्य। (६) अग्निवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। (७) मेघवत् राजा का कर्त्तव्य। (पृ० ९६-९९)

सू० [१४५]—आदर्श विद्वान् का वर्णन। (२) जिज्ञासु का

कर्त्तव्य। (३) शिष्य का स्वरूप। (४) शिष्य के कर्त्तव्य। (५) विद्यार्थी के कर्त्तव्य। (पृ० ९९–१०१)

सू० [१४६]—(१) पुत्रवत् शिष्य का कर्त्तव्य, विद्यार्थी का लक्षण। त्रिमूर्धा सप्तरश्मि का रहस्य। पक्षान्तर में परमेश्वर, त्रिमूर्धा सप्तरश्मि, अग्नि का वर्णन। (२) सूर्यादिवत् जगत्-धारक प्रभु। (३) सूर्य पृथिवी के समान स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य। (४) विद्वानों का प्रभु-दर्शन। (५) दर्शनीय शिष्य (पृ० १०१–१०४)

सू० [१४७]—अग्निवत् आचार्य का वर्णन। (२) उपदेश करने का प्रकार। (३) प्रभु का वर्णन। (पृ० १०४–१०६)

सू० [१४८]—मातरिश्वा शिष्य का वर्णन। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (४) आचार्य-वर्णन (५) विद्यार्थी का बल। (पृ० १०६–१०८)

सू० [१४९]—तेजस्वी स्वामी के कर्त्तव्य। (३) उसका शासन। द्विजन्मा विद्वान् का वर्णन। (पृ० १०८–११०)

सू० [१५०]—प्रभु के प्रति शरणयाचना। अह्लादक प्रभु की शरण। (पृ० ११०–१११)

सू० [१५१] उत्तम शासक के कर्त्तव्य, (३) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, [४] पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन। (५) पति पत्नी का परस्पर वरण। (६) परस्पर सभ्य व्यवहार और मधुर वचन बोलने का उपदेश (७) उत्तम विद्वानों के सत्संग की आज्ञा। (९) धनैश्वर्य, बुद्धि, सामर्थ्यादि प्राप्ति का उपदेश। (पृ० १११–११५)

सू० [१५२]—सुसभ्य बनकर स्त्री पुरुषों को रहने का उपदेश। (२) सभ्यों के लक्षण। (३) वेदाभ्यास, ज्ञान प्राप्ति का उपदेश, पति पत्नी के प्रति उत्तम उपदेश। (५) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी रहने का उपदेश। 'अनभीशु अर्वा' का रहस्य। अध्यात्म में—आत्मा का वर्णन।

(६) माताओं और गौओं के समान, आचार्य का शिष्य को पालन करना और शिष्य को पुत्रवत् भिक्षा का उपदेश। (७) गृहस्थों का भिक्षा देने का सद्भाव। मित्र वरुण का स्पष्टीकरण। (पृ० ११५-११८)

सू० [१५३]—मेघ सूर्यवत् मित्र वरुण अर्थात् स्नेही और श्रेष्ठजन का कर्त्तव्य। (२) विद्वान् का सद्-गृहस्थों के प्रति उपदेश करने का कर्त्तव्य। (३) विदुषी स्त्री और आचार्य का कर्त्तव्य। (४) पतिपत्नी के कर्त्तव्य। (पृ० ११८-१२०)

सू० [१५४]—विष्णु परमेश्वर का वर्णन। विष्णु के तीन विक्रमणों का रहस्य। (३) अद्वितीय परमेश्वर जगत् कर्त्ता। (४) विष्णु के तीन पद। उसके प्रियपद की आकांक्षा, (५) उत्तम स्वास्थ्यजनक गृहों की इच्छा। (पृ० १२०-१२२)

सू० [१५५]—पालक राजा के प्रति प्रजाजनों के कर्त्तव्य। सूर्य वायुवत् राजा का अपने राष्ट्र और शक्ति की रक्षा का उपदेश। (३) वृष्टि से अन्न, प्रजाओं की उत्पत्ति। (४) सूर्यवत् प्रबल पुरुष और ब्रह्मचारी के अपूर्व वीर्य-बल का वर्णन। (पृ० १२२-१२५)

सू० [१५६]—उपदेष्टा विद्वान् के कर्त्तव्य और परमेश्वर का वर्णन, इनका सूर्यवत् कर्त्तव्य। (पृ० १२५-१२७)

सू० [१५७]—स्त्री पुरुषों के गृहस्थसम्बन्धी कर्त्तव्य। (पृ० १२७-१३०)

सू० [१५८]—उत्तम गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। मामतेय दीर्घतमा का रहस्य। (पृ० १३०-१३२)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [१५९]—सूर्य और पृथिवीकृत दृष्टान्त से माता पिता, गुरुजनों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) पुत्रों के कर्त्तव्य। ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन कर्त्तव्य। (पृ० १३२-१३४)

सू० [१६०]—सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से पति-पत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन, (३) उत्तम पुत्र के लक्षण और कर्त्तव्य। (पृ० १३४-१३६)

सू० [१६१]—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन। सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज का स्पष्टीकरण। (२) उत्तम दूत के उत्तम फल, ऋतुओं के एक चमस को चार करने का रहस्य। (३) नाना रथ तथा यन्त्र कलादि के चालक अग्नि के दृष्टान्त से दूत के राष्ट्र-भूमि के प्रति कर्त्तव्यों का वर्णन। (४) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा वा शासकों का कर्त्तव्य। (५) दुष्टों के दमन का उपाय (६) सूर्य, राजा सेनापति आदि के दृष्टान्त से विद्वानों को उत्तम उपदेश। (७) धनुर्धर पुरुषों और शिल्पियों के कर्त्तव्य। (९) विद्वानों का नाना विद्याओं के प्रचार का कार्य। (१०-१४) विद्वानों, राष्ट्रवासियों को लाभप्रद उपदेश। (पृ० १३६-१४२)

सू० [१६२]—श्रेष्ठ जनों के प्रति आदर का उपदेश। वाजी देव जात सप्ती आदि का रहस्य। (२) अभिषिक्त राजा और प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य, विश्वरूप अज का रहस्य। (३) सेनापति के योग्य पुरुष, अश्व-मेघ के अश्व के आगे छाग आदि लाने का रहस्य। (४) अश्ववत् राष्ट्र-पति के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। अध्यात्म में अश्व, परमेश्वर का वर्णन। (५) राष्ट्ररूप यज्ञ का वर्णन, अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप, (६) राष्ट्र पति के सहयोगियों का कर्त्तव्य। (७) अश्ववत् राष्ट्रपति, ब्रह्मचारी, और गृहस्थ पति का वर्णन। आत्मा का वर्णन (८) अश्व के बन्धनों के समान राष्ट्रपति की मर्यादाएं। (९) राष्ट्र के ऐश्वर्य के प्रबन्ध को विद्वानों के अधीन रखने का उपदेश। (१०) वध किये अश्व के मांसादि की नाना कल्पना आदि अयुक्त अर्थों का खण्डन। शरीर की व्यवस्थावत् राष्ट्र की सुव्यवस्था। अश्वमेघ के अश्व के मांस पकाने आदि का खण्डन। (११) त्याग और तप के सत्फल का उपभोग राष्ट्र की भावी प्रजा को मिले (१२) तपस्वी, दृढ़ राष्ट्रपति की परिपक्व अन्न से तुलना।

'मांसभिक्षा' का सत्यार्थ । (१३) भूमि के स्थल, जल आदि का निरिक्षण, पक्षान्तर में आत्मा और शरीर का वैज्ञानिक और दार्शनिक रहस्य । मांस-पचनी उखा और पात्रों का सत्य रहस्य । (१४) राष्ट्र की अश्व से तुलना । उनके सब कार्यों पर विद्वानों की अध्यक्षता । (१५) राष्ट्रशासक बल और सैन्य का कर्त्तव्य । अश्वसैन्य और राष्ट्रपति की अश्व से तुलना । (१७) अश्ववत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (१८) अश्व-देह की राष्ट्र-देह से तुलना (१९) अश्व, काल, संवत्सर और प्रजापति राजा की तुलना (२०) राजा के कर्त्तव्य । (२१) ज्ञानी विद्वान् और राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२२) विद्वान् और राजा के प्रति राष्ट्र का कर्त्तव्य । अश्वमेध के इस सूक्त का सर्वतोमुखी रहस्य । (पृ० १४२—१५१)

सू० [१६३]—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से शिष्य की उत्पत्ति, और विद्वान् होने पर उसकी सफलता । आचार्य का शिष्य के प्रति कर्त्तव्य । यम से दिये अश्व को त्रित का जोड़ना और इन्द्र का उस पर बैठने और गन्धर्व का लगाम पकड़ने का सत्यार्थ । (३) अश्व की उपमा से ब्रह्मचारी का वर्णन, शिष्य की पुत्र से तुलना । (४) तीन बन्धन (५) आत्म-शुद्ध्यर्थ व्रतों का आचरण (६—७) शिष्य का कर्त्तव्य अध्यात्म में भक्त का उपास्य-आत्मदर्शन । (८) विद्वान् तेजस्वी के शासन में सब सम्पदाएं । (९) आचार्य, सर्वोच्च पद । (१०) जिज्ञासु शिष्यों का कर्त्तव्य (११) वीर, बलवान् राजा और राजा को तेजस्वी होने का उपदेश । (१२) सर्वोपास्य प्रभु । (१३) उत्तम पुरुष का मां बाप के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १५३—१५७)

सू० [१६४]—सप्त प्राण आत्मा का वर्णन परमेश्वर का वर्णन । (२) आत्मा, सूर्य, परमात्मा संवत्सरात्मक चक्र का वर्णन, एक त्रिनाभि अनर्व चक्र का रहस्य । (३) सप्त चक्र रथवत् आत्माधिष्ठित देह और परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन । (४) हड्डी वाले देह में बेहड्डी के आत्मा का रहस्य । (५) देह में प्राणों और आत्मा में यज्ञों का

विस्तार। वस्त्र में तन्तु वितान और वयन का रहस्य। (६) सर्वाधार परमेश्वर विषयक प्रश्न। (७) ब्रह्मज्ञानी से आत्मविषयक प्रश्न। शिर से क्षीर दोहने वाली गौओं का रहस्य। (८) माता पिता या दम्पतिवत् परमेश्वर प्रकृति का वर्णन। गर्भरसा बीभत्सु माता का रहस्य। (९) उत्पत्ति कार्यों में परमात्मशक्ति को देखना। (१०) तीन माता तीन पिताओं के पालक प्रभु का वर्णन। (११) द्वादशार, द्वादशाकृति और षडर सप्तचक्र का वर्णन। (१३) पञ्चार चक्र, आत्मा। (१४) दशाश्व रथवत् सर्वाधार आत्मा। (१५) सात साकंज और ६ ऋषियों का वर्णन। (१६) परमेश्वरी शक्तियों का वर्णन। (१७) सवत्सा गौवत् उषा सूर्य, और परमेश्वर, शक्ति का वर्णन। (१८) परात्पर प्रभु के विरल ज्ञाता। (१९) समीप के लोकों का विवेक। (२) विश्व में विद्यमान जीव ब्रह्म का दो पक्षियोंवत् वर्णन। (२१) रश्मिवत् ज्ञानी-जनों का ज्ञानप्रकाश करना। आत्मा के रश्मि इन्द्रियों का वर्णन। (२२) संसार वृक्ष पर मधुभोजी सुपर्ण। (२३) विद्वानों की अमृत पद प्राप्ति। छन्दस्त्रयी ईश्वर स्तुति। (२४) चारों वेदों की उत्पत्ति। (२५) महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर। (२६) वेद वाणी का गौ के समान ज्ञान-दोहन। आचार्य का सवितावत् ज्ञानवर्षण। (२७—२८) परमेश्वर का माता एवं गौवत्, ज्ञानरसदान, और मातृवत् प्राणिमात्र से प्रेम। (२९) विद्युत् मेघवत् ईश्वर का वेदोपदेश प्रकाश। (३०) देहों में आत्मवत् लोकों में प्रभु की स्थिति। (३१) परमेश्वर और जीव का साक्षात्कार। (३२) अगम्य आत्मा। (३३) जीव और विश्व की उत्पत्ति का रहस्य। (३४—३५) पृथिवी के परम अन्त भुवन की नाभि, महान् आत्मा के विश्वोत्पादक सामर्थ्य और परमाश्रय विषयक प्रश्न और उत्तर। (३६) सूर्यवत् प्रभु का शासन। (३७) जीव की ज्ञानप्राप्ति। (३८) कर्मों से जीव का उच्च नीच योनि में जन्म लेना। (३९) सूर्य में किरणोंवत् परब्रह्म के ज्ञानियों की स्थिति। (४०) गौ

समान परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। (४१) विद्युत्वत् वैदिक और लौकिक वाणी का वर्णन। (४२) विद्युतवत जीवनाधर प्रभुशक्ति। (४३) शकमय धूम, नीहारिका तथा परमेश्वर का वर्णन। (४४) विद्युत् वायु सूर्य के कार्य और विश्व की सृष्टि, पालन और संहारकारी प्रभुशक्ति के कार्यों का वर्णन। (४५) चतुष्पदा वाणी का वर्णन। वाणी के चार रूप। (४६) परम प्रभु के इन्द्र, मित्र, वरुणादि नाना नामों की व्यवस्था। (४७) किरणोंवत् विद्वानों को प्रभुपद-प्राप्ति। (४८) महायन्त्रवत् अध्यात्म शक्तियों का वर्णन। (४९) सर्वसुखद सरस्वती नाम परमेश्वर का वर्णन। (५०) विद्वानों की यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना। (५१) वृष्टि जलवत् जीव की उच्च नीच गति का वर्णन (५२) सर्वाधार सहस्वान् मेघवत प्रभु। (पृ० १५७—१८५)

सू० [१६५]—गुरु के आश्रय छात्रों का ब्रह्मचर्यवास और गुरु सेवा। (२) गुरु की और देह में प्राणों पर आत्मा की स्थिति। (३) अद्वितीय शक्ति के विषय में प्रश्न। (४) प्रभु के वा गुरु के प्रति शान्ति-उपदेश। (५) वीरोंवत् मुमुक्षुओं का वर्णन। (६–७) विद्युत-वत् प्रबल नायक। (८) राजा के राष्ट्र में उत्तम कार्य। (९) सर्वोपरि अनुपम प्रभु। (१०) अद्वितीय शासक। (११) वीरों का नायक से सम्बन्ध। (१२) विद्वानों, वीरों का राष्ट्र में, देह में प्राणवत् कर्त्तव्य। (१३) उनका योग्य परस्पर आदर। (१४–१५) परस्पर ज्ञानदान और बल प्राप्ति। (पृ० १८५–१९१)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [१६६]—शिष्यों का गुरु के अधीन ज्ञानों का लाभ। (२) गृहस्थों के अन्नोपभोगवत् तेजस्वी मुमुक्षुओं की ब्रह्मरति, रुद्र विद्वानों का सर्वोपकार। (४) वीरों का प्रयाण। (५) वायु के समान ही वीरों का शत्रूच्छेदन। (६) प्रजाओं का रक्षण। (७) प्रशंसनीय वीरों के लक्षण। (८) उनके कर्त्तव्य। (९) स्पर्द्धावान् सशस्त्र वीरों का

वर्णन। (१०) पक्षियोंवत् सुसज्जित वीरों का वर्णन। (११–१४) सूर्य के अधीन वायुणवत् सेनापति के अधीन वीरों और गुरु के अधीन शिष्यों का व्रतपालन। (पृ० १९१–१९७)

सू० [१६७]—रक्षक प्रभु की शरण सहस्रों ऐश्वर्यवान् हैं। (२) विद्वानों, धनवानों की राष्ट्र में उत्तम कामना। (३) पत्नीवत् वाणी से सुशोभित विद्वानों का आदर। (४) वीर युवाओं को वायु के दृष्टान्त से नवपत्नी के ग्रहण और रक्षा का उपदेश। (५) सूर्य दीप्तिवत् पुरुष को प्राप्त होने वाली स्त्री के उत्तम लक्षण। (६) यज्ञ में वेद वाणी के गानवत् पुरुष को उत्तम गाथागान का उपदेश। (७) नव गृहस्थों को सत्य प्रतिज्ञा से गृहस्थ निर्वाह का उपदेश। (८) विद्वानों, उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (९, १०) बलवृद्धि का कर्त्तव्य। (पृ० १९७–२०२)

सू० [१६८]—(१–४) एक साथ काम करने का उपदेश। विद्वानों को ज्ञानोपदेश करने का कर्त्तव्य। पत्नीवत् उनकी संगिनीशक्ति का वर्णन। वीरों का शासन कार्य। (५) सशस्त्रास्त्र वीरों का वीरकर्म। (६) परमेश्वर का सर्वोपरि बल। (७) वीरों की प्रबल शक्ति के लक्षण। (९) विद्युतों का यज्ञ से सम्बन्ध। (१०) वीर नायकों के कर्त्तव्य। (पृ० २०२–२०७)

सू० [१६९]—महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का वर्णन। (२) उत्तम दानशीलता। (३) प्रभु की अद्वितीय शासन-व्यवस्था। (४) यज्ञदक्षिणावत् प्रभु का समृद्धिदान। (५) मेघवत् प्रभु की उदारता। (६) सेनापति का वर्णन। (७) परिव्राजकों के वायुवत् कर्त्तव्य। (पृ० २०७–२१०)

सू० [१७०]—मन की अस्थिरता, और भविष्य का अज्ञान। (२) भविष्य के लिये स्वामी, सेनापति को बलवान् होने का कर्त्तव्य।

(३) पोषक नायक का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (४) यज्ञ का उपदेश । (५) सबके पालक प्रभु, वसुपति आचार्य का कर्त्तव्य । (पृ० २१०–२१२)

सू० [१७१]—गुरु का शिष्यों के प्रति उपदेश । विद्वानों के कर्त्तव्य । (४) शस्त्र धारण करना आवश्यक, उसका उचित प्रयोजन । (५) विद्वानों के ज्ञानविस्तार का कर्त्तव्य । प्रजा को राजा बलवान् बनावे । (६) प्रजा का पालन करे । (पृ० २१२–२१५)

सू० [१७२]—विद्वानों वीरों के कर्त्तव्य । देह में प्राणों की स्थिति । (३) अत्याचारी राजा से रक्षा करने की प्रार्थना । पक्षान्तर में देहमय तृणस्कन्द का वर्णन । (पृ० २१५–२१६)

सू० [१७३]—प्रातः किरणों के प्रकाश के साथ वेदगान का उपदेश । (२) सिंहवत् वीर का शत्रु के प्रति आक्रमण और प्रजा का भरण पोषण । (३) सूर्यवत् भूमि का शासन । (४) वीरों का सशस्त्र होकर शत्रुनाश का कर्त्तव्य । (५) सेनापति का सूर्यवत् पराक्रम । आत्मा, सत्वा, मघवा (६) अद्वितीय होकर प्रजापालन । (७) प्रजा का सहोद्योग । (८) परस्पर प्रसन्नता । (९) स्वामी और सेवक का परस्पर व्यवहार । (१०) न्यायशील राजा के नीचे प्रजा का प्रेमसहित होकर रहना । (११) यज्ञ, परस्पर संगति राष्ट्र को समृद्ध करती है, कुटिलता सदा हानिकारक है । (१२) नायक का संकटों से बचाने का कर्त्तव्य । (१३) उत्तम आज्ञापक का कर्त्तव्य । (पृ० २१६–२२२)

सू० [१७४]—(१–८) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । सेनापति के कर्त्तव्य । दुष्टों का दमन । (९) शत्रुनाश, सेनासञ्चालन । (१०) सैन्य बल की वृद्धि । (पृ० २२२–२२५)

सू० [१७५]—पात्रस्थ ओषधि रसवत् उत्तम पालक के कर्त्तव्य । (२) वह अधिक बलशाली हो । (२) शूरवीरवत् सेनासञ्चालक

दुष्टों का नाशक हो। (४) योग्य धुरन्धर के लक्षण। (पृ० २२५-२२७)

सू० [१७६]—आत्मप्राप्ति। अद्वितीय प्रभु की स्तुति करने का उपदेश। द्रोही के विनाश की प्रार्थना। उसके धननाश की प्रार्थना। ऐश्वर्यवृद्धि की याचना। (पृ० २२८—२२९)

सू० [१७७]—बलवान् नायकों का आह्वान, शासक के कर्त्तव्य। (पृ० २२९—२३२)

सू० [१७८]—ईश्वर, आचार्य, राजा से ज्ञान, समृद्धि प्राप्त की प्रार्थना। राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य (पृ० २३२—२३४)

सू० [१७९]—गृहस्थ पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (पृ० २३४-२३६)

सू० [१८०]—गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उपदेश। (पृ० २३६-२४०)

सू० [१८१]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० २४०-२४४)

सू० [१८२]—विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। राष्ट्र के दो उत्तम पदाधिकारियों के कर्त्तव्य। (पृ० २४४—२४८)

सू० [१८३]—विद्वान् स्त्री पुरुषों को उपदेश। त्रिवन्धुर त्रिचक्र रथ की व्याख्या। (पृ० २४८—२५०)

पंचमोऽध्याय

सू० [१८४]—विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० २५१-२५३)

सू० [१८५]—माता पिता के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० २५३-२५७)

सू० [१८६]—सर्वव्यापक प्रभु। (२) उत्तम विद्वान् अधिकारियों के कर्त्तव्य। (पृ० २५८—२६२)

सू० [१८७]—अन्नवत् पालक प्रभु की उपासना। (पृ० २६२-२६५)

सू० [१८८]—तेजस्वी प्रभु। देह में आत्मावत् राष्ट्र में राजा। तेजस्वी नायक। तेजस्वी राजा। उत्तम प्रजा। (६) दिन रात्रिवत् राज प्रजा वर्ग। (७) उन दोनों का परस्पर यज्ञ। (८) भारती आदि

तीन सभाएं। (९) सूर्यवत् राजा का शिल्पकारों के प्रति कर्त्तव्य। विद्वान् की शोभा। (पृ० २६५—२६९)

सू० [१८९]—मार्गदर्शी प्रभु। विद्वान् का कर्त्तव्य। तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य। (पृ० २६९—२७१)

सू० [१९०]—विद्वान् के कर्त्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। बृहस्पति, सभापति, ब्रह्मा विद्वान्, आदि का वर्णन। (पृ० २७१—२७५)

सू० [१९१]—विषैले जीवों का वर्णन। विषनाशक ओषधियां। विष पर उपचार। विष वैद्य के कर्त्तव्य। विष चिकित्सा (पृ० २७५-२८१)

॥ इति प्रथमं मण्डलम् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

सू० [१]—अग्नि के दृष्टान्त से राजा, और पक्षान्तर में प्रभु का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० २८२—२८९)

सू० [२]—प्रधान नायक का आदर। राजा के कर्त्तव्य पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० २८९—२९५)

सू० [३]—अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का वर्णन। मेघ के दृष्टान्त से प्रजापति पुरुष को उपदेश। (पृ० २९५—३०१)

सू० [४]—विद्वान् आचार्य और राजा का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ३०१—३०५)

सू० [५]—ज्ञानप्रद पिता। यज्ञ में सात ऋत्विजों में पोता के समान सात प्राणों में मन वा आत्मा की स्थिति। (४) उत्तम शासक प्रभु, व्रतपाल विद्वान् की उन्नति। (५) प्रजा के ऐश्वर्य का स्वामी राजा। स्वयंवरा कन्या के स्वयंवरण से पति की उन्नति। (७-८-९) यज्ञ का उपदेश। (पृ० ३०५—३०८)

सू० [६]—अग्नि में समिधा-प्रदीप्तिवत् गुरु से शिष्य को ज्ञान

प्राप्ति । (२) अग्नि से यन्त्रसञ्चालन । (३) विद्युत् अग्नि की परिचर्या । (४) गुरु शिष्य के कर्त्तव्य । विद्वान् के कर्त्तव्य । विद्वान् दूत का कर्त्तव्य । (पृ० ३०८—३११)

सू० [७]—विद्वान् तेजस्वी, राजा का कर्त्तव्य । (पृ० ३११-३१२)

सू० [८]—सूर्यवत् उत्तम नायक के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ० ३१२—३१४)

सू० [९]—यज्ञाग्निवत् उत्तमाधिकारी सभापति और सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ३१४—३१६)

सू० [१०]—यज्ञाग्निवत् राजा का पवित्र पद और उसके कर्त्तव्य (२) शिष्य गुरु के कार्य । (३) अग्निवत् राजा का वर्णन । (पृ० ३१७—३१९)

सू० [११]—ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति का वर्णन । (पृ० ३१९-३२६)

सू० [१२]—बलवान् परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३२६—३३२)

सू० [१३]—मातृवत् राजा, सभा और राजा का वर्णन । गृहपत्नीवत् प्रजा का कर्त्तव्य । गृहपतिवत् राजा के कर्त्तव्य । (६-१३) परमेश्वर उत्तम शासक । (पृ० ३३२—३३७)

सू० [१४]—शासकों का प्रजापोषण का कर्त्तव्य । (३) उत्तम शासन । (४) शत्रुदमन, प्रजाजनों और राजपुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ३३७—३४१)

सू० [१५]—परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३४१—३४५)

सू० [१६]—प्रभुवत् प्रबल व्यक्ति का प्रमुख नायक करने का उपदेश । परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३४५—३४८)

सू० [१७] परमेश्वरोपासना का उपदेश । परमेश्वर का स्वरूप वर्णन । (पृ० ३४८—३५१)

सू० [१८]—जीवात्मा का वर्णन । परमेश्वर वर्णन । (७-८) विद्वान् और वीर का वर्णन । (पृ० ३५२—३५५)

सू० [१९]—ईश्वरोपासना का उपदेश। जिज्ञासु का कर्त्तव्य। (पृ० ३५५—३५८)

सू० [२०]—सूर्यवत् नायक और परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ३५८—३६२)

सू० [२१]—उपासना, (७–९) जीव का वर्णन। (पृ० ३६२—३६४)

सू० [२२]—परमेश्वरोपासना। (पृ० ३६४—३६६)

सू० [२३]—ईश्वरस्तुति, प्रार्थना। राजा का वर्णन। (पृ० ३६६–३७३)

सू० [२४]—बृहस्पति विद्वान्। परमेश्वर और उत्तम राजा। (पृ० ३७३–३७९)

सू० [२५]—गुरु, ज्ञानी और राजा का वर्णन। (पृ० ३७९–३८१)

सू० [२६]—विद्वान्, और वीर, तथा प्रभु का वर्णन। (पृ० ३८१–३८३)

सू० [२७]—राष्ट्र के नाना शासक जनों के कर्त्तव्य। (७) राजसभा, न्यायसभा, जनसभा और सभापति का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ३८३–३८९)

सू० [२८]—सूर्यवत् विद्वान् और परमेश्वर से ज्ञान वा जगत् का प्रकाश। विद्वान् और प्रभु की शरण रहने का उपदेश। प्रभु से रक्षादि की प्रार्थना। (पृ० ३८९–३९३)

सू० [२९]—व्रतधारी विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ३९३–३९५)

सू० [३०]—प्राणियों के लिये सृष्टिरचना। भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा को उपदेश। (४) वायु, सर्य, विद्युत् के दृष्टान्त से सेनापति के कर्त्तव्य। (८) सेना का कर्त्तव्य। (पृ० ३९५–३९९)

सू० [३१]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ३९९–४०२)

सू० [३२]—सूर्य पृथिवीवत् माता पिता के कर्त्तव्य । (२) प्रभु से उत्तम २ प्रार्थनाएं । (४) राका, सिनीवाली, गुङ्गू, सरस्वती नाम उत्तम महिलाओं का वर्णन । (पृ० ४०२–४०५)

सू० [३३]—दुष्ट-दमनकारी, पितावत् पालक राजा सेनापति और और विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० ४०५–४१०)

सू० [३४]—मरुत नाम वीरों और विद्वानों का वर्णन । (पृ० ४१०–४१८)

सू० [३५]—अन्नार्थी के समान ज्ञानार्थी को उपदेश । अपांनपात् का वर्णन । (२) अपांनपात् परमेश्वर का वर्णन । उसकी उपासना । पक्षान्तर में स्त्रियों का अनुरूप पति को वरण करने का वर्णन । उत्तम स्त्रियों के स्वयंवर का प्रकार । स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ४१८–४२५)

सू० [३६]—राष्ट्र के शासकों के कर्त्तव्य । (पृ० ४२५–४२८)

अष्टमोऽध्याय

सू० [३७]—विद्वान् द्रविणोदस् वनस्पति नाम से राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य । (पृ० ४२८–४३१)

सू०—[३८]—सविता नाम तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य । (६) विजिगीषुवत् समावर्त्तन करके लौटते स्नातक का वर्णन । (९) परमेश्वर की उपासना का उपदेश । (पृ० ४३१–४३५)

सू० [३९]—विद्वानों वीरों और उत्तम स्त्री पुरुषों एवं वर वधू के कर्त्तव्य । (पृ० ४३६–४३९)

सू० [४०]—सोम पूषा, माता पिता के कर्त्तव्य । (पृ० ४३९–४४३]

सू० [४१]—उत्तम पुरुषों, नाना अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (१६–१७) उत्तम स्त्रियों का वर्णन । और बिद्वानों के कर्त्तव्य । (पृ० ४४३)

सू० [४२-४३]—शक्तिशाली और ज्ञानी पुरुष का और पक्षान्तर

में प्रभु का वर्णन। शकुनि, श्येन, शकुन्त, आदि का रहस्य। इति द्वितीयं मण्डलम्। (पृ० ४४९—४५२)

अथ तृतीयं मण्डलम्

सू० [१]—गुरु और शिष्यों के कर्त्तव्य। राष्ट्र, तेजस्वी राजा का वर्णन। (पृ० ४५३–४६२)

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य। (२) राष्ट्रपति का पूज्य पद। (३) विद्वान् गुरु का वरण (५) अग्निवत् नायक का स्थापन उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४६२–४६९)

सू० [३]—अग्निवत् प्रधान पद पर स्थित विद्वान्, नायक पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० ४६९–४७४)

सू० [४]—अग्रणी नायक के कर्त्तव्य (४) राजा प्रजाजनों और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। वीरों का कर्त्तव्य (पृ० ४७४–४७९)

सू० [५]—अग्नि के दृष्टान्त से समर्थ योग्य विद्वान् अधिकारी के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। अग्रणी नायक का वर्णन। (७) जीव के पुनर्जन्म की व्यवस्था। अरणियों से अग्निवत् माता पिता से जीव सर्ग। (पृ० ४८०–४८६)

सू० [६]—प्रधान पुरुष का आदर करने का उपदेश। उससे ज्ञानग्रहण। माता पिता का कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। (पृ० ४८६–४९०)

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति द्वितीयोऽष्टकः।

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[१२२]

॥ औशिजः कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळहुषे भरध्वम् ।
अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥

भा०—हे क्रोधरहित या ज्ञान की तीव्र भावना वाले शिष्यो ! तुम्हारे दुःखों को दूर करने वाले और तुम पर सुखों की वर्षा करने वाले गुरु के प्रति, उनकी पालना करने वाले अन्न आदि को तथा उचित सत्कार को श्रद्धापूर्वक भेट रूप में लाया करो । आकाश और पृथिवी के बीच सबको प्राण देने वाले सूर्य की ओर जल वृष्टि धारक वायुओं के समान वीर शिष्यों के साथ विद्यमान ज्ञान के देने वाले आचार्य के गुणों का मैं वर्णन करता हूँ ।

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥

भा०—दिन की न्यांई ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित पुरुष हो, तथा रात्रि की न्याईं सद्गुणों के तारामण्डल से विभूषित स्त्री हो। ये दोनों नाना विद्याओं के जानने वाले हो। स्त्री सती पत्नी के समान पूर्व स्वीकृत पति की निरन्तर वृद्धि के लिये यत्न करे। कवच को योद्धा के समान वह विशेष रूप से बुने गये वस्त्र को पहनती हुई, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की लक्ष्मी होकर और सुवर्ण के आभूषणों से सुन्दर दीखने वाली होकर सुलोचना हो।

म॒मत्तु॑ नः॒ परि॑ज्मा वस॒र्हा म॒मत्तु॒ वातो॑ अ॒पां वृष॑ण्वान्।
शि॒शी॒तमि॑न्द्रापर्वता यु॒वं न॒स्तन्नो॒ विश्वे॑ वरिवस्यन्तु दे॒वाः ॥३॥

भा०—गृह-वस्त्रादि से आदर करने हारा, उद्यमी, और आप्त पुरुषों के हितार्थ मेघ के समान ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाला ऐश्वर्यवान् पिता, तथा अपने समीप बसने वाले शिष्यों को आदर से रखने वाला और उनके द्वारा आदरणीय, सबको अन्न तथा ज्ञान प्रदान करने वाला, और प्राप्त शिष्यों के हितार्थ ज्ञानजलों का वर्षण करने वाला गुरु ये दोनों हमें हर्षित करें। हे विद्युत् और पर्वत के समान सर्वोपकारक पिता और गुरु! आप दोनों हम अधीनस्थ ब्रह्मचारियों और सन्तानों को तीक्ष्ण बुद्धि, तपस्या और अभ्यास से शिक्षित करें। और हमें सब विद्वान् और दानशील पुरुष भी ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करें।

उ॒त त्या मे॑ य॒शसा॑ श्वेत॒नायै॒ व्यन्ता॒ पान्तौ॑शि॒जो हु॒वध्यै॑।
प्र वो॒ नपा॑तम॒पां कृ॑णुध्वं॒ प्र मा॒तरा॑ रास्पि॒नस्या॒योः ॥ ४ ॥

भा०—सुख-रस के सदा पान करने वाले पुत्र या शिष्य का निर्माण करने वाले मातापिता अथवा गुरु और गुरुपत्नी, जोकि ज्ञानसे जगत् को उज्ज्वल करने के लिये भोजन ग्रहण करते और जल-पान करते हैं, आप उन दोनों का, मैं तेजस्वी बाप का पुत्र या गुरु का शिष्य होकर अत्यन्त अधिक आदर करता हूँ। और वार २ सहायतार्थ आप को पुकारता हूँ।

आप सब अपने प्राणों, ज्ञानों और आचारादि कर्तव्यों को न नष्ट होने देने वाले पुत्र या शिष्य को उत्तम रीति से सुशिक्षित करो।

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—दुःख के नाश करने के लिये जिस प्रकार वेदवाणी उत्तम उपदेश प्रदान करती है, उसी प्रकार मैं विद्याप्रेमी गुरु तथा माता पिता का पुत्र एवं शिष्य होकर, सबको ज्ञान देने तथा सबके दुःख नाश करने के लिये, ज्ञानमय परमेश्वर के श्रेष्ठ धन स्वरूप वेदज्ञान का, तथा आप लोगों के उत्तम उपदेश और ज्ञान का, पुष्टि और वृद्धि करने वाले और आगे योग्य पात्रों में विद्या-दान देनेवाले विद्यार्थी को अच्छी प्रकार प्रवचन करूं। इति प्रथमो वर्गः ॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम्।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥

भा.—हे मित्र और सर्वश्रेष्ठ माता पिता या गुरु और गुरुपत्नी आदि जनो! आप दोनों मेरे इन स्वीकार करने योग्य वचनों का श्रवण करो, तथा गृह में माता-पिता और गुरुगृह में गुरुपत्नी तथा गुरु आप सब मेरे वचनों का श्रवण करो। हमारे वचनों को उत्तम श्रवणशील पुरुष और कान देकर सुनने वाली माता तथा गुरुपत्नी सुने। बहने वाला जलप्रवाह जिस प्रकार जलों से उत्तम खेतों को सींच देता है उसी प्रकार आप हमारे हृदय-क्षेत्रों को उपदेशामृत से सींचिये।

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७॥

भा०—हे पापों से निवारक तथा स्नेहवान् दोनों प्रकार के सज्जनो! मैं आप दोनों की स्तुति करता हूँ। क्योंकि सैकड़ों गौओं और भूमियों के समान उपकार करने वाली सैकड़ों ज्ञानवाणियों का प्रश्न करने योग्य ज्ञानरहस्यों

के निमित्त यमनियमों का आचरण करने वाले ब्रह्मचारियों में, तुम दोनों का दानही श्रेष्ठ दान है। जिस प्रकार लोग गमन करने वाले रथ में पोषणकारी धन सम्पत् और अन्नादि रखकर और उसकी रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार पिता गुरु आदि प्रिय शिष्यों को कुमार्गों से रोकते हुए अथवा अपनी इन्द्रियों को विषय-विलासों से रोकते हुए और जितेन्द्रिय होकर, प्राप्तव्य तथा गुरूपदेश से श्रवण करने योग्य तथा रमणीय, और अतिप्रिय रस-स्वरूप आत्मा में पोषण सामर्थ्य को धारण करते हुए शीघ्र ही गमन करते हैं, आगे बढ़ते हैं।

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः॥ ८॥

भा०—मैं पुत्र या शिष्य श्रेष्ठविधि से कमाई हुई पिता की धन सम्पत्ति या गुरु की विद्या सम्पत्ति की प्रशंसा करता हूँ, जिस सम्पत्ति को हम उत्तम वीर पुरुष स्वयं लेकर अन्यों के प्रति दान करें। जो स्वामी बलवन्तों को ज्ञान और अन्नरूप सम्पत्ति का देने वाला है, और मुझ पुत्र या शिष्य के हित के लिये मुझे सन्मार्ग पर चलाने वाला है, मैं उस इन्द्रियों के स्वामी और शरीर-रथ के स्वामी की प्रशंसा करता हूँ।

जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक्।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा॥ ९॥

भा०—हे स्नेह करने वाले तथा श्रेष्ठ माता पिता या गुरुपत्नी और गुरु! आप दोनों से जो कोई द्रोह करता है, और जो सीधे द्रोह न करके, टेढ़े तरीके से द्रोह करके आप दोनों के सम्बन्ध की सत्कारादि क्रियाओं को अच्छी प्रकार नहीं अनुष्ठान करता, वह आप से आप हृदय में पीड़ा क्लेश आदि कष्ट को प्राप्त होता है। और जो सत्कार वाणियों द्वारा आप का सत्कार करता है वह सत्य मार्ग पर चलने वाला सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करता है।

स आ॒धतो॒ नहु॑षो॒ दंसु॑जूत॒ः शर्ध॑स्तरो न॒रां गू॒र्तश्र॑वाः ।
विसृ॑ष्टरातिर्याति बाळ्ह॒सृत्वा॒ विश्वा॑सु पृ॒त्सु सद॒मिच्छूरः॑ ॥१०॥२॥

भा०—वह बड़े २ मनुष्यों में भी महान् हो जाता है, जो कि अपनी इन्द्रियों का दमन कर उन द्वारा प्रेरित होता है, जो अत्यन्त बलशाली है, और नरों में जिसके उद्यम का यश फैला हुआ है, जो संसार में विद्या आदि का दान करता है, और जो उत्तम कर्मों के करने वाला होकर विचरता है, तथा जो असुर भावों के साथ युद्धों में सदा विजयी, शूर साबित होता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

अध॒ ग्मन्ता॒ नहु॑षो॒ हवं॑ सू॒रेः श्रोता॑ राजानो अ॒मृत॑स्य मन्द्राः ।
न॒भो॒जुवो॒ यन्नि॑र॒वस्य॒ राध॒ः प्रश॑स्तये महि॒ना रथ॑वते ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्या और ऐश्वर्य से प्रकाशमान ! तथा हे सबको आनन्द देने और स्वयं आनन्दित होने वाले स्तुत्य जनो ! आप लोग, सबके प्रेरक तथा नित्य और सबको एक सूत्र में बांधनेहारे परम पुरुष के उत्तम वचन और स्तुति को श्रवण करो, और सुन कर उस मार्ग पर चलो। क्योंकि आकाश में प्रेरणा देने वाले, पूर्ण रक्षणसामर्थ्य वाले परमेश्वर की आराधना या उस द्वारा दिया गया ऐश्वर्य, महान् सामर्थ्य से रमणसाधन रूप देह को धारण करने वाले आत्मा के उत्तम प्रशासन के लिये होता है।

ए॒तं शर्धं॑ धाम॒ यस्य॑ सू॒रेरित्य॑वोच॒न्दश॑तयस्य॒ नंशे॑ ।
द्यु॒म्नानि॒ येषु॑ व॒सुता॑ती रा॒रन्विश्वे॑ सन्वन्तु प्रभृ॒थेषु॒ वाज॑म् ॥१२॥

भा०—सबके प्रेरक और दशों दिशाओं में व्यापक जिस परमेश्वर के नाशक तथा धारक सामर्थ्य का विद्वान् जन वर्णन किया करते हैं वह समस्त बसने वाले जीवों और वसने योग्य लोकों का विस्तार करने वाला है। हे विद्वान् पुरुषो ! जिन श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों के या श्रेष्ठ पुरुषों के आश्रय पर आप सब लोग नाना ऐश्वर्यों को भोगते हो, उन ऐश्वर्यों का

उत्तम प्रकार से सब का भरण पोषण करने वाले अनेक यज्ञ आदि कामों में दान किया करो।

मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥

भा०—हम साधक लोग, दशों दिशाओं से युक्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं। जिसके आश्रय पर वे दसों दिशा वासी प्रजाजन अन्नों को धारण करते हुए उद्देश्य को प्राप्त होते हैं। ये सूर्य आदि लोक भी या बड़े २ राजा महाराजा भी क्या स्वयं सामर्थ्यवान् हैं ? ये क्या ईश्वर हैं ? अर्थात् उस परमेश्वर की तुलना में ये सब तुच्छ हैं। वह परमेश्वर ही वेगवान्, मन, अग्नि आदि पदार्थों का इष्ट अर्थात् प्रेरक है, वही समस्त बागडोर चलाने वाला है, वही परमेश्वर आकाश मार्ग से जाने वाले समस्त नक्षत्रादि लोकों को और समस्त नायकों या पुरुषों को चलाता और वश करता है। [२] अध्यात्म में यह आत्मा दशविध प्राणगण का धारक होने से 'धासि' है। जिसके आश्रय पर ये दसों प्राण अन्नों को भोगते रहते हैं। वह आत्मा अश्व अर्थात् इन्द्रिय और रश्मि अर्थात् ज्ञान तन्तुओं का प्रेरक है। ये प्राणगण तो क्षुद्र शक्ति वाले हैं। वह इन गतिशील नायक प्राणों को भी वश करता है।

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

भा०—समस्त विनयशील योद्धाजन तथा विद्वान् पुरुष मिलकर हमारे में से कान में सुवर्ण के कुण्डल पहने और गले में मणियों की माला पहने उत्तम नायक पुरुष का, उसे अर्घ्य, पाद्य, आचमन और अभिषेक आदि के योग्य जल प्रदान कर उसकी सेवा करें। और हमारे हित के लिये हमारे अपने और परायों के बीच में उत्तम विद्वान् पुरुष उसको चाहें। वह सबका स्वामी पुरुष शीघ्र ही ज्ञान करने योग्य

वाणियों, समस्त भाषाओं और वेदवाणियों को और दुधार गौओं को प्राप्त करें।

च॒त्वारो॑ मा मश॒र्शार॑स्य॒ शिश्व॒स्त्रयो॒ राज्ञ॒ आय॑वस॒स्य जि॒ष्णोः।
रथो॑ वां मित्रावरुणा दी॒र्घाप्साः॒ स्यूम॑गभस्तिः॒ सूरो॒ नाद्यौ॑त् ॥१५॥३॥

भा०—दुष्टों को नाश करने और विजय करने वाले राजा के चारों वर्ण और चारों आश्रम, या सेना के चारों अंग, और सर्वत्र विद्यमान अन्नादि सामग्री के स्वामी पुरुष के अध्यक्षजन, भृत्यजन और प्रजाजन ये तीनों, इस प्रकार ये सब शिशु या बालक के समान पालन करने एवं शासन करने योग्य हैं। वे सब मुझ प्रजाजन को प्राप्त हों। हे सर्वस्नेही और सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग! आप दोनों का रथ के समान ही राष्ट्र विशाल रूप होकर, तथा सुखकारी किरणों वाले सूर्य के समान सुखकारी शासन प्रबन्ध के युक्त होकर प्रकाशित हो। [२] देह का राजा आत्मा बाधक कारणों पर विजय करने से 'जिष्णु' है। अन्नादि का स्वामी होने से 'आयवस' है। अज्ञान नाशक होने से 'मशर्शार' हैं। ४ × ३ = ७ प्राण उसके शिशु हैं। मित्रवरुण, प्राण और अपान हैं। शरीर रथ है। इति तृतीयो वर्गः।

[१२३]

दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, ३, ६, ७, ९, १०, १३, विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् पंक्तिः॥ त्रयोदशर्चंसूक्तम्॥

पृ॒थू रथो॒ दक्षि॑णाया अयो॒ज्यैनं॑ दे॒वासो॑ अ॒मृता॑सो अस्थुः।
कृ॒ष्णादुद॑स्थाद॒र्या॒३॒॑ विहा॑या॒श्चिकि॑त्सन्ती॒ मानु॑षाय॒ क्षया॑य ॥ १ ॥

भा०—यज्ञ में दाये भाग में विराजने वाली वधू का विशाल रथ जोड़ा जावे। और उसमें कभी नाश न होने वाले दीप्तियुक्त रत्न लगाये जावें। गृह की स्वामिनी नव वधू वियोग से शोकातुर होते हुए पितृगृह

से अपने पति सम्बन्धी गृहों के प्राप्त होने के लिये विशेष आदर युक्त होकर उस रथ पर चढ़े ।

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।

उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

भा० —प्रभात वेला के समान उत्तम कमनीय गुणों से युक्त कन्या समस्त परिवार से पूर्व जागे । वह ऐश्वर्य को विजय करने वाली सेना के समान सबके चित्तों पर विजय प्राप्त करती हुई, बड़ी गुणवती, यथायोग्य भोजन, मान, आदर का विभाग करने वाली युवती, उत्कृष्ट गुणों को प्रकाशित करे । वह उषा के समान पुनः २ प्रतिदिन सदा नये प्रसन्न रूप में प्रकट होती हुई अपने पूर्व विद्यमान, विद्यावृद्ध और वयोवृद्धों के आदर सत्कार के कार्य को सबसे मुख्य होकर प्राप्त हो ।

यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।

देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम कुलवंश से उत्पन्न होने वाली ! प्रभात वेला के समान कमनीय गुणों से युक्त कन्ये ! तू आज के समान सदा ही उत्तम पुरुषों के लिये सेवन करने योग्य अन्न आदि का विशेष रूप से विभाग किया कर । इस गृहाश्रम के क्षेत्र में हममें से गृह का स्वामी दानशील पुरुष ही पुत्रों को उत्पादन करने वाला तेरा पति हो । ऐसा ही वह पाप कर्मों से रहित हम जिज्ञासुजनों को सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी होने के लिये उपदेश करे ।

गृहङ्गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।

सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—प्रकाश से फैलने वाली, प्रभात वेला जिस प्रकार प्रतिदिन नव स्वरूप धारण करती हुई प्रति गृह में प्राप्त होती है उसी प्रकार कभी भी न ताड़ने और न व्यथा पाने योग्य, अतिकोमल स्वभाव की

नववधू प्रतिदिन अपने विनयशील स्वभाव को अधिकाधिक धारण करती हुई प्रत्येक गृह को भली प्रकार आदर से प्राप्त होती, और वह उषा के समान ही अपने गुणों का प्रकाश करती हुई, समस्त ऐश्वर्यों को सेवन करती हुई, सदा बसने हारे गृहस्थ में प्रवेश करने हारे विद्वान् नवयुवकों में से सबमें श्रेष्ठ युवक को ही प्राप्त हो।

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥४॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान कान्तिमति! तू सूर्य की बहिन प्रभात वेला के समान ही साक्षात् गृहलक्ष्मी है। उषा जिस प्रकार अन्धकार के वारण करने वाले सूर्य की भगिनी है, उसी प्रकार हे कन्ये! तू भी श्रेष्ठ भ्राता की भगिनी है। हे शुभ वाणी बोलनेहारी! तू सर्वश्रेष्ठ होकर उत्तम गुणों का बखान कर, या स्वयं उत्तम स्तुति को प्राप्त कर। और जो पाप का पोषण करने वाला है उसका तिरस्कार कर। और उसको हम लोग अति बलवती सेना से और रथबल से विजय करें। इति चतुर्थो वर्गः।

उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥

भा०—प्रातः वेलाएं जिस प्रकार अंधकार से छुपे नाना ऐश्वर्यों को और विशेष रूप से चमकने वाली दीप्तियों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार उत्तम स्त्रियां अन्धकार में छिपे नाना अभिलाषा करने योग्य उत्तम ऐश्वर्यों को प्रकट करें। और विशेष दीप्तियों का प्रकाश करें। उत्तम वाणियां उठें। वेदवाणियां उच्च स्वर से पढ़ी जावें। पुर अर्थात् देह, गृह आदि को धारण करने वाली युवतियां उन्नति को प्राप्त हों। और शुद्ध स्वच्छकारक यज्ञाग्नि प्रज्वलित हों।

अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७॥

भा०—दिन और रात्रि दोनों तम और प्रकाश से विपरीत रूप के होकर भी एक साथ गति करते हैं। इन दोनों में से एक हटता है तो दूसरा सन्मुख आजाता है। समीप २ निवास करते हुए दोनों में से एक रात्रि अन्तरिक्ष में अन्धकार को फैलाती है तो दूसरी उषा अति दीप्तियुक्त रथ अर्थात् तीव्र प्रकाशवान् सूर्य से प्रकाशित होती है। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी भिन्न २ स्वभाव के एक साथ ही सांसारिक सुख का भोग करें। उनमें एक परे होवे तो दूसरा सामने आवे अर्थात् यदि एक व्यक्ति उत्तम कार्य करता २ थककर विश्राम करे तो उसका स्थान दूसरा ले। साथ ही निवास करने के लिये उन दोनों में से एक स्त्री बुद्धि में यदि अन्धकार के समान खेद, शोक आदि प्रकट करे तो दूसरा प्रभात के समान प्रकाश वाला होकर अति दीप्तियुक्त तथा रमण करने योग्य स्वरूप से प्रकाशित हो और खेद आदि अन्धकार को दूर करे।

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः॥ ८॥

भा०—प्रभात वेलाएं जिस प्रकार आज समान रूप से दीखती हैं उसी प्रकार कल अर्थात् भविष्य में भी दीखती हैं। उसी प्रकार उत्तम सुन्दर स्त्रियें भी जिस प्रकार आज गुणों से युक्त अपने पतियों के अनुरूप हों उसी प्रकार भविष्य में भी सदा तदनुरूप बनी रहें। वे निन्दनीय आचारों से रहित होकर वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के चिरकालतक निवास करने योग्य गृह को प्राप्त हों। जिस प्रकार उषाएं सूर्योदय के स्थान से आगे ३०।३० योजन दूर तक दीखती हैं और अकेले २ प्रत्येक यज्ञ या अपने कर्त्ता सूर्य के आश्रय पर रहती हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी कम से कम ३०।३० योजन अर्थात् १२० कोश दूर तक नित्य कर्त्ता को प्राप्त हों। वे समीप २ विवाहित न होवें।

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती॥ ९॥

भा०—दो कुलों को मिलाने हारी स्त्री अपने कुल में अतिप्रसिद्ध आदि वंशकर्त्ता का गोत्रनाम उच्चारण करती हुई, स्वयं शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई कान्तिमति कृष्ण अर्थात् हीनकर्म करने वाले कुल से भी चाहे उत्पन्न हुई हो, वह भी शास्त्रादि से निश्चित, उत्तम शोभाजनक कार्य का आचरण करती हुई, सत्य व्यवहार या वेद, या सत्याचरण युक्त पुरुष के गृह आदि का नाश नहीं करे, प्रत्युत उसको उत्तम रीति से बसावे।

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥५॥

भा०—कन्या जिस प्रकार अपने शरीर से अपना स्वरूप प्रकट करती हुई अपने साथ संयुक्त प्रिय पति को प्राप्त होती है, उसी प्रकार हे तेजस्विनि उषा ! तू भी अपने विस्तृत प्रभामय स्वरूप से प्रकट होती हुई अपने से सुसंगत सूर्य को प्राप्त होती है। और जिस प्रकार जवान स्त्री भली प्रकार मुस्कराती हुई विशेष गुणों से प्रकाशित होती हुई अपने पति के समक्ष अपने बाहुमूल आदि अंगों को प्रकट करती है उसी प्रकार हे उषा ! तू भी मानो प्रकाश किरणों से मुसकाती हुई प्रकाशों से प्रकाशित होती होई सबके समक्ष नाना रूपों को प्रकट करती है। इति पञ्चमो वर्गः।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

भा०—उषा जिस प्रकार प्रभामय देह को प्रकट करती है, दूर तक अन्धकार को दूर करती है, उसी प्रकार हे प्रभातवेला के समान कमनीये ! नवयुवति ! दोनों कुलों को मिलाने हारी तू उत्तम रीति से सुशिक्षित होकर, माता द्वारा अच्छी प्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित की जाकर, दिखाने के लिये अपने शरीर को प्रकट कर। तू मंगल आचार वाली होकर खूब अपने उत्तम

गुणों को प्रकट कर। अन्य कमनीय कन्याएं भी तेरी उस रूपादि शोभा को प्राप्त न हो। अर्थात् तू सबसे अधिक सुशोभित हो।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑ती॒र्वि॒श्ववा॑रा॒ यत॑माना॒ र॒श्मिभि॒ः सूर्य॑स्य।
परा॑ च॒ यन्ति॒ पुन॒रा च॑ यन्ति भ॒द्रा नाम॒ वह॑माना उ॒षास॑ः ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार उषाएं सूर्य की किरणों से यत्नशील होती हुईं, सूर्य और किरणों से युक्त होकर, तथा विश्व को व्यापने वाली होकर, सुन्दर रूप धारण करती हुईं, चली जाती हैं और फिर आजाती हैं, उसी प्रकार कमनीय नववधुएं भी रथ में लगे अश्वों और गौ आदि पशुसमृद्धि से सम्पन्न होकर, समस्त संकटों को दूर करने हारी, सूर्य के चढ़ते ही गृहोद्योग करती हुईं, सुन्दर स्वभाव, विनय और उत्तम नाम, ख्याति धारण करती हुईं, कल्याण आचरण वाली होकर पतियों के संग दूर देश में भी जावें और पुनः अपने पिता के घर लौट आवें।

ऋ॒तस्य॑ र॒श्मिम॑नु॒यच्छ॑माना भ॒द्रम्भ॑द्रं॒ क्रतु॑म॒स्मासु॑ धेहि।
उषो॑ नो अ॒द्य सु॒हवा॒ व्यु॑च्छा॒स्मासु॒ रायो॑ म॒घव॑त्सु च स्युः ॥१३॥६॥

भा०—हे प्रभातवेल के समान कान्तिमति! जिस प्रकार प्रभातवेला सूर्य के किरण के अनुकूल प्रकाश करती हुई, हममें अतिकल्याणजनक, ज्ञान, कर्म, बल धारण कराती है, उसी प्रकार सत्य ज्ञानमय वेद के ज्ञानप्रकाश के अनुसार उद्योग करती हुई तू हममें अति सुख और कल्याण-जनक यज्ञ आदि कर्म, धर्माचरण को धारण करा। तू आज और आज के समान सदा उत्तम ज्ञानोपदेश से युक्त होकर हमारे बीच अज्ञानों का नाश कर। और हम नाना ऐश्वर्यवानों को और भी विविध ऐश्वर्य प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः॥

[१२४]

कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः॥ उषो देवता॥ छन्दः—२, ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ७, ११ त्रिष्टुप्। १२ विराट्त्रिष्टुप्। १, १३ भुरिक् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। ८ विराट् पंक्तिश्च॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥

भा० — जिस प्रकार अन्धकार दूर करती हुई उषा सूर्यरूप अग्नि के आश्रय पर बहुत अधिक प्रकाश को प्राप्त करती है और उदय को प्राप्त होता हुआ सूर्य भी विशाल उषा के साथ परम तेज को प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि के प्रदीप्त होने पर पति की कामना करने हारी कन्या अपने गुणों का प्रकाश करती हुई बड़ी भारी शोभा का आश्रय ले। इसी प्रकार उदित होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष कान्तिमती स्त्री का आश्रय ले। इस गृहस्थाश्रम में सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक परमेश्वर शीघ्र हमें इष्ट प्रयोजन के लिये दोपाये, चौपाये, भृत्यादि और पशु धन प्रदान करे।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

भा० — जिस प्रकार प्रभातवेला परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि कर्मों का लोप न करती हुई, मनुष्य सम्बन्धी वर्षों की उत्तम रीति से मान करती हुई, अभी तक आई उषाओं के सदृश और आगे आने वाली उषाओं की मुख्य होकर विशेष रूप से प्रकाशित होती है, उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त वधू परमेश्वर, आचार्य, माता, पिता, पति आदि मान्य पुरुषों, या उपासना, सेवा, शुश्रूषा आदि नित्य धर्मों तथा उनके उपदेश किये कर्मों का कभी भी लोप न करती हुई, और मनुष्य जाति के भिन्न २ युगों, कालों, समयों का निर्माण करती हुई, पूर्व आई उत्तम स्त्रियों के बीच उपमा देने योग्य होकर, और भविष्य में आने वाली वधुओं में सबसे श्रेष्ठ होकर विविध गुणों से प्रकाशित हो।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

भा० — प्रकाशमान सूर्य की कन्या के समान उषा जिस प्रकार

प्रत्यक्ष दिखाई देती है, वह सबके समक्ष वा पूर्व दिशा में प्रकाश को धारण करती हुई सूर्य के मार्ग पर गमन करती है, और उत्तम ज्ञानवती विदुषी के समान अन्य दिशाओं का लोप नहीं करती, उसी प्रकार यह ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष की कन्या एकत्र हुए जनसमूह के समक्ष उज्ज्वल वस्त्र-आभूषणों को धारण करती हुई, प्रत्यक्ष देखी जावे, उसे सब कोई देखें। वह सत्यज्ञानमय वेद के उपदिष्ट मार्ग का उत्तम रीति से अनुमान करे। और उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करती हुई गुरुजनों के आदेशों को और उपदेष्टा मान्य पुरुषों का नाश न करे, उनको कष्ट न दे, और उनके दिये सदुपदेशों का लोप न करे।

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—उषा के समान शोभावती नव वधू समीप देखी जावे। जिस प्रकार शुन्ध्यु नाम का जलचर, बतक, हंस आदि अपने वक्षःस्थल को उन्नत कर चलते हैं उसी प्रकार कन्या भी उन्नत वक्षःस्थल वाली अर्थात् पूर्ण युवती हो। और स्तुतिशील विद्वान् जिस प्रकार उत्तम प्रिय वचनों का प्रकाश करता है उसी प्रकार वधू भी हृदय को प्रिय लगने वाले गुणों और वचनों का प्रकाश करे। जिस प्रकार उषा सोते हुए प्राणियों को जगा देती है उसी प्रकार नववधू भी गृह में विराजे और सोते हुए अज्ञान दशा में विद्यमान बालकों को मातृगुरु होकर जगाती हुई, ज्ञानवान् करती हुई, अभी तक हाई कुलवधुओं के बीच में सबसे अधिक नित्य धर्मों का पालन करती हुई बार २ घर आवे, जावे।

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—व्यापनशील अन्तरिक्ष के पूर्व के आधे भाग में उषा जिस प्रकार सूर्य की किरणों को प्रकट करती हुई ज्ञान और प्रकाश पैदा करती है,

और पालक भूमि और सूर्य दोनों के बीच में स्थित होकर दोनों को अपने प्रकाश से पूरती हुई श्रेष्ठ स्वरूप को विशेष रूप से प्रकट करती है, उसी प्रकार नववधू भी उत्तम ज्ञान और कर्म करने में कुशल लोकसमूह के आगे उत्तम पद में विराजती हुई, उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली होकर, वेद वाणियों के ज्ञान को अच्छी प्रकार प्रकट करे, तदनुकुल आचरण करे। और वह माता पिता दोनों के समीप रहती हुई, दोनों को प्रियाचरण से प्रसन्न करती हुई, अति श्रेष्ठ गुण को विशेष रूप से विस्तृत करे। इति सप्तमो वर्गः।

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम्।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६॥

भा०—यह उषा जिस प्रकार अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर जगत् के प्रत्यक्ष कराने के लिये न बन्धुतारहित पृथिवी आदि लोक का परित्याग करती है, और न सूर्यादिबन्धु का ही परित्याग करती है, प्रत्युत मलरहित, स्वच्छ प्रकाश से चमकती हुई स्वल्प पदार्थ से भी दूर नहीं होती, इसी प्रकार विविध गुणों से प्रकाशित होने वाली नववधू भी ऐसी ही है। वह सन्तानों से बढ़ी हुई अपने गुणों को दर्शाने के लिये न अपने बन्धुजनों से भिन्न को त्यागती और न अपने बन्धुजनों को ही त्यागती है अर्थात् वह सबके प्रति समान भाव से अपने गुणों का प्रकाश करे। यह पाप और मल से रहित शरीर से अति सुन्दर रूपवती होती हुई न छोटे बालक से ही पृथक हो और न बड़े तेजस्वी व्यक्ति से पृथक् हो, अर्थात् छोटे बड़े सबको प्रिय लगती रहे।

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७॥

भा०—नव वधू अपने प्रिय पुरुष पति को ऐसे प्राप्त हो मानो उसके अतिरिक्त दूसरा उसका भरण पोषण करने वाला कोई नहीं है। रथारोही

विजिगीषु वीर जिस प्रकार धनैश्वर्य को विजय द्वारा लाभ करने के लिये उद्यत होता है उसी प्रकार वह नववधू भी गृहस्थ के ऐश्वर्यों के लाभ के लिये पति गृह की ओर प्रयाण करने के लिये रथ पर आरूढ़ हो। वह अपने पति के लिये कामना करती हुई, सुन्दर वस्त्र आच्छादन पहनती हुई, सन्तान कामना वाली स्त्री के समान निःसंकोच होकर जावे। हंसती, मुसकराती हुई, प्रसन्न वदन होकर अपने रूप को अच्छी प्रकार प्रकट करे।

स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः॥ ८॥

भा०—उषा जिस प्रकार सूर्य की किरणों द्वारा अन्धकार दूर करती हुई अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करती है, और रात्रि जिस प्रकार अपनी बड़ी बहिन उषा के लिये अपना स्थान आदर से प्रदान करती है, और अपने मान का ख्याल न करती हुई परे हट जाती है, इसी प्रकार नव वधू तेजस्वी पति के उत्तम गुणों से प्रकट होती हुई अपने सुन्दर रूप को प्रकट करे। और बहिन बड़ी बहिन के लिये स्थान रिक्त करे, आदर से उसे अपना स्थान दे। उसके हित के लिये अपने इष्ट को मानो त्यागती हुई आप स्वयं दूर हट जाय। और स्वयंवर के लिये सभास्थल में आने वाली वरवर्णिनी कन्याओं के समान अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करे।

आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात्।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः॥ ९॥

भा०—छोटी बहिन अपने से पूर्व की बड़ी बहिन के पीछे २ उसका अनुकरण करती हुई चले। निश्चय से वे सब बहिनें सदा नये उत्तम रूप वाली होकर, उत्तम दिनों वाली उषाओं के समान पूर्व शिष्टों के आचरण वाले और ऐश्वर्यवान् सौभाग्य को प्रकट करें।

प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती॥१०॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवति प्रभातवेले ! पालन करने वाले प्राणियों को जगा और जो न जागने वाले व्यवहार कुशल पुरुष सोते हों उनको भी जगा। हे सत्य व्यवहार से युक्त प्रातःवेले ! तू सब प्राणियों की आयुओं को प्रति दिन क्षीण करती हुई ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हित के लिये अपने ऐश्वर्ययुक्त रूप को प्रकट कर। और स्तुतिशील उपासक के लिये भी अपने ऐश्वर्यमय रूप को प्रकट कर। हे वधू ! इसी प्रकार जो व्यवहार युक्त पुरुष सोते हैं उन अपने पालक भ्राता, पति आदि पुरुषों को तू जगा। अर्थात् आप उनसे पूर्व उठ कर जगा। हे शुभ व्यवहार और उत्तम वाणी वाली ! हे सौभाग्यवति ! ऐश्वर्यवान् सम्बन्धियों और उत्तम वेदोपदेष्टा पुरुष के आदर के लिये आपकी ऐश्वर्यवृद्धि करने वाला सुखकारी रूप और गुण प्रकट कर। इति अष्टमो वर्गः॥

अवे॒यम॑श्वैद्युव॒तिः पु॒रस्ता॑द्यु॒ङ्क्ते गवा॑मरु॒णाना॒मनी॑कम्।
वि नू॒नमु॑च्छा॒दस॑ति॒ प्र के॒तुर्गृ॒हङ्गृ॑ह॒मुप॑ तिष्ठाते अ॒ग्निः॥ ११॥

भा०—जिस प्रकार यह उषा आगे २ बढ़ती है, और उज्ज्वल रश्मियों के समूह को अपने आगे जोड़ती है, निश्चय से विविध दिशाओं में अपना रूप प्रकट करती और अन्धकार को दूर करती है, और ज्ञानप्रद होकर उत्तम रूप से प्रकट होती है, तब यज्ञाग्नि और सूर्य घर २ उपस्थित होता है, उसी प्रकार यह यौवन युक्त स्त्री बड़ी हो, और अरुण रंग के बैलों वा अश्वों के समूह को आगे रथ के जोड़े, वह निश्चय से अपने उत्तम गुणों का प्रकाश करे। और विशेष ज्ञानयुक्त होकर प्रकट हो, और यज्ञाग्नि स्त्री के साथ ही गृह में स्थापित हो।

उत्ते॒ वय॑श्चिद्वस॒तेर॑पप्त॒न्नर॑श्च॒ ये पि॑तु॒भाजो॒ व्यु॑ष्टौ।
अ॒मा स॒ते व॑हसि॒ भूरि॑ वा॒मसु॑षो देवि दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॥ १२॥

भा०—हे उषः ! तेरे विशेष रूप से प्रकट हो जाने पर जिस प्रकार पक्षिगण अपने निवास के घोंसले से उड़ जाते हैं, और जो अन्नादि को

प्राप्त करने वाले कृषि आदि जन हैं वे भी अपने २ घर से बाहर चले जाते हैं, हे उषः ! साथ रहने वाले दानशील सूर्य को तू बहुत उत्तम ऐश्वर्य धारण कराती है, उसी प्रकार हे कमनीयगुणों से युक्त नववधू ! तेरे विशेष रूप से गृह में बस जाने पर जो अन्न आदि पालन सामर्थ्यों को धारण करते हैं वे प्रातःवेला में घोंसलों से उड़ते पक्षियों के समान उन्नत पद को प्राप्त हों। और हे विदुषि कन्ये ! अपने साथ एक गृह में रहने वाले अन्न-वस्त्र तथा मान आदर एवं सर्वस्व समर्पण करने वाले अपने पुरुष को तू भी बहुत अधिक, प्रचुर, भोग्य ऐश्वर्य, सुख प्राप्त करा।

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३॥९॥

भा०—हे स्तुतिकारी मन्त्र समूह को पढ़ने हारी विदुषि स्त्रियो ! आप मन से पति की कामना करती हुईं स्तुति उपासना किया करो। और मेरे महान् धन और ब्रह्मवर्चस बल और ज्ञान से आप वृद्धि को प्राप्त होवो और मुझे बढ़ाओ। हे उत्तम गुणों वाली एवं प्रिय कामना युक्त देवियो ! आप लोगों की रक्षा और ज्ञानसामर्थ्य और प्राप्ति से हम लोग सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त और सैकड़ों बलों से युक्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

उषा विषयक सूक्त में पक्षान्तर में 'उष' धातु दाहार्थक और पीड़ार्थक होने से राजा की सेना का और अध्यात्म में अज्ञानदाहक होने से समाधि में प्रकट होने वाले प्रकाश के उदय काल का भी वर्णन है। इति नवमो वर्गः।

[१२५]

कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ दम्पती देवते दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ३, ७ त्रिष्टुप्। २, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५ जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

भा०—प्रभात काल में जागने वाले प्रभातवेला में ही उत्तम रमण

करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ को धारण करे। अर्थात् जीवन के प्रारम्भ भाग कौमार दशा में ही गुरु के समीप आकर मनुष्य २५ वर्ष तक न्यून से न्यून जीवन में रमण करने योग्य बल वीर्य, और ज्ञान को धारण करे। ज्ञानवान् होकर उसको ग्रहण करके निषेक द्वारा धारण करावे उससे ही वह उत्तम वीर्यवान् पुरुष सन्तति को बढ़ाता हुआ, और उसी ऐश्वर्य सुख सौभाग्य की वृद्धि और पुष्टि से दीर्घ जीवन को बढ़ाता हुआ, सन्तति और दीर्घ जीवन के आश्रय पर स्थायी होकर रहने में समर्थ होता है।

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥२॥

भा०—हे अपने जीवन के प्रभात काल से अपने गुरु के समीप आने वाले! जो समस्त ज्ञानों का दाता आचार्य ऐश्वर्य के सहित तुझे अपने समीप आते को प्राप्त करके ज्ञान की अभिलाषा से प्राप्त हुए तुझको मूंज की बनी मेखला से उत्तम उद्देश्य के लिये नियम में बांधता है, वही आचार्य उस तुझ शिष्य को बड़ा बल, ज्ञान और दीर्घायु धारण कराता है। उसी से तू उत्तम ज्ञानवाणियों एवं उत्तम बलवान् इन्द्रियों से युक्त, उत्तम हितकारी और रमण करने योग्य मनोहर ज्ञान से सम्पन्न, उत्तम भोक्ता आत्मा और उत्तम कर्मेन्द्रियों से युक्त हो जाता है।

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

भा०—अब मैं गृहस्थकाल के उदयकाल में ही परस्पर संगति रूप गृहस्थ के उत्तम कर्म को चाहता हुआ, उत्तम ऐश्वर्य युक्त रमण योग्य गृहस्थाश्रम से मैं पुत्र को प्राप्त करूं। हे माता! तू अति तृप्तिकर अपने अंश से उत्पन्न पुत्र को दूध का पान करा। और उत्तम सत्य भाषणादि गुणों से युक्त प्रिय वाणियों से प्राणों सहित विद्यमान स्वस्थ पुत्र को बढ़ा

उप॑ क्षरन्ति सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ईजा॒नं च॑ य॒क्ष्यमा॑णं च धे॒नवः॑।
पृ॒णन्तं॑ च॒ पपु॑रिं च श्रव॒स्यवो॑ घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वतः॑ ॥४॥

भा०—सुख देने वाली दुधार गौएं यज्ञ करने वाले और यज्ञ करने में उत्सुक गृहस्थीजन को प्राप्त होती हैं जैसे कि नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं। वे गौएं जो कि दूधरूपी यशस्वी अन्न वाली हैं, और जिनसे दूध रूप में घी की धाराएं बहती हैं, पालन पोषण करने वाले तथा पूर्ण करने वाले गृहस्थी को प्राप्त होती हैं।

नाक॑स्य पृ॒ष्ठे अधि॑ तिष्ठति श्रि॒तो यः पृ॒णाति॒ स ह॑ दे॒वेषु॑ गच्छति।
तस्मा॒ आपो॑ घृ॒तम॑र्षन्ति॒ सिन्ध॑व॒स्तस्मा॑ इ॒यं दक्षि॑णा पिन्वते॒ सदा॑ ५

भा०—जो पुरुष अन्यों को धन, अन्न तथा ज्ञान से परिपूर्ण करता और सबको प्रसन्न और सुखी करता है वह सबको आश्रय देने हारा होने से आश्रय किया जाता है। वह जहां जरा भी दुःख और क्लेश नहीं ऐसे परमानन्द स्वरूप परमेश्वर के आश्रय पर विराजता है। वह ही निश्चय से विद्वानों और दानशील और व्यवहारकुशल पुरुषों के ऊपर और उनके बीच आदर से जाता है। उसके लिये आप्त पुरुष और आप्त प्रजाजन महानदों या जलधाराओं के समान अन्न, जल, ज्ञान और तेज प्रदान करते हैं और उसके लिये यह भूमि समस्त अन्न ऐश्वर्य आदि देने में समर्थ होकर सदा समृद्ध करती है। शबर स्वामी के कथनानुसार सांसारिक सुखसामग्री भी स्वर्ग शब्द से कहे जाते हैं।

दक्षि॑णावता॒मिदि॒मानि॑ चि॒त्रा दक्षि॑णावतां दि॒वि सूर्या॑सः।
दक्षि॑णावन्तो अ॒मृतं॑ भजन्ते॒ दक्षि॑णावन्तः॒ प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥६॥

भा०—जो लोग धर्म से उपार्जित धन ऐश्वर्य विद्या आदि के निमित्त श्रद्धा से दान देने और बल और ज्ञान प्राप्त करने की साधना करते हैं उनके लिये ही समस्त प्रकार के नाना विध सुखजनक पदार्थ हैं। उक्त प्रकार के धन और ज्ञान और आत्मशक्ति सम्पादन करने वालों के लिये ही

आकाश में सूर्यों के समान इस भूमि में तेजस्वी पुरुष उनकी सेवा के लिये होते हैं। उस प्रकार के ऐश्वर्यदान देने और बल और प्रज्ञा के सम्पादन करने वाले पुरुष ही मोक्षानन्द, पुत्रादि सन्तति तथा अन्न जल की समृद्धि का भी भोग करते हैं। और उक्त प्रकार के दाता या ज्ञान बल के स्वामी लोग ही दीर्घ जीवन को उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं।

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७॥१०॥

भा०—विद्वान्, उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम मर्यादाओं का पालन करने हारे तथा भरणपोषण करने वाले धार्मिक गृहस्थ, दुःख या दुरवस्था प्राप्त कराने वाले पापाचरण को न करें। और वे जार के समान दूसरों की स्त्री आदि पर लम्पटता आदि कुकर्म न करें। उनमें से कोई एक पुरुष राजा बनकर उनकी सब तरफ से रक्षा करने हारा हो। परन्तु पालन पोषण न करने वाले को शोक दुःख और पीड़ाएं सब तरफ से प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

[१२६]

॥ १२६ ॥ १—५ कक्षीवान्। ६ भावयव्यः। ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी चर्षिः। विद्वांसो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ६, ७ अनुष्टुप्। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अमन्दान्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

भा०—जो संसार का राजा वेदज्ञानोपदेश को श्रवण कराने की इच्छा करता हुआ, मुझको सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान करता है, उस सिन्धु के समान अतिगम्भीर आत्मा के ऊपर अधिकार करके रहने वाले, तथा पुत्रोत्पादन में समर्थ परमेश्वर की बहुत स्तुतियों को मैं अच्छी प्रकार धारण करूं।

श॒तं राज्ञो॒ नाध॑मानस्य नि॒ष्काञ्छ॒तमश्वा॒न्प्रय॑तान्त्स॒द्य आद॑म् ।
श॒तं क॒क्षीवाँ॒ असु॑रस्य॒ गोनां॑ दि॒वि श्रवो॒ऽजर॒मा त॑तान ॥ २ ॥

भा०—मैं बगल में यज्ञोपवीत धारण कर, शिष्यों को प्राणदान करने वाले आचार्य की सैकड़ों वाणियों को प्राप्त करूं। और ज्ञानप्रकाश में कभी नाश को प्राप्त न होने वाली ख्याति को विस्तृत करूं। मैं समृद्ध राजा के योग्य सैकड़ों मोहरों को और सैकड़ों खूब सधे हुए घोड़ों को भी शीघ्र ही प्राप्त करूं।

उप॑ मा श्या॒वाः स्व॒नये॑न द॒त्ता व॒धूम॑न्तो॒ दश॒ रथा॑सो अस्थुः ।
ष॒ष्टिः स॒हस्र॒मनु॒ गव्य॒मागा॒त्सन॑त्क॒क्षीवाँ॑ अभिपि॒त्वे अह्ना॑म् ॥३॥

भा०—सबको अपनी आज्ञा से चलाने वाले आचार्य से दी गईं, शरीर को वहन करने वाली शक्तियों से युक्त दस रमणीय इन्द्रियां मुझे प्राप्त हों और उसके पश्चात् मुझे इन्द्रियों की हितकारी साठ हजार छोटी २ शारीरिक शक्तियां प्राप्त भी हों। और उनको दिनों के प्राप्त होने पर यथा समय उत्तम जितेन्द्रिय विद्याकुशल पुरुष सदा प्राप्त करे और उसका भोग करे।

च॒त्वा॒रिं॒शद्दश॑रथस्य॒ शोणाः॑ स॒हस्र॒स्याग्रे॒ श्रेणिं॑ नयन्ति ।
म॒द॒च्युतः॑ कृश॒नाव॑तो॒ अत्या॑न्क॒क्षीव॑न्त॒ उद॑मृक्षन्त प॒ज्राः ॥४॥

भा०—दशों रमण साधनों अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी आत्मा दशरथ है। प्रत्येक इन्द्रिय से अन्तःकरण चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारों का पृथक् २ भोग होने से ४० अश्व हैं वे ही सहस्रों सुखों के अग्रगामी होते हैं। उद्यमी विद्वान् जन ही, जो कि हर्ष वर्षण करने वाले तथा आत्म-चेतना वाले हैं वे इन इन्द्रियरूप अश्वों को उत्तम रीति से वश करें।

पू॒र्वाम॑नु॒ प्रय॑ति॒माद॑दे व॒स्त्रीन्यु॒क्ताँ अ॒ष्टाव॒रिधा॑यसो॒ गाः ।
सु॒बन्ध॑वो॒ ये वि॒श्या॑ इव॒ व्रा अन॑स्वन्तः॒ श्रव॒ ऐष॑न्त प॒ज्राः ॥५॥

भा०—हे उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, परस्पर प्रेम और विद्या-सम्बन्ध, और योनिसम्बन्धों से बंधे हुए ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग ज्ञानवान् और साधन सम्पन्न तथा उत्तम प्राण तथा शकट के स्वामी होकर, वरण करने योग्य ऐश्वर्यों को तथा यश को प्राप्त करने की इच्छा करो। मैं अध्यक्ष पुरुष आप में से उपयुक्त तीन मुख्य पुरुषों को, और आठ प्रमुख सभासदों को ऐश्वर्यवान् स्वामी के धारण पोषण करने, उसे बल-वान् बनाये रखने में समर्थ या विपक्ष के शत्रु को थाम लेने वाले जानकर, राष्ट्र के संचालक रूप से, शकट में लगे बैलों के समान प्रमुख उत्तम पुरुषों और आप लोगों के सर्वोत्कृष्ट उत्तम प्रयत्नों को भी अपने अनुकूल करके धारण करता हूं। यह शरीर जीवन से युक्त 'अनस्' है। उसको धारण करने वाले गति चेतना युक्त प्राण 'पज्र' हैं। वे एकत्र सुबद्ध होने से 'सुबन्धु' हैं। आत्मरूप स्वामी को धारण करने वाले होने से वे 'अरि-धायस्' हैं। इस देह में गति उत्पन्न करने से इसमें लगे बैलों के समान होने से वे 'गो' हैं। सात शीर्षण्य प्राण आठवीं वाक् इनको और आत्मा, बुद्धि, मन इन तीन को, और इनके उत्तम व्यापार या चेष्टा सामर्थ्यों को मैं देह के भीतर आकर धारण करता, वश करता हूं।

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

भा०—जो नीति या राजसभा राष्ट्र को वश करने के कार्य में ताड़ना देने वाली चाबुक के समान सब प्रकार स्वीकार की जाने योग्य, और सब ओर से सुरक्षित होती है वह प्रयत्नशील भृत्यादि के बीच में सबसे अधिक यत्न करने वाली होकर मुझे सैकड़ों भोग्य, ऐश्वर्य और रक्षा करने के सामर्थ्य प्रदान करती है। (२) 'चेत्ना' देह पर शासन करने से विका-शवती होने से कशीका है। शरीर में सर्वत्र वश करने से 'आगधिता', और सर्वत्र मिश्रित होने से 'परिगधिता' है। वह यत्नशील प्राणों में सबसे

अधिक यत्नशील होने से 'याडुरी' है। वह सैकड़ों शक्तियों और भोग्य सुखों को देती है।

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥११॥१८॥

भा०—हे राजन्! मुझ राजसभा से सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों पर समीप २ बैठ कर अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार कर, और मेरे कार्यों को स्वल्प या राष्ट्र के लिये हानिकारक, तुच्छ मत समझ। पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत प्रदेशों में रहने वाली भेड़ जिस प्रकार रोम अर्थात् काट लेने योग्य ऊन रूप लोमों से आच्छादित होने से रोमशा है, उसी प्रकार मैं राजसभा भी पृथिवी को धारण पोषण करने वाली समस्त नीतियों की रक्षा करने वाली होकर, काटने और उखाड़ फेंकने योग्य शत्रुओं का अन्त कर देने वाली, और सर्वस्व हूं। (२) ब्रह्मविद्या के पक्ष में—हे योगिन्! मुमुक्षो! तू अति सूक्ष्मता से विचार कर। मुझ ब्रह्मविद्या के छोटे से छोटे हृदयाकाश में उत्पन्न अनुभवों को स्वल्प मत जान। वाणी को धारण करने वाली समस्त चेतना शक्तियों की मैं पालन करने वाली, सर्व भूतात्मस्वरूप होकर लोम २ में व्यापक, अथवा सब दुखों का अन्त कर देने वाली हूं। 'लोमशा' लूयन्ते इति लोमानि तानि स्यति इति लोमशा। रत्वशत्वे छान्दसे। इत्येकादशो वर्गः॥ इत्यष्टादशोऽनुवाकः॥

[१२७]

परुच्छेप ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २, ३. ८. ९ अष्टिः। ४, ७, ११ भुरिगष्टिः। ५, ६ अत्यष्टिः। १० भुरिगति शक्वरी॥ एकादशर्चं सूक्तम्।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः॥ १॥

भा०—मैं सबको सुख, अधिकार और बल देने हारे, सबको अन्न, और भृति देने वाले, सबको बसाने वाले, शत्रुबल को पराजय करने में समर्थ, प्रेरक, ऐश्वर्य और विद्या में प्रसिद्ध, मेधावी पुरुष को नायक रूप से जानूं। जो दानशील वीर पुरुषों को प्राप्त होने वाले सामर्थ्य और सबसे उत्कृष्ट शक्ति द्वारा आह्वान किये गये सैन्यबल के कारण चमकती हुई ज्वाला से चमकता है।

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

भा०—हे मेधाविन्! हे शुद्ध आत्मा वाले वा शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने हारे! विचारशील विद्वान् पुरुषों और ज्ञान विज्ञानों सहित, सबसे अधिक पूजनीय, प्राणवान् एवं ज्ञानी पुरुषों में सबसे बड़े तुझको हम प्राप्त हों! सूर्य के समान चारों ओर प्रकाश से और तेज से व्यापक, दीर्घदर्शी विद्वानों को अधिकार ऐश्वर्य देने वाले, ज्वालाओं के समान केशों को धारण करने वाले, सुखों के वर्षक जिस पुरुष को ये सब राज्य में प्रविष्ट होकर रहने वाली प्रजाएं, उसे प्रसन्न करने और स्वयं प्रसन्न होने के लिये प्राप्त होती हैं।

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः। वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरं निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

भा०—वह विविध दीप्ति और तेज से युक्त पराक्रम से खूब चमकता रहे। और जिस प्रकार कुल्हाड़ा वृक्षों को खूब अच्छी प्रकार काट गिराता है उसी प्रकार वह भी द्रोही जनों को मारने वाला हो। और जिसका स्थिर वीर्य, बल, पराक्रम संग्राम में शत्रुसेना को नाश करता है और वह शत्रु विजय करने हारा होकर सैन्य बल को नियम में रखता है, और कभी

नहीं भागता। वह धनुष से शत्रु वशकारी के समान आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है।

दृळहा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे। प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा। स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

भा०—जैसे विद्वान् पुरुष को लोग आदरपूर्वक अन्न, वस्त्र, धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार उस नायक को दृढ़, बलवान् सैन्य, स्थायी, धनैश्वर्य प्रजाएं अपनी रक्षा के लिये प्रदान करें। जिस प्रकार अग्नि को अति तीव्रता से प्रज्वलित होने वाली अरणियों या काष्ठों सहित प्रकाश प्राप्त करने के लिये हवि आदि प्रदान करता है उसी प्रकार प्रजाजन अग्रणी नायक की वृद्धि के लिये अति तेजस्विनी शत्रुओं के नाशकारी सेनाओं सहित दृढ़ ऐश्वर्य अपनी रक्षा के लिये प्रदान करे। जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला से वनों को जला कर लुंज पुञ्ज कर देता है उसी प्रकार जो अपने तेज से शत्रु सेना को काट गिराता है, और जो बहुत से सैन्यों को खूब आलोडित कर देता, और जिस प्रकार जाठर अग्नि खाये हुए अन्नों को अपनी शक्ति से पचा डालता, या अग्नि जिस प्रकार अपने पर धरे अन्न आदि खाद्य-पदार्थों को ताप से उबाल देता और खाने योग्य बना देता है उसी प्रकार जो अपने ओज से स्थिर शत्रु सैन्यों को अपना भोग्य बना लेता है, प्रजाजन उसको कर आदि दें।

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात्। आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे। भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५॥१२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार रात्रि में उत्तम दिन की अपेक्षा भी उत्तम रीति से देखने योग्य और अन्यों को अपने प्रकाश से दिखानेहारा है उसी प्रकार जो परमात्मा शक्तिशाली भक्त जन के लिये दिन के प्रकाश

से भी अधिक अच्छी प्रकार दर्शनीय, उज्ज्वल और स्पष्ट मार्गदर्शी है, इस महान् संसार के सेचने हारे उस प्रभु का हम ध्यान पूर्वक रमण करने योग्य आभ्यन्तर चित्त भूमियों में धारण करें और ध्यान करें। उसके उत्तम रीति से ध्यान करने के अनन्तर उसका प्राप्त होना और ग्रहण करना होता है। और वह पुत्र के लिये पिता के घर केसमान ही दृढ़ आश्रम हो जाता है। स्वयं किसी की भक्ति न करने हारे भजन करने योग्य उस परम रक्षक प्रभु को प्राप्त होते हुए, उस अजन्मा परमेश्वर में रमण करने हारे, उसमें अपने आपको समर्पण करने हारे ज्ञानी पुरुष, उसकी कामना करते हुए जरा आदि से रहित अमृतरूप हो जाते हैं। इतिद्वादशोवर्गः।

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः। आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा। अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

भा०—वह राजा वायु के प्रबल वेग के समान बड़ा भारी शब्द करने वाला होता है, उत्तम वर्ण युक्त, धन धान्य पैदा करने वाली समृद्ध भूमियों में सबकी अभिलाषा पूरी करने योग्य और शत्रुओं को पीड़ाकारी सेनाओं में प्रबल गर्जन या आज्ञाकारी होता हुआ प्रजाओं को उनका मन चाहा सुखैश्वर्य प्राप्त करा देने वाला अर्थि-कल्पद्रुम हो। और अग्नि जिस प्रकार यज्ञ का मुख्य आश्रय होता है और यज्ञोपासन में दिये सब चरु पदार्थों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह नायक सुव्यवस्थित राष्ट्र वा सैन्यदल का मुख्य ध्वजा के समान सबसे उच्च और आदरणीय होकर मान आदर में दिये गये उत्तम अन्नों और ग्राह्य ऐश्वर्यों को सब प्रकार से स्वीकार करता है। हर्ष उत्पन्न करने वाले इस नायक के मार्ग को शुभ उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सब कोई प्रेम से ग्रहण करें। लोग अपने कल्याण के लिये इसके दर्शाए मार्ग से प्रेम करें।

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो

मृथ्नन्तो दाशा भृगवः। अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम्।
प्रियाँ अपिधींर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः॥ ७॥

भा०—पाप संकल्पों को भून डालने वाले पुरुष यज्ञ में चरु आदि देने के लिये जिस प्रकार इस भौतिकाग्नि को मथते हुए कीर्त्तन करते हुए नमस्कार करते हुए उपासना करते हैं, उसी प्रकार विद्यादि के उपदेष्टा, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष इस महान् राष्ट्रपति को बार २ मथते अर्थात् उसके उत्तम से उत्तम गुणों की परीक्षा लेते हुए, दोनों राजा और प्रजा के हित के लिये, समस्त राज्याधिकार दान करने के लिये, उसका आदर सत्कार करते हुए जब प्रार्थना करते हैं तब जो शुद्ध, निष्कपट और इन समस्त प्रजाओं को धारण करने में समर्थ हो वही अग्रणी होकर बसे राष्ट्रों, प्रजाओं और ऐश्वर्यों का स्वामी हो। वही सबको प्रिय लगने वाले गोपनीय खजानों को स्वयं बुद्धिमान् होकर सबको विभक्त करे।

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं
भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे। अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः॥ ८॥

भा०—समस्त राज्य का शासन के भीतर प्रविष्ट प्रजाओं के पालक तेरी हम उपासना करते हैं, तुझे अपना पालक स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार सब आश्रय और सब सन्तानें अन्नादि भोजन को प्राप्त करने के लिये स्त्री-पुरुष रूप गृहस्थ, या मां बाप, या गृहपति के पास आते हैं उसी प्रकार हम समस्त प्रजाजन ऐश्वर्यों के भोगने और अपनी रक्षा के लिये सब प्रजाओं के लिये समान निष्पक्षपात रूप से रहने वाले, समस्त प्रजाओं के दमन करने वाले, दण्डव्यवस्था के पालक पुरुष को प्राप्त होते हैं। और हम ऐश्वर्यों के भोग और न्यायपूर्वक रक्षा के लिये सत्य वाणी को धारण करने वाले, मनुष्यों के बीच अतिथि के समान पूजनीय तुझको हम प्राप्त होते हैं। सन्ततिजन जिस प्रकार पिता के समीप अन्नादि पदार्थों

को प्राप्त करने के लिये उपस्थित होते हैं उसी प्रकार जिस सर्व पालक के समीप, उसकी गोद और उपासना में स्थित ये सब अमर, मुक्त आत्मा, भोक्ता विद्वान् जन उत्तम ज्ञानों और मोक्ष सुखों को प्राप्त करने के लिये उपासना करते हैं। और विद्वान् दिव्य पुरुषों में सभी ज्ञानी पुरुष उसी की उपासना करते हैं।

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये। शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः। अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर॥ ९॥

भा०—हे नायक राजन्! तू सबको पराजित करने वाले बल से सबसे बढ़ कर पराजित करने वाला, और विद्वानों के हितार्थ सबसे अधिक बलवान् है। हे राजन्! तू परम धनवत् सुखदाता है। तेरा दमन या शासन शत्रुओं का सबसे अधिक शोषण करने वाला और सबसे अधिक यशस्वी, और क्रियासामर्थ्यवान् हो। हे जीर्णता या नाश को प्राप्त न होने हारे राजन्! अति शीघ्र कार्यकारी सेवकजन दूत आदि तेरी सेवा करें।

प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये। प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे। अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम्॥ १०॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों का मन्त्रसमूह उत्तम गुणों को प्रकाशित करता हुआ, महान् सामर्थ्य वाले, बल से बलवान्, आलस्य रहित, प्राणियों के परिपोषक और व्यवस्थापक, समस्त भूमियों और चित्त भूमियों में प्राप्त होने वाले परमेश्वर के लिये होवे। और विद्वान् पुरुष जिस प्रकार बड़े ज्ञानवान् पुरुषों के समक्ष विद्या का प्रकाश करता है, उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ता विद्वान् उपासक जिज्ञासु विद्यार्थीजनों को परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानोपदेश करे।

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना। महो रायः सुचेतुना। महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै। महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥ १३॥

भा०—हे ज्ञानवान् नायक ! वह तू हमारे अति समीप सबका साक्षी होकर, उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों सहित, विद्वान् तथा विजयशील पुरुषों सहित हमें अन्नादि समृद्धि से युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा। हे बलवानों में सबसे अधिक बलवान् ! तू अच्छी प्रकार से ज्ञान करने के लिये और इस प्रजा का पालन करने के लिये हमें उत्तम बल वीर्य प्रदान कर। हे ऐश्वर्यवन् ! तू बल से उग्र और शत्रुओं का मथन करने वाला होकर स्तुतिकर्त्ता, उपासक विद्वान् पुरुषों को बड़ा उत्तम बल प्रदान कर। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१२८]

॥ १२८ ॥ १—८ परुच्छेप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—निचृदत्यष्टिः। ३, ४, ६, ८ विराडत्यष्टिः। २ भुरिगष्टिः। ५, ७ निचृदष्टिः। अष्टर्चं सूक्तम्॥

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम्। विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते। अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥

भा०—यह मननशील, विद्याओं का योग्यपात्रों में दान देने वाला आचार्य, विद्या आदि दान करने में सबसे उत्तम दाता होकर, विद्या की इच्छा करने वाले जिज्ञासुजनों के व्रतों के अनुकूल अपने कर्त्तव्यों का यथावत् पालन करे। वह विद्वान् पुरुष समस्त श्रवण योग्य उपदेशों का जानने हारा, विद्यार्थी को अपना सखा या मित्र बना लेना चाहता है। वह धन सम्पन्न पुरुष के समान यश की कामना करता है। सदा विघ्न, पीड़ा आदि रहित होकर वह ज्ञान प्रदान करने में कुशल पुरुष स्तुतियोग्य वेदवाणी के ज्ञान कार्य के योग्य पद पर विराजे और उसके समक्ष ज्ञान ग्रहण करने हारा विद्यार्थी अच्छी प्रकार सावधान, सुरक्षित, एवं सब

प्रकार उत्तम वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि धारण कर, गुरु द्वारा उपनीत होकर वेदवाणी के ज्ञान करने के लिये नियमपूर्वक एवं विनय से समीप विराजे।

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता। स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः॥ २॥

भा०—हम उस अध्यापन वा ज्ञानदान करने वाले विद्वान् पुरुष को सत्यव्यवहार के मार्ग से, शुभ गुणों को प्राप्त करने वा विद्या के उत्सुक शिष्य जनों के हितार्थ, भेंट पुरस्कार सहित विनय द्वारा उत्साहित करें। जिस विद्यादाता पुरुष को, दूर २ देश से आया और आचार्य की गोद में बढ़ने वाला शिष्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रकाशित करता है, वह हमारे बल वीर्यों के धारण कर लेने पर अपने इस सामर्थ्य से कभी क्षीण नहीं होता, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ता है।

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्। शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् अपनी व्यापक होने वाली क्रिया से पृथ्वी के ऊपर विद्यमान पदार्थों को अति शीघ्र व्याप लेता है उसी प्रकार राजा भी अपने गमन साधन रथादि से समस्त पार्थिव लोक को प्राप्त करे। और जिस प्रकार बार २ गर्जने वाला मेघ जल को भूमियों पर बरसाता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा पर सुखों का वर्षण करने वाला एवं सर्वश्रेष्ठ, एवं वृष अर्थात् धर्म मार्ग से चमकने वाला होकर, शत्रुओं को बार २ ललकारता हुआ, बार २ सेना आदि को आज्ञाएं प्रदान करता हुआ, राष्ट्र में ऐश्वर्य और बल वीर्य को धारण करावे। और जिस प्रकार जलप्रद मेघ बड़े वेग से जाने वाला होकर वनों में सैकड़ों पदार्थों को दिखाता हुआ, मेघों में, ऊंचे प्रदेशों में और दूर के गिरिशिखिरों पर अपना आश्रय

रखता है उसी प्रकार राजा विजिगीषु होकर, सेवने योग्य ऐश्वर्यों में शीघ्र ही उनको ग्रहण करने वाला होकर, अपने अध्यक्षों द्वारा सैकड़ों कार्यों का विचार करे। और वह उच्चावच कालों में दूरस्थ पर्वतों में अग्नि के समान अपना आश्रय गढ़, दुर्ग आदि स्थापित करे।

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति। क्रत्वा यज्ञस्य चेतति क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ का पुरोहित उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाला होकर, निर्विघ्न समाप्त होने वाले यज्ञ को जानता और अन्यों को जनाता है, और यज्ञकर्म द्वारा यज्ञ का ज्ञापन कराता है, उसी प्रकार उत्तम धर्माचरण कृत्यों का करने वाला, प्रत्येक घर में सबका नायक राजा प्रत्येक दमन या शासन कार्य में, अविनाशी राष्ट्रसंघ का ज्ञान रक्खे, और अपने उत्तम ज्ञान से उपास्य परमेश्वर का भी ज्ञान करे। वह बुद्धिमान् अपने ज्ञान सामर्थ्य से बाण के समान आचरण करे अर्थात् अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़े। वह समस्त उत्पन्न पदार्थों को देखे और सुव्यवस्थित करे। क्योंकि जिस प्रकार अग्नि घृत द्वारा विशेष कान्ति को धारण करता है उसी प्रकार राजा भी अतिथि के समान प्रतिष्ठित होता, और तेज और पराक्रम से लक्ष्मी का भाजन हो जाता है और राष्ट्र आदि कार्यों का निर्वाहक बन जाता है।

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या। स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—इस नायक की सेनाओं में अग्रणी पुरुष की आज्ञा से लोग परस्पर मिल कर गठित हो जाते हैं, और वायु के समान तीव्र आक्रामक वीरजनों के जो भोगयोग्य ऐश्वर्य हैं वे सब वशवर्त्ती राजा को ही प्राप्त

हों । वह अग्रणी पुरुष राष्ट्र में बसे प्रजाजनों के बल के सहित शत्रुओं के नाशकारी बल को प्राप्त करता है । वह हमें अति कुटिल पापाचार और पापमय कुटिल शिक्षा से पालन करता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

विश्वो॑ विहा॑या अर॒तिर्वसु॑र्दधे॒ हस्ते॑ दक्षि॑णे त॒रणि॒र्न शि॑श्रथ-च्छ्रव॒स्यया॒ न शि॑श्रथत् । विश्व॑स्मा इदि॑षुध्य॒ते दे॑व॒त्रा ह॒व्य-मोहि॑षे । विश्व॑स्मा इत्सु॒कृते॒ वार॑मृण्वत्य॒ग्निर्द्वारा॒ व्यृ॑ण्वति ॥६॥

भा०—(१) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—समस्त विद्याओं में प्रविष्ट गुरु गुणों से महान्, अति अधिक मतिमान्, स्वयं अपने अधीन समस्त शिष्यों को बसाने हारा होकर, दायें हाथ में रखे आमलक के समान प्रत्यक्ष रूप से समस्त ज्ञानैश्वर्य को धारण करे । वह उस विद्या-रूप धन को सूर्य के समान प्रदान करे । वह केवल उसे यश या धन की अभिलाषा से प्रदान न करे । बाणों को अपने भीतर धारण कर लेने वाले तर्कस के समान समस्त कामनाओं को अपने भीतर अन्तर्मुख कर लेने वाले विद्वानों के बीच उत्तम प्रदान करने योग्य ज्ञानोपदेश और आचार को सब ओर से संगृहीत करके प्रदान करे । अग्नि या सूर्य या दीपक या मशाल के समान मार्ग दिखाने वाला विद्वान् पुरुष सभी उत्तम सदाचारी, सत्कर्म करने वाले पुण्याचरणशील जिज्ञासु को वरण करने योग्य ज्ञानैश्वर्य प्रदान करे । और ज्ञान के समस्त द्वारों को विशेष रूप से खोल दे । (२) इसी प्रकार राजा सर्वहितकारी होने से 'विश्व' है । वह समस्त ऐश्वर्य को अपने हाथ में रखे । वह सब इच्छुक याचकों को दान करे । प्रजा के लिये ऐश्वर्य प्राप्त करने के सब द्वार खोल दे ।

स मानु॑षे वृ॒जने॒ शन्त॑मो हि॒तो॒३ऽग्निर्य॒ज्ञेषु॒ जेन्यो॒ न वि॒श्पतिः॑ प्रि॒यो य॒ज्ञेषु॑ वि॒श्पतिः॑ । स ह॒व्या मानु॑षाणामि॒ळा कृ॒तानि॑ पत्यते । स न॑स्त्रासते॒ वरु॑णस्य धू॒र्तेर्म॒हो दे॒वस्य॑ धूर्तेः ॥ ७ ॥

भा०—वह विद्वान् पुरुष, मुख्य नायक और राजा मनुष्यों वा प्रजाओं

के मार्ग में अति शान्तिदायक और हितकारी रूप में स्थापित किया जाय। वह विद्वान् और नायक पुरुष एक दूसरे से मिल कर करने योग्य कार्यों तथा संग्रामों में सबसे उत्कृष्ट पद के योग्य हो। वह सब उत्तम कर्मों में प्रजाओं का पालक, सबका प्रिय राजा हो। वह प्रधान पुरुष अधीन प्रजाजनों के अच्छी प्रकार बनाये गये ग्रहण करने वा दान देने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों और स्तुति वचनों को प्राप्त हो। वह नायक विद्वान् सब दुःखों के नाश करने वाले सेनापति आदि के बल से और बड़े भारी विजिगीषु पुरुष के हिंसाकारी सैन्य बल से भी हमारी रक्षा करने में समर्थ हो।

अ॒ग्निं होता॑रमीळते॒ वसु॑धितिं प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं न्ये॑रिरे हव्य॒वाहं॒ न्ये॑रिरे। वि॒श्वायुं॑ वि॒श्ववे॑दसं॒ होता॑रं यज॒तं क॒विम्।
दे॒वासो॑ र॒ण्वमव॑से वसू॒यवो॑ गी॒र्भी र॒ण्वं व॑सू॒यवः॑ ॥ ८ ॥ १५ ॥

भा०—विद्वान् जन ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले, ज्ञानवान् और नायक, ऐश्वर्यों के धारण करने वाले, प्रिय, सबसे अधिक ज्ञान देने वाले, अल्पज्ञों को चेताने वाले, मतिमान्, ऐश्वर्यवान्, उत्तम अन्न आदि पदार्थों को धारण करने वाले पुरुष का आदर करते हैं। उसको आदर से प्राप्त होते हैं। धनाभिलाषी पुरुष जिस प्रकार वाणियों या स्तुतियों से रमण करने हारे धनाढ्य की स्तुति करते हैं, और ज्ञान की कामना करने हारे २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने की इच्छा करने वाले उत्तम विद्योपदेशक पुरुष को वेदवाणियों सहित प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष समस्त ज्ञानभण्डार को प्राप्त होने वाले, एवं समस्त मनुष्यों के स्वामी, समस्त ऐश्वर्य और ज्ञानों के स्वामी, ज्ञानैश्वर्य के दाता, पूजनीय, क्रान्तदर्शी पुरुष को अपनी रक्षा के लिये नियमानुकूल प्राप्त हों। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१२६]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १, २ निचृदत्यष्टिः। ३ विराडत्यष्टिः।

४ अष्टिः । ६, ११ भुरिगष्टिः । १० निचृदष्टिः । ५ भुरिगतिशक्वरी । ७ स्वराडतिशक्वरी । ८, ६ स्वराट् शक्वरी । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि । सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् । सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक राजन्! आप रमण करने योग्य राष्ट्र और रथादि के बने सैन्य को, राष्ट्र यज्ञ के लिये, खूब बलवान् करके सन्मार्ग पर ले जाने में समर्थ हैं। अतः हे दोष रहित! अनिन्दनीय! हे सबके प्रेरणा करने हारे नायक! तू उसको आगे ले चल, उसको उन्नति मार्ग पर चढ़ा। अश्वों को वश करने में समर्थ सारथी जिस प्रकार वेगवान् अश्व को अपने प्रयोजन में लगा लेता है उसी प्रकार तू भी सबको वश करने में समर्थ होकर अति शीघ्र ही उस बलवान्, वेगवान् सैन्य और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र तथा ज्ञानवान् विद्वज्जन सबको इष्ट सुखमय प्रयोजन के लाभ के लिये नियुक्त कर। हे सब कार्यों को शीघ्रता से करने हारे! तू विद्वान् मेधावी पुरुषों की वाणी के समान ही हम प्रज्ञावान् पुरुषों के बीच वाणी का प्रयोग कर।

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः। यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता। तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२॥

भा०—हे सेना और सभा के स्वामिन्! जो तू कई सेनाओं, संग्रामों, और प्रजाओं के बीच में उत्तम नेता पुरुषों के सहित शत्रुओं को संग्राम में ललकारने के लिये समर्थ होता है, वह तू हमारे प्रजाजनों के वचन और न्याय-व्यवहार श्रवण कर। क्योंकि जो पुरुष शूरवीर पुरुषों के साथ मिलकर प्रजाओं को सुख प्रदान करने में समर्थ होता है, और जो विद्वान् पुरुषों के द्वारा ज्ञान और ऐश्वर्य और अन्न प्रदान करने या युद्ध पार करने

में समर्थ होता है, उस ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष को अधिकारवान् पुरुष भी सत्संग योग्य और आश्रितजनों के सेचन और संवर्धन करने वाला जानकार, अतिवेगवान् बलवान् अश्व के समान आश्रय करते हैं, उसे समस्त शासकों का भी शासक बना देते हैं।

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम्। इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयंशसे। मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते ! हे शूरवीर ! तू निश्चय से दर्शनीय है। जिस प्रकार सूर्य, किरणों से खिंचे जल से समस्त पृथिवी को आच्छादन करने वाले वातावरण को पूर्ण कर देता है और वर्षणशील मेघ को पूर्ण करता और बरसा देता है उसी प्रकार हे सेनापते ! तू भी देह की त्वचा के समान राज्य की रक्षा करने वाले, सुखों के वर्षक रक्षक पुरुषों को ऐश्वर्य से सींचता है, उनका परित्राण करता है। सूर्य जिस प्रकार व्यापनशील मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू अपने पर आ चढ़ने वाले, फैले हुए, या हिंसक मनुष्य को दूर कर। और मैं प्रजा सुख की कामना करने वाले, शत्रुओं को रुलाने वाले, एवं सदुपयोग देने वाले, सब के स्नेही, और प्रजा को मरण से बचाने वाले, सर्व श्रेष्ठ, सब कष्टों के वारक, उत्तम सुख देने वाले, अपने ही पराक्रम से यश ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले तेरे लिये मैं नाना प्रकार के प्रसिद्धिजनक वचन कहता हूं।

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम्। अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित्। नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम लोग सबके मित्र, दीर्घायु, उत्तम रीति से शत्रुओं को पराजय करने वाले, सबके सहायक, संग्रामों और ऐश्वर्य, ज्ञान, बल के कार्यों में अति सहनशील, ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष

को हमारे अपने और आप सब लोगों के इष्ट सुख लाभ के लिये हम प्राप्त करना चाहते हैं। हे राजन्! हे विद्वन्! तू कई संग्रामों में हमारी रक्षा के लिये विशाल धन की रक्षा कर।

नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिरराणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः। नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे। विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष! अति अधिक तेज वाली लकड़ियों से युक्त अग्नि भी जिस प्रकार शान्त हो जाता है इसी प्रकार हे शूरवीर पुरुष! तू अति भयंकर और अतितेज से युक्त, और वेग से आगे बढ़ने वाली रक्षाकारिणी सेनाओं से युक्त होकर भी ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् पुरुष की बहुत अधिक बढ़ी बुद्धि या ज्ञान के आगे झुक, उसका आदर कर। पूर्वकाल के समान ही तू स्वयं अपराध और पाप से रहित रहकर हमें सन्मार्ग पर चला। तू सब कुछ जानता है। तू अग्नि के समान समस्त कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाला होकर मनुष्यों के सब दुःखों को दूरकर, और मुख द्वारा आज्ञा और उपदेश द्वारा पालन कर। इति षोडशो वर्गः ॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति। स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्। अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥

भा०—चन्द्रमा के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले, प्रेम से आर्द्र हृदय वाले उस शिष्य को मैं विद्वान् पुरुष उत्तम २ ज्ञान का उपदेश करूं। जो स्वीकार करने योग्य शिष्य बन कर इच्छा वाला होकर ज्ञान को प्राप्त होता है, और बाधक शत्रुओं का नाश करने वाले वीर पुरुष के समान बाधक कारणों का नाश करता हुआ, मनन करने योग्य ज्ञान और ब्रह्मचर्य बल को प्राप्त करता है, वह अपने आप ज्ञान साधनों से हमारे निन्दनीय आचार विचारों को दूर भगा दे और विपरीत मिथ्याज्ञान

को दूर करे। पापाचार की शिक्षा देने वाला पुरुष क्षुद्र जन के समान नीचे जा गिरे।

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्। दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि। आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः॥ ७॥

भा०—हम लोग ज्ञान उत्पन्न करने वाली वाणी द्वारा उस ज्ञान योग्य ब्रह्मपद को प्राप्त करें और उसका अन्यों को उपदेश करें। हे ऐश्वर्यवन्! हम ऐश्वर्य के समान सुखप्रद उत्तम वीर्यवान् पुरुष को भी प्राप्त करें। उत्तम मननशील पुरुषों द्वारा उपदेश प्राप्त करके हम विपरीत ज्ञान के नाशक परमेश्वर या आत्मा के रूप को प्रबल इच्छा या प्रेरणा द्वारा प्राप्त करें। दानशील या सत्संग करने योग्य उत्तम पुरुष को जिस प्रकार यशसूचक स्तुतियों द्वारा पहुँचते हैं उसी प्रकार हम उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को सत्य और उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुतियों से खूब भली प्रकार अपने साथ जोड़ लें, उसको अपने हृदय में योग द्वारा ध्यान कर तन्मय हो जावें। (२) इसी प्रकार वीर्यवान् धनैश्वर्यवान् दुष्टों के हिंसक, सत्संग योग्य राजा और आचार्य को भी उत्तम ज्ञान ज्ञानवानों, यश अन्नवर्धक क्रियाओं और स्तुतियों सहित मिलें, उससे अपना सम्पर्क या सम्बन्ध बढ़ावें।

प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम्। स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः। हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो और मित्र वर्गो! शत्रुविनाशक सेनापति अपने यशकारी पराक्रम के कामों से तुम्हारी और हमारी दोनों की रक्षा के लिये और दुष्ट मतवाले पुरुषों के विनाश करने के लिये, और दुष्टाचार वाले दुर्दमनीय मनुष्यों के तोड़ फोड़ने के लिये अच्छी प्रकार समर्थ हो।

जो ज्वर या जरा के समान जीवन का नाश कर देने वाली सेना, प्रजाजनों को खा जाने वाले शत्रुपुरुषों से हमारा विनाश कर देने के लिये भेजी जावे वह अपने आप विनाश को प्राप्त हो। वह परास्त होकर हम तक न पहुँचे और लौट कर अपने देश भी न पहुँचे।

त्वं न॑ इन्द्र राया परी॑णसा याहि पथाँ अ॑नेहसा॑ पुरो या॑ह्य-रक्षसा॑। सचस्व नः पराक आ सच॑स्वास्तमीक आ।
पाहि नो॑ दूरादारादभिष्टिभिः सदा॑ पाह्यभिष्टिभिः॥ ९॥

भा०—हे राजन्! तू बहुत से ऐश्वर्य से युक्त होकर, पाप और हिंसा से रहित तथा दुष्ट पुरुषों से रहित, निर्भय, निर्विघ्न मार्ग से हमारे नगरों को आया जाया कर। दूर देश में भी तू हमें प्राप्त हो, और दूर देश से भी तू आकर सब प्रकार यज्ञ, द्रव्यदान औषधिदान और सत्संगों द्वारा हमारी रक्षा कर। और उत्तम इच्छाओं, कामनाओं, आज्ञाओं और प्रेरणाओं से हमारी रक्षा कर।

त्वं न॑ इन्द्र राया तरू॑षसोग्रं चि॑त्त्वा महिमा स॑क्षदव॑से महे मित्रं नाव॑से। ओजि॑ष्ठ त्रातरवि॑ता रथं॑ कं चि॑दमर्त्य। अन्यमस्मद्रि॑रिषेः कं चि॑दद्रिवो रिरि॑क्षन्तं चिदद्रिवः॥ १०॥

भा० – हे ऐश्वर्यवन्! तू संकटों से पार करने और शत्रुओं का नाश करने वाले ऐश्वर्य से हमारी रक्षा कर। बलवान् सर्वस्नेही, और मृत्यु से रक्षा करने वाले तुझको महा रक्षा के लिये सामर्थ्य प्राप्त हो। हे सबसे अधिक ओजस्विन्! हे सबके पालक, हे सबके रक्षक! हे आसाधारण पुरुष! तू अति सुखकारी वेगवान् रथ, बल एवं रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कर। हे उत्तम पर्वतों की भूमि के स्वामिन्! हम पर हिंसा का प्रयोग करते हुए शत्रु का भी विनाश कर, उसको दण्ड दे।

पाहि न॑ इन्द्र सुष्टुत स्रिधो॑वयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम्। हन्ता पापस्य॑ रक्षस॑स्त्राता विप्र॑स्य माव॑तः। अधा हि त्वा॑ जनिता जीज॑नद्वसो रक्षोहणं॑ त्वा जीज॑नद्वसो॥११॥१७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन ! हे उत्तम स्तुति योग्य ! तू देव हमें दुःखजनक पाप से बचा। तू सदा ही दुष्ट मति वाले पुरुषों और उनकी दुष्ट कामनाओं को नीचे गिरा देने वाला है। तू विघ्नकारी पापाचारी पुरुष का मारने वाला दण्ड देने वाला है। तू मेरे जैसे आत्मवान् सच्चरित्र विद्वान् पुरुष का त्राण करने वाला हो। हे सबको अपने आश्रय पर बसाने वाले! उत्पादक परमेश्वर ने तुझको उत्पन्न किया है और तुझको दुष्ट पुरुषों का नाश करने और दण्ड देने हारा पैदा किया और बनाया है।

[१३०]

॥ १३० ॥ १—१० परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता छन्दः १, ५ भुरिगष्टिः। २, ३, ६, ९ स्वराडष्टिः। ४, ८, अष्टिः। ७ निचृद्-त्यष्टिः। १० विराट त्रिष्टुप ॥

एन्द्र॑ या॒ह्युप॑ नः परा॒वतो॒ नायमच्छा॑ वि॒दथा॑नीव॒ सत्प॑ति॒रस्तं॒ राजे॑व॒ सत्प॑तिः। हवा॑महे त्वा व॒यं प्रय॑स्वन्तः सु॒ते सचा॑। पु॒त्रासो॒ न पि॒तरं॒ वाज॑सातये॒ मंहि॑ष्ठं वाज॑सातये ॥ १ ॥

भा०—बलवान् पुरुषों का पालक नायक जिस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले संग्राम के नाना साधनों को प्राप्त होता है, और जैसे राजा सत्य धर्मों का पालक होकर राज सभा में प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे विद्वान् ! तू हमें दूर देशों से भी प्रेमवश इस वायु के समान हमें प्राप्त हो। तू सत्यधर्मों का पालक होकर ज्ञानों को और निवास योग्य स्थान को प्राप्त कर। हम लोग परस्पर के संगठन द्वारा उत्तम प्रयत्न से युक्त होकर ऐश्वर्य या धन के विभाग के लिये पुत्र जिस प्रकार अपने दानशील और पूजनीय तुझको स्वीकार करते, तेरी शरण आते हैं।

पिबा॒ सोम॑मिन्द्र सुवा॒नमद्रि॑भिः॒ कोशे॑न सि॒क्तम॑व॒तं न वंस॑ग॒स्तातृषा॒णो न वंस॑गः। मदा॑य हर्य॒ताय॑ ते तुवि॒ष्टमा॑य॒ धाय॑से। आ त्वा॑ यच्छन्तु ह॒रितो॒ न सूर्य॒महा॒ विश्वे॑व॒ सूर्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! शिलाखण्डों से कूट पीस कर निकाले गये शान्तिदायक औषधिरस को जिस प्रकार पिपासित पुरुष पान करता है और जिस प्रकार अन्तरिक्षगत मेघ द्वारा सींचे गये जल से पूर्ण जलाशय में प्यासा बैल आकर जल पान करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी विद्वानों से उपदेश किये गये उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले ज्ञानोपदेश को अमृत के समान पान कर। यह सब ऐश्वर्य तेरे हर्ष और तृप्ति करने के लिये है, तेरी कामना की पूर्त्ति के लिये और तेरे लिये नाना प्रकार के ऐश्वर्य सुखों और प्रजाओं की वृद्धि के लिये, और तेरे प्रजा पालन, धारण पोषण के लिये है। सूर्य को जिस प्रकार समस्त दिन आश्रय करते हैं और जिस प्रकार समस्त दिशाएं और प्रकाश की किरणें सूर्य को धारण करती हैं और उसी के आश्रय रखती हैं उसी प्रकार समस्त दिशावासी प्रजाजन और समस्त अपराहत और आगे बढ़ने वाले सैन्य गण तुझे धारण करें।

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि। व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः। अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः॥ ३॥

भा०—पर्वतों में खूब सुरक्षित पक्षिणी के गर्भ अण्डे को जिस प्रकार पक्षी खोज लेता है, उसी प्रकार अग्नि और सूर्य के समान अति तेजस्वी पुरुष अनन्त शस्त्रास्त्र अर्थात् शत्रुसेना के बीच छिपे हुए ग्रहण करने योग्य अंश को और इस पृथिवी की गुफा में छिपे खजाने खोज ले और गौओं के समूह को जिस प्रकार दण्डवान् गोपाल अपने वश करता है उसी प्रकार श्रेष्ठ तेजस्वी पुरुष भी वज्र अर्थात् समस्त शस्त्रास्त्रबल से सम्पन्न होकर भूमियों के समूह या गमन करने योग्य मुख्य मार्गों को अपने अधीन करने की इच्छा करे। जिस प्रकार गृहपति ढके हुए गृह के द्वारों को खोलता है उसी प्रकार राजा सब ओर से सुरक्षित तथा शत्रुओं को दूर से ही वारण कर देने वाली प्रेरणा करने योग्य सेनाओं को खोले, उनको शत्रु पर जा टूटने की आज्ञा दे।

द्राह्णो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यद्-
हिहत्याय सं श्यत् । सं विव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य तीक्ष्ण प्रकाश को अन्धकार के नाश करने और मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये चारों ओर फेंकता है, और जिस प्रकार मेघ या विद्युत् को और प्रहारकारी हिमकण को बरसाता है उसी प्रकार शत्रुनाशक सेनापति और राजा अपनी वृद्धि करता हुआ, शत्रुओं का नाश करता हुआ बाहुओं में तीक्ष्ण और बहुत दूर तक जाने वाले शस्त्रादि हथियार को शत्रु पर चलाने के लिये और अभिमुख बढ़े चले आते हुए शत्रु को मारने के लिये खूब तीक्ष्ण करे और सैन्य को खूब उत्तेजित करे। हे शत्रुओं के नाश करने हारे ! काटने वाला जिस प्रकार वन में उत्पन्न बड़े वृक्षों को कुल्हाड़े से काट गिराता है उसी प्रकार तू पराक्रम शक्तिमान् सैन्य बल और दृढ़ सामर्थ्य से युक्त होकर सेनासमूह से युक्त शत्रुओं को सर्वथा काट डाल।

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे ऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाज-
यतो रथाँ इव । इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—मेघ जिस प्रकार अनायास ही नदियों को समुद्र की ओर बहा देता है उसी प्रकार हे सेनापते ! तू भी गमन करने और आक्रमण करने के लिये रमण करने के साधनों वा वेग से चलने वाले रथों और संग्राम करने वाले वीर पुरुषों को तैयार कर। रक्षा करने वाली सेनाएं या संस्थाएं एकत्र होकर अक्षय और सबके लिये समान रूप से उपभोग करने योग्य द्रव्यमय कोश को धारण करें। अथवा वे शत्रु से न नाश होने वाले सबके प्रति निष्पक्ष अभिलषित पूज्य नायक को प्रधान पद पर नियुक्त करें। वे सेनाएं तथा संस्थाएं समस्त ऐश्वर्य का दोहन करने वाली

दुधार गौओं के समान मननशील प्रजाजन के हित के लिये और सब प्रकार के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाली हों।

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः। शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्। अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ६

भा०—उत्तम कारीगर जिस प्रकार वेग से चलने वाले रथ को तैयार करता है, इसी प्रकार हे विविध ऐश्वर्यों से प्रजाओं को पूर्ण करने हारे राजन्! सुकर्मा, मनीषी और ज्ञान का लाभ करने वाले और शिष्य जन तुझ राजा की उत्साह वृद्धि के लिये इस वाणी को प्रकट करते हैं। हे राजन्! सुख के प्राप्त करने के लिये तुझ राजा को प्रजाजन अति तेजस्वी बनाते हैं। संग्रामों के अवसरों में नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त करने और बल को बढ़ाने के लिये वीर पुरुष संग्राम शूर तुझ नायक को, लड़ाऊ, वेगवान् अश्व के समान सुशोभित और प्रशंसित करते हुए आगे बढ़ते हैं।

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो। अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्। महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

भा०—हे सेनापते! रक्षणसामर्थ्य तेज और अभिमत ऐश्वर्य के देने वाले और प्रजाओं के पालन में समर्थ राजा की वृद्धि के लिये तू ९० अर्थात् अनेक शत्रुपुरों को तोड़। हे युद्ध में अपने कर चरणादि के कौशल दर्शाने हारे! तू बड़े दानशील जन की वृद्धि के लिये और अतिथि के समान पूजनीय पुरुषों को उत्तम वाणी एवं दुग्धादि उत्तम खाद्य पदार्थ और भूमि आदि के देने वाले पुरुष के उपकार के लिये, प्रजा के शान्ति और कल्याण के नाश करने वाले और शस्त्रधारी पुरुष को स्वयं प्रचण्ड भयंकर होकर पर्वत के समान उच्चपद राजसिंहासन से नीचे गिरा दे। और

तू पराक्रम से समस्त संग्रामों का या संग्रामकारी शत्रु सैन्यों का विनाश कर ।

इन्द्रः॑ स॒मत्सु॒ यज॑मान॒मार्य॒॑ प्राव॒द्विश्वे॑षु श॒तमू॑तिरा॒जिषु॒ स्व॑र्मीळ्हेष्वा॒जिषु॑ । मन॑वे॒ शास॑दव्र॒तान्त्वचं॑ कृ॒ष्णाम॑रन्धयत् । दक्ष॒न्न विश्वं॑ ततृ॒षाण॑मोषति॒ न्य॑र्श॒सा॒नमो॑षति ॥ ८ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति समस्त संग्रामों और हर्ष के अवसरों में सबके शरण योग्य, विद्या आदि गुणों में श्रेष्ठ, अन्यों को धन और अन्न आदि देने और राजा को कर देने वाले प्रजाजन की अच्छी प्रकार रक्षा करे । वह अनेक प्रकार के सेना आदि रक्षा के साधनों से सम्पन्न होकर सुख और ऐश्वर्यों से राष्ट्र को सींच कर बढ़ाने वाले संग्रामों में दानशील श्रेष्ठ प्रजाजन की रक्षा करे । मनुष्य मात्र के हित के लिये व्यवस्था के न पालन करने वाले उच्छृंखल दुष्ट पुरुषों का शासन करे । और उनके मुख आदि को काला करके, अपमानित करके दण्ड दे । और प्रजा के धनादि की तृष्णा से लोलुप पुरुष को सूखे काष्ठ को अग्नि के समान जला दे । और मारते हुए शत्रुगण को भी सर्वथा भस्म ही कर दे ।

सूर॑श्च॒क्रं प्र वृ॑ह॒ज्जा॒त ओज॑सा प्रपि॒त्वे वाच॑मरु॒णो मु॑षायती॒शा॒न आ मु॑षायति । उ॒शना॒ यत्प॑रा॒वतोऽज॑ग॒न्नूतये॑ कवे । सु॒म्नानि॒ विश्वा॒ मनु॑षेव तु॒र्वणि॒रहा॒ विश्वे॑व तु॒र्वणिः॑ ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने बड़े भारी बल से और तेज से प्रकट होकर ग्रहचक्र को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है, उसी प्रकार सबको नियम में चलाने वाला तेजस्वी राजा अपने बल पराक्रम और प्रभाव से समस्त राष्ट्रचक्र को अच्छी प्रकार धारण करे । तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार समीप प्राप्त देश में अन्धकार को खण्ड २ करता है उसी प्रकार राजा राजकीय लाल पोषाक पहन कर समीप प्राप्त होने पर सबकी वाणी को हर ले अर्थात् उसके सामने आतंक से किसी को कुछ कहने का साहस न

रहे। वह सबका शक्तिशाली शासक होकर प्रजाजन से कर आदि ऐश्वर्य ले। हे क्रान्तप्रज्ञ ! कान्तिमान् सूर्य जिस प्रकार दूर आकाश से प्रकाश करने के लिये दूर २ के लोकों में पहुँचता है उसी प्रकार सब प्रजाओं को चाहने वाला पुरुष भी प्रजाओं की रक्षा करने के लिये दूर दूर के देशों तक जावे। और अति वेग से जाने वाला अन्धकारनाशक प्रकाश जिस प्रकार समस्त सुखों को देता और सभी दिनों वैसा ही क्षिप्रकारी और अन्धकार का नाशक बना रहता है उसी प्रकार अतिक्षिप्रकारी और शत्रुनाशक और धनों का शीघ्र विभाग करने हारा राजा भी विचारशील पुरुषों के समान सुखकारी ऐश्वर्यों को विभक्त करे, और सब दिनों ही वैसा ही क्षिप्रकारी, शत्रुनाशक और धनैश्वर्य का विभाजक बना रहे।

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥१६॥

भा०—हे धाराएं वर्षाने वाले मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा करने वाले राजन् ! हे शत्रुओं के पुरों, गढ़ों नगर के परकोटों को तोड़ने हारे ! वह तू नये नये, उत्तम से उत्तम, अति प्रसंशनीय एवं गुरुओं द्वारा उपदेश करने योग्य सुख साधनों और रक्षा करने के उपायों से हम प्रजाजनों की रक्षा कर। जिस प्रकार दिनों अर्थात् अपने प्रकाशों से सूर्य वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! तू भी ज्ञानप्रकाश और मनुष्यों की अभिलाषायोग्य समस्त व्यवहारयोग्य, दिव्य पदार्थों के देने वाले विज्ञानवान् गुरुजनों से उपदेश किया जाकर, शिक्षित होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो।

[१३१]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदत्यष्टिः। ४ विराडत्यष्टिः। ३, ५, ६, ७ भुरिगष्टिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम्।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभि-

द्युम्नसा॑ता व॒रीम॑भिः । इन्द्रं॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सो दे॒वासो॑ दधिरे
पु॒रः । इन्द्रा॑य॒ विश्वा॒ सव॑नानि॒ मानु॑षा रा॒तानि॑ सन्तु॒ मानु॑षा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार यह नक्षत्रमण्डलमय आकाश और अपने प्रबल झोंकों से सब पदार्थों को उथल पुथल कर देने वाला महान् वायुमय अन्तरिक्ष या विद्युत् वरण करने योग्य किरणों से प्रकाश प्राप्त करने के लिये अन्धकार के नाशक और जलों और मेघों के भेदक सूर्य के समक्ष झुकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वानों और पुरुषों से राजसभा और शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला बलवान् सैन्यसमूह उपायों से यश और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा के समक्ष आदर से झुके। जिस प्रकार समस्त किरणगण सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार समान रूप से प्रीति और सेवा करने हारे विजयशील, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पुरुष भी उसको अपने आगे नायक के समान धारण करें। समस्त मनुष्योपयोगी ऐश्वर्य उसी ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के निमित्त दिये जावें। और वे सब पुनः सर्व मनुष्यों के हितकारी हों।

विश्वे॑षु॒ हि त्वा॒ सव॑नेषु तु॒ञ्जते॑ समा॒नमेकं॒ वृष॑मण्यवः॒ पृथ॑क्
स्वः॑ सनि॒ष्यवः॒ पृथ॑क् । तं त्वा॒ नावं॒ न प॒र्षणिं॑ शू॒षस्य॑ धु॒रि
धी॑महि । इन्द्रं॒ न य॒ज्ञैश्चि॒तय॑न्त आ॒यवः॒ स्तोमे॑भि॒रिन्द्र॑मा॒यवः॑ ॥२॥

भा०—हे राजन्! तुझको एकमात्र बलवान् एवं सब ऐश्वर्यों का वर्षक मानते हुए, या स्वयं महावृषभ के समान क्रोध से प्रतिस्पर्द्धाशील वीर पुरुष पृथक् पृथक् सुखमय राज्य को स्वयं भोगने की कामना से युक्त होकर भी समस्त ऐश्वर्यों और शासन कार्यों पर भी एक समान निष्पक्षपात तुझको ही प्रतिपालन करते हैं, तेरी ही आज्ञा और अनुमति की ही प्रतीक्षा करते हैं। नदी से पार पहुँचा देने वाली नाव के समान उस तुझको ही बल के धारण करने के प्रमुख पद पर संग्राम सागर से पार करने वाले एवं पालन योग्य अन्नादि के दाता रूप से धारण करें। ज्ञान और

पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले ज्ञानोपार्जक पुरुष दान योग्य द्रव्यों से जिस प्रकार आचार्य को सन्तुष्ट करते हैं उसी प्रकार पुरुषार्थी लोग राजा को भी दान योग्य ऐश्वर्यों से और स्तुति योग्य वचनों तथा सेना समूहों से अपने में धारण करें।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! रक्षा चाहने वाले स्त्री पुरुषों के जोड़े सब प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते हुए तुझे प्राप्त होकर विविध दुःखों को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे सब प्रकार अपना आत्मोत्सर्ग करने हारे, सब कुछ सहने वाले होकर गौओं के हितकारी बाड़े के समान आश्रयप्रद लोकों को शरण रूप से प्राप्त होने योग्य आश्रय के लाभ के लिये तुझको प्राप्त होकर विशेष रूप से यत्न करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! तू जब गौ आदि पशुओं की समृद्धि की कामना करने वाले, सुख को प्राप्त होने वाले, दो जनों, अर्थात् स्त्रीपुरुष गृहदम्पति को भली प्रकार सुख सामग्री प्राप्त कराता उनको एकत्र रखता और उनको उत्तम ज्ञान प्रदान करता है तभी सहयोग से उत्पन्न होने वाले सुखों के वर्षण करने वाले बलवान् पुरुषों के बने सैन्य और साथ होने वाले शस्त्रास्त्र बल वीर्य, पराक्रम को भी प्रकट करता है।

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते। महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! तेरा पालन और तेरे राष्ट्र बल को पूर्ण करने वाले प्रजाजन तेरे इस प्रत्यक्ष दीखने वाले वीर्य, बल पराक्रम को जानें, जब तू सब शत्रुओं को पराजय करता हुआ उनकी शरत् के समय अर्थात् युद्ध

यात्रा काल के उपयोगी नगरियों को नीचे गिरा देता है। हे बल के स्वामिन्! तू उस २ नाना प्रकार के सन्धि द्वारा तुझसे न आ मिलने वाले तथा तुझे कर न देने वाले पुरुष को अच्छी प्रकार शासित और दण्डित कर। हे राजन्! तू इन आप्त प्रजाजनों को प्रसन्न करता हुआ और स्वयं भी प्रसन्न होता हुआ, विशाल पृथिवी और जलों को तथा पृथिवीनिवासी प्रजाजनों और प्राणिवर्गों को अपने वश कर।

आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे। ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

भा०—हे सब सुखों के और ऐश्वर्यों के वर्षण करने वाले राजन्! तू जो अपने यश, धर्म, अर्थ की कामना करने वाले पुरुषों की रक्षा करता है और जो तू मित्र के समान बर्त्ताव करने वाले सहायक जनों की रक्षा करता है, तभी वे हर्षों और उत्सवों के अवसरों में तेरे इस बल पराक्रम की वृद्धि करते हैं। तू संग्रामों में इनके हितार्थ उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिये उनके कार्य विभाग नियत कर। वे पृथक् २ अपनी समृद्धि को भोग करें और अन्न, यश और ऐश्वर्य की वृद्धि की कामना करते हुए दान भी करें।

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥६॥

भा०—राजा इस उस उषाकाल के और सूर्य के ग्रहण करने योग्य व्रत और आचरण का सेवन करे। और हमें ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और कर्मों द्वारा, सुख ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, ज्ञानवान्, प्रबुद्ध तथा जागृत और सचेत कर। हे शस्त्र बल के धारण करने हारे राजन्! जिससे तू प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने में समर्थ होकर, संग्रामकारी शत्रु सेनाओं के दण्ड देने और मारने के लिये खूब अच्छी प्रकार उपाय करे

इसलिये तू मुझ इस कार्यविधान करने में कुशल नवीन २ विद्याओं को ज्ञान करने वाले विद्वान् पुरुष के मनन करने योग्य ज्ञान का श्रवण कर।

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम्। जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः। रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

भा०—हे शूरवीर राजन्! सेनापते! हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! तू बल पराक्रम तथा ऐश्वर्य में बढ़ता हुआ, और हमें हृदय से चाहता हुआ, शत्रुभाव दर्शाने वाले मारने योग्य उस मनुष्य को शस्त्र बल से मार, जो हम पर पाप या घात करना चाहता है। हे लोकविख्यात! तू उत्तम यशस्वी प्रजाओं के कष्टों को उत्तम रूप से श्रवण करने हारा होकर श्रवण कर। मार्ग में आये विघ्न के समान समस्त प्रकार की दुर्बुद्धि और सब प्रकार के दुष्टिबुद्धि वाले जन दूर हों। इति विंशो वर्गः ॥

[१३२]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ विराडत्यष्टिः। २ भुरिगतिशक्करी। ४ निचृदष्टिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः। नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते। अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे परमैश्वर्यवन्! हम लोग तेरी सहायता से और तेरे से सुरक्षित रहकर सेना वृद्धि करके युद्ध करने के इच्छुक शत्रुओं को, पूर्वज पुरुषों द्वारा सम्पादित धनैश्वर्य की रक्षा के लिए पराजित करें। हमसे हिस्सा बांट कर उपभोग करने के इच्छुक जनों को साथ मिलाकर अच्छी प्रकार न्यायपूर्वक विभाग करके उसका सेवन करें। इस दिन अति समीप आये हुए शिष्य को गुरु के समान तू तेरा राज्याभिषेक करने हारे अधीन प्रजाजन के हित के लिए अध्यक्ष होकर आज्ञा और उपदेश कर। परस्पर

संगठन से सुसम्पन्न और सबको भरण पोषण करने वाले राष्ट्र में हम अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करते हुए, अपने किये उत्तम कार्य और परिश्रम का फल विविध उपायों से सञ्चित करें।

स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि। अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः। अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः॥ २॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के लिए अन्धकार का नाश करता है, और प्रत्येक शिर अर्थात् मुख द्वारा स्तुति योग्य होता है, उसी प्रकार ज्ञानोपदेश करने के लिये अज्ञान नाशक आचार्य अज्ञान का नाश करता तथा ज्ञान का उपदेश करता है और वह प्रत्येक शिर से, समीप बैठकर अनुकरण द्वारा बांचने योग्य होता है अर्थात् गुरु उपदेश करता और प्रत्येक विद्यार्थी उसके ज्ञान वाणी का तदनुसार स्वयं अभ्यास करता और अपने अन्य शिष्यों को भी प्रवचन द्वारा बढ़ाता है। इस लिये हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिए, अपने प्रकाशमान ज्ञान में साधना करने वाले तथा पूर्ण ज्ञानी और अन्यों को ज्ञान से पूर्ण करने वाले विद्वान् पुरुष के, आत्मा का पोषण करने वाले प्रवचन उपदेश में रह कर, उषाकाल और जीवन के प्रभात अर्थात् बाल्यकाल में प्रबुद्ध हो, ज्ञान सम्पादन कर, अपना अज्ञान नाश करें।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम्। वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः। स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः॥ ३॥

भा०—सूर्य का जिस प्रकार दूर तक जाने वाला तेज अति देदीप्यमान और सनातन से चला आ रहा है, उसी प्रकार हे प्रभो! तेरा वेदमय वचन अति प्राचीन काल से विद्यमान् और अति प्रकाशमान् कान्ति-

युक्त अभिव्यक्त हो। उपासना और सत्संग के योग्य जिस तुझ प्रभु में भक्त-जन वरण करने योग्य आश्रय लाभ करते हैं वह तू स्वयं सत्य ज्ञान का आश्रय स्थान, और सब दुःखों का वारण करने हारा है। हे भगवन्! आप उस परम ज्ञान का विशेष रूप से उपदेश करें। और हे प्रभो! विद्वान् जन ज्ञानरश्मियों या प्राणों के निग्रह द्वारा अपने भीतर ध्यान योग से इह और और पर, अहं और स्व, जीव और ब्रह्म दोनों को पृथक् २ साक्षात् कर लेते हैं। वही परमात्मा ज्ञानवान् पुरुष को ज्ञानोपदेश के लिए, तुझ बन्धु के अधीन रहने वाले भक्तों के हितार्थ उनके अनुकूल होकर ज्ञान वाणियों को प्रदान करने हारा होता है।

नू इ॒त्था ते॑ पू॒र्वथा॑ च प्र॒वाच्यं॒ यदङ्गि॑रोभ्यो॒ऽवृ॑णो॒रप॑ व्र॒जमि॑न्द्र शि॒क्षन्नप॑ व्र॒जम्। ऐभ्यः॑ समा॒न्या दि॒शास्मभ्यं॑ जेषि॒ योत्सि॑ च। सु॒न्वद्भ्यो॑ रन्धया॒ कं चि॑दव्र॒तं हृ॑णा॒यन्तं॑ चिदव्र॒तम् ॥ ४ ॥

भा०—हे आचार्य! शिक्षा देता हुआ तू देह में स्थित प्राणों के समान चैतन्यवृद्धि वाले शिष्यों के प्रति ज्ञान करने योग्य तत्व को खोल। इस प्रकार नवीन रीति और पूर्व प्रचलित रीति से भी जो प्रवचन करने योग्य है वह भी स्पष्ट करके बतला। इन हम शिष्य जनों के हित के लिए तू सबके प्रति समान भाव से रहने वाले उपदेश से सर्वोत्कृष्ट एवं आदर करने योग्य है, तू हमें दण्डित कर, ताड़ना दे। तू ज्ञान का सम्पादन करने वालों के हित के लिये हो। जिस किसी को भी व्रत ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषण, विनय आदि से रहित पाओ उसको और क्रोध दिखाने वाले अविनयी, व्रत रहित शिष्य को दण्डित कर।

सं यज्जना॒न् क्रतु॑भि॒ः शूर॑ ई॒क्षय॒द्धने॑ हि॒ते त॑रुषन्त श्रव॒स्यव॑ः प्रय॑क्षन्त श्रव॒स्यव॑ः। तस्मा॒ आयु॑ः प्र॒जाव॒दिद्बाधे॑ अर्च॒न्त्योज॑सा। इन्द्र॑ ओ॒क्यं॑ दिधिषन्त धी॒तयो॑ दे॒वाँ अच्छा॒ न धी॒तय॑ः ॥ ५ ॥

भा०—अति शीघ्रता से ज्ञानैश्वर्य देने वाला आचार्य जो ज्ञानों द्वारा मनुष्यों को अच्छी प्रकार मार्ग दिखाता है उसे सन्तति से युक्त दीर्घजीवन प्राप्त हो। वेदमय उपदेश को श्रवण करने की इच्छा करने वाले जिज्ञासु लोग परम हितकारी धन के समान सुगोप्य आत्मा के बल पर दुःखों से तर जाते हैं, और उत्तम रीति से अन्यों को भी ज्ञान प्रदान करते हैं। वे लोग बाधा उपस्थित हो जाने पर उसके बल पराक्रम के कारण ही उसकी पूजा, आदर करते हैं। जिस प्रकार दान लेने वाले पुरुष दान देने वालों के सन्मुख रहते उसी प्रकार अध्ययन करने वाले शिष्य जन अविद्यानाशक गुरु के अधीन रह कर प्रवचन योग्य गुरूपदेश को सन्मुख बैठ कर धारण करें।

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्। अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥२१॥

भा०—हे सूर्य के समान शत्रुओं के नाश करने हारे! हे पर्वत के समान अचल! जो हम पर सेना लेकर आक्रमण करे, सबसे आगे जाकर युद्ध करने वाले होकर आप दोनों वज्र से उस उसको मारो, दण्ड दो। यदि वह शत्रु वन में या संकट में चला जाय और भाग जाय तो दूर चले गये शत्रु को भी पकड़ने की इच्छा करो। हे शूरवीर! हमारे शत्रुओं को सब तरफ से बेधता हुआ तू सब प्रकार से सब तरफ से छिन्न भिन्न कर डाल। (२) ज्ञानैश्वर्यवान् होने से आचार्य इन्द्र है, और पालन करने से 'पर्वत' है। वे पूर्व अवस्था अर्थात् बाल्यकाल में बालक को ताड़ने से 'पुरोयुध' हैं। जो दुर्भाव हम पर आक्रमण करें उनको वे दोनों दण्ड दें, जो कोई छात्र कठिनाई में पड़ जाय तो दूर तक भटक गये को, आचार्य प्रेम से उभार लेवे। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१३३]

परुच्छेप ऋषिः इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप् । ५ आर्षी गायत्री । ६ स्वराड् ब्राह्मी जगती । ७ विराडष्टिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळहा अशेरन् ॥१॥

भा०—जल से जिस प्रकार दोनों तट स्वच्छ हो जाते हैं उसी प्रकार सत्य व्यवहार, न्याय से मित्र और शत्रु दोनों पक्षों को पवित्र करूं। मैं राजद्रोहकारी भूमियों को जला डालूं। जहां शत्रु लोग आक्रमण करके मारे जावें उस गिरने या पराजित होने के स्थान पर ही वे मारे गये लोग भूमि पर सोवें। अध्यात्म में—मैं ज्ञान से इह लोक और परलोक दोनों को पवित्र करूं। मैं आत्मा की विरोधी द्रोहकारणी विक्षेपप्रवृत्तियों या वासनाओं को सूखी लताओं के समान जला दूं। वे काम क्रोधादि शत्रुगण जहां पहुँच कर विनष्ट हो जाते हैं उस गुहास्थित ब्रह्म को प्राप्त होकर शान्त हो जावें।

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

भा०—हे वज्रधर ! जिस प्रकार लपेट लेने वाले पैर से पहलवान् अपने शत्रु को लपेट कर नीचे गिराता और सिरों को कुचल डालता है, उसी प्रकार तू शत्रुओं को पकड़ कर पीड़ा देने वाली शत्रुसेनाओं के शिर-भागों अर्थात् प्रमुख नायकों, और मुख्य बलवान् दलों को लपेट लेने वाले हाथी के पैर या शूंड के समान उससे भी कहीं बड़ी शक्ति से चारों तरफ से घेर लेने वाले अपने सेनाबल से चारों ओर से घेर कर उसको काट, छिन्न भिन्न कर।

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
बैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार पीड़ादायी व्यक्तियों को विल के समान बने कैदखाने में डाल दिया जाता है उसी प्रकार इन पीड़ादायक सेनाओं के प्रबल बल को कष्टदायी बड़े भारी गढ़ों से युक्त ऊंचे नीचे खड्डों से भरे स्थान में डाल कर उसका नाश कर ।

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

भा०—हे सेनापते ! तू जिन सेनाओं के तीन-पचासों को अर्थात् तीन तीन कतारों की पचास २ की सेनाओं को भी सब तरफ से पैंतरों से या सब तरफ चलने वाले चौमुखा मारने वाले शस्त्रों और अस्त्रों से काट गिरावे, या मार भगावे, वही तेरा उत्तम मनः—संकल्प हो, वह ही तेरा उत्तम आदर योग्य विचार रहे ।

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! पीले वर्ण के प्रकाश से भुन जाने वाले, पीड़ा को देने वाले, देह के अवयव २ व्याप्त, या रक्त को चूसने वाले रोगकारी कारण को सूर्य के प्रखर ताप से जैसे नष्ट किया जाता है, उसी प्रकार पीतवर्ण के तेजस्वी पुरुषों द्वारा पीड़ित होने वाले, पीड़ादायी, खण्ड २ होने वाले शत्रुसैन्य को अच्छी प्रकार नष्ट कर डाल । और समस्त बाधक कारणों और शत्रु बल को दूर कर ।

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः । शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! तू बड़े भारी शत्रुदल को नीचे गिरा कर छिन्न भिन्न कर । हे न दीर्ण होने वाले शस्त्रबल से युक्त ! विद्युत् के भय से जिस प्रकार पृथिवी के समान आकाश भी चमक उठता है, उसी प्रकार मानो चमकने वाले अति तेजस्वी तेरे भय से पृथिवी की सामान्य प्रजा के समान तेजस्वी राजजन भी चमकें, कांपें, वा भयभीत हों । तू भयंकर हिंसाकारी शूरवीर पुरुषों और हिंसाकारी शस्त्रों से सब राजगण में सबसे अधिक बलशाली जाना जावे । और अपने शूर पुरुषों का न नाश करता हुआ, हे शूरवीर ! हे शत्रुओं द्वारा न मुकाबला किये जाने वाले ! तू तीन-साते अर्थात् इक्कीस बलशाली शरीरगत मूल तत्वों से युक्त आत्मा के समान होकर मुख्य भोक्ता जाना जावे ।

व॒नोति॒ हि सु॒न्वन्क्षयं॒ परी॑णसः सुन्वा॒नो हि ष्मा॒ यज॒त्यव॒ द्विषो॑ दे॒वाना॒मव॒ द्विषः॑ । सु॒न्वा॒न इत्सि॑षासति स॒हस्रा॑ वा॒ज्यवृ॑तः । सु॒न्वा॒नायेन्द्रो॑ ददात्या॒भुवं॑ र॒यिं द॑दात्या॒भुव॑म् ॥७॥२२॥१६॥

भा०—निश्चय से अभिषेक करने वाला प्रजाजन ही निवास योग्य आश्रय प्राप्त करता है । और अभिषेक करता हुआ प्रजाजन उत्तम पुरुषों, विद्वानों और विजयशील पुरुषों के अप्रीतिकर द्वेषी शत्रुओं को भी विनाश करने में समर्थ होता है । अभिषेक करने हारा ही अधिक पुरुषों से सुरक्षित न रह कर भी बलवान् होकर सहस्रों ऐश्वर्य सुखों को प्राप्त करता है । अभिषेक करने वाले प्रजागण को ही वह ऐश्वर्यवान् राजा सर्वत्र सुख उत्पादन करने हारे ऐश्वर्य का प्रदान करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले एकोनविंशोऽनुवाकः समाप्तः ॥

[१३४]

१–६ परुच्छेप ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, निचृदत्यष्टिः । २, ४ विराडत्यष्टिः । ५ अष्टिः । ५ विराडष्टिः ॥ षड़ृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा॒ जुवो॑ रारहा॒णा अ॒भि प्रयो॒ वायो॒ वह॑न्त्वि॒ह पू॒र्वपी॑तये॒ सो-

मस्य पूर्वपीतये । ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती । नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

भा०—उत्तम मार्ग में ले जाने हारे, संसार के विलासों को त्यागने वाले निःस्वार्थ विद्वान् अपने पूर्व के विद्वानों और पुरुषों के ज्ञान ऐश्वर्य आदि का पान करने के लिये तुझको हे वायु के समान राष्ट्र के प्राण रूप राजन् ! ज्ञान, परमपद, और प्रीति प्राप्त करावें । हे राजन् ! उत्तम सत्य वेदवाणी मन को ज्ञान प्रदान करती हुई तेरे कार्य के अनुकूल रहे । हे शूरवीर ! तू पूजनीय उत्तम ज्ञान के देने वाले गुरु आचार्य के लिये और यज्ञ के दान और युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के नाश करने के लिये अश्वों से जुते रथ तथा असंख्य रथ सेना से प्रयाण किया कर ।

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः । यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः । सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२॥

भा०—हे ज्ञानवान् राजन् ! सुख की कामना करने वाले हममें से जो क्रियाशील तथा सदाचारवान्, तथा चन्द्र के समान सबके आल्हादकर और सोम रसों के समान राष्ट्र के पोषक, गौओं और बैलों से ऐश्वर्य अन्न आदि उत्पन्न करते हुए, अति तेजस्वी, और व्यवहारज्ञ होकर तुझे प्रसन्न करें, और जो पुरुषार्थी लोग ज्ञान और बल प्राप्त करने के लिये उद्योग करते हैं वे सदा एक साथ सहोद्योगी होकर एक ही रथ में लगे अश्वों के समान एक कार्य में लग कर, आत्मसमर्पण करने वाले शिष्य जिज्ञासु को नाना ज्ञानयुक्त प्रजाओं और कर्मों का सब प्रकार से उपदेश करते हैं ।

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे । प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव । प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

भा०—शिष्यों को ज्ञानमार्ग में परिचालन करने वाला विद्वान्, वृद्धिशील एवं किरणों के समान तेजस्वी, तथा अजीर्ण शिष्यों को, संसार के कार्यभार को उठाने में समर्थ होने के लिये, ज्ञान शक्ति के धारण करने के कार्य में, धुरा में बैलों के समान अपने वश करता हुआ सन्मार्ग में नियुक्त करता है। हे विद्वान्! तू विद्या के उपदेश करने में कुशल हो कर, शिष्य की सोती हुई बुद्धि और देहरूप पुर को धारण करने वाली शक्ति को अच्छी प्रकार जगा, उसे प्रबुद्ध कर, उसे ज्ञानवती बना। और उसे पृथ्वी और आकाश अर्थात् समस्त जगत् के ज्ञान का उत्तम रीति से उपदेश कर। ज्ञानोपदेश श्रवण कराने के लिये तू उन जिज्ञासु शिष्यों को अपने अधीन बसा। गृहस्थ की कामना करने हारे, उन युवकों को गृहस्थ में और विद्याभिलाषी पुरुषों को अपने पास ही बसा।

तुभ्य॑मु॒षास॒ः शुच॑यः परा॒वति॑ भ॒द्रा वस्त्रा॑ तन्वते॒ दंसु॑ र॒श्मिषु॑ चि॒त्रा नव्ये॑षु र॒श्मिषु॑। तुभ्यं॑ धे॒नुः स॑ब॒र्दुघा॒ विश्वा॒ वसू॑नि दोहते। अज॑नयो म॒रुतो॑ व॒क्षणा॑भ्यो दि॒व आ व॒क्षणा॑भ्यः ॥ ४ ॥

भा०—अति दीप्त प्रभात वेलाएं जिस प्रकार किरणों के आधार पर दूर २ देश में पहुच कर जगत् के सुखकारी आच्छादक प्रकाशों को फैलाती हैं उसी प्रकार हे विद्वन्! तेजस्वी एवं तेरे अधीन बसने वाले छात्रगण इन्द्रियों को दमन करने वाले साधनों और नये से नये स्तुत्य ज्ञानमय प्रकाशों और कार्यों के आधार पर, दूर २ के देश में भी तेरे अति कल्याणकारी यश:पटों को विस्तृत करें। और गौ और उसके समान धारण करने वाली यह पृथ्वी समस्त रसों का दोहन करने वाली काम-दुघा होकर समस्त प्रकार के ऐश्वर्य का प्रदान करे। जिस प्रकार वेग से गमन करने वाले वायुगण आकाश या पृथ्वी के पार्श्वों से नाना मेघों और जलवृष्टियों को लाते हैं उसी प्रकार व्यापारी जन भी नदियों द्वारा और पृथिवी और अकाश के सब पार्श्वों से ऐश्वर्य प्राप्त करावें।

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि। त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये। त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

भा०— हे बलवान् राजन् ! वीर्यवान्, शुद्ध आचारण वाले, अति शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने में कुशल, उग्र पुरुष, हर्ष अवसरों में और प्रजाओं के भरण पोषण के कार्य में लगें। वे तुझे ही चाहें और तुझे ही सदा प्रेरणा करते रहें। हे राजन् ! छद्मगति से चलने वाला कुटिलाचारी पुरुष भी शत्रुओं का नाश करता हुआ, तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष की प्रजापीड़क पुरुषों के दूर करने के उत्तम काम के निमित्त स्तुति करता है। तू सब प्रकार के उत्पन्न हुए सांसारिक भय से रक्षा करता है। और तू ही धर्म से अर्थात् अपने धारण सामर्थ्य से असुर अर्थात् दुष्ट पुरुषों के व्यवहार से प्रजा की रक्षा करने में समर्थ है।

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि। उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम्। विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—हे बलवान् राजन् ! पूर्व पुरुषों द्वारा किये कर्मों से भी विलक्षण कर्म करने हारा अथवा जिसके पूर्व कोई अन्य न हुआ हो ऐसे अद्वितीय पद के योग्य होकर तू इन ऐश्वर्यों और पदाधिकारों का ओषधि रसों के समान पान अर्थात् उपभोग करने में समर्थ है तू ही अभिषिक्त राजपदाधिकारियों में से सब से उत्तम रहकर ऐश्वर्य भोग करने का अधिकारी है। तू विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न और सब दोषों से रहित प्रजाओं का भी पालन करने में समर्थ है। गौएं जिस प्रकार सेवन करने योग्य घी आदि पदार्थ प्रदान करती हैं उसी प्रकार समस्त प्रजाएं तेरे लिये सेवन करने योग्य और आश्रय करने योग्य समस्त ऐश्वर्य को प्रदान करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३५]

परुच्छेप ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृदत्यष्टिः । २, ४ विराडत्यष्टिः । ५, ९ भुरिगष्टिः । ६, ८ निचृदष्टिः । ७ अष्टिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते । तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे । प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् जिस प्रकार पूज्य और आदरणीय पुरुष के लिये आसन बिछाया जाता है उसी प्रकार तेरे लिये यह वृद्धियुक्त सिंहासन फैला हुआ है । तू उसको प्राप्त करने के लिये हज़ारों अश्वसैन्यों और सौ सौ के दस्तों वाली सेनाओं सहित हमें प्राप्त हो । असंख्य पुरुषों के स्वामी और नियुक्त सेनाओं के स्वामी तथा व्यवहारकुशल तुझ विजिगीषु के लिये सब विजयेच्छुक जन सब से प्रथम प्रधान पद के उपभोग के लये सब नियम व्यवस्था करते हैं । और वे मधुर, अन्नों से युक्त और उत्पादित ऐश्वर्य से युक्त तेरे ही हर्ष और सुख के निमित्त सदा कार्य सम्पादन करने के लिये स्थापित हों, और स्थर, अविचलित निर्भय होकर रहें ।

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति । तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते । वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥

भा०—हे सेनापते ! यह शस्त्रों से, न दीर्ण होने वाले कवचों से, और मणियों और आदर करने योग्य विद्वानों से पवित्र या दीक्षित हुआ हुआ विद्वान् पुरुष, चाहने योग्य वस्त्रों को धारण करता हुआ और वस्त्रों और आभूषणों को धारण करता हुआ खड्ग धारण करता है । हे सेनापते ! सौम्य गुणों से युक्त पुरुष साधारण मनुष्यों और विद्वान् और विजयी पुरुषों के बीच तेरी सेवा करने वाला कहा जाता है । हे बलवन् सेनापते ! तू अपने अधीन नियुक्त सेनाओं को सन्मार्ग पर ले चल, तू

हमारा स्वामी, हमें सदा समृद्ध रूप में चाहने वाला होकर सब राष्ट्रों का भोग करता हुआ हमें प्राप्त हो।

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रं स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि वी॒तये॒ वायो॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑। तवा॒यं भा॒ग ऋ॒त्वियः॒ सर॑श्मिः॒ सूर्ये॒ सचा॑। अ॒ध्व॒र्युभि॒र्भर॑माणा अयंसत॒ वायो॑ शु॒क्रा अ॑यंसत ॥ ३ ॥

भा०—हे वायु के समान बलवन् राजन्! तू राज्य को प्राप्त करने उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों का उपभोग करने के लिये, नाश न होने वाले हमारे राष्ट्र को, बलवान् अश्व और सैकड़ों दस्तों से बनी और हज़ारों वीर पुरुषों से बनी नाना सेनाओं सहित प्राप्त हो। तेरा ऋतु अनुकूल सेवन करने योग्य अंश है, जो सूर्य में विद्यमान किरणों के समान राष्ट्र को वश करने के साधनों सहित तुझे प्राप्त है। और हे बलवन् शासक! अविनाश्य राष्ट्र के सञ्चालक मुख्य पुरुषों सहित राष्ट्र के कार्य भार को धारण करते हुए शुद्ध आचारवान् पुरुष राष्ट्र का भली प्रकार नियन्त्रण करें।

आ वां॒ रथो॑ नि॒युत्वा॑न्वक्ष॒दव॑से॒ऽभि प्रयां॑सि॒ सुधि॑तानि वी॒तये॒ वायो॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑। पिब॑तं॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः पू॒र्व॒पेयं॒ हि वां॑ हि॒तम्। वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ राध॒सा ग॑त॒मिन्द्र॑श्च॒ राध॒सा ग॑तम् ॥४॥

भा०—हे बलवन् सेनापते! हे ऐश्वर्यवन्! उत्तम पुष्टिकारक भोज्य अन्न को और उत्तम ऐश्वर्यों को भोगने, और उनके पालन और प्राप्त करने के लिये, उत्तम अश्वों से युक्त रथ तुम दोनों को वहन करे, दूर २ देशों तक ले जावे। आप दोनों मधुर अन्न का उपभोग करें। आप दोनों के लिये निश्चय से सबसे पूर्व पान करने योग्य पदार्थ भी स्थित है। आप दोनों सबको सुखी करने वाले सुवर्ण आदि ऐश्वर्य सहित और सब कार्यों को भली प्रकार साधने वाले उपाय सामग्री सहित आवें, धनैश्वर्य सहित हमें प्राप्त हों।

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्। तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या। इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान जगत् और राष्ट्र को करादान और ऐश्वर्यदान द्वारा पालने वाले! जो विद्वान् पुरुष आप दोनों के ज्ञानों और कर्त्तव्य कर्मों का नित्य प्रति अभ्यास करते हैं, और प्रजापालक राज्यों की व्यवस्था करते हैं, और ज्ञानवान्, शीघ्र कार्य करने में कुशल, चन्द्र के समान आल्हादक इस राज्य को वेगवान् अश्व के समान सदा शोधन करते, उसको त्रुटियों रहित करते रहते हैं, उन नायकों के ऐश्वर्य का आप दोनों हर्ष के लिये उपभोग करो। हमारे इस राज्य में रक्षण करने के निमित्त आप दोनों आवें। आप दोनों अन्न और ऐश्वर्य के देने, पालने और संग्रामों में शत्रु का नाश करने वाले होकर हमें प्राप्त होवें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत। एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः। युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार औषधि रस नाना रसों में डाले जाकर, शरीर को नाश न होने देने वाले प्राणों से धारण किये जाकर, विशुद्ध वीर्य रूप से क्रियाजनक होकर शरीर को व्यवस्थित करते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र! और वायु! अर्थात् राजन् और सेनापते! आप दोनों के सहायतार्थ ही ये प्रजाओं को सन्मार्ग में चलाने में समर्थ शक्तिशाली पुरुष प्रजाओं में सबके सन्मुख अभिषेक किये जावें। और वे राष्ट्रयज्ञ को नाश होने से बचाने वाले प्रबल नायकों और विद्वान् पुरुषों द्वारा प्रजा का धारण और पोषण करते हुए, कार्यकुशल और शुद्ध धर्माचरण वाले होकर, राष्ट्र का प्रबन्ध करते रहें। जिस प्रकार वेग से फैलने वाले औषधि रस तिरछे लगे

दशापवित्र नामक छनने पर गति करते हैं और उसमें लगे भेड़ के बालों को पार कर जाते हैं उसी प्रकार ये तीव्र वेग से जाने हारे पुरुष भी अति उत्तम पवित्र, राष्ट्र और प्रजाजन को पवित्र करने वाले आदेश को लक्ष्य करके चलें। और वे सब राजा और सेनापति तुम दोनों को हृदय से चाहते हुए, सौम्य स्वभाव के अनुगामी शासक होकर, कभी समाप्त न होने वाले अर्थात् अनेक, उच्छेदन या काट गिराने योग्य शत्रुओं को भी पार कर जाने में समर्थ हों।

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

भा०—हे वायु के समान प्राणप्रद विद्वन्! और राजन्! तू सोने वाले आलसी पुरुषों से आगे बढ़। और तू सनातन या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाले पुरुषों से आगे बढ़। जहां उपदेष्टा विद्वान् पुरुष उपदेश करता हो तुम दोनों वहां जाया करो। और फिर अपने २ गृह आया करो। हे वायु के समान बलवन् पुरुष! तू और ऐश्वर्यवान् तुम दोनों अपनी पूरी शक्ति और नियुक्त सेना से प्रजाओं का न नाश होने देने वाले प्रजापालन के प्रत्येक कार्य को प्राप्त होते हो तो राष्ट्र में जल घी दूध खाद्य पदार्थ और उत्तम तेज और विज्ञान का प्रकाश सर्वत्र सुना जाता और पाया जाता है, और शुभ सत्यमय वाणी और अन्न सम्पत्ति विविध प्रकार से दिखाई देती है।

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः। साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

भा०—मधुर फल के देने वाले अश्वत्थ अर्थात् पीपल को जिस प्रकार फल खाने की इच्छा से पक्षिगण प्राप्त होते और उसका आश्रय लेते

हैं और जिस प्रकार अपत्य की कामना करने वाले स्त्री पुरुष अश्वत्थ या पीपल का औषधि रूप से सेवन करते हैं, उसी प्रकार हे राजन् और सेनापते ! विजयशील पुरुष, शत्रुदल को कंपा देने वाले सामर्थ्य को धारण करने वाले आश्रय वृक्ष के समान दृढ़ एवं अश्वसैन्य के बल पर संग्राम में स्थित होने वाले जिस नायक का आश्रय लेते हैं, आप दोनों इस राष्ट्र में अवश्य ही उस नायक को धारण करो। और वे हमारे वीर पुरुष संग्राम में विजयी होवें। राज्य में गौएं एक साथ ही बियावें। अर्थात् दूध घी एक साथ बहुत अधिक मात्रा में हो। जौ आदि अन्न भी एक ही साथ पके। हे विद्वन् ! तेरी गौएं क्षीण न हों और दुधार गौएं चोर आदि द्वारा चुराई जाकर नष्ट न हों। [अथर्ववेद में शमी पर स्थित पीपल को पुत्रोत्पादक कहा है। "शमीमश्वत्थ आरूढ़स्तत्रपुंसवनं कृतम् ॥" यहां मधु के साथ अश्वत्थ के सेवन से पुत्र प्राप्ति होती है। पीपल, वट, और ढाक तीनों की फुनगी का सेवन समान रूप से पुत्रजनक है]।

इमे य ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः। धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः। सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

भा०—वायु के समान बलवान् सेनापते ! जो ये बाहु के पराक्रम से युक्त होकर, अति समृद्ध प्रजा के बीच सेवन करने वाले मेघ के समान दानशील और वृषभों के समान बलवान् हैं, वे उत्तम पति होने योग्य हैं। जिस प्रकार मेघ जलमयस्थान और रेगिस्तान दोनों पर स्थित होकर वर्षा करते हैं उसी प्रकार जो वीर बड़े बलशाली होकर बढ़ते हुए, जल स्थल और अन्तरिक्ष में स्थिर होकर शत्रुओं पर शर वर्षण करने में समर्थ होते हैं, वे ही समृद्धि के अवसर और संग्राम में धनुष के कार्य में विजयशील होते हैं। और वे वाणी में भी स्थान नहीं पाते अर्थात् उनका बल पराक्रम भी अवर्णनीय होता है। और वे सूर्य की किरणों के समान बड़ी

कठिनता से वश में आने वाले हाथों के बल में दुष्ट पुरुषों को भी नियन्त्रण करने में समर्थ हों। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१३६]

॥ १३६ ॥ १—७ परुच्छेप ऋषिः ॥ १—५ मित्रावरुणौ । ६—७ मन्त्रोक्ताः देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ स्वराडत्यष्टिः । निचृदष्टिः । ४ भुरिगष्टिः । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्। ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग चिरायु वाले माता और पिता को सबसे अधिक आदर और अन्न अच्छी प्रकार प्रदान करो। और प्रजा को सुखी करने वाले राजा और सेनाध्यक्ष को भी अति स्वादयुक्त और धन और ज्ञान अच्छी प्रकार प्रदान करो। सभा और सेना के अध्यक्ष वे दोनों सम्राट् होकर घृत के समान पुष्टिकारक सारवान् पदार्थ को प्राप्त करने वाले, और 'घृत' अर्थात् तेजोमय ज्ञान के देने वाले, या घृत अर्थात् जल द्वारा अभिषेक करने योग्य हैं। और वे दोनों प्रत्येक यज्ञ में, प्रत्येक सत्संग के अवसर पर स्तुति आदर करने योग्य हैं। और उन दोनों का बल वीर्य किसी भी शत्रु द्वारा धर्षण करने या हारने वाला न हो। और उनकी विजयकामना दानशील और तेजस्वीपन भी किसी प्रकार किसी से धर्षण या तिरस्कार प्राप्त होने योग्य न हो। अध्यात्म में प्राण और अपान दोनों को उत्तम स्वादयुक्त अन्न से पुष्ट करो। वे देह के सम्राट् हैं। तेज धारण कराने वाले हैं। प्रत्येक देह उनकी स्थिति है। उनके बल और तेज को कोई रोगादि धर्षण नहीं कर सके।

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः। द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य

च। अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वर्य उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥२॥

भा०—महान् पराक्रमशाली पुरुष के लिये ही यह वरण करने योग्य बड़ी भारी भूमि देख पड़ती है। सूर्य की किरणों से किस प्रकार चक्षु युक्त होता और शक्तिशाली हो जाता है और सत्य ज्ञान का मार्ग भी सूर्य की किरणों से प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की ज्ञानमय किरणों से भीतरी नेत्रयुक्त होते और सत्यज्ञान का मार्ग भी उपलब्ध हो जाता है। सबके स्नेही, नियम में बांधने वाले न्यायकारी, और सर्वश्रेष्ठ और दुःखों और दुष्टों के वारण करने वाले पुरुष का आसन अन्तरिक्ष के समान ऊंचा और सूर्य के समान तेजोयुक्त हो। मित्र और वरुण अर्थात् न्यायाधीश राजा दोनों ही बड़े भारी बल को धारण करें, और बड़े स्तुति योग्य, दीर्घ आयु और ज्ञान को भी धारण करें।

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे। ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती। मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

भा०—अदिति अर्थात् आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र, जिस प्रकार पृथ्वी को धारण करने वाले, प्रकाश और ताप से युक्त, ज्योतिर्मय ग्रह नक्षत्रों से युक्त अखण्ड आकाश को प्रतिदिन सदा जागृत रहते हुए नियम पूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार मित्र अर्थात् सर्वस्नेही सभाधीश, और वरुण अर्थात् दुष्टों का वारक सेनापति दोनों प्रतिदिन सावधान रह कर, सुखजनक ऐश्वर्यों से युक्त ज्योतिर्युक्त रत्नों को धारण करने वाली, निवास करने वाले प्राणियों और मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी को अच्छी प्रकार धारण करें। वे दोनों दान देने योग्य ऐश्वर्य और दानशील जनों के पालक, अदिति अर्थात् अखण्ड पृथ्वीराज्य के स्वामी, न्यायप्रकाश, ऐश्वर्य और तेज से युक्त राज्य को प्राप्त हों। उनके अधीन दुष्ट पुरुषों को नियमन करने में समर्थ न्यायाधीश दुष्टों को पीड़ा देने वाले पुरुषों का

स्वामी होकर समस्त राष्ट्रवासी जनों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला हो।

अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः। तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः। तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

भा०—प्रजाओं के रक्षाकार्यों में सब प्रकार से सेवा करने वाला, और दानशील पुरुषों में सब ऐश्वर्यों से युक्त होकर सबका प्रेरक राजा, मित्रों और सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के लिये अत्यन्त शान्तिकारक हो। विद्वान् और वीर पुरुष सब समान प्रीति से युक्त होकर उससे प्रेम करें। हम जिस न्याय और श्रेष्ठ कार्य को चाहते हों तेजस्वी प्रमुख पुरुष वैसा करें। और जो हम चाहते हों वह वे दोनों सत्य न्यायशील प्रमुख पुरुष करें।

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्। उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥

भा०—जो पुरुष स्नेहवान् मित्र और दुःखों के वारक श्रेष्ठ पुरुष के हित के लिये नाना कर्मों का अनुष्ठान करे वे दोनों अजातशत्रु तथा दानशील उस पुरुष की पाप से रक्षा करें। और सत्याचार के अनुसार अति विनयशील होकर रहने वाले उसको न्यायशील पुरुष भी पापाचार और वधादि क्लेश से सब प्रकार से बचावे। जो उक्त दोनों मित्र और वरुण अर्थात् स्नेही और श्रेष्ठ पुरुषों के कर्त्तव्य को स्तुत्य वचनों द्वारा सर्वत्र वर्णन करता है, और अनुष्ठान करने योग्य धर्माचरण को स्तुति योग्य उपायों से भली प्रकार आचरण करता है, उसको भी न्यायशील पुरुष, पापमार्ग और वधादि दुःखों से सुरक्षित करे।

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे। इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम्। ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

भा०—मैं बड़े भारी तथा सूर्य के समान तेजस्वी, आकाश और पृथ्वी के समान पालक माता पिता, स्नेहवान् मित्र, और वरुण, करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष, सुखों के वर्धण करने वाले, मेघ के समान सबको उत्तम सुख देने वाले उपकारी जनों के प्रति आदर सत्कार के वचन कहूं। हे मनुष्य! तू ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान्, दीप्ति युक्त, न्यायकारी, ऐश्वर्यवान्, परम पुरुष की स्तुति कर। हम चिरकाल तक दीर्घजीवन भोगते हुए उत्तम सन्तान सहित रहें। और प्रेरक गुरु आदि की रक्षा में सदा विद्यमान् रहें।

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥७॥२६।१॥

भा०—हम लोग दानशील पुरुषों की रक्षा से ऐश्वर्यवान् होकर, अपने आप को व्यवहार कुशल वैश्यवर्गों सहित यश और ऐश्वर्य से सम्बद्ध हुआ जानें। अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी, प्राण के समान जीवनप्रद, जल के समान दुःखवारक पुरुष हमें सुख शान्ति प्रदान करें। और हम भी ऐश्वर्यवान् होकर उस सुख सम्पदा का भोग करें। इति षड्विंशो वर्गः।

इति द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[१३७]

परुच्छेप ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते॥ छन्द—१ निचृच्छक्वरी। २ विराट्शक्वरी।
३ भुरिगतिशक्वरी॥ तृचं सूक्तम्॥

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे। आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः। इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १॥

भा०—हे मित्र और हे वरुण ! शरीर में प्राण और उदार के समान राष्ट्र में प्रजा के साथ स्नेह करने और उनके दुःखों के निवारण करने हारे दो प्रकार के अधिकारी पुरुषो ! आप दोनों आइये। ये सोम आदि औषधियों के उत्तम २ अन्नरस मेघों द्वारा सिक्त और पाषाणों से कुटे पिसे गौ के दुग्ध में परिपाक किये हुए होकर जिस प्रकार हर्ष और तृप्ति को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ये अभिषेक करने योग्य नवाधिकारी पुरुष राष्ट्रभूमि के ऊपर स्थापित होकर अति हर्षप्रद और गर्व से शत्रु पर प्रयाण करने में समर्थ हैं। हम इनका अभिषेक करते हैं। आप दोनों आकाशस्थ देदीप्यमान सूर्य चन्द्र के समान उत्तम ज्ञान और शुद्ध व्यवहार में और उच्च पद में स्थित होकर प्रजा का अनुरंजन करने वाले, और हम प्रजाजनों का पालन करने वाले होकर हमें प्राप्त होवें। ये सौम्य जन आप दोनों की 'गो' अर्थात् वाणी में आश्रित होकर आप दोनों के ही अधीन रहें। ये पृथ्वी के कार्य में स्थित होकर शुद्ध व्यवहार वाले, शीघ्र कार्य करने वाले और सदाचारी हों।

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः। उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः। सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेही और सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे सर्वश्रेष्ठ और दुखःवारक रात्रि के समान शान्तिदायक माता पिता ! ये सौम्य शिष्यगण ज्ञान जल और भक्तिभाव से आर्द्रचित्त, पुत्रों के समान पालित, शिक्षित और विद्यादि में स्नातक होकर गृहस्थ धारण के कार्य में आश्रय करने योग्य हो गये हैं। ये युवक विद्वान्गण सूर्य के समान तेजस्वी आचार्य के नियमों से नियन्त्रित और शिक्षित होकर प्रभात वेला के समान जीवन के पूर्व भाग में ज्ञान प्राप्त हो जाने पर तुम माता पिताओं के पालन करने के लिये हों। ये पुत्र स्नेहवान् बन्धुजन, श्रेष्ठ गुरुजन, ज्ञानमय परमेश्वर, और यज्ञ के पालन करने के लिये हों, और उत्तम आचरण वाले हों।

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः । अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये । अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

भा०—दिन भर चर कर पुनः घर पर आई गाय को जिस प्रकार गृहस्थ लोग उसके अंगों को पीड़ित न करने वाले हाथों से दोहते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष सबको अपने भीतर बसाने वाली भोग्य वसुंधरा को न दीर्ण होने वाले शासनों और शासकों द्वारा दोहते हैं । स्नेहवान् माता पिता ! और कष्टवारक गुरुजनो ! आप लोग हमारी रक्षा करते हुए हमारे ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये आइये । जिस प्रकार सिद्ध प्रकार सोमरस पान करने के लिये होता है उसी प्रकार पदाभिषिक्त युवक सौम्य स्वभाव वाला होकर आप दोनों के पालन के लिये नायक और उत्तम पुरुषों द्वारा योग्य पद पर अभिषिक्त किया जाय । इति प्रथमो वर्गः ॥

[१३८]

परुच्छेप ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः । २ विराडत्यष्टिः ४ भुरिगष्टिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते । अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् । विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

भा०—बहुत प्रजाओं और लोकों में प्रसिद्ध, सर्वपोषक प्रभु की महिमा का अच्छी प्रकार वर्णन किया जाता है । बलशाली इसकी स्तुति को कोई नाश नहीं कर पाता, और उसकी सत्ता को भी कोई मिटा नहीं सकता । मैं अतिसमीप स्थित रक्षक और सुख शान्ति के एक मात्र उत्पादक प्रभु की, सुख की कामना करता हुआ, सदा स्तुति करूं । जो दानशील, प्रकाशस्वरूप, सबको कामना करने योग्य प्रभु समस्त संसार

के मनों को अपने भीतर मिलाये रखता है, वह ही पूजनीय है। वह ही सर्वोपास्य, ऐश्वर्यवान्, सुखमय होकर सबको अपने में जोड़े रखता है। (२) इसी प्रकार राजा को भी चाहिये कि वह बहुतों में प्रसिद्ध बलवान् विद्यावान् हो, उसके यश का नाश न हो। सबका निरन्तर पालक, सुखकारी हो, सबका मन अपनी ओर खींचने वाला हो।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः । हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः । अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥२॥

भा०—वेग से गमन करने के निमित्त जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व को लिया जाता है उसी प्रकार हे सर्वपोषक राजन्! युद्ध में प्रयाण के लिये शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और उन पर बाण आदि अस्त्रों के फेंकने में समर्थ तुझको, स्तुति करने योग्य, सेनासमूहों सहित, अधिकारवान् करता हूँ। जिससे तू संग्रामों को जा सके। ऊंट जिस प्रकार बड़े २ रेगिस्तानों को पार करा देता है उसी प्रकार तू भी हिंसाकारी शत्रुओं और सेनाओं और संग्रामों को पार कर। जिस तुझको मैं साधारण मनुष्य शान्तिजनक, दानशील और विजिगीषु जान कर, मित्रता के लिये स्वीकार करता हूँ, वह तू हमारे विद्वान् पुरुषों को तेजस्वी बना। और संग्रामों को विजय करने और अन्न और ज्ञानों को उपलब्ध करने में भी हमारे विद्वानों को ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी बना।

यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे । अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके पोषक स्वामिन्! जिस आपके मित्र भाव में रहते हुए विद्वान् जन, आपके रक्षा कर्म से सदा पालित होते, और इस संसार का ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से भोग करते हैं, उस तुझको प्राप्त होकर

हम लोग भी उस नयी से नयी ऐश्वर्य की लक्ष्मी की संपदा को तुझसे मांगते हैं। हे अति स्तुति योग्य ! तू हमारा अनादर और हम पर क्रोध न करता हुआ ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी हो, और प्रत्येक संग्राम में शत्रु पर प्रयाण करने वाला हो।

अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व। ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः। नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥४॥२॥

भा०—हे बकरियों और अश्वों के स्वामिन् ! अथवा हे वेगवान अश्वों वाले ! तू इस पृथ्वी के राज्य प्राप्त करने के लिये, हमारा तिरस्कार न करता हुआ, धन, अन्न, यश और ज्ञान की इच्छा करने वालों को इष्ट फल दान करता हुआ, हमारे सदा समीप रहे। हे दर्शनीय ! हे शत्रुओं के नाशकारिन् ! हम लोग तुझको ही उत्तम २ स्तुति वचनों से प्राप्त करें। हे सर्वपोषक ! मैं तेरा कभी तिरस्कार न करूं। हे सब प्रकार से प्रकाशमान् ! मैं तेरे मित्रभाव को कभी लुप्त न होने दूं। इति द्वितीयो वर्गः॥

[१३९]

परुच्छेप ऋषिः॥ देवता—१ विश्वे देवाः। २ मित्रावरुणौ। ३—५ अश्विनौ। ६ इन्द्रः। ७ अग्निः। ८ मरुतः। ९ इन्द्राग्नी। १० बृहस्पतिः। ११ विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, १० निचृदष्टिः। २, ३ विराडष्टिः। ६ अष्टिः। ८ स्वराडत्यष्टिः। ४, ९ भुरिगत्यष्टिः। ७ अत्यष्टिः। ५ निचृद्बृहती। ११ भुरिक् पङ्क्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी। अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः॥ १॥

भा०—वेद का श्रवण हो। मैं अपने आगे कर्म और प्रज्ञा वा धारण क्रिया के सहित ज्ञानवान् वा ज्ञानमार्ग में आगे ले चलने वाले आचार्य को आदर्श रूप में स्थापित करूं। तदनन्तर मैं उसके दिव्य ज्ञान और बल को धारण करूं। हम सब शिष्यगण उस ज्ञानमय तेजस्वी पुरुष को आचार्यरूप से वरण करें। हम लोग इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान्, तथा वायु के समान प्राणपद इन दोनों को भी स्वीकार करें। जिस प्रकार नाभी या केन्द्र में अरे लगे रहते हैं, और सूर्य में जिस प्रकार किरणें रहती हैं उसी प्रकार वसु आदि ब्रह्मचारी को अपने अधीन बसाने वाले गुरु में, समस्त कार्यों का प्रतिपादन करने वाली अतिस्तुत्य वाणी अच्छी प्रकार बंधती है और अंगुलियां जिस प्रकार पकड़ने योग्य पदार्थ को पकड़ लेती हैं, और जिस प्रकार स्तुतियां स्तुत्य उपास्य देव को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हम विद्याभिलाषी शिष्य जनों को उत्तम वेद वाणियां, प्रज्ञाएं और कर्म भी उत्तम रूप से सुख देती हुई प्राप्त हों।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्या ददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना। युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम्। धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः॥२॥

भा०—हे स्नेहवान् और दुःखनिवारक जनो! आप लोग सत्य से असत्य को अपने ज्ञानबल से पृथक् करके सर्वोपरि न्याय वितरण किया करो। और हम भी आप दोनों के न्यायभवनों में, ज्ञानवान् आत्मा के अपने मननशील चित्त से, और उत्तम प्रज्ञाओं, और मन से, और अपनी इन्द्रियों से और राष्ट्रपति के अपने अध्यक्षों द्वारा, प्रजा के हितकारी और रमणीय व्यवहार को ही सदा अच्छी प्रकार देखा करें, और सत्य से असत्य का विवेक किया करें।

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना श्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः। युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा। प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये॥३॥

भा०—हे राष्ट्र का भोग करने वाले तथा विद्याओं में व्यापक उत्तम स्त्री पुरुषो ! स्तुतियों से तुम देवों को चाहते हुए, सम्मुख आने वाले विद्वान् पुरुष, वेदवाणी का श्रवण कराते वा उपदेश करते हुए, मानो तुम दोनों को ग्रहण करने योग्य ज्ञान प्राप्त कराते हैं। और वे पवित्र करने हारे तुम दोनों के सुन्दर रथ पर जल मधु आदि का वर्णन करते हैं। हे दर्शनीय एवं दुःखों के नाश करने वालो ! हे समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामियो ! सब प्रकार की लक्ष्मियां और अन्न आदि सम्पत्ति तुम दोनों की ही सर्वोपरि रहें।

अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु। अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये। पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों और दुष्टों का नाश करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों, दुःख रहित गृहस्थ या ऐश्वर्य को विविध उपायों से प्राप्त करो। आकाशमार्ग में विहार करने के अवसरों में जिस प्रकार कभी नीचे न गिरने हारे सावधानी से उड़ने हारे उड़ाके वायु रथों की योजना करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र और धर्म को पतित न होने देने वाले, तथा रथों के निर्माता पुरुषों को कामना योग्य व्यवहारों के प्राप्तिमार्गों में नियुक्त करो और आप दोनों सन्मार्ग से जाते हुए और लोक समूह का धर्मानुकूल शासन करते हुए, शीघ्र ही राजस् भोगमय ऐश्वर्य का शासन करते हुए, समृद्ध राज्य को प्राप्त करो। और तुम दोनों के सुबद्ध, लोह सुवर्ण आदि से मढ़े रथ पर हम भी विराजें।

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म को अपने भीतर बसाने हारे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग दिन और रात हमें उत्तम कर्मों और बुद्धियों

से उत्तम विद्या और ऐश्वर्य का दान करो। आप दोनों का दिया हुआ उत्तम दान कभी नाश को प्राप्त न हो। और कभी हमारी तरफ से भी देने योग्य दातव्य पदार्थ नाश को प्राप्त न हो। इति तृतीयो वर्गः ॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः। ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे। गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का वर्षण करने हारे, हे वीर्यवान्! हे ऐश्वर्यवन्! पर्वतों पर उत्पन्न हुए वृक्ष लतादि जिस प्रकार बरसते मेघ से जलपान करने हारे होकर रसवान् होते हैं, और वे भूमि भेद कर उत्पन्न होते और नाना फलों को उत्पन्न करने वाले होते और सबको आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार पर्वत के समान अचल नायकों से सञ्चालित रस पान करने वाले बलवान् नायक की रक्षा करने चन्द्र के समान अह्लादजनक, राजा के पुत्रों के समान पालित, नाना पदों पर अभिषिक्त और शत्रुओं को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले हों। वे दान देने योग्य, बड़े भारी, अद्भुत धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये तुझे हर्षित और उत्साहित करें। हे आज्ञा देने योग्य श्रेष्ठ वाणियों को अपने हाथ में रखने हारे राजन्! तू वाणियों से सबको उपदेश करता हुआ उत्तम-सुखप्रद होता हुआ आ और हमें प्राप्त हो।

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः। यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन। वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक! तू स्तुति योग्य और प्रार्थित होकर हमारे कथनों को अच्छी प्रकार सुना कर। तू यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना में लगे दानशील पुरुषों और बड़े २ यज्ञों के करने में समर्थ तेजस्वी राजाओं के हित के लिये भी उपदेश किया कर। और जिस गोरस वाली गौ के

समान ज्ञान आनन्दरस देनेवाली वाणी को ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजन तपस्वी पुरुषों को करें, न्यायशील राजा सबके साथ ही कर्त्ता अर्थात् स्वामी के लिये नाना प्रकार से उसका दोहन करे। वह अग्रणी राजा मुझ राष्ट्रजन के हित के लिये वेदवाणी को सबके साथ मिलकर प्राप्त करे और जाने।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः। यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्। अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥८॥

भा०—हे वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले वीर पुरुषो! और देशदेशान्तर में जाने वाले व्यापारियो! और ज्ञानेच्छु आलस्य रहित विद्यावान् पुरुषो! वे नाना प्रकार के आप लोगों के सदा से चले आये पौरुष के कर्म और बल, सामर्थ्य और पुरुषोचित कर्त्तव्य हम से कभी दूर न हों। तुम लोगों के सदा काल से चले आये ऐश्वर्य और यश नष्ट न हों। तुम लोगों के नगर और देहादि भी नष्ट न हों। जो आप लोगों का युग युग में कभी नाश न होने वाला नया से नया, संग्रह करने योग्य, वेदवाणी से उत्पन्न होने वाला धन है वह भी हम में स्थापित करो। जो आप का अपार बल है उसे और जो भी दुखों की नाशकारी सामर्थ्य है उसको भी हम में धारण कराओ।

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः। तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

भा०—व्रत धारण करनेवाले को प्राप्त होने वाला, पूर्ण विद्वान्, तेजस्वी ज्ञानी, यज्ञों का प्रिय, मेधावी, तीनों तापों से रहित, और मनन शील, ये सभी प्रकार के विद्वान् मेरे मातृजन्म और विद्याजन्म को जानें। वेही पूर्व विद्यमान् अनुभववृद्ध जन मुझे भी मननशील रूप में प्राप्त करें। उन पूर्वोक्त विद्वानों का विद्वानों और देहगत इन्द्रियों पर वश हो। और

उनमें ही हमारे भी सम्बन्ध हों। और उनके बड़े भारी ज्ञान और प्राप्त करने योग्य प्रतिष्ठापद से और वेदवाणी के उपदेश से मैं सब प्रकार विनीत और शिक्षित होऊं। मैं वाणी के उपदेश से परमेश्वर और ज्ञानी आचार्य दोनों के आगे सदा विनयशील होकर रहूं।

होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः। जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरधत्मना। अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१०॥

भा०—दाता जिस प्रकार धन को प्रदान करता और धनाभिलाषी उस श्रेष्ठ धन को ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अधिकारों को योग्य पुरुषों को देने हारा पुरुष वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान ऐश्वर्य और पदाधिकार हमें प्रदान करे, और वन अर्थात् उत्तम विद्यावान् और उत्तम अभिलाषी पुरुष उस वरण करने योग्य पद को ग्रहण करें। वेदवाणी और बृहती भूमी अर्थात् महान् राष्ट्र का पालक, तेजस्वी और मेधावी राजा, बहुत से प्रजाजनों से वरण किये जाने वाले, सहसम्मति से चुने गये, कार्यभार को अपने कन्धों पर उठा कर राज्यकार्यों के चलाने वाले धुरन्धर पुरुषों और मेघों के समान सुखों के वर्षक पुरुषों द्वारा श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करे। मेघ के दूर से ही सुनने योग्य शब्द को जिस प्रकार हम लोग दूर से ही सुन लेते हैं उसी प्रकार अचल राजा के दूर से ही सुनाई देने वाली आज्ञा और घोषणा को ग्रहण करें। वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष उत्तम कर्मकुशल और उत्तम प्रज्ञावान् होकर, अपने आत्म सामर्थ्य से 'अररि' अर्थात् न देने वाले को दमन करने के साधनों को धारण करे। और वही उत्तम पुरुष बहुत से आश्रयगृहों, भवनों और पदाधिकारों को भी अपने सामार्थ्य से धारण करे।

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ११।४।२०

भा०—हे विद्वान् जनो ! सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त आप लोग जो ग्यारह हो, पृथिवी पर अध्यक्ष रूप से शासन करने के निमित्त भी ग्यारह होकर रहो, और बड़े भारी सामर्थ्य से जलों में निवास करने हारे होकर सामुद्रिक व्यापार और सेना विभाग के लिये भी ११ होकर रहते हो, वे आप लोग इस सुसंगत राष्ट्र और सर्वैश्वर्यप्रद प्रजापति राजा की प्रेम से सेवा करो। अध्यात्म में-दश प्राण और जीवात्मा, दश इन्द्रियां और मन, दश दिशा और सूर्य सब ११, ११ हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥ इति विंशोऽनुवाकः ॥

[१४०]

दीर्घतमा औचथ्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ ५, ८ जगती। २, ७, ११ विराड्जगती। ३, ४, ६ निचृज्जगती च। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। १०, १२ निचृत् त्रिष्टुप् पङ्क्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

वे॒दि॒षदे॑ प्रि॒यधा॑माय सु॒द्युते॑ धा॒सिमि॑व॒ प्र भ॑रा॒ योनि॑म॒ग्नये॑।
वस्त्रे॑णेव वासया॒ मन्म॑ना॒ शुचिं॑ ज्यो॒तीर॑थं शु॒क्रव॑र्णं तमो॒हन॑म् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार वेदी में विराजने वाले, सुन्दर प्रकाशवान्, उत्तम कान्ति युक्त अग्नि को प्रदीप्त करने और बढ़ाने के लिये पोषक काष्ठ और चरु प्रदान किया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् प्रजाजन ! तू सब पदार्थों का लाभ कराने वाली भूमि पर राजा रूप से विराजने वाले, सबको प्रिय लगने वाले तेज को धारण करने वाले, उत्तम कान्तिमान् नायक पुरुष के पालन पोषण और वृद्धि के लिये प्राणों के धारक अन्नादि भोग्य पदार्थ को अच्छी प्रकार उपस्थित करो। सूर्य के समान अन्धकार और शोक दूर करने वाले, शुद्ध उच्च वर्ण के, सुवर्ण चांदी आदि से बने रथ वाले, शुद्ध आचार चरित्र के पुरुष को वस्त्र के समान मान और आदर से भी आच्छादित करो।

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमीं पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार दो अरणियों से उत्पन्न होने के कारण 'द्विजन्मा' है। वह तीनों रूपों से वर्त्तमान खाने योग्य अन्न को प्राप्त कराता है। अग्नि रूप से पक्वान्न को देता है, विद्युत् रूप से जल को और सूर्य रूप से फलादि को प्रदान करता है। वह इस खाने योग्य अन्न को ही एक वर्ष में फिर २ बढ़ा लेता है। वह अन्न सूर्य से भिन्न जाठर अग्नि के मुख से और भिन्न रूप से भौतिक काष्ठाग्नि की ज्वाला से भी खाया जाता है। इस कारण वह जलों का वर्णन करने वाला सूर्य ही समस्त प्राणियों के संताप का वारण करने वाला होकर जलयुक्त मेघों को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार यह अग्रणी पुरुष भी माता पिता और गुरु शिक्षा दोनों से उत्पन्न होकर द्विज होकर, तीन ऋणों सहित त्रिसूत्र से युक्त होकर रहता है। वह वर्ष में खाने योग्य इस अन्न को बार २ प्राप्त करे और बढ़ावे। और खाये हुए अन्न के समान फिर अपने राष्ट्र के बल की वृद्धि करे। वह दूसरे के मुख से, और दूसरे की जिह्वा अर्थात् वाणी से युद्ध आदि में विजयी होकर, बलवान् राज्य प्रबन्धक होकर, फिर दूसरे जनों से ही शत्रुओं को वारण करने में समर्थ होकर, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के स्वामियों को भी साफ करदे, उनको परास्त करे।

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार माता और पिता दोनों बच्चे को लक्ष्य करके उसके प्रति सदा आकर्षण या मन खिंचाव या प्रेम से पूर्ण रहते हैं, और वे उसके सदा साथ रहा करते हैं, और वे दोनों पिता के यज्ञ, हर्ष, कुल, गोत्र को बढ़ाने वाले, आगे जीभ निकालने वाले, गिरते पड़ते, शीघ्र ही फिसल जाने वाले, सदा सहाय योग्य, रक्षण करने योग्य बालक को लक्ष्य करके

खूब प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजा वर्ग भी एकत्र ही निवास करते हुए, शत्रु दल को गिरा देने और प्रजा के आकर्षण करने के गुणों से व्याप्त होकर भय से कांपते, और दोनों बालक को मां बाप के समान राजा को ही प्राप्त होते और उसकी वृद्धि करते हैं। पिता के बढ़ाने वाले बालक के समान ही उसको भी मुख्य उत्तम वाणी से युक्त शत्रु को नाश करने वाला, शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन पद से उखाड़ देने वाला, सखा या संघ शक्ति का आश्रय राष्ट्ररक्षक जानकर आश्रय लेते हैं।

मुमुक्ष्वो॒३॒ मन॑वे मानवस्य॒ते र॑घु॒द्रुवः॑ कृ॒ष्णसी॑तास ऊ॒ जुवः॑।
अ॒स॒म॒ना अ॑जि॒रासो॑ रघु॒ष्यदो॒ वात॑जूता॒ उप॑ युज्यन्त आ॒शवः॑ ॥४॥

भा०—समस्त मानव जगत् को अपनाने वाले ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये, अपने को संसार बंधन से मुक्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष ही उपयुक्त होते हैं, वे ही उस परमेश्वर की उपासना में लगा करते हैं। वे तीव्र वेग से उपसना के मार्ग पर चलते हैं, भूमि में हल चलाने वाले कृषकों के समान तपस्या द्वारा अपने कर्मबंधनों को अन्त कर देते हैं, अन्यों से असाधारण चित्त और ज्ञान वाले होते हैं, निरन्तर प्रयत्नशील और बाधक कारणों और विक्षेपक मलों को उखाड़ फेंकने में यत्नशील होते हैं, तीव्र वेग वाले तथा सन्मार्गों में वेग से जाने वाले, इस मार्ग पर शीघ्र गति से चलते हैं।

आद॑स्य॒ ते ध्व॒सय॑न्तो॒ वृथे॑रते कृ॒ष्णमभ्व॑ं महि॒ वर्पः॑ करि॑क्रतः।
यत्सी॑ म॒हीम॒वनि॒ प्राभि॒ मर्मृ॑शदभिश्व॒सन्स्त॒नय॒न्नेति॒ नान॑दत् ॥५॥

भा०—उसके पश्चात् जो मुमुक्षु जन, पापमय मलिन कर्माशय या मिथ्याज्ञान का विनाश करते और बड़े भारी अव्यक्त वरने योग्य आत्म-स्वरूप को साक्षात् कर लेते हैं, वे इस परमेश्वर को अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि जो पुरुष सर्वतोभावेन, उस महान् सर्वरक्षक को प्राप्त हो जाता है, वह आश्वासन या हृदय की शान्ति को प्राप्त हुआ, और

मेघ के समान उत्साह से गर्जता हुआ, और सिंह के समान नाद करता हुआ, अति उत्साहवान्, निर्भय होकर परम पद को प्राप्त होता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥६॥

भा०—जो प्रधान अग्रणी पुरुष प्रभु होकर राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजाओं के बीच में अपने को सिंहासन पर अधिकृत करता हुआ और सामर्थ्यवान् होता हुआ अध्यक्ष रूप से प्राप्त होता है, और यज्ञ द्वारा बनी धर्म दाराओं में मन्त्रोच्चारण करते हुए पति के समान राष्ट्र का पालन करने वाली सेनाओं और प्रजाओं को गर्जना करता हुआ प्राप्त होता और जो पराक्रमी होकर विस्तृत भूमियों, प्रजाओं सेनाओं को सुशोभित करता है, वह भयंकर बड़े दुर्दान्त सांड के समान अति भयंकर, तथा शत्रुओं के वश में न आकर शत्रुओं का नाश करने वाले शस्त्रास्त्रों और सैन्यों का बराबर सञ्चालन करे।

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आशये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥

भा०—वह अग्रणी अपने राज्य को भली प्रकार विस्तृत करने वाला और विविध उपायों से विस्तृत करता हुआ भूमि को ग्रहण करे और ज्ञानवान् होकर निरन्तर विदुषी प्रजाओं से सत्संग करे। वे ज्ञानसमृद्ध विदुषी प्रजाएं असाधारण देव अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी राजा के तेजस्वी रूप को प्राप्त होतीं और वार २ बढ़ती हैं। पालन करने वाले माता पिता के अभिलाषा योग्य और भिन्न २ रूप वाले के पुत्र को जिस प्रकार विदुषी स्त्रियां प्राप्त करतीं और पुनः सन्तान की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार वे प्रजाएँ भी पालन करने वाले राजा और राजवर्ग के हित के लिये परस्पर मिलकर विशेष स्वरूप को प्रकट करती हैं।

तम॒ग्रुवः॑ के॒शिनीः॒ सं हि रे॑भि॒र ऊ॒र्ध्वास्त॑स्थुर्म॒म्रुषीः॒ प्रायवे॒ पुनः॑ ।
तासां॑ ज॒रां प्र॑मु॒ञ्चन्ने॑ति॒ नान॑द॒दसुं॒ परं॑ ज॒नय॑ञ्जी॒वमस्तृ॑तम् ॥८॥

भा०—अग्रगण्य उत्तम सुकेशी स्त्रियां जिस प्रकार पति को प्राप्त करते ही उनके विरह में मरती हुईं भी, पुनः आते हुए पति के लिये उठकर खड़ी हो जाती हैं, और विद्या को प्राप्त करने हारा पुरुष जिस प्रकार उन स्त्रियों की जीर्ण दशा या जीवन नाश को दूर करता हुआ उनको प्राप्त होता है, और उन्हें जीवन पुनः देता है, उनको पुनः हर्षित, प्रफुल्लित कर देता है, उसी प्रकार आगे बढ़ने वाली श्रेष्ठ प्रजाएं, क्लेशों में फंसी हुई उस उत्तम अग्रगण्य नायक को निश्चय ही भली प्रकार प्राप्त करती हैं। और वे मरती हुईं भी आते हुए राजा के आदर और वृद्धि के लिये बार २ उठ खड़ी होतीं, उनका आदर करती हैं। पुरुष सिंहनाद करता हुआ या प्रजा को शिक्षा देता हुआ उन प्रजाओं की जरा को दूर करता हुआ उनको प्राप्त हो। उत्तम प्राण और न नाश हुए जीवन और जीवित प्राणियों से समृद्धि करता हुआ उनको प्राप्त हो।

अ॒धी॒वा॒सं परि॑ मा॒तू रि॒हन्नह॑ तुवि॒ग्रेभिः॒ सत्व॑भिर्याति॒ वि ज्रयः॑ ।
वयो॒ दध॑त्प॒द्वते॒ रेरि॑ह॒त्सदानु॒ श्येनी॑ सचते वर्त॒नीरह॑ ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार बालक माता की गोद में उसके वस्त्र को अपने मुख में चाबता हुआ, वेगवान् होकर अति शब्द युक्त सात्विक विविध चेष्टाओं से गमन करता है, और वह पदार्थों का आस्वाद लेता हुआ चरण से चलने वाले बड़े बालक की अवस्था को धारण कर लेता और बड़ा हो जाता है, बुद्धिमती माता उसके पीछे रहती हुई उसके साथ रहा करती है, उसी प्रकार अग्रणी राजा भी उसका मान आदर करने वाली पृथिवी माता के वस्त्र के समान पालन पोषण करने योग्य ऐश्वर्य का आस्वादन करता हुआ, शत्रु पर आक्रमण करने में वेगवान् और विजयशील होकर, बहुत से उपदेश करने वाले वीर्यवान् बलवान् वीर और विद्वान्

पुरुषों सहित विविध देशों पर प्रयाण करे, उनका विजय करे। वह सब कालों में पृथ्वी के ऐश्वर्य का भोग करता हुआ ज्ञानवान् पुरुष के उपकार के लिये ही अपना पूर्ण जीवन धारण करे। उसके अनुकूल वेग से जाने वाली और सदा उसके अनुकूल चलने वाली, अथवा वार्त्तावृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाली वैश्य प्रजा अनुकूल संघ बना कर रहे।

अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे तेजस्विन् नायक ! तू हमारे ऐश्वर्यवान्, सम्पन्न और निष्पाप पुरुषों के बीच में प्रकाशित हो। जितेन्द्रिय होकर प्रजा के और शत्रुओं के दमन करने में भी दक्ष चित्त होकर, बालकों से युक्त उत्तम प्रजाओं को प्रकाशित कर। और संग्रामों में शत्रुओं को पुनः २ दूर करता हुआ कवच के समान प्रजाओं की रक्षा कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।
यत्ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! दुःख से प्राप्त किये और कष्ट से सुरक्षित प्रिय धन से भी बढ़कर जो यह सुख से धारण करने योग्य हमारा मन है वह तुझे प्रिय हो। और जो तेरे राष्ट्र शरीर का शुद्ध तथा पवित्र तेज चमकता है, उससे तू हमें रमण करने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करा।

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् पुरुष रमण करने और वेग से जाने के लिये और गृह तक पहुंचने के लिये, स्थिर चप्पुओं वाली और दृढ़ पैर या लंगर वाली नाव को तैयार करता है उसी प्रकार हे अग्रणी राजन् ! रमण करने के लिये और हमारे गृह बसा कर रहने के लिये हमें तू नित्य शत्रुओं

से बचाने वाली, पैरों चलने वाली, शत्रुओं को दूर हटा देने वाली सेना को प्रदान कर। जो हमारे वीर पुरुषों को और राष्ट्रवासी हमारे धनसम्पन्न जनों को भी संकटों से पार करे। और सुखदायी हो। अध्यात्म में—पद्वती नौ यह देह है। आत्मा के रमण करने और बन्धन में रखने दोनों प्रयोजनों के लिये है। वह हमें प्राणों को और आत्मा को भी भवसागर से पार उतारती और सुख प्राप्त कराती है।

आ नो॑ अग्न उ॒क्थमिज्जु॑गुर्या॒ द्यावा॒क्षामा॒ सिन्ध॑वश्च॒ स्वगू॑र्ताः।
गव्यं॒ यव्यं॒ यन्तो॑ दी॒र्घाहेषं॒ वर॑मरु॒ण्यो॑ वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू हमें उत्तम उपदेश ही प्रदान किया कर। आकाश और पृथिवी, समुद्र और नदियां, ये सब अपने ही बलों से प्रेरित होकर जिस प्रकार भूमि और इन्द्रियों के हितकारी और यवादि के योग्य क्षेत्र को प्राप्त होकर, वृष्टि और उत्तम अन्न को प्रदान करती हैं, और अरुण कान्ति से युक्त प्रभात वेलाएं जिस प्रकार अभिलाषा करने और सब को प्रेरने वाले वरणीय प्रकाश को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी के समान एक दूसरे के उपकारक राजा और प्रजा, समुद्र के समान गम्भीर और प्रजा को परस्पर बांध लेने में समर्थ महापुरुष, अपने सहयोगी बन्धु बान्धवों से उद्यमशील होकर, गौओं के दुग्ध के समान भूमि से प्राप्त ऐश्वर्य और वेद वाणी से प्राप्त ज्ञान को और यवादि अन्नोपयोगी क्षेत्र को प्राप्त होते हुए, चिरकाल तक बहुत दिनों तक प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरक वरण करने योग्य उत्तम पद अधिकार को प्राप्त करें। और उषाओं के समान कमनीय गुणों से युक्त नव युवतियां अभिलाषानुकूल वरण करने योग्य प्रिय पुरुष को प्राप्त करें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१४१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ६, ११ जगती । ४, ७, ९, १० निचृज्जगती । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ भुरिक् पंक्तिः । १३ स्वराट् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥

भा०—प्रकाशमान अग्नि का पदार्थों को परिपक्व करने का ताप पदार्थों को दिखलाने और प्रकाशित करने वाला होता है। वही तेज शरीर की रक्षा पोषण और वृद्धि के लिये भी धारण करने योग्य है यह बात इस प्रकार से सर्वथा सत्य है। अग्नि का तेज जिस बल या शक्ति से उत्पन्न हुआ करता है इसी कारण से वह शरीर में भी बल को उत्पन्न करता है। मनन करने वाली बुद्धि भी इसको ही सब प्रकार से आश्रय करती है, और उसकी ही साधना है अर्थात् वह भी तेज से ही उत्पन्न होकर भीतरी तेज को उत्पन्न करती है। दूध वाली गौएं जिस प्रकार अपने वत्स को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार जल को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धाराएं भी समान रूप से प्रवाहित होती हुईं उस महान् अग्नि को तेज रूप मूल कारण तक ले जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष का दुष्टों को संताप देने वाला तेज भी बल से ही उत्पन्न होता है। और उसका वह दर्शनीय तेज सचमुच एक बल है। बुद्धि भी उसको स्वीकार करती और उसको प्रमाणित और अधिक बलशाली बनाती है। एक समान मार्ग से जाने वाली ज्ञान की वाणियां भी उसी तक हमें पहुंचाती हैं।

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

भा०—जीवात्मा की तीन दशाएं— [१] इसका सेचन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने में मूल कारण है उसको उत्तम अन्न खाने वाला पुरुष सदा धारण करता है। और जो उसका स्वरूप सातों प्राणों या शिरोगत सातों इन्द्रियों में कल्याणयुक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली माताओं के बीच गर्भ रूप से रहता है वह इसका द्वितीय स्वरूप है। और जो वीर्यसेक्ता पुरुष के पुत्र कामना को पूर्ण करने के

लिये स्त्रियां जिस दसों उत्तम ज्ञान कर्म साधनों से युक्त पूर्णाङ्ग बालक को जनती हैं वह उत्पन्न जीव के रूप में आत्मा का तीसरा स्वरूप है। (२) इसी प्रकार अन्नादि पालन के साधनों वाला पिता इस पुरुष के पोषणीय देह को बाल्यकाल में पुष्ट करता है। दूसरा कौमार काल का देह है जिस को सातों सुखकारी पदार्थों को धारण करने वाली माताओं के बीच में पाला जाता है। और फिर यौवन में इस सेचन-समर्थ श्रेष्ठ पुरुष का तीसरा पूर्ण यौवन का समय है, कामना पूर्ति के लिए जिस दश धर्म लक्षणों से सम्पन्न युवा पुरुष को प्राप्त कर स्त्रियां सन्तान उत्पन्न करती हैं।

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३॥

भा०—इस जीव को अधिक सामर्थ्यवान् विद्वान् लोग, बड़े रूपवान् देह के बन्धन से निर्मुक्त करते हैं। और मधुर रस के प्राप्त करने के निमित्त हृदय के भीतर विराजमान् जिस सनातन आत्मा को प्राण वायु, अग्नि को पवन के समान, प्रज्वलित करता है, उसका साक्षात् कर ज्ञान करो।

प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ॥४॥

भा०—वह जीव आत्मा कैसा है ? जो जीव सर्वोत्कृष्ट अन्न के सार से प्रकट होता है, और जो अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाले गृहों में वृद्धि को प्राप्त होता है, और दोनों स्त्री पुरुष जब इस जीव के जन्म के लिये यत्न करते हैं, तभी वह बलवान् तेजोमय शुद्ध कान्तिमान् आत्मा प्रकट होता है।

आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥५॥८॥

भा०—आत्मा का ही वर्णन है। वह जीव माताओं के गर्भ में प्रथम प्रविष्ट होता है, अनन्तर उनके बीच में वह किसी प्रकार भी पीड़ित न

होता हुआ बहुत अच्छी प्रकार शुद्ध रक्त से सिक्त होकर विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है। वह जीवात्मा सनातन काल से चला आया, और पूर्व की माताओं को प्राप्त होकर अनुकूल स्थिति में जन्म को प्राप्त करता रहा, उसी प्रकार अब के काल में विद्यमान नये काल की अर्थात् अब की माताओं में भी नियमपूर्वक जन्म को प्राप्त होता है, अर्थात् जीवोत्पत्ति-क्रम अनादि काल से एक समान ही है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥६॥

भा०—जीवात्मा का ही पुनः वर्णन है। जब संपर्क करते हुए कामना की एषणाओं में ऐश्वर्य के समान सुखजनक भोग को साधते हैं, तब ही लोग भोक्ता जीव को पुत्र रूप से प्राप्त करते हैं। वह जीव बहुतों द्वारा वर्णित होता है, और ज्ञान और बल से प्राणों को, और स्तुति योग्य उत्तम मरण शील देह को धारण पोषण करने के लिये प्राप्त होता है।

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः। तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

भा०—जीव की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं—जब वह प्रसव योग्य हो जाता है तब वह प्राण वेग से प्रेरित होकर, कुटिल मार्ग से आता हुआ, अति पीड़ित होकर, वक्ता पुरुष जिस प्रकार मौन को छोड़ देता है उसी प्रकार वह भी जेरों को छोड़ देता है। माता को पीड़ा और संताप देने वाले, खिचाव तनाव के मार्ग में स्थित, शुद्ध जन्म वाले उस जीवात्मा के मार्ग में रुधिर या राजस् भाव भी आता है।

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते। आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार रथ वा विमान रज्जुओं और कीलादि के बंधनों से

तैयार किया जाकर आकाश और भूमि पर गमन करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा भी निषेक आदि संस्कारों द्वारा उत्पन्न और संस्कृत होकर इस पृथ्वी पर आता, ज्ञानमय प्रभु और आचार्य से विवेक दीप्ति को प्राप्त होकर कर चरण आदि अवयवों और योग के साधनाङ्ग प्राणायाम आदि से इस तेजोमय परमेश्वर को प्राप्त होता है। बाद में शूरवीर के समान अति बलवान् इस जीव के वे उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, दुःखों के काटने वाले, हंस पक्षियों के समान विशुद्ध ज्ञानी पुरुष, अपने ज्ञान प्रकाश से इसे प्राप्त होते और तब तू पापादि बन्धनों को दग्ध कर देता है।

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९॥

भा०—व्यापक परमेश्वर का वर्णन। हे अग्रणी! तेरे ही बल से सब कार्यों को धारण करने वाला सर्वश्रेष्ठ सूर्य, और प्राण के समान प्रिय चन्द्र, और उत्तम सुखों के देने वाले दिन रात, और गमनशील प्राणों के नियामक वायु, ये सब गतियुक्त होकर कार्य करते हैं, जो तू सब प्रकार अरों पर चक्रधारा के समान अपने महान् क्रियासामर्थ्य, शक्ति और ज्ञानसामर्थ्य से समस्त जनों और प्राणों पर सर्वशक्तिमान् स्वामी हो रहा है।

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि। तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१०॥

भा०—हे नायक! तू स्तुतिशील तथा सवन या अभिषेक करने वाले प्रजाजन को दान देने के लिये उत्तम पुरुषों के हितकारी उत्तम पद को प्राप्त कर। हे युवक! हे उत्साहवन्! हे भूमिरत्न के स्वामिन्! तुझको उत्तम कार्यों में ऐश्वर्य के समान सेवनीय, एवं बल के कारण स्तुति योग्य, हम जानें। (२) आत्मा के पक्ष में—वह परमात्मा शम साधना करने

वाले या स्तुतिकर्त्ता उपासक को सुखरूप से प्राप्त होता है, उसी स्तुत्य का हम ध्यान करें।

अस्मे र॒यिं न स्वर्थं॒ दमू॑नसं॒ भगं॒ दक्षं॒ न प॑पृचासि धर्ण॒सिम्।
र॒श्मीँरि॑व॒ यो यम॑ति॒ जन्म॑नी उ॒भे दे॒वाना॒ं शंस॑मृ॒त आ च॑ सु॒-क्रतुः ॥ ११ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य के समान, उत्तम पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम को और इन्द्रियों और मन को दमन करने वाले विद्यादि के धारण करने वाले, सेवन करने योग्य ऐश्वर्ययुक्त अपने स्वरूप को प्रकट करता है। सूर्य जिस प्रकार किरणों को और सारथि जिस प्रकार अश्व की बागों को वश में करता है उसी प्रकार इहलोक और परलोक दोनों जन्मों को तू नियम में रखता है। तू विद्वानों के और प्राणों के बीच स्तुत्य रूप को प्राप्त करता है। सत्य व्यवहार के निमित्त तू शोभन कर्म करने वाला और उत्तम ज्ञानवान् है।

उ॒त नः॑ सु॒द्योत्मा॑ जी॒राश्वो॒ होता॑ म॒न्द्रः शृ॑ण॒वच्च॒न्द्ररथः।
स नो॑ नेष॒न्नेष॑तमै॒रमू॑रो॒ऽग्निर्वा॒मं सु॑वि॒तं वस्यो॒ अच्छ॑ ॥ १२ ॥

भा०—आत्मा का वर्णन है। वह हमारा उत्तम रीति से चमकने वाला प्रकाशस्वरूप आत्मा, कर्मफल भोक्ता जीव, सब विद्याओं और ज्ञानों को ग्रहण करने वाला, और आल्हादक चन्द्र के समान प्रकाशस्वरूप, अति हर्षकर और उत्तम सुना जाता है। वह अमर, ज्ञानवान् आत्मा हमें नायक प्राणों द्वारा देह में बसने योग्य और उनके द्वारा देह में बसने हारा होकर, सुख प्राप्त करने योग्य उत्तम पद तक ले जावे और उसका साक्षात् करे।

अस्ता॑व्य॒ग्निः शिमी॑वद्भिर॒र्कैः साम्रा॑ज्याय प्र॒तरं॒ दधा॑नः। अ॒मी च॒ ये म॒घवा॑नो व॒यं च॒ मिहं॒ न सूरो॒ अति॒ निष्ट॑तन्युः ॥१३॥९॥

भा०—देह के अंगों में व्यापक जीव, उत्तम कर्मों का अनुष्ठान

करने वाले और शम की साधना वाले, और अर्चनाशील तेजस्वी पुरुषों से नित्य स्तुति किया जाता है। वह सम्राट् परम प्रभु के अद्वितीय पद के लाभ के लिये, भवसागर को पार करने वाले ज्ञानानुष्ठान को धारण करता है। और जो ये ऐश्वर्यवान् हैं वे और हम सब, नित्य स्तुति कर उसको प्रसिद्ध करें, उसके गुणों को प्रकट करें। इति नवमो वर्गः।

[१४२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ देवता—१, २, ३, ४ अग्निः । ५ बर्हिः। ६ देव्यो द्वारः। ७ उषासानक्ता। ८ दैव्यौ होतारौ। ६ सरस्वतीळाभारत्यः। १० त्वष्टा। ११ वनस्पतिः। १२ स्वाहाकृतिः। १३ इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८, ६ निचृदनुष्टुप्। ४ स्वराडनुष्टुप्। ३, ७, १०, ११, १२ अनुष्टुप्। १३ भुरिगुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार अग्नि प्रकाश देने वाले किरणों को स्वयं और अन्यों को भी प्रदान करता है, और स्रुक् नाम घृताधार पात्र को थामने वाले और सोम वाले यजमान के हितार्थ यज्ञ का सम्पादन करता है, उसी प्रकार हे अग्रणी पुरुष! तू भी खूब विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशित और तेजस्वी होकर उत्तम गुणों को धारण कर और विद्वान् पुरुषों को प्राप्त हो। और आज संयत वीर्य वाले, शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न कर उनको उत्तम पद पर अभिषिक्त करने वाले, ज्ञान और धन सौंपने वाले वृद्ध पिता के लिये पूर्व पुरुषों से प्राप्त प्रजातन्तु और शिष्यतन्तु को विस्तृत कर।

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात्।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

भा०—देह को न गिरने देने से जाठर अग्नि 'तनूनपात्' है। वह

जिस प्रकार स्तुतिशील हविदाता पुरुष के घृत और व्रीहि आदि अन्न से युक्त यज्ञ को सम्पादित करता है, उसी प्रकार हे प्रजा के शरीरों और विस्तृत राष्ट्र को न गिरने देने वाले राजन् ! तू कष्टों को पार करने वाले, अपने को तेरे प्रति समर्पण कर देने वाले मेरे जैसे मेधावी जन के, जल से पूर्ण और अन्न से समृद्ध राष्ट्र यज्ञ को संचालित कर ।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।

नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

भा०—पुरुषों से स्तुति करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष शुद्ध आचारवान्, अग्नि के समान अन्यों को पवित्राचारी बनाने हारा, आश्चर्यजनक, दानशील, अन्य दानशील पुरुषों के बीच में स्वयं सबसे श्रेष्ठ दानशील, सुसंगत राज्य को, मधुर अन्न, मधुर वचन तथा मधुर जल से तीनों प्रकार से सेचन करे ।

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।

इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम मधुर वाणी वाले विद्वन् ! तू स्तुति किया जाकर इस लोक और इस जन्म में प्रीति कारक, आश्चर्यकर ऐश्वर्य को धारण कर और प्राप्त कर । तुझे मेरी यह उत्तम बुद्धि भली प्रकार उपदेश की जावे ।

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।

वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में स्रुक् आदि पात्रों को उठाए हुए यज्ञकर्त्ता लोग कुश बिछाते हुए 'इन्द्र' अर्थात् परमेश्वर के व्यापक सुख को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको शत्रुजन नष्ट न कर सकें ऐसे राष्ट्र में लोगों को नियम में रखने में समर्थ उत्तम शासक जन, बड़े भारी राष्ट्र को आच्छादित करते हुए, शत्रुहन्ता राजा के लिये विद्वानों विजयेच्छुक वीर-

पुरुषों से खूब परिपूर्ण, खूब विस्तृत, सुखकारक भवन या दुर्ग आदि बनाते हैं।

वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः।

पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—घरों में बड़े २ द्वार विद्वानों और व्यवहारवान् पुरुषों के आने जाने के लिये विविध प्रकार से खड़े किये जांय। वे द्वारों वाले गृह सत्याचरण के बढ़ाने वाले हों, द्वार पवित्र रखे जांय, सब द्वारा स्पृहा के योग्य हों, और विलक्षण हों। इति दशमो वर्गः ॥

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा।

यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥

भा०—रात और दिन जिस प्रकार सबको सुख देने वाले और उत्तम रूप वाले हैं, उसी प्रकार कल्याणकारक, रात्रि और उषा के समान एक दूसरे के अति समीप रहते हुए, सुन्दर रूप और अंगों वाले, सत्य ज्ञान के जानने वाले माता पिता बड़े पूज्य होकर सदा हमारे समीप आवें, और उत्तम हर्षदायक आसन पर आकर विराजें।

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी।

यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥

भा०—अति हर्ष उत्पन्न करने वाली वाणी वाले, निरन्तर उद्यमशील, ज्ञान के दान और ग्रहण करने वाले, विद्वानों में प्रसिद्ध और उत्तम गुणों को धारण करने वाले, दूरदर्शी विद्वान् हमारे इस सब कार्यों के साधक, कामनाओं को प्रदान करने वाले श्रेष्ठकर्म को सुसंगत करें।

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।

इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

भा०—जो विद्वानों में प्राप्त, शुद्ध, शिष्य परम्परा से प्राप्त करने योग्य विद्यामयी वाणी है, और जो वीर प्रजाजनों में प्रजापालक राजाओं

की वाणी है, और जो ईश्वरोपासना योग्य, और प्रशस्त ज्ञान वाली बड़ी भारी उत्तम वेद वाणी है, वे सब श्रेष्ठ कर्म तथा उपासनादि के योग्य हैं। वे सब वृद्धिशील पुरुष और विद्यार्थी जन में विराजें। अथवा होत्रा ऋग्वेद, भारती यजुर्वेद, इला सामवेद, सरस्वती अथर्ववेद।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुवारं पुरुत्मना।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

भा०—हमारा प्रिय शिल्पी हमें पुष्ट करने के लिये और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमारे केन्द्र में आकर विराजे। वह हमें अति शीघ्र रक्षा वाले, आश्चर्यकारी, बहुत अधिक और पर्याप्त साधन से और स्वयं अपने सामर्थ्य से प्रभूत ऐश्वर्य प्राप्त करावे।

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

भा०—हे वनस्पति अर्थात् महावृक्ष के समान अपनी छाया में अपने आश्रितों को शरण देने हारे! तू अपने सामर्थ्य से विद्या और धन के अभिलाषी उत्तम विद्वान् पुरुषों को अपने समीप बुला कर उन्हें ऐश्वर्य प्रदान कर। ज्ञानवान्, दानशील और बुद्धिमान् पुरुष विद्वान् पुरुषों में देने योग्य धन आदि पदार्थ सदा दिया ही करता है।

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग पोषण करने वाले, विद्वानों, वैश्यप्रजा और वीरसैनिकों के स्वामी, विजिगीषुओं के स्वामी, वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले, ज्ञान करने वाले के रक्षकरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले और प्रभु के लिये, उत्तम सत्य आचरण और सत्कार द्वारा, उत्तम वचन सत्कार और अन्नादि, पदार्थ उपस्थित करो।

स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्यावन् आचार्य ! आप उत्तम वाणी और आदर द्वारा सुसम्पादित अन्न आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये आओ। आओ और उत्तम वचन श्रवण करो। लोग यज्ञ में और परस्पर सत्संग और उत्तम कर्म के अवसर पर तुझे बुलाते, और तुझसे ज्ञानश्रवण करने की प्रार्थना करते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१४३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृज्जगती । २, ३, ५, विराड्जगती । ४, ६ जगती च । ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे । अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदहृत्वियः ॥ १ ॥

भा०—जो आप्त पुरुषों के बीच कर्माचरण में पतित नहीं होता और जो गुरू के अधीन विद्या प्राप्ति के लिए बसने वाले छात्रों के सहित गुरु को सेवा शुश्रूषा से प्रसन्न करने वाला, ज्ञान का स्वीकार करने हारा, सत्य ज्ञान को धारण करने वाले गुरुओं के अधीन रहने वाला होकर विनय से पृथिवी पर विराजता है, ऐसे अंग २ में विनय से झुकने वाले बाणी और बल के सम्पादन करने वाले शिष्य के लिये मैं आचार्य बल सम्पादन करने वाली और नये से नया ज्ञान सम्पादन करने वाली तथा धारण पोषण करने वाली अध्ययनक्रिया और ज्ञान का अच्छी प्रकार उपदेश करूं।

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने । अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

भा०—वह ज्ञानवान् विनयशील विद्यार्थी सावित्री-माता के पद पर चलने वाले, माता के समान अपने गर्भ में बालक को लेने हारे आचार्य की यशोवृद्धि और हर्ष के लिये, सबसे उत्कृष्ट तथा विशेष रक्षा करने वाले एवं विशेष रूप से पालने योग्य 'ओ३म्' अर्थात् परब्रह्म की शरण में और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान में उत्पन्न होता हुआ अपने उत्तम गुणों से प्रकट हो। तेज से चमकने हारे इसकी उत्तम प्रज्ञा से और कर्म सामर्थ्य से और बल से उसका तेज और प्रभाव, आकाश और पृथिवी प्रकाशित कर दे।

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम कान्तिमान् सूर्य की किरणें कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं, और जिस प्रकार तेज से बलशाली सूर्य के कभी नष्ट न होने वाले किरण सदा वेग वा प्रवाहों के समान बढ़ने वाले होते हैं, वे अन्धकारमय रात्रि वेला को लांघ कर प्रकाशित हुआ करते हैं, उसी प्रकार उत्तम रीति से सब पदार्थों को ज्ञानदृष्टि से देखने वाले, उत्तम रूप या शुभ शोभा से युक्त, उत्तम कान्तिमान्, इस आचार्य और विद्वान् के ज्ञानप्रकाश कभी नाश को प्राप्त नहीं होते, और अवर्णनीय रूप से उत्तम होते हैं। दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अविनाशी, तथा वेग से बहने वाली सरिताओं के समान वेग से गति करने वाले ज्ञानप्रवाह, कभी न सोते हुए अज्ञान रात्रि को पार कर प्रकाशित होते हैं।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥

भा०—ज्ञानों और ऐश्वर्यों के जिस स्वामी को, पाप और कर्म बन्धनों को भून देने वाले तपस्वी लोग, पृथिवी और समस्त चराचर संसार के मध्य में, केन्द्र में, सबको बल से सञ्चालित करने वाला मुख्य-

बल रूप जानते और बतलाते हैं, हे पुरुष ! उस सर्वप्रकाश परमेश्वर की वाणियों से स्तुति कर। जो कि अकेला अपने घर में स्वामी और शरीर में आत्मा के समान, बसे हुए इस महान् ब्रह्माण्ड के दमन करने में सर्वश्रेष्ठ राजा के समान विराजता है।

न यो वराय मुरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥

भा०—वेग वाले वायुओं का शब्द जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता, और सेनापति के आज्ञावचन से प्रेरित होकर छूट निकली सेना जिस प्रकार रोकी नहीं जा सकती, और जिस प्रकार मेघ से निकली विद्युत् रोके नहीं रुक सकती, उसी प्रकार जो अग्रणी रोका नहीं जा सकता, योद्धा पुरुष जिस प्रकार शत्रुओं का तीक्ष्ण शस्त्रों से नाश कर देता है और जिस प्रकार अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से जंगलों को भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् पुरुष अपने तीक्ष्ण तपः साधनों से सेवने योग्य विलासों का नाश करे और, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्तः शत्रुओं को अपने वश करे।

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥

भा०—विनीत विद्यार्थी हमारे बहुत से उत्तम बचनों या आज्ञावचन का पालक और प्राप्त करने का इच्छुक हो। वह गुरुओं के अधीन रहकर अन्य सहाध्यायी ब्रह्मचारी गण के साथ अपने अभिलाषा करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करे। वह आचार्य द्वारा नित्य प्रेरित होकर ज्ञान और कर्म या आचार-शिक्षाओं को प्राप्त करने के लिये, बहुत अधिक बाधक कारणों

का नाश करे। तब उस शुद्ध पवित्र स्वरूप वाले शोभन सुख शिष्य को आचार्य इस प्रज्ञा और कर्म से उपदेश करे।

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७॥

भा०—अच्छी प्रकार तेज वा वीर्यरक्षा के द्वारा तेजस्वी होता हुआ शिष्य, घी को प्राप्त होकर चमकने वाले अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाशक, और सत्य ज्ञान और वेदज्ञान के धुरन्धर आचार्य को, मित्र या सुहृत् के समान प्राप्त करे। वह शिष्य, ज्ञान और तपस्याओं से प्रकाशित होता हुआ बाधक कारणों और पीड़ाओं से आक्रान्त न होकर, ज्ञानप्राप्ति के अवसरों में और शास्त्रों में चमके। आचार्य हमें विशुद्ध अक्षरोच्चारण से युक्त वेदवाणी को उद्योगपूर्वक प्राप्त कराए।

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥१२॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाश! प्रमाद से रहित, कल्याणकारी, शान्ति प्राप्त कराने वाले, रक्षक और पावन कराने वाले, दूसरों से न मारे जाने वाले, होम गर्व आदि से रहित, आंख न झंपकने वाले, सदा सावधान, कर्त्तव्य पर सदा दृष्टि रखने वाले विद्वान् पुरुषों सहित तू स्वयं भी कभी प्रमाद न करता हुआ हमारी प्रजाओं की सब प्रकार से रक्षा कर।

[१४४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, ३, ४, ५, ७ निचृज्जगती। २ जगती। ६ भुरिक्पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१॥

भा०—अग्नि-व्रताचरण का स्वरूप। जिस प्रकार अग्नि अपनी शुद्ध ज्वाला को ऊपर धारण करता है उसी प्रकार शिष्य शुद्ध प्रज्ञा, शुद्ध कर्मा-

चरण को सर्वोपरि मुख्य रखता हुआ इस शिक्षक आचार्य के निर्धारित नियम तथा परमेश्वर के निमित्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। तब व्रत पालन रूप ब्रह्मचर्य के बाद क्या करे? जो कान्तिमती कन्या इसके सर्वोत्तम तेज आदि गुणों को प्रेम से ग्रहण करती है उस यज्ञ की दक्षिण दिशा में स्थित होकर पति को वरण करने वाली उस स्वयंवरा को स्वयं भी दाहिनी बाजू स्थित कन्या द्वारा वरण किया जाकर प्राप्त हो।

अभीमृतस्य॑ दो॒हना॑ अनूषत॒ योनौ॑ दे॒वस्य॒ सद॑ने॒ परी॑वृताः।
अ॒पामु॒पस्थे॒ विभृ॑तो॒ यदाव॑स॒दध॑ स्व॒धा अ॑धय॒द्याभि॒रीयते ॥ २ ॥

भा०—जब विद्वान् पुरुष शिष्य होकर, आप्तपुरुषों के समीप उन द्वारा शिष्य रूप से धारण किया जाकर, निवास करे, तब वह अन्न और जलों के समान ही उन आत्मज्ञानरसों का भी पान करे, जिनसे वह ज्ञानवान् हो, और सब प्रकार से ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले ज्ञानप्रद आचार्य के गृह और विद्याभवन में विद्यावान् आप्त पुरुष भी विदुषी माताओं के समान ही प्रेम से उसको सब प्रकार से उपदेश करे।

युयू॑षतः॒ सव॑यसा॒ तदिद्वपुः॑ समा॒नमर्थं॑ वि॒तरि॑त्रता॒ मि॒थः।
आदीं॒ भगो॒ न हव्यः॒ सम॒स्मदा वोळ्हु॒र्न र॒श्मीन्त्सम॑यंस्त॒ सा॑रथिः ॥ ३ ॥

भा०—माता पिता और आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। जब समान बल वाले स्त्री पुरुष या माता पिता या पति पत्नी परस्पर एक दूसरे के लिये समान कामना योग्य पदार्थ को परस्पर मिलाना चाहते हैं, उसका ही परिणाम यह शरीर उत्पन्न होता है। जिस प्रकार रथ को ढोने वाले अश्व के रासों को अपने नियन्त्रण में रखता है उसी प्रकार हमारा पूज्य आचार्य भी ज्ञानों का प्रदान करने हारा, उस उत्पन्न बालक को, सब बागडोरों को अपने वश करके, सब उपायों से अपने हाथ में ले।

यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४॥

भा०—जिस बालक को दोनों समान रूप से परिपक्व बल वीर्य वाले, मित्र या सखाभूत, एक ही गृह में रहते हुए स्त्री पुरुष, पति पत्नी एक समान पुत्रोत्पादक गर्भाशय में स्थित इसकी नाना प्रकार से परिचर्या करते हैं, उसको पालते पोषते हैं, तब वह दिन और रात पाला जाकर बहुत से मनुष्योचित जीवन के वर्षों को व्यतीत करता हुआ, जरारहित युवा हो जाता है ।

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥

भा०—उस सूर्य के समान प्रतापी पुरुष को दसों दिशा निवासिनी प्रजाएं और हम शत्रुसंहारकारी युवा पुरुष, विद्यार्थिजन जिस प्रकार गुरु को ज्ञान प्राप्ति के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार प्रजा रक्षण के लिये बुलाते हैं । और जिस प्रकार धनुष के ऊपर दूर तक जाने वाले बाणों को रखता और शत्रु को लक्ष्य करके चढ़ाई करने वालों से नये २ प्रदेशों को प्राप्त करता और उनको अपने अधीन रख लेता है, इसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष उत्तम ब्रह्मपद को लक्ष्य करके जाने वाले मुमुक्षुओं के साथ मिलकर नये २ ज्ञानों को प्राप्त करे । और धनुष के बल पर बाणों के समान, दूर के देशों को भी प्राप्त करे ।

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६॥

भा०—हे विद्वन् ! तू अपने ही सामर्थ्य से द्युलोक के और पृथ्वी के ऐश्वर्य का, पशुपालक के समान राजा हो । ये दोनों शुभ्रवर्ण के बड़े भारी, राजलक्ष्मी से युक्त, हित और रमणीय स्वरूप वाले, स्तुति करने वाले राजा और प्रजावर्ग तेरे से महान् राष्ट्र की आशा करते हैं ।

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो। यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रसंशनीय! हे जलप्रद मेघ के समान सबको अन्नादि वृत्ति देने हारे! हे मेघस्थ जलों से उत्पन्न विद्युत् के समान सत्यज्ञान द्वारा प्रसिद्ध! हे शोभन कर्म और प्रज्ञा वाले विद्वन्! तू उस वेदोपदेश का सेवन कर और उसे पुनः २ चाह। तू सब प्रकार से प्रत्येक पुरुष से सत्कार करने योग्य है। तू दर्शनीय और यथार्थ तत्वज्ञान में रमण करने वाला, और सम्यक् ज्ञान दृष्टि के हो जाने पर अन्यों को भी उपदेश करने वाला होकर, अन्न से भरपूर भवन के समान सुख से निवास करने और आश्रय करने योग्य है।

[१४५]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, विराडजगती । २, निचृज्जगती च । ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते। तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! वह विद्वान् परम पद तक पहुँचा है, वह ही उस परम पद को जानता और प्राप्त करता है। वह ही विशेष ज्ञानवान् होकर ध्येय परम पद तक जाता है। वही अन्यों द्वारा अनुसरण और अनुकरण करने योग्य है। उसके ही आश्रय पर उत्तम शासन और उसके ही आश्रय पर यज्ञ दान आदि उत्तम कर्म और सत्संग, मैत्रीभाव और लेन देन आदि निर्भर हैं। वह समस्त ज्ञान, अन्न और वेग का और बलों का स्वामी है, और वही बलवान् पुरुषों का भी स्वामी है।

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यद-ग्रभीत्। न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥

भा०—जिस बात को सब कोई लोग नहीं पूछा करते, विद्वान् जन ही उस विशेष प्रष्टव्य तत्व को विद्वान् के समीप जाकर पूछता है, जिसको कि वह बुद्धिमान् ध्यानयोगी पुरुष अपने मनन सामर्थ्य से अपने आप से भी ग्रहण करता है। इसका प्रथम वचन अर्थात् उपदेश भी संदेह योग्य नहीं होता, और इसका प्रश्न के उपरान्त दिया उत्तररूप वचन भी संदेह योग्य होता। मोह और गर्व आदि से रहित विनीत पुरुष ही इस विद्वान् के ज्ञान और सामर्थ्य से लाभ उठाता है।

तमिद्गच्छन्ति जुह्व१स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे। पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥३॥

भा०—शिष्य का स्वरूप। उसको ही ग्रहण करने योग्य वेदवाणियां प्राप्त होती हैं। विद्वानों की ज्ञानवाणियां भी उसको ही प्राप्त होती हैं। वह ही अकेला मुझ आचार्य के सब वचनों को सुने। वह बहुत सी आज्ञाओं का पालक, कार्य करने में अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, विद्यादान की साधना करने हारा, त्रुटिरहित व्रत का पालक, उत्तम प्रशंसनीय एवं मां की गोद में बालक के समान स्वच्छ हृदय से आचार्य की विद्यामय गोद में कार्यारंभ करने वाला होकर उत्तम रीति से ज्ञान ग्रहण करे।

उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः। अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४॥

भा०—शिष्य के कर्तव्य। जो आचार्य का सत्संग करता है और उसके समीप ही उपस्थित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करता है, वह शीघ्र ही आचार्य रूप माता से उत्पन्न होकर अन्य सहाध्यायियों सहित या योग करने योग्य उत्तम गुणों से शनैः २ आगे बढ़ता है।

कामना वाली स्त्रियां जिस प्रकार अपने पति के पास जाती हैं उसी प्रकार विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन जब उस पूज्य शान्त परिपक्व ज्ञान वाले पूज्य स्थान पर स्थित आचार्य को प्राप्त हों, तब वे हृदय का आनन्द प्राप्त करने, और हर्ष या सन्तोष प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के प्रश्न करें और तत्व पर विचार करें।

स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि। व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ३ ॥ १४ ॥

भा०—विद्यार्थी के कर्त्तव्य। जलाभिलाषी हरिण जिस प्रकार जंगल में भटकता और जल खोजता है उसी प्रकार वह विद्यार्थी भी विद्यातत्वों के खोजने हारा, ज्ञान और कर्मों के उपदेश का अभिलाषी, वन में आचार्यों और वनस्थ तपस्वियों के आश्रमों में जाता हुआ गुरु के समीप प्राप्त होने वाली मृगछाला या वृक्षत्वक् या ब्रह्मचारी के योग्य वल्कल पहनाकर रखा जाता है। वह ही सत्यज्ञान का निरन्तर संग्रह करता हुआ, विद्वान् अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानवान्, सत्य आचरणशील, सत्यवक्ता, सज्जनों का हितैषी और उनमें श्रेष्ठ, पूज्य होकर, मरण धर्मा अन्य मनुष्यों को नाना प्रकार के ज्ञानोपदेश करे।

[१४६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५ त्रिष्टुप्। ४ निचृत त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥१॥

भा०— हे विद्वन्! माता पिता के समीप विराजमान पुत्र जिस प्रकार माता पिता गुरु तीनों के मस्तकों के ज्ञानानुभवों से युक्त होता है इस लिये 'त्रिमूर्धा' है, अथवा माता पिता गुरु तीनों को अति आदर से अपने शिर माथे रखने वाला होने से वह 'त्रिमूर्धा' है, उसके समान ही

यह सूर्य भी तीनों लोकों के ऊपर शिर के समान विराजमान होने से त्रिमूर्धा है। वेद के सातों प्रकार के छन्द ही रश्मि अर्थात् ज्ञान निदर्शक होने से विद्वान् पुरुष 'सप्तरश्मि' है, सूर्य में सात प्रकार की रश्मि होने से सप्तरश्मि है। अग्नि की काली, कराली आदि सात ज्वालाएं सप्तरश्मि हैं। हे विद्वन्! तू ऐसे न्यूनतारहित ज्ञानी पुरुष की स्तुति कर। सर्वत्र विचरण करते हुए धैर्यवान्, इसके सब प्रकार के कार्य और ज्ञान प्रकाश देने वाले एवं सबको रुचि करते हैं। (२) विद्यार्थी का भी लक्षण। हे बिद्वन्! तू ऐसे न्यूनतारहित अखण्डव्रती विनीत बालक को उपदेश कर। वह माता पिता के समीप बैठा हुआ तीनों का अपने शिर से आदर करता हो। विद्या से पूर्ण करने वाला, सातों ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण हो। इस स्थिर रूप से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए की समस्त कामनाएं और व्यवहार रुचिकर हों। (३) परमेश्वर पक्ष में—वह माता, पिता, गुरु तीनों से ऊपर होने से त्रिमूर्धा है। सप्त छन्द उसकी सात रश्मि हैं। पूर्ण होने से अनून है। व्यापक होने से विचरणशील, कूटस्थ होने से 'ध्रुव' है। बही विश्व का पालक होने से पद्विवान् है। ये सब चमचमाते प्रकाश सूर्यादि उसी के हैं।

उ॒क्षा म॒हाँ अ॒भि व॑वक्ष ए॒ने अ॒जर॑स्तस्थावि॒तऊ॑तिर्ऋ॒ष्वः ।
उ॒र्व्याः प॒दो नि द॑धाति॒ सानौ॑ रि॒हन्त्यूधो॑ अरु॒षासो॑ अस्य ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बड़ा, जलवर्षक सूर्य आकाश, पृथिवी इन दोनों को धारण करता है, और जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र दर्शनीय और महान् होकर अविनाशी होकर विराजता है, और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के उच्च प्रदेश पर अपने किरणों को डालता है, और इसके प्रकाशमान किरण जलमय प्रदेशों को स्पर्श कर मानो जल पान कर उनको सुखा देते हैं, उसी प्रकार बड़ा भारी सुखों का वर्षक और जगत् भार के उठाने वाला परमेश्वर इन पृथिवी और आकाश दोनों को सब प्रकार से धारण कर रहा है। वह इस लोक की सब प्रकार से रक्षा करता हुआ महान् व्यापक

अविनाशी होकर विराजता है। वह महती प्रकृति के समग्र ऐश्वर्य में भी अपनी पूर्व की गति शक्तियों को स्थापित करता है। और उनके स्तन के समान आनन्दरस से भरे उत्तम रूप का रोष रहित, एवं अहिंसक सौम्य-जन ही आस्वाद लेते हैं।

समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥३॥

भा०—पृथ्वी सूर्य के समान स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य। गौ जिस प्रकार बछड़े के सदा समीप रहती है उसी प्रकार माता पिता बालक का दूध और अन्न से पोषण करने वाले, एक संतान को समान रूप से प्रेम पूर्वक प्राप्त होते हुए, सब प्रकार से विविध उपाय और धर्माचरण आदि कार्य करें। वे दोनों उत्तम शोभायुक्त कर्मों और हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान्, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने हारे, कभी परित्याग न करने योग्य उत्तम मार्गों पर चलते हुए, और सब प्रकार के ज्ञानों और बड़े २ कार्यों को भी अपने में धारण करते हुए रहें।

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥४॥

भा०—ध्यान और धारणशील दीर्घदर्शी विद्वान्, हृदय से भक्ति द्वारा बहुत लोगों को संकटों से बचाते हुए, समुद्र के समान अथाह आनन्द-सागर प्रभु को प्राप्त होते हुए उसको भली प्रकार साक्षात् करते हैं। और वे उस अविनाशी प्राप्तव्य पद मोक्ष को स्वयं प्राप्त होते और औरों को भी वहां तक पहुँचाते हैं। इनके हित के लिये वह सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक सर्वप्रकाशक तेजोमय प्रभु प्रत्यक्ष होता है।

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५॥१५॥

भा०—शिष्य विद्याभ्यास करने के उपरान्त समस्त दिशाओं में

सब लोगों के देखने के योग्य होता है। वह सर्वत्र विजयी, स्तुति और सत्कार के योग्य छोटे और बड़े सबको जीवन देने वाला हो। वह ऐश्वर्यवान् और सब प्रकार से और सबके लिये दर्शनीय होकर, बहुतों का त्राण करने हारा, इन गर्भों में उत्पन्न छोटे २ बच्चों का उत्पादक हो जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४७]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् विद्वन् ! जो पुरुष तुझे उत्तम रीति से प्राप्त होकर, दानशील होते, और आत्मा को शुद्ध पवित्र बनाना चाहते हैं, और जो तेरे ज्ञान आदि गुणों को निरन्तर या अति स्वल्पकाल में ही ग्रहण कर लेते हैं, वे विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन और विद्वान् पुरुष दोनों ही, विद्या को स्वयं धारण करते हुए भी वेदज्ञान का अपने शिष्यों को अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त कराने के निमित्त पुत्र और शिष्यादि में किस प्रकार से उपदेश करें।

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

भा०—उपदेश करने का प्रकार बतलाते हैं। [शिष्य] हे प्रौढ़ विद्यासम्पन्न ! हे अपने आपको उत्तम रीति से वश करने वाली दमन शक्ति से सम्पन्न ! आप मुझको इस प्रशस्त, उत्तम रीति से धारण करने योग्य उपदेश का ज्ञान कराओ। [आचार्य] हे शिष्य ! तू मुझसे ज्ञान प्राप्त कर। इस प्रकार परस्पर प्रार्थना और आदेश के बाद एक तो ज्ञान का रस के समान पान करता है, दूसरा गुरु उपदेश करता है। [शिष्य]

हे ज्ञानवन् ! मैं तेरी स्तुति करने वाला, तेरे शरीर को अभिवादन करता हूँ, चरणों में नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार शिष्य गुरु के चरणों में नमस्कार करे।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर ! जो तेरे अधीन ज्ञानव्रत का पालन करने वाले, स्वयं सब पदार्थों को भली प्रकार देखते हुए अन्धे को बुरे मार्ग से बचा देते हैं, उसी प्रकार ममता वाले ज्ञानरहित पुरुष को दुष्ट आचरण से बचावें। समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी आचार्य उत्तम आचरण करने वाले उन सब शिष्यों की रक्षा करे, जिससे कि नाशकारी काम, क्रोध, पाप युक्त कर्म और हीन पुरुष आदि भी उन पर आघात नहीं कर सकें।

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् गुरो ! जो पुरुष किसी को कुछ नहीं देता, और दूसरे पर पापाचरण और आघात आदि का ही प्रयोग करने की चेष्टा करता है, वह अदानशील होकर ही भीतर कुछ और बाहर कुछ इस प्रकार के दो रूपों से लोगों को ठगता है। परन्तु जो हमारे बीच मनन-शील और विचारवान् पुरुष है वह हमारा बार २ उपदेष्टा हो। और उस गुरु के दुःखदायी कठोर वचनों से भी शिष्यजन अपने २ शरीर और आत्मा को उसके अनुकूल आचरण करके शुद्ध पवित्र करें।

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ५।१६

भा०—और जो तू उत्तम विद्यावान् होकर, एक पुरुष दूसरे पुरुष को, कोमल और कठोर या भीतर से हित और ऊपर से कटु दोनों प्रकार

के वचनों से प्रेरित करता है, वह तू हे पाप वासनाओं पर विजय करने वाले और हे सहनशील ! हे सदा सत्योपदेश करने हारे ! स्तुति करने वाले शिष्य का रक्षा कर । तू हमें दुष्टाचरण करने के लिए कभी धारण मत कर अर्थात् अपने अधीन रखकर बुरा काम मत करने दे । इति षोडशो वर्गः ॥

[१४८]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि में वायु प्रविष्ट हो जाता है, और उसको समग्र रूपों से युक्त, सब दिव्य पदार्थों में विद्यमान जानकर विद्वान् पुरुष मथ कर उत्पन्न करता है, और देह में विशेष कान्ति से युक्त जिस अग्नि को मानव प्रजाओं में, यज्ञों में, सुरक्षित रूप से स्थापित करते हैं, उसी प्रकार जिस आचार्य को प्राप्त होकर माता की गोद में बालक के समान नव शिष्य प्रविष्ट होकर, उसका आश्रय लेकर, ज्ञान के देने वाले, समस्त नाना रूप पदार्थों के जानने वाले, सब ज्ञानेच्छुक विद्यार्थियों के हितकारी आचार्य को प्राप्त होकर, दूध में से मक्खन के समान ज्ञान-रूप सार को मथकर शिष्य प्राप्त करे, जिसको उत्तम ज्ञान रूप बीज के वपन करने और अज्ञान के नाश करने के लिये विशेष कान्ति और ज्ञान सामर्थ्य से युक्त, आश्रयकारी पुरुष को विद्वान् जब मनन पूर्वक कर्म करने वाली प्रजाओं या अन्तःप्रविष्ट शिष्यरूप प्रजाओं में सूर्य के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशक रूप से गुरु पद पर स्थापित करें ।

ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! वरण करने योग्य विज्ञान देने वाले पुरुष को कभी पीड़ित नहीं किया करते। और मुझ विद्वान् के मनन करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को अंगों में विनय से झुकने वाला विनीत शिष्य ही लेने की इच्छा करे। अति समीप प्राप्त शिष्य के प्रति उपदेश करने योग्य वाणी को धारण करने वाले इस क्रियाशील पुरुष के समस्त कर्मों को प्रेम से ग्रहण करो।

नित्यें चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

भा०—रथ में लगे उत्तम अश्व रासों द्वारा सुसंयत होकर जिस प्रकार रथ में स्थित पुरुष को प्राप्त करने योग्य देश में ले जाते हैं उसी प्रकार विद्या का दान और आदान करने में कुशल पुरुष जिस शिष्य को स्थिर आश्रय पर स्थापित करके उसको शिष्य रूप से ग्रहण करते हैं, और उत्तम वाणियों उत्तम शासन क्रियाओं द्वारा धारण करते हैं, ऐसे शिष्य को विद्वान् लोग अपने अधीन ग्रहण करते हुए, ज्ञान का प्रदान करते हुए, इष्ट विद्यामार्ग में अच्छी प्रकार आगे ही आगे ले जावें।

पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४॥

भा०—आचार्य का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार जला कर नाश कर डालने वाला अग्नि अपने ज्वालाओं से बहुत से वनों को नाश कर देता है और उसी प्रकार आचार्य भी अज्ञानों और दुःखों का नाशकारी होकर ताड़ना आदि उपायों से बहुत से बुरे व्यसनों को सर्वथा दूर कर देता है। और जिस प्रकार अग्नि बिशेष कान्तिमान् होकर जंगल में सब तरफ प्रकाश करता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी विशेष ज्ञानसामर्थ्य से युक्त होकर शिष्यों के प्रदान करने योग्य ज्ञान में अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। और जिस प्रकार अग्नि की ज्वाला के अनुकूल वायु बहा करता

है उसी प्रकार इस आचार्य के दिखाये प्रकाश के पीछे २ वायु के समान सदागति, आलस्यरहित, सावधान, ज्ञानवान् शिष्यगण भी अनुगमन करे। और जिस प्रकार बाण के फेंकने वाले धनुर्धारी के फेंके हुए तीव्र बाण के पीछे २ वायु वेग से जाता है उसी प्रकार ज्ञान देने वाले गुरु की बुरी आदतों को बाहर निकालने वाली ताड़ना के अनुसार ही विद्यार्थी सब दिन चला करे।

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥५।१७

भा०—विद्यार्थी का बल। जिस प्रकार काष्ठादि के गर्भ में लगे अग्नि को बड़े आंधी के झंकोरे भी नहीं नष्ट कर सकते, उसी प्रकार सावित्री के गर्भ में विद्यमान जिस ब्रह्मचारी को काम, क्रोध, लोभ आदि व्यसन, और न ही नाशकारिणी आत्मा की नाशक प्रवृत्तियां विनष्ट करें। जिस प्रकार अग्नि को अन्धे, न देखने वाले, केवल बात बनाने वाले लोग नहीं नष्ट कर सकते, उसी प्रकार मोहादि से अन्धे हुए और अच्छी प्रकार न देखने वाले निन्दक जन भी नष्ट न कर सकें। स्थिर रूप से उस ब्रह्मचारी को उसके आगे २ जाने वाले गुरुजन उसकी रक्षा करें। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१४९]

दीर्घतमा ऋषिः अग्निर्देवता॥ छन्द—१ भुरिगनुष्टुप्। २, ४ निचृदनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप्। ३ उष्णिक्॥ पंचर्चं सूक्तम्॥

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित्॥ १॥

भा०—वह बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है जो दान देता हुआ बसने वाले प्रजाजन के वा सबको बसाने वाले ऐश्वर्य और उत्तम नायक के उच्चपद पर स्थित होकर, स्वामी का स्वामी होकर प्रकट होता है।

शस्त्रधारी सैन्य बल, वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले नायक की ही आज्ञा पालन करें और उसकी सेवा करें।

स यो वृषा॑ न॒रां न रोद॑स्योः श्रवो॑भि॒रस्ति॑ जी॒वपी॑तसर्गः।
प्र यः स॑स्रा॒णः शि॑श्री॒त योनौ॑ ॥ २ ॥

भा०—जो राजा प्रजावर्ग और माता पिता के बीच में श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेश और कीर्तियों से जीवित पुरुषों और प्राणियों को शीतल जलों के समान सुख पहुँचाता है, और जो प्रजाओं में और आश्रित जनों में प्रविष्ट होकर गृह में और अपने पद पर अच्छी प्रकार विराजे और अपने पद पर अच्छी प्रकार विराजे और अन्यों को आश्रय देवे और शत्रुओं को संतापित करे वह ही सब नायकों और पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ, नायक पुरुष कहाने योग्य है।

आ यः पुरं॒ नार्मि॑णी॒मदी॑देदत्यः॑ क॒विर्न॑भ॒न्यो॒३॑ नार्वा॑।
सूरो॒ न रु॑रु॒क्वाञ्छ॒तात्मा॑ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अश्व नाना विलास योग्य सुखों से सम्पन्न पुरुषों की नगरी को सुशोभित करता है, और जिस प्रकार सूर्य तेजस्वी होकर सैकड़ों स्थानों में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जो सर्वत्र जाने हारा, क्रान्तदर्शी, और किसी से भी परास्त न होने वाला हो वह नायक ही नाना विलासों से भरी नगरी को सब प्रकार से चमका देता है, वह ही नगरी का राजा होने योग्य है। वह अति तेजस्वी और सैकड़ों प्रजाजनों और भृत्यों को आत्मा के समान प्रिय, और जीवनदाता होकर रहे।

अ॒भि द्वि॒जन्मा॑ त्री रो॑च॒नानि॒ विश्वा॒ रजां॑सि शुशुचा॒नो अ॑स्थात्।
होता॒ यजि॑ष्ठो अ॒पां स॒धस्थे॑ ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष माता या पिता और गुरु दोनों से जन्म पाकर, और दीक्षित होकर शुद्ध पवित्र होकर तीनों उत्तम वर्णों और शेष तीनों आश्रमों को, और समस्त राजसू भोगों और ऐश्वर्यों को, अपने वश करे।

वह आप्त पुरुषों के एकत्र होकर बैठने के सभा भवन में सबको अधिकार देने और सबको स्वीकारने वाला, और सबको संगत करने और सबको भृति आदि देने हारों में सबसे मुख्य होकर विराजे ।

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—यह वही सबके ज्ञानैश्वर्य का देने और लेने वाला विद्वान् पुरुष है, जो माता पिता के द्वारा प्राप्त प्रथम जन्म के अनन्तर आचार्य और विद्या द्वारा व्रताचरण और और विद्याध्ययन करके द्विजन्मा होकर, समस्त श्रवण करने योग्य श्रेष्ठ २ ऐश्वर्यों और ज्ञानों को धारण करता है। उत्तम पुत्रवान् पिता जिस प्रकार अपने पुत्र को सर्वत्र दे देता है उसी प्रकार वह विद्वान् उत्तम पुत्र के समान शिष्य से युक्त होकर, स्वयं मरणधर्मा होने से अपने विद्याधन को इस विद्यार्थी को सौंप दे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१५०]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिग्गायत्री ।
२ निचृदुष्णिक् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! दानशील और ऐश्वर्यवान् स्वामी होकर मैं आज्ञाकारी बड़े अध्यक्ष के गृह में नित्य भृत्य के समान होकर, तेरी ही शरण में होकर तुझसे बहुत कुछ प्रार्थना करूं।

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

भा०—जो न विद्या का दान दे सके और और न धन का दान दे

सके वे दोनों दान न देने के कारण 'अदेव' हैं, उन दोनों में से जो धन-वान् होकर भी उस धन के भोग और दान में समर्थ नहीं है, उसकी मैं कभी विशेष स्तुति नहीं करता।

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि।

प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १६ ॥

भा०—आकाश में जिस प्रकार चन्द्रमा सबको आह्लादित करने वाला, नित्य वृद्धि को प्राप्त होने वाला होता है, उसी प्रकार हे विद्वन्! यह उत्तम पुरुष भी जो कि महान् है और सब कामनाओं के पूर्ण करने में सदा वृद्धिशील है सबको आह्लादकारक होता है। हे अग्रणी नायक! ऐसे सेवन करने और ज्ञान ऐश्वर्य दान देने वाले तेरे अधीन रह कर हम उत्तम २ पद को प्राप्त होवें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१५१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द—भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ विराट् जगती। ६, ७ जगती। ८, ९ निचृज्जगती च ॥ नवर्चं सूक्तम्।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्।

अरेजतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१॥

भा०—गो अर्थात् वेदवाणी के उत्तम ज्ञाता और भूमि के बड़े २ स्वामी तथा उत्तम रीति से प्रजा के पालन-पोषण करने में समर्थ लोग, गवादि पशुओं और भूमियों से बसी प्रजाओं के निमित्त प्रजा के मित्र के समान स्नेही रूप जिस नायक को प्रजाओं के बीच और संग्राम और ज्ञानलाभ के निमित्त मुख्य रूप से स्थापित करते हैं, उसके पालनसामर्थ्य और बल पराक्रम से और उसकी आज्ञा से, एक दूसरे की मर्यादाओं को रोकने में समर्थ राजा प्रजावर्ग दोनों कांपें। ऐसे सर्वप्रिय, सबको संगठित करने हारे, एवं दानशील पुरुष को समस्त जनों के पालक रूप से प्रतिष्ठित करें।

यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥

भा०—हे एक दूसरे के प्रति सुखों के वर्षण करने और दुष्टों की शक्तियों को रोकने वाले मित्र और वरुण ! अर्थात् दिन रात्रि के समान सदा साथ रहने वाले स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों के हितकारी, मेघ के समान बहुत सी प्रजाओं को ज्ञान और धनादि जलों से सींचने वाले, ज्ञानैश्वर्यवान्, अपने २ व्यापार करने में कुशल राजपुरुष, मित्रों के समान रक्षक होकर राज्यकार्य को अच्छी प्रकार धारण करें, आप दोनों तब गृहों के स्वामी उस पूज्य विद्वान् पुरुष की वाणी या आज्ञा का ज्ञान प्राप्त करो और नित्य श्रवण करो।

आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे । यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्या, सुख, ज्ञान और वीर्य के सेचन और संवर्धन करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! पृथिवी निवासी प्रजाजन बड़ी भारी आत्मबल की वृद्धि के लिये ही तुम दोनों के अच्छी प्रकार गुरु-उपदेश प्राप्त करने योग्य विद्याजन्म को अलंकृत करते हैं अर्थात् गुरु के अधीन शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। जिससे आप दोनों सब प्रकार से सत्यज्ञान के प्राप्त करने के लिये अपने आप को पुष्ट करो, और जिससे उत्तम ज्ञानवान् गुरु के प्रियाचरण करने के लिये उसके अधीन वेदवाणी और वैदिक कर्मानुष्ठान द्वारा अहिंसा आदि धर्मों से युक्त ब्रह्मचर्य आदि व्रत का उत्तम रीति से पालन करो।

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् । युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४॥

भा०—पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन। हे प्राणों में रमण करने वाले स्त्री पुरुषो! जो बहुत अधिक प्रिय सुख देने और पति को तृप्त करने हारी होती है वह ही निवास योग्य भूमि के समान गृह बसा कर रहने योग्य उत्तम स्त्री होती है। हे परस्पर सत्य व्यवहार को धारण करने वालो! तुम दोनों सत्य व्यवहार को उत्तम जान कर उसका भाषण करो, और उसी सत्य को सदा वृद्धिकारी जान कर सर्वत्र उसका उपदेश करो। संकट का बोझा ढोके ले जाने के कार्य में जिस प्रकार बलवान् बैल को जोड़ा जाता है उसी प्रकार आप दोनों भी बड़े भारी प्रकाशमय वेद के ज्ञान को और उसमें उपदिष्ट कर्म को और सब कार्यों के सम्पादन करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को, अपने बड़े भारी कार्यभार के उठाने में उपयुक्त किया करो।

मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्वीरिव ॥५॥२०॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों इस पृथ्वी में विशेष महत्ता से वरण करने योग्य और दुःखों के वारण करने वाले एक दूसरे को प्राप्त होवो। घर में दोष रहित दूध पिलाने वाली गौवें जिस प्रकार रंभाती हैं, उसी प्रकार शिशुओं को अपना दूध पिलाने वाली निर्दोष, अन्न आदि देने वाली स्त्रियां, रात और दिन मेघ के समान ज्ञानवर्षक और सूर्य के समान तेजस्वी पालक पुरुष को सुखपूर्वक प्राप्त हों। परस्पर एक दूसरे को उत्तम वचन कहें और संकट से एक दूसरे को चेताते रहें। इति विंशो वर्गः॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६॥

भा०—हे दिन रात्रि के समान श्रेष्ठ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो! उत्तम केशों से युक्त गृहस्थ स्त्रियां तुम्हारे सत्य आचार और व्यवहार के विषय में

तुम दोनों की स्तुति करें। और तुम दोनों परस्पर के व्यवहार का आदर करो। और आप दोनों स्वयं उत्तम बुद्धियों और वाणियों का परस्पर प्रयोग करो। और एक दूसरे को बढ़ाओ और प्रसन्न रखो। और विद्वान् पुरुष की मनन करने योग्य ज्ञानवाणी को प्राप्त करो।

यो वां यज्ञः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः। उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों का जो पुरुष नाना प्रकार के दानों और सत्संग योग्य ज्ञानोपदेशों से आदर सत्कार करने वाला, विद्वान्, ज्ञानप्रदाता, ज्ञान विज्ञान को मननपूर्वक साधन करने वाला होकर, तुम्हें उत्तम ऐश्वर्य देता और ज्ञानोपदेश करता है, और जो तुमसे सत्संग करता है, तुम दोनों सदा उसके ही समीप जाया आया करो। उस सौम्य अहिंसक द्वेषरहित पुरुष को प्राप्त होओ और हम सब के प्रिय होकर ज्ञान वाणियों और शुभ मति को प्राप्त होवो और हमें भी प्राप्त कराओ।

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु। भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥८॥

भा०—जो पुरुष मन के उत्तम प्रयोगों में कुशल और सत्य ज्ञान, धर्माचरण और ऐश्वर्यवान् तुम दोनों को, उत्तम सत्कार, मान, पूजा और सत्कर्मों द्वारा, वाणियों और भूमियों द्वारा, उज्ज्वल करते हैं, और जो आप दोनों को मनन करने योग्य ज्ञान और संयमशील तथा बिना गर्व के चित्त से वेदवाणियों का उपदेश करते हैं, वे आप दोनों उनके ज्ञानैश्वर्य से युक्त वचन और ज्ञान को प्राप्त होवो।

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम्। न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥९॥२१

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्ययुक्त बल और ज्ञान और दीर्घ जीवन को धारण करो, और उसको ऐश्वर्ययुक्त बना कर उपभोग करो। आप दोनों नायक होकर इस लोक में रक्षा करने वाले महान् सामर्थ्य को अपनी बुद्धियों से प्राप्त करो। आप दोनों की दानशीलता और ज्ञानप्रकाश को प्रकाशवान् पदार्थ अथवा तीनों लोक भी नहीं व्याप सकते। और आप की विद्वत्तायुक्त ज्ञान-दानशीलता को सदा प्रवाहशील नदियां वा समुद्र भी नहीं प्राप्त हो सकते, और आप दोनों के ऐश्वर्य को व्यवहार-कुशल पुरुष भी नहीं प्राप्त हो सकते। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१५२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ६ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

भा०—हे मित्र अर्थात् परस्पर स्नेहपूर्वक सखा बन कर रहने और वरुण अर्थात् एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री और पुरुषो ! तुम दोनों खूब हृष्टपुष्ट होकर उत्तम वस्त्रों को धारण करो, और उत्तम गृहों में निवास करो। और तुम दोनों के उत्पन्न किये हुए पुत्र पौत्रादि सन्तान दोषरहित, परस्पर द्वेष या द्वैधभाव से रहित और एक दूसरे का आदर करने और स्वयं मनन करने वाले, विचारशील हों। हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों समस्त असत्य व्यवहारों का अपने सत्य व्यवहार और सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य के बल से नाश करो। सत्य से असत्यों पर विजय प्राप्त करो। और सत्य के बल से तुम दोनों परस्पर मिल कर रहो।

एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

भा०—इन लोगों में से कोई ही ऐसा सत्यभाषी, मननशील, विद्वानों

से उपदेश प्राप्त, नाना सत्यासत्य विवेक करने वाली मति से युक्त होता है, जो चारों वेदों को प्राप्त करके वाणी, मन और शरीरों से भोग करने योग्य अथवा तीनों गुणों को प्राप्त करता है, और बलवान् होकर इस जगत् का विजय करता है। प्रायः विद्वानों की निन्दा करने वाले अन्य सब बातों में श्रेष्ठ होकर भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

अपादेति प्रथमा पद्धतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

भा०—चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से प्रथम चरणादि से रहित वेद वाणी प्रकट होती है। हे अध्यापक विद्यार्थी आदि जनो! आप दोनों में से कौन इस रहस्य को जानता है। विद्यार्थी को ग्रहण करने में समर्थ जिज्ञासु पुरुष इस संमुख स्थित आचार्य के ज्ञान को सब प्रकार से धारण करता है। वही उसके सुविचारित सत्य ज्ञान को पूर्ण करता, और अज्ञान और अनृत व्यवहार को दूर करता, उससे पार हो जाता है।

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम्।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग कमनीय कन्याओं के कन्यात्व को जीर्ण करने वाले उसके प्रिय पति को सदा सूर्य के तुल्य उत्तम मार्ग से जाते हुए देखें। और उसको हम कभी नीच मार्ग से जाते हुए न देखें। और सदा हम उसे विस्तृत वस्त्रों और गृहों में रहते हुए देखें। यही स्नेहशील और वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का उत्तम तेज, वैभव और धारणसामर्थ्य का स्वरूप या उत्तम पद है।

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अश्व रहित होकर भी शीघ्रगामी प्रसिद्ध है,

शीघ्र गमन करने वाला होकर उसके कोई रासें नहीं हैं, तो भी वह मेघादि द्वारा गर्जता हुआ पर्वतादि उच्च प्रदेशों में व्यापकर शोभा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार उत्पन्न होकर बालक, 'अश्व' या भोक्ता के समान बद्ध न होकर, वे लगाम घोड़े के समान बाधक करणों से रहित होकर शिरों, स्कन्धों को ऊंचे रखता हुआ, और खूब विद्याभ्यास करता हुआ ज्ञानैश्वर्य प्राप्त करे। और फिर युवा होकर वे ब्रह्मचारीगण अचिन्तनीय ब्रह्म को प्राप्त करें। और स्नेहवान् तथा श्रेष्ठ पुरुष में होने योग्य तेज और धारण पोषण सामर्थ्य का उत्तम रीति से उपदेश करें। अध्यात्म में—आत्मा स्वभाव से अभोक्ता होने से 'अनश्व' है, अंगुलि आदि अंगों से रहित होने से 'अन-भीशु' है, व्यापक होने से अर्वा है। वह सर्वोपरि प्राप्तव्य होने से 'ऊर्ध्व-सानु' है। महान् होने से 'ब्रह्म', अचिन्तनीय होने से 'अचित्त' है। योग द्वारा साक्षत्कारी जन 'युवा' हैं, वे उसका सेवन करते हैं।

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

भा०—गौएं जिस प्रकार अपने स्तन पर ममता से पालन करने योग्य बछड़े की रक्षा करती हुईं उसको हृष्ट पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार दूध पिलाने वाली माताएं ममता से युक्त अन्न के अभिलाषी पुत्र को पालती हुईं अपने ही स्तन के आश्रय पर पुष्ट करें। और जिस प्रकार बालक माता को प्राप्त होकर अन्न की याचना करता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी अपने मुख से भोजनार्थ अन्न की याचना करे, और वह सूर्य के समान तेजस्वी और माता के समान स्नेहवान् आचार्य को प्राप्त कर उसकी सब प्रकार से सेवा करता हुआ, मुख से उत्तम ज्ञानों की गुरु से याचना करे और उसकी रक्षा करे।

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥२२॥

भा०—हे स्नेहवान् मित्रजन एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो! आप दोनों की अन्नादि पदार्थों के सेवन करने की क्रिया को मैं विद्वान् सेवक पुरुष अन्न द्वारा और आदरपूर्वक ज्ञान और रक्षा द्वारा पुनः २ सम्पादन करूं। पुनः आप दोनों को भोजनादि के लिये निमन्त्रित करके आप का आदर करूं। हमारा अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य और ब्राह्मणवर्ग सब मनुष्यों में सब शत्रुओं और सब अकाल आदि कष्टों और दारिद्र्य आदि दुःखों और विघ्न बाधाओं और द्वन्द्वों को सहन करे। और हमारी दिव्य सुख-वृष्टि प्रजाओं को उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ हो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[१५२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

भा०—हे स्नेहवान् एवं एक दूसरे को श्रेष्ठ जान कर वरण करने और एक दूसरे की विपत्तियों का वारण करने हारो! अति प्रेम से युक्त होकर हम स्वीकार करने योग्य उत्तम पदार्थों और उत्तम अन्नों वा सत्कारों द्वारा आप दोनों के उत्तम यज्ञ आदि कार्य का सम्पादन करें। मेघ जिस प्रकार जल, और सूर्य जिस प्रकार तेज का प्रवाह बहाता है उसी प्रकार हे सबके प्रति स्नेह का प्रवाह बहाने वाले आप दोनों! आप दोनों के हितार्थ और हमारे कल्याण के लिये, ऋत्विजों के तुल्य, धारण पोषण करने वाली क्रियाओं, युक्तिओं और उपायों से आप दोनों का पोषण करें।

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

भा०—हे सूर्य और मेघ के समान स्नेहवान् और दुःखवारक स्त्री पुरुषो ! हे ज्ञानों, सुखोंके वर्धक और वीर्यवान् स्त्री पुरुषो ! जब विद्वान् और ज्ञान ऐश्वर्यादि को देने में समर्थ पुरुष तुम दोनों के साथ सत्संग करने की इच्छा करता है तो वह यज्ञों, सत्संगों और ज्ञानप्रसङ्गों में आप दोनों के हितार्थ सुखकारी कल्याण ज्ञान को प्रकट करता है। उसी प्रकार मैं यथार्थतत्व को वर्णन करने वाले के समान ही क्रिया कौशल को जानने वाला, और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोक कर सन्मार्ग में प्रेरित करने हारा होकर, आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊं।

प्रीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

भा०—जिस प्रकार दुधार गाय अन्नादि खाद्य पदार्थ देने वाले को अपने दूध आदि से पुष्ट करती है उसी प्रकार अखण्डित चरित्र वाली स्त्री देने योग्य अन्न, वस्त्र, आभूषणादि पदार्थों के देने वाले और सत्य व्यवहार वाले पुरुष को सुख समृद्धि से बढ़ाती है। और जो तुम दोनों का ज्ञान और धन के लाभ होने पर आदर करता हुआ आप दोनों की वृद्धि करता है वही यज्ञ में हवि देने वाले मुख्य होता के समान सब सुख ऐश्वर्यों का देने वाला होता है। (२) इसी प्रकार अदिति आचार्य अपने प्रिय पदार्थ के दाता शिष्यजन को ज्ञान से बढ़ाता है। ज्ञान यज्ञ में मित्र, वरुण रूप से विद्यमान शिष्य गुरु में से जो दूसरे का आदर पूर्वक ज्ञान बढ़ाता है वही सर्वपूज्य सर्वदाता 'आचार्य' है।

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४॥२३॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हर्ष देने वाली और हर्ष प्राप्त करने योग्य प्रजाओं के बीच में रहते हुए आप दोनों की, गौ आदि पशुगण और जल, कूप, नदी, तड़ाग आदि और उत्तम विदुषी स्त्रियां, वृद्धि करें। और हमारे

बीच में आप दोनों में से जो समस्त सुखों को देने हारा, गौ के दूध को देने वाले गोपालक के समान होकर, पूर्व के बड़े आप्त पुरुषों द्वारा स्थिर कर दिया जाता है, वह ही पालक पति रूप से रहे। वे तुम पति पत्नी इस पुष्टिकारक दुग्ध, अन्नादि को खाओ और पीओ और आनन्दित रहो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१५४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

भा०—जो परमेश्वर पार्थिव पदार्थों और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि लोकों को विविध रूप से बनाता है, जो जगत् के प्रलय हो जाने के बाद भी विद्यमान उस कारण रूप प्रकृति को, जिसमें कि समस्त प्राकृतिक जगत् एक समान होकर कारण रूप से एक साथ रहते हैं, धारण करता है, और जो बहुत प्रकारों और मन्त्रों से स्तुति किया जाता है या सबको वेद द्वारा उपदेश करने हारा है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय, या कारणरूप, सूक्ष्म कार्यरूप और स्थूल कार्य पदार्थों को विशेष रूप से सञ्चालित करता है, उस व्यापक परमेश्वर के बलशाली महान् कार्यों का मैं वर्णन करूं।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

भा०—जिस जगदीश्वर के तीन महान् विक्रमणों अर्थात् सत्व, रजस्, तमस् इन तीनों से बने सर्गों में, या सृष्टि, स्थिति, प्रलय इन तीन क्रियाओं में समस्त भुवन आश्रय पर पा रहे हैं, और जो बल, पराक्रम और शक्ति में सिंह के समान पापकारियों को भय देने हारा, सम विषम

आदि नाना स्थानों में भी विचरने हारा, वेद वाणी में स्थित है, वह व्यापक परमेश्वर अच्छी प्रकार स्तुति करने योग्य है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौः इन तीन स्थानों से, इस लम्बे चौड़े, उत्तम यत्न द्वारा बनने वाले, एक ही आकाश स्थान में स्थित जगत् को अकेला बनाता है, उस सर्वव्यापक, अनन्त बलशाली, वेदवाणियों में ज्ञानरूप से विराजने वाले, महान् स्तुति योग्य परमेश्वर का मनन करने योग्य ज्ञान और महान् बल उत्तम रूप से हमें प्राप्त हो।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

भा०—जिस परमेश्वर की तीनों सृष्टियां मधुर गुण से पूर्ण है। और जो तीनों नाश न प्राप्त होते हुए जीवनसर्ग को धारण करने वाली क्रिया से सब प्राणियों को तृप्त और आनन्दित करती हैं, और जो परमेश्वर पृथिवी और सूर्य को और तीनों धारण करने वाले सत्व, रजस्, तमस् इन गुणों से बने समस्त संसार को धारण करता है वह ही समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों को अकेला, बिना अन्य किसी की सहायता के स्वयं धारण करता है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

भा०—जिस परमेश्वर के आश्रय पर रहकर, परम उपास्य देव की आराधना करने वाले, उसके भक्तजन आनन्द लाभ करते हैं, मैं उस परमेश्वर के प्रिय पालनकारी तथा आनन्द रस का साक्षात् लाभ करूं। सचमुच वह निश्चय से हमारा बन्धु है। नाना लोकों में व्यापक परमेश्वर

के सर्वोत्कृष्ट 'प्रासव्य' परम वेद्य स्वरूप में ही मधुर आनन्द रस का स्रोत है।

ता वां वास्तूंन्युश्मसि गमंध्यै यत्र गावो भूरिंशृङ्गा अयासंः ।
अत्राह तदुंरुगायस्य वृष्णंः परमं पदमवं भाति भूरिं ॥६॥२४॥

भा०—जिन गृहों में बहुत उत्तम २ सींगों वाली गौएं और बहुत सी किरणें बहुत से रोगों का नाश करने वाले गुणों से युक्त होकर प्राप्त हों, हम लोग आप दोनों को ऐसे २ निवास गृहों को प्राप्त करना चाहते हैं। निश्चय से यहां बहुस्तुत्य, बलवान् सूर्य का परम प्रकाश बहुत अच्छा प्रकाशित होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१५५]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ निचृज्जगती ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तमन्धंसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुंनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुषो! आप लोग बुद्धिपूर्वक यत्न करने वाले महान् शूरवीर, और उत्तम विद्या और गुणों में प्रवेश करने वाले पुरुष के हित के लिये अपने जीवन धारण कराने वाले अन्नादि के बने पान करने और पालन करने योग्य पदार्थ आदर सत्कार से प्रदान करो। उत्तम अश्व के द्वारा जिस प्रकार लोग पर्वतों तक पहुँच जाते हैं उसी प्रकार साधनाशील और ज्ञान मार्ग में आगे बढ़ने वाले विद्वान् के द्वारा पर्वतों के शिखरों के समान उच्च पदों पर पूजित होकर विराजते हैं। और कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते।

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य और वायु के तेज और वेग की जिस प्रकार उत्तम जल-

पान करने वाला मेघ अपेक्षा करता है, हे वायु और सूर्य के समान बलवान् और तेजस्वी विद्वान् और शूरवीर पुरुषो ! क्रियाकुशल तुम दोनों पुरुषों के इस प्रकार के तेज को और उत्तम ज्ञान और सत्संग को उत्तम ज्ञान-रस का पिपासु प्राप्त करता है। जिस प्रकार वायु और सूर्य दोनों ही मनुष्यों के हित के लिये प्रतिक्षण धारण पोषणार्थ देने योग्य अन्नादि पदार्थों का पालन करते हैं और जिस प्रकार वे दोनों अग्नि की व्यापनशील ज्वाला की रक्षा करते हैं उसी प्रकार उक्त इन्द्र और विष्णु, सेनापति और राजा प्रजा के साधारणजन के हितार्थ धारण करने योग्य प्रत्येक पदार्थ की रक्षा करें और वे शत्रु पर बाणवर्षा करने वाले अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शत्रु को उखाड़ फेंकने की शक्ति की रक्षा करें।

ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार वृष्टि की धाराएं अन्न को बढ़ाती हैं और इसके बड़े भारी पुरुषत्व का बल बढ़ाती हैं, और वह अन्न खाया जाकर वीर्य उत्पत्ति और शरीर की रक्षा और पालन और नाना प्रकार के भोग भोगने के लिये स्त्री पुरुषों को प्रवृत्त करता है। वही अन्न वीर्य द्वारा माता पिता से उत्पन्न होकर पुत्र रूप होकर सूर्य के समान प्रकाशित होने और ज्ञान प्रकाश और व्यवहार के उत्तम रुचिकर तेजस्वी कार्यों में भी पिता के निकृष्ट, सर्वोच्च और सबसे उत्तम यश को भी धारण करता है। उसी प्रकार वे विदुषी स्त्रियां, और माता और पिता उसकी वीर्य रक्षा और देहरक्षा के लिये उसके बड़े भारी बल की वृद्धि करें। वह पुत्र उनको मां बाप की नम्रता से प्राप्त हो। वह सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी होकर प्रकाशित होने के लिये उसके परे के और तीसरे स्वरूप को भी धारण करे।

'अवरं परं तृतीयम्'—अवर अर्थात् पौत्र, पर अर्थात् पुत्र और तृतीय

अर्थात् पिता तीनों को धारण करे। अर्थात् पुत्र स्वयं पुत्र का कर्त्तव्य पालन करे, पौत्र को उत्पन्न करे और पिता का पालन करे। वह पुत्र एक ही समय में अपने पुत्र का पिता, अपने पितामह का पौत्र कहावे अर्थात् वह तीन पीढ़ियों का रक्षक हो।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने अग्नि, विद्युत् और सूर्य इन तीन विशेष रूपों से समस्त लोकों में व्याप जाता है उसी प्रकार जो पुरुष तीन विशेष गमन या उपायों से अति प्रशंसित जीवन की रक्षा और धारण करने के लिये पृथिवी के समस्त पदार्थों और लोकों और प्राणियों को अति उत्तम रूप से क्रमण कर जाता है, वह नाना प्रकार का पौरुष, हम लोग, स्वामी, रक्षक, भेड़िये के समान वञ्चक वा प्रजाभक्षक न होने वाले मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्धक प्रजापालक का ही बतलाते हैं।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥

भा०—जिस प्रकार इस तेजोमय सूर्य के दो क्रमण, दो स्थान पृथिवी और अन्तरीक्ष इनको मनुष्य विद्या के बल से प्राप्त कर लेता है, और इसके तीसरे स्थान आकाश को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता, दूर तक उड़ने वाले बड़े २ पक्षी भी वहां तक नहीं पहुँच सकते, इसी प्रकार सन्तान आदि के सुखमय मार्ग को देखने हारे इस वीर्यवान् ब्रह्मचारी के दो ही ऐसे क्रमण अर्थात् गमन, आश्रय या आचरण हैं जिनको अच्छी प्रकार ज्ञानपूर्वक देख कर मनुष्य धारण कर सकता है। इसका तीसरा स्वरूप या विद्याजन्म वह है जिसको मार्ग में जाते, गिरने से बचाने वाले सहायकों से युक्त या रथादि के स्वामी और सामान्य ज्ञानवान् पुरुष भी कभी तिरस्कृत नहीं कर सकते।

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवा कुमारः प्रत्येत्याहवम् ६॥२५

भा०—जिस प्रकार कुमार दशा को त्याग कर बड़े लम्बे चौड़े विशाल शरीर वाला युवा पुरुष अपनी बाणी या आज्ञा के अधीन पुरुषों से विविध दिशाओं के शत्रुओं के गिराता हुआ युद्ध को जाता है, और चार के साथ नब्बे अर्थात् ९४ पुरुषों के बने विशेष बलशाली पुरुषों और चक्रव्यूह को भी हाथ में रखे चक्रास्त्र के समान अपने नमाने वाले बलों से कंपा देता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी कुत्सिक काम क्रोधादि से ग्रस्त न होकर, आचार्य के उपदेशों को जीवन में संगति करने वाला, नित्य वृद्धिशील, विशालकाय होकर, वेद की ऋचाओं वा ज्ञानबान् विद्वानों से विविध ज्ञानों को प्राप्त करता हुआ, समस्त ज्ञान को प्राप्त हो । वह ९४ प्रकार के विरुद्ध बाधक कारणों को गोल चक्र के समान अपने चार आश्रमों या चार प्रकार के ब्रह्मचर्य बलों से कंपा दे, उनको दूर करे । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१५६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । निचृज्जगती । ४ जगती ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥

भा०—हे विद्याओं में व्यापक विद्वन् ! तु मित्र अर्थात् मृत्यु से बचने वाले रक्षक के समान सुख का देने हारा हो । तू जलवर्षी मेघ के समान स्नेह और पुष्टिकारक अन्न और तेजोयुक्त पदार्थों और ओज का प्रदान करने वाला हो । तु सूर्य के समान अति तेज, ऐश्वर्य, अन्न और यश से सम्पन्न हो । तू रक्षक रूप से सबको प्राप्त होने और इसी प्रकार

से विख्यात कीर्ति वाला हो। और हे व्यापक शक्ति वाले! तेरा स्तुति करने योग्य व्यवहार और गुण विद्वान् पुरुष द्वारा पूज्य, और तेरा सत्संग और दान आदि कार्य अन्नादि से समृद्ध पुरुष द्वारा सम्पादन करने योग्य हो। (२) इसी प्रकार सर्व व्यापक परमेश्वर सबका मित्र, सुखप्रद, अन्न, जल, तेज का दाता, ऐश्वर्यवान्, रक्षक, महान् व्याप्तिमान् है। विद्वान् उसके गुण गाता, और हविष्मान् उसके निमित्त यज्ञ दान करता है।

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥२॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, मेधावी, अपने से पूर्व विद्यमान विद्यावयोवृद्ध पुरुषों की उत्तम रीति से सेवा करने वाले, सदा सुप्रसन्न, स्वभाव से ही ज्ञान सम्पादन करने में संलग्न, ज्ञान मार्ग में प्रवेश करने वाले नव विद्यार्थी को ज्ञान दान करता है, और जो पुरुष व्रतों और गुणों में महान् इस विद्यार्थी को उत्तम २ ज्ञान का सदा उपदेश करता है, वह ही श्रवण योग्य कर्मों से युज्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास करता है।

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे यथार्थ गुणों का उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषो! आप लोग पूर्व के विद्वानों द्वारा विद्या के योग्य पुरुष को यथाविधि प्राप्त करो। और ज्ञानैश्वर्य को अपने में धारण करने वाले को विद्या द्वारा नवीन जन्म प्राप्त कराके विद्या से पूर्ण करो। इसके उत्तम नाम को भी जानते हुए इसे विशेष रूप से उपदेश करो। हे विद्याओं में व्यापक विद्वन्! हम तेरे महान् उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४॥

भा०—व्यापक प्रकाश वाला सूर्य जिस प्रकार दिन को प्राप्त कराने वाले किरण समूह को प्रकट करता, और उत्तम बल को धारण करता है, और जिस प्रकार वायुगुणों के प्रेरक इस सूर्य के सामर्थ्य को मेघ और दिन रात्रि प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शिष्य रूप मित्रों से युक्त आचार्य उस परम वेद्य ज्ञान को और गो रूप वाणियों के संघ वेद को प्रकाशित करे। वह प्रकाश लाभ कराने वाले, तथा उत्तम ज्ञानसामर्थ्य को धारण करे। तेज से चमकने वाला श्रेष्ठ पुरुष, और नाना ऐश्वर्यों के भोक्ता स्त्री-पुरुष, ज्ञानवान् आचार्य के उस ज्ञान और कर्मसामर्थ्य को प्राप्त हों और उसमें सहयोग करें।

आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भाग यजमानमाभ-
जत् ॥ ५ ॥ २६ ॥ २१ ॥

भा०—जो विद्वानों का हितकारी, शुभ गुणों और विद्याओं में प्रवेश करने हारा जिज्ञासु पुरुष, विद्या आदि ऐश्वर्य से युक्त गुरु को प्रसन्न करने के लिए और उसकी सेवा करने के लिए उसको प्राप्त होता है, और जो उत्तम उपकार करने वाले के प्रति अधिक उपकार करने वाला होता है, वह बुद्धिमान् पुरुष, कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों में स्थिर होकर, उत्तम शुभ गुणों और विद्या में निपुण श्रेष्ठ गुरु को प्रसन्न करे। धनार्थी जिस प्रकार दानशील को प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त वह विद्या दान देने वाले को प्राप्त हो, और उसकी सेवा शुश्रूषा करे। इति षड्विंशो वर्गः। इत्येकविंशोऽनुवाकः॥

[१५७]

दीर्घतमा ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप्।
६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ निचृज्जगती॥ षड्‌च सूक्तम्॥

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु१षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार प्रज्ज्वलित होता, और पृथिवी को प्रकाशित करने वाला सूर्य जैसे उदय को प्राप्त है, वैसे विनयी शिष्य अपनी विद्याभूमि आचार्य से विद्वान् होकर सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो। जैसे आल्हादकारिणी विस्तृत वेला कान्ति के सहित प्रकट होती है, उसी प्रकार कान्तमती कन्या तेज से विविध गुणों को प्रकट करे। इसी प्रकार विद्या में व्यापक और विद्या के बल से जगत् के सुखों को भोगने वाले विद्वान् स्त्री-पुरुष मिलकर संसार के मार्ग पर चलने के लिये उत्तम आनन्द देने और वेग से चलने वाले गृहस्थ रूप रथ को युक्त करें। जैसे सर्वप्रेरक सूर्य प्राणिसंसार को पृथक् प्रेरित कर सबको उनकी प्रकृति के अनुसार चलाता और उनको जीवन देता है उसी प्रकार उत्पादक कामनावान् पुत्रैषी, प्रिय पुरुष संतान को उत्पन्न करे।

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

भा०—हे गृहस्थ सुखों के भोगने और एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषो! जब आप दोनों सुख का और वीर्य का सेचन करने वाले रमण करने के साधन रूप अंग को संयुक्त करो इससे पूर्व आप दोनों अपने वीर्य को घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ से और मधुर अन्न से सींचो। इसी प्रकार हमारे मनुष्यों में उत्तम अन्न और बल को करो। जिससे हम लोग सदा शूरवीर पुरुषों को प्राप्त करने के लिए नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करें और सेवें।

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

भा०—विद्यावान् स्त्री पुरुषो का जल के बल से चलने वाला, मधुर नाना सुखों को प्राप्त कराने वाला, और अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, वेगवान् अश्वों से युक्त, तीन चक्रों वाला, उत्तम, प्रशंसनीय, तीन बन्धनों वाला, बहुमूल्य, समस्त ऐश्वर्यों से युक्त रथ हमें प्राप्त हो, और हमारे दो पाये भृत्य आदि चौपाये गौ आदि पशुओं को शान्ति सुख प्राप्त करावे।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम्।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों हमें बल पराक्रम और उत्तम अन्न प्राप्त कराओ। और तुम दोनों हमें मधुर तथा विज्ञानयुक्त वाणी से सेचन करो, उससे हमारे ज्ञान की वृद्धि करो। जीवन को बहुत अधिक बढ़ा हमें दीर्घायु करो। हमारे सब पापों को सब प्रकार से शुद्ध कर दूर करो। द्वेष के भावों को दूर करो और सदा एक दूसरे के साथ सहयोगी होकर रहो।

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे बलवान् स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार सूर्य और वायु भूमियों में और प्राणियोनियों में ऋत्वनुसार गर्भ धारण कराते हैं, उसी प्रकार कामनाओं, सुखों, वीर्यों के सेचन और वीर्य रक्षण करने हारो ! आप दोनों गमन योग्य रात्रियों में ही गर्भाधान क्रिया द्वारा गर्भ धारण करो इससे अतिरिक्त निषिद्ध रात्रियों में नहीं। आप दोनों सब लोकों के बीच सुख से रहो। आप दोनों अग्नि और जलों को और वनस्पतियों को कार्य में लाओ।

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ६॥२७

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों रोगनाशक वैद्यों और औषधियों से रोग निवारण करने वाले होकर रहो और रोग निवारण किया करो। आप दोनों रथ के योग्य उत्तम अश्वों और बैल आदि पशुओं से रथ संचालन के कार्य में कुशल होकर रहो। और तुम दोनों उग्र होकर, जो अन्न और ऐश्वर्य आदि ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों से सम्पन्न होकर चित्त से, प्रेम से प्रदान करता है उसको, क्षात्र बल और राष्ट्र के भी ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थापन करो। इति सप्तविंशो वर्गः। द्वितीयोऽध्यायः ॥

[१५८]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। भुरिक् पंक्तिः। ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान सुखों का वर्षण करने वाले माता और पिता ! आप दोनों प्रजाओं के बसाने और स्वयं राष्ट्र और गृह बसने हारे दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों के देने, और दुष्टों को रुलाने वाले, परस्पर बढ़ते और अधीनों की वृद्धि करते हुए, अति अधिक ज्ञानशील, दुःखों के नाशक और दर्शनीय होओ। उपदेश करने योग्य उत्तम शिष्य तुम दोनों के समीप जब विद्याप्राप्ति के निमित्त प्राप्त होता है तब आप दोनों आनन्दनीय ज्ञान वाणियों और रक्षा क्रियाओं सहित ज्ञान का प्रसार करो। और आप दोनों का दान देने योग्य जो ज्ञान और ऐश्वर्य है उसको उत्तम कामना की पूर्ति और इष्ट सिद्धि के लिये अच्छी प्रकार प्रदान किया करो।

को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥

भा०—हे राजा रानी पुरुषो ! आप दोनों, एक दूसरे के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले मन से परस्पर आचरण करते हुए जब पृथिवी के ऊपर रहने के स्थान में परस्पर आदरपूर्वक ऐश्वर्य से सम्पन्न नगरवासिनी प्रजाओं को पुष्ट करो, तब प्रजाओं के बीच उनको बसाने वाले उनके प्राणों के समान होकर तुम दोनों हमारे हित के लिये जागते रहो, सदा सावधान होकर रहो। इस शुभ मति के लिये तुमको कौन ज्ञान प्रदान करे। अथवा प्रजापति परमेश्वर ही उत्तम मति का उपदेश करे।

युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य सञ्चालन के कार्य में कुशल पुरुष के कार्य के लिए, सर्व पालक तथा विद्वान् और बलवान् राष्ट्रपति प्रजासागर के बीच स्थापित किया जाता है, जिस प्रकार शूरवीर सेनापति वेग से जाने वाले अश्वों सहित महासागर को जाता है, उसी प्रकार मैं भी वेगवान् साधनों से युक्त होकर आप दोनों राष्ट्र के स्त्री पुरुषों की शरण को प्राप्त होता हूं।

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान सदा प्रकाशमान् सभा और सेना के स्वामी जनो ! समीप २ बैठकर राष्ट्र तथा राज्य के हित लिये यथार्थ बातों की चर्चा किया करो, वचनों के पात्र प्रशंसनीय राजा की रक्षा किया करो। वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाली, दायें बायें रहने वाली, और पक्ष प्रतिपक्ष से विवाद करने वाली सभा के सदस्यों की दोनों श्रेणिएं मुझ राजा या स्वामी को विपरीत रूप से दोहन न करें अर्थात् हानिकारक दुष्फल करावें। बल्कि दशगुना संचय किया हुआ काष्ठ के समान प्रज्वलित होने वाला तेजस्वी सैन्य समूह भी मुझको न जलावे।

क्योंकि तुम दोनों सभा और सेना के स्वामियों के आश्रय पर ही राजा वा प्रजावर्ग अपने राष्ट्र में बंधकर इस भूमि का भोग करता है।

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

भा०—जब राष्ट्र के नाशकारी शत्रुजन अच्छी प्रकार धन धान्य से परिपूर्ण, राष्ट्रपति को नीचे गिराने का यत्न करें, उस समय उत्तम माताओं के समान हितकारिणी और धनैश्वर्य से सम्पन्न आप्त प्रजाएं मुझे निगलने का यत्न न करें, प्रत्युत मेरी रक्षा करें। जब धन, जन और कोष, तीनों प्रकार की शक्तियों को बढ़ाकर राष्ट्र का नाश करने वाला शत्रुजन इस राष्ट्र के शिर को विविध और विपरीत मार्ग से नाश करता है तब वह मानो अपने ही आप अपने ही छाती और कन्धों पर आघात करता है। प्रजा का उत्तम बलवान् नायक राजा का घात करना अपना ही नाश कर लेना है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—जो अति विस्तृत अज्ञान और शोकादि में व्याकुल, और अति ममताशील लोभी होता है वह राजा दसवें वर्ष जीर्ण होकर नाश को प्राप्त हो जाता है। और जो राजा नियमों में सुबद्ध, जितेन्द्रिय प्रजाओं के ऐश्वर्य और प्रयोजन को प्राप्त करता है वह उनका महान् स्वामी और रथ के संचालक के समान उनको सन्मार्ग से ले जाने हारा होता है।

अथवा युग = ५ वर्ष। दशमे युगे = पचासवें वर्ष। अध्यात्म में—ज्ञानरहित जीव दीर्घतमा मामतेय है। इति प्रथमो वर्गः॥

[१५६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ । देवते ॥ छन्दः—१ विराट् जगती । २, ३, ५ निचृज्जगती । ४ जगती च ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

प्र द्यावा॑ य॒ज्ञैः पृ॑थि॒वी ऋ॑ता॒वृधा॑ म॒ही स्तु॑षे वि॒दथे॑षु॒ प्रचे॑तसा ।
दे॒वेभि॒र्ये दे॒वपु॑त्रे सु॒दंस॑से॒त्था धि॒या वार्या॑णि प्र॒भूष॑तः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी बड़े और प्रजाओं को अन्न और जल से बढ़ाने वाले हैं, और जिस प्रकार वे दोनों प्रकाशयुक्त किरणों और सुखप्रद पदार्थों द्वारा पालन करने वाले और उत्तम रीति से दुःखनाशक रह कर नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार ज्ञान प्रकाश से युक्त और भूमि के समान प्रजा के उत्पादक माता पिता और गुरुजन अति पूजनीय सत्य ज्ञान और अन्न जल से सन्तानों की मन आत्मा और देह की वृद्धि करने वाले हों। उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त से युक्त उन दोनों की मैं ज्ञानों के निमित्त स्तुति करूं। जो दोनों उत्तम विद्वानों द्वारा व्यवहारकुशल पुत्रों और शिष्यों से युक्त होकर, तथा उत्तम कर्म और ज्ञान से युक्त होकर बुद्धि और कर्म के बल से वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों को अधिक मात्रा में धारण करते कराते हैं।

उ॒त म॑न्ये पि॒तुर॒द्रुहो॒ मनो॑ मा॒तुर्महि॒ स्वत॑व॒स्तद्धवी॑मभिः ।
सु॒रेत॑सा पि॒तरा॒ भूम॑ चक्रतुरु॒रु प्र॒जाया॑ अ॒मृतं॒ वरी॑मभिः ॥ २ ॥

भा०—और मैं द्रोह रहित पिता और माता के मन को, स्नेहों से स्वयं बलवान् और अति पूज्य मानता और जानता हूं। क्योंकि सन्तानों के पालक माता पिता उत्तम वीर्यवान् होकर श्रेष्ठ २ उपायों से स्वसन्तानों के लिये बहुत अधिक अन्नादि उत्पन्न और प्रदान करें। इसी प्रकार गुरुजन उत्तम वीर्यवान् होकर, स्वशिष्यों को भूमा स्वरूप अमृतमय ब्रह्मज्ञान प्रदान करें।

ते सू॒नवः॒ स्वप॑सः सु॒दंस॑सो म॒ही ज॑ज्ञुर्मा॒तरा॑ पू॒र्वचि॑त्तये ।
स्था॒तुश्च॑ स॒त्यं जग॑तश्च॒ धर्म॑णि पु॒त्रस्य॑ पाथः प॒दमद्व॑याविनः ॥३॥

भा०—वे पुत्र जन, उत्तम ज्ञान उत्तम कर्म और व्यवहार वाले होकर, सबसे पूर्व मान आदर करने के लिये माता पिता दोनों और ज्ञान कराने

वाले आचार्यजनों को सबसे अधिक पूज्य जानें। हे माता पिताओ! आप दोनों स्थावर सम्पत्ति और जंगम पुत्रादि के धारण करने में साधारण मां बाप से गुणों में अधिक हो, आर्य पुत्र के स्थान वा मार्ग का पालन करो।

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४॥

भा०—वे पुत्र बुद्धिमान्, उत्तम ज्ञान और चित्त वाले, क्रान्तदर्शी दीर्घदर्शी, उत्तम दीप्ति और तेज से युक्त, अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणों के समान पुत्रोत्पादन में समर्थ होकर, जोड़े २ बन कर एक ही स्थान में घर बना कर रहते हुए, नये २ प्रजातन्तु को अपनी कामनारूप पुत्रैषणा के निमित्त उत्पन्न करें।

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ५।२

भा०—हम लोग सर्वोत्पादक परमेश्वर के श्रेष्ठ आराधनीय स्वरूप को उत्तम उपासनाकाल में सदा चिन्तन करें। वे दोनों सूर्य और पृथिवी के समान उत्तम चित्त और ज्ञानवान् होकर हमारे लिये सैकड़ों गौओं और वाणियों से युक्त ऐश्वर्य युक्त, सम्पदा प्रदान करें। द्वितीयो वर्गः॥

[१६०]

दीर्घतमा ऋषिः॥ द्यावापृथिव्यौ देवते॥ छन्दः—१ विराड् जगती। २, ३, ४, ५ निचृज्जगती॥ पंचर्चं सूक्तम्॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

भा०—सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार समस्त विश्व को शान्ति और कल्याण देने वाले हैं, प्रकाश और जल से पूर्ण होकर क्रान्तदर्शी प्रकाश को धारण करते और सबको धारण करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों स्त्री-पुरुष या माता पिता भी समस्त संसार को शान्ति देने और कल्याण करने

वाले सत्य व्यवहार से युक्त होकर, प्रजाजनों और लोकों के हितार्थ, क्रान्तदर्शी विद्वानों को धारण करने वाले, उत्तम जन्म वाले, समस्त लोकों को अपने आश्रय में धारण करने वाले हों। उनमें से सूर्य के समान तेजस्वी और कामना युक्त पुरुष धर्म से शुद्ध पवित्र हो। उसी प्रकार कामना युक्त स्नेहवती स्त्री भी धर्म से शुद्ध पवित्र होकर अन्तःकरण में विराजे।

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों अति विस्तृत और विविध क्रान्तियों से युक्त होते हैं, और महान् होकर समस्त भुवनों को पालते हैं, और उत्तम रीति से दृढ़ होकर रहते हैं, उसी प्रकार माता और पिता अति विशाल हृदय वाले, गुणों में महान्, अयुक्त कार्यों कामादि विलासों में असक्त होकर, गृह में उत्पन्न सन्तानों की रक्षा करें। वे दोनों अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट और उत्तम शरीर वाले सुन्दर हों। और उन दोनों में जो सन्तानों का पालक पिता है वह नाना रुचिकर पदार्थों और वस्त्रों से सब प्रकार से सब पुत्रादि सन्तानों को आच्छादित करे और पाले।

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३॥

भा०—वह माता पिता का पुत्र, पवित्र आचार और पवित्र वेद ज्ञान से युक्त होकर, धैर्यवान्, अग्नि के समान तेजस्वी और गृहस्थ को वहन करने में समर्थ होकर, अपनी उत्तम बुद्धि से समस्त उत्पन्न सन्तानों और लोकों को भी पवित्र करता है। सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी और उत्तम सजल मेघ को जल से पूर्ण करता है उसी प्रकार यह पुत्र भी दूध पिलाने वाली माता वा गौओं को उत्तम वीर्यवान् बलवान् वीर्य निषेक्ता पिता को सदा ही पवित्र करता है। हे पुरुषो! आप लोग इसके बल वीर्य को और पुष्टिकारक अन्न जल को पूर्ण करो।

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा। वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४॥

भा०—यह पुत्र उत्तम ज्ञानी और कर्मण्य विद्वानों के बीच सबसे अधिक ज्ञानी, कर्मनिष्ठ आप्त होवे। जो पुत्र अपने को उत्तम ज्ञान देने वाले माता पिताओं तथा गुरुजनों को सब प्रकार के कल्याणों के उत्पादक रूप से जानता है, और जो चित्त को मनोरंजक करने वाले माता पिताओं को उत्तम कर्मयुक्त किर्ति से विशेष किर्त्तिमान् बनाता है, और उन दोनों को कभी नाश को प्राप्त न होने वाले स्तम्भों के समान आश्रयप्रद उपायों से अच्छी प्रकार से सेवा करता है, उनको प्रसन्न करता है।

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्। येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञान और आश्रय के देने वाले! आप दोनों स्तुति योग्य और अति पूज्य होकर, बड़ी कीर्त्ति, बड़े भारी बल वीर्य को धारण कराओ। जिसके बल से हम सदा ही प्रजाओं को विस्तृत करें। आप दोनों स्तुति योग्य बल पराक्रम को हममें प्राप्त कराओ। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् जगती ॥ ३, ५, ६, ८, १२ निचृज्जगती। ७, १० जगती च। निचृत् त्रिष्टुप। ४, १३ भुरिक् त्रिष्टुप्। स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप्। १४ स्वराट् पंक्तिः। चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ्कद्यदूचिम। न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१॥

भा०—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन। क्या यह पुरुष सबसे अधिक प्रशंसनीय गुणों से युक्त है, क्या यह सबसे अधिक युवा, बलवान्,

उत्साह पूर्ण है, अथवा क्या सबसे अधिक ज्ञान में वृद्ध है, ऐसा पुरुष हमें प्राप्त हो। हम जो कुछ भी कहें उसको दूसरे राज्य में ले जाने के लिये वह दूतकर्म के पद को प्राप्त हो। हे तत्वार्थ को अपने भीतर धारण करने में कुशल! जो पुरुष बड़े कुल में उत्पन्न होता है ऐसे मेघ के समान सत्पात्र पुरुष की हम निन्दा नहीं करें। प्रत्युत हे ज्ञानवन् पुरुष! दौत्य कर्म के लिये तो शीघ्र गति से जाने वाले पुरुष के ही सामर्थ्य की हम अधिक प्रशंसा करते हैं।

सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज हैं अर्थात् उत्तम धनुर्धर वीरों में तीन प्रकार के पुरुष हैं शिल्पी, धनाढ्य और वेगवान् बलशाली। परन्तु वीर योद्धाओं के सन्धि विग्रहादि के दूतकर्म के लिये चतुर्थ प्रकार का विद्वान् भी आवश्यक है उसका विवेचन है वह श्रेष्ठ, युवा उत्साही, यथार्थ वक्ता, सत्पात्र, कुलीन, शीघ्रगामी हो।

एकं चमसं चतुरः कृणोतन यद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम्।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२॥

भा०—हे उत्तम धनुष आदि शास्त्रों के सञ्चालन में कुशल पुरुषो! ज्ञान देने हारे विद्वान् पुरुष आप लोगों को उस उक्त प्रश्न के विषय में उपदेश करते हैं। मैं विद्वान् पुरुष भी आप लोगों के समक्ष उसको यथावत् प्रकट करता हूं। आप लोग चारों जने मिल कर एक सत् पात्र वा मेघ के समान गम्भीर गर्जन करने वाले पुरुष को अपना दूत नियत करो। यदि इस प्रकार करोगे तो आप लोग विद्वान् एवं दानशील होकर और ज्ञानप्रद पुरुषों के साथ मिल कर, एक सुसंगत राष्ट्र के अंग एवं पूज्य पद के योग्य होकर रह सकोगे।

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३॥

भा०—ज्ञानवान्, अग्रणी सबको प्रमुख और दूतकर्म को कर

वाले पुरुष को लक्ष्यकर जो २ नाना कार्य आप लोग कहते हो कि उसके लिये उत्तम अश्व, अनुगामी रथ और अश्वसैन्य तैयार करो, और रथ सैन्य तैयार करो, नाना रस पिलाने वाली गौ के समान पृथिवी तैयार करो, स्त्री-पुरुष दोनों को युवा बलवान् बनाओ। हम विद्वान् लोग प्रजा के हितार्थ ही उन नाना उत्तम कार्यों को करने के लिये आप्त होते हैं।

चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन्।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न किये मेघों को प्रकट करता है और स्वयं दिशाओं के बीच में प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष जिन स्वयं तैयार किये चतुरंग सैन्य बलों को, चारो वर्णों या चारों आश्रमों को सुव्यवस्थित रूप से बने और अच्छे रूप से आचरण किये हुए अपने अधीन देखता है, तब वह राजा प्रजा और शासन करने योग्य भूमियों के बीच उनका भोक्ता होकर सब प्रकार से प्रकाशित होता है। तब राज्य शासन करने वाले, सत्य धर्म और ज्ञान से प्रकाशित होने वाले बड़े पुरुष उससे यह प्रश्न करें कि वह जो भी दूत हमारे पास आवे वह कहां रहे? प्रमुख २ विद्वान् को किस २ पद पर स्थापित करें। इस प्रकार राजा से पूछ कर विद्वान् लोग उसी प्रकार उसका निश्चय करें।

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—जो लोग मेघ के समान सब सुखों के वर्षक, विद्वानों द्वारा पालन करने योग्य राजा के निन्दक हैं उनको हम मारें, इस प्रकार से जब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष आज्ञा का निश्चय करता है, तब उत्तम शासन में वे पुरुष दण्ड से भयभीत होकर नाना प्रकार से झुक जाते हैं। तब राजा की कामना योग्य राज्यव्यवस्था नाना प्रकार के वश करने के

उपायों से संघ बनाकर मिले हुए राष्ट्र के मनुष्यों को पाले पोसे, प्रसन्न करे और आगे बढ़ावे। इति चतुर्थो वर्गः॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६॥

भा०—शत्रुहन्ता सेनापति राष्ट्र के धारण और शत्रुसंहरण के बलों का प्रयोग करे। स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रम को, रथ को सारथी के समान सदा संचालित करें। राजा जिस प्रकार सब प्रकार की प्रजा को धारण करता है उसी प्रकार वेद की वाणी का पालक विद्वान् संसार के पदार्थों को एकत्र करने वाली वेदवाणी का ज्ञान करे। सत्य वाणी, सत्य व्यवहार के द्वारा सामर्थ्यवान्, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त राजा, विविध सामर्थ्यों सहित, दानशील और तेजस्वी पुरुषों के पास जावे। इस प्रकार हे पुरुषो! आप लोग सुसभ्य, सुशिक्षित, सत्कर्मी होकर यज्ञ अर्थात् परस्पर सत्संग से और लेन देन के व्यवहार से प्राप्त होने योग्य सेवनीय राष्ट्र के ऐश्वर्यों को प्राप्त करो।

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७॥

भा०—हे उत्तम धनुर्धारी पुरुषो! आप लोग ढाल के बल पर भूमि को अपने धारण सामर्थ्यों से प्राप्त कर अपने वश करने में समर्थ होवो। और हे शिल्पीजनो! आप लोग शिल्पों द्वारा चर्म में से बाणों को दूर फेंकने वाली धनुष की डोरी प्राप्त करो। जो युवक कुमारों को अपने अधीन धारण करें उन ऐसे उपदेश करने वाले विद्यावृद्ध माता पिताओं को अपना प्रमुख स्वीकार करो। उत्तम अश्व से उत्तम अश्व को तैयार करो। उत्तम अश्व से अश्व सन्तति प्राप्त करो। रथ जोड़ कर दिव्य भोगों, गुणों, समस्त उत्तम व्यवहारों और विजयशील संग्राम कार्यों को प्राप्त करो।

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८॥

भा०—हे उत्तम धनुर्धर वीर पुरुषों के शिक्षण में कुशल पुरुषो! आप लोग अपने अधीन पुरुषों को ऐसा उपदेश देते रहा करो कि ऐसा जल पान किया करो। यह रोगों से छुड़ाने और शरीर को शुद्ध कर देने वाला औषधिरस है इसे निश्चय ही पान किया करो। यदि वह भी पान न करना चाहो तो उन सबसे भी उत्तम सोम आदि रस में ही सदा अनन्दित रहो।

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों में एक विद्वान् यही उपदेश करे कि जल ही बहुत गुणों से युक्त हैं, वह जलों की विद्याओं का ही उपदेश करे। दूसरा व्यक्ति ऐसा उपदेश किया करे कि अग्नि ही बहुत गुणों से युक्त है। वह अग्नि के ही गुणों का उपदेश किया करे। और आप में से एक बहुत से शिष्यों को शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या का या भूमि की विद्या का ही अच्छी प्रकार प्रवचन किया करे। इस प्रकार आप लोग सत्य ज्ञानों का उपदेश करते हुए, ज्ञान और ऐश्वर्यों का भोग करने वाले या ज्ञान जिज्ञासु मानवों को नाना विभागों में बांट दो।

श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः १०

भा०—विद्वान् पुरुषों के कार्यों का वर्णन। एक विद्वान् पुरुष जल को यन्त्र द्वारा नीचे से ऊपर निकालता है, और दूसरा विद्वान् श्रवण करने योग्य उत्तम वाणी को नीचे की तरफ हृदय या नभिदेश से उठा कर ऊपर सुख द्वारा प्रकट करता है। अथवा श्रवण योग्य गौ को चराता है। र एक पुरुष हल की फाली से या अन्नोत्पादक क्रिया से प्राप्त हुए मन

को उत्तम लगने वाले अन्नादि को पैदा करता या उसे रुचिर बनाता है। एक विद्वान् अस्त होते सूर्य के शक्तिदायक अंश को उससे प्राप्त करता है। बहुतों की रक्षा करने में समर्थ विद्वानों के हित के और जो कुछ भी पदार्थ हैं उन्हें पालक माता और पिता दोनों प्राप्त कराना चाहें।

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुषो ! आप लोग ऊंचे स्थानों पर इस पशुवर्ग के हितार्थ घास आदि चरने योग्य पदार्थ उत्पन्न करो, और नीचे के गहरे स्थानों पर उत्तम कर्मों की इच्छा या परोपकार से प्रेरित होकर जल एकत्र करो। घर में जब जाकर रहो या सोवो तब सदा अग्राह्य पुरुष के दुश्चरित्र का कभी अनुमान मत करो।

सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥

भा०—हे पुरुषो ! जब परस्पर प्रेम से मिल कर प्राणियों और पुत्रों को प्राप्त होवो, उस समय आप लोगों के माता पिता कहीं भी रहें, इसकी चिन्ता मत करो। जो आप लोगों के बाहु को पकड़े, जो तुम्हारी क्रियाशक्ति पर प्रतिबन्ध लगावे उसको तुम बुरा कहो, और जो तुम्हारे लिये उत्तम रीति से उपदेश करे उसके लिये प्रिय वाणी बोला करो।

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३॥

भा०—हे सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले सूर्य किरणों के समान देदीप्यमान !, हे सुख से शयन करने हारे, निश्चिन्त विद्यार्थी जनो ! आप लोग उस परम ज्ञान के सम्बन्ध में सदा प्रश्न किया करो। तुझ से कुछ भी न छिपा रखने योग्य हे आचार्य ! हमें यह सब ज्ञातव्य विषय कौन बतला सकता है ?। तब अपने गुरु के अधीन बसने वाला विद्यार्थी ही

अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर ले जाने हारे, ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य को कहे कि आप एक वर्ष में ही यह समस्त ज्ञान हमें विशेष रूप से व्याख्यान कर दें।

द्विवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥६॥

भा०—हे बलवीर्य और ज्ञान का पतन या विनाश न होने देने हारे विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार वायुगण सूर्य के बल से चलते हैं, और अग्नि भूमि के आश्रय से बढ़ती, और यह वायु अन्तरिक्ष का आश्रय लेकर चलता है, और जिस प्रकार सर्व श्रेष्ठ राजा समुद्र के समान गम्भीर आप्तजनों के साथ या मेघ आर्द्र करने वाले या भूतल से उठते हुए जलों के साथ गमन करता है, उसी प्रकार तुमको चाहने वाले तथा बल-वीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाले विद्वान् लोग प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१६२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ११, २१, भुरिक त्रिष्टुप् । १२ स्वराट् त्रिष्टुप् । १३, १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५, १६, २२ स्वराट् पङ्क्तिः । १६ विराट् पङ्क्तिः । ३ निचृज्जगती ॥ द्वाविंशर्चं सूक्तम् ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हमारा मित्र, श्रेष्ठ पुरुष, शत्रुओं का नियन्ता न्यायाधीश, वायु और जीवनप्रद, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुषों के बीच निवास करने वाला मेधावी, और अन्य विद्वान् या शत्रुनाशक सैनिक लोग हमारे उस विजयशील पुरुषों में प्रसिद्ध, वेग से आगे बढ़ने हारे पुरुष के बलों और

सामर्थ्यों की कभी निन्दा और उपेक्षा न करें। जिस बलवान्, ज्ञानवान्, वेगवान्, समवाय करने में कुशल पुरुष के नाना सामर्थ्यों का हम अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं। अध्यात्म में—आत्मा और परमात्मा दोनों शक्ति और ज्ञान सामर्थ्यवान् होने से 'वाजी' हैं, इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्ति वाला होने से 'देवजात' है। व्यापक होने से 'सप्ति' है। हम उसके गुण वर्णन करें और मित्र, उत्तम ज्ञानी और धनी पुरुष राजादि हमारी उपेक्षा और अपमान न करें। प्राण, उदान, समान, और इन्द्रियों की शक्ति और अन्यान्य उपप्राण भी हमें न छोड़ें। (यजु०। अ० २५। २५)

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति। सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः॥ २॥

भा०—जब अभिषेक तथा धनैश्वर्य से सुशोभित पुरुष की दी हुई और मुख्यरूप से प्राप्त वृत्ति को अधीनस्थ पुरुष प्राप्त करते हैं, तब उत्तम प्रश्नशील विद्यार्थी के समान उत्तम शोभा से युक्त, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, सब पदार्थों और राष्ट्र में बसे प्राणियों और अधिकारों का स्वामी, सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ, सेनापति और पोषक स्वामी दोनों को प्रिय लगने वाले तथा जल और अन्न के समान सबको पालन करने वाले बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति॥ ३॥

भा०—यह विजयी तथा व्यवहारकुशल समस्त विद्वान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ शत्रुओं का छेदन भेदन करने हारा वीर पुरुष, वेगवान् अश्वसैन्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के साथ, सर्वपोषक सूर्य और पृथिवी के तेज और ऐश्वर्य को भोग करने वाला होकर, सब से आगे २ सेनापति के मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है, तब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ही विद्वान्

जन और अश्व के सहित सर्वप्रिय, सबके संमुख देने योग्य प्रधान पद को प्राप्त इस नायक को उत्तम कीर्त्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये परिपुष्ट करता है।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति। अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

भा०—जब उत्तम अन्न के समान श्रेष्ठ, तथा विद्वानों का भार अपने ऊपर लेकर उनको उत्तम मार्ग पर ले जाने हारे, अश्व के समान बलवान् सेनापति मननशील पुरुष तीन प्रकार से करते हैं, इस अवसर पर सर्व-पोषक पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ भोक्ता, तथा शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ पुरुष, विद्वानों और तेजस्वी विजयाभिलाषी पुरुषों के प्रति सब के संयोजक सेना-पति को एक दूसरे का परिचय कराता हुआ प्राप्त हो। वर्ष की तीनों ऋतुओं में सेनापति आदि का भ्रमण करावे और उसी अवसर पर वीर प्रधान २ प्रजापालक शासकों से उसका परिचय कराया करें।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः। तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता और ब्रह्मा ये ऋत्विज् होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र रूप यज्ञ में अधिकारों का प्रदाता, समस्त प्रजापालन के तन्त्र को चलाने-हारा महामात्र, सबको अधीन योग्यतानुसार कल पुर्जों के समान जोड़ने वाला, राजादि नायकों और विद्वान् ब्रह्मणों को मान दान आदर से सदा उत्साहित और उत्तेजित करने वाला, विद्वानों और शस्त्रास्त्र बल को अपने वश में रखने वाला, सन्मार्ग का उपदेष्टा, उत्तम मेधावी या सबकी न्यूनताओं को पूर्ण करने हारा आदि नाना अधिकारी हो। हे विद्वान् अधिकारियो! आप सब उस सुव्यवस्थित तथा उत्तम रीति से सुशोभित राजा वा राष्ट्र द्वारा, प्रजा की कुक्षियों को सब प्रकार से पूर्ण करो।

(२) अध्यात्म में सातों प्राण सात ऋत्विग् हैं। यज्ञ आत्मा है। उपासना धर्ममेघ तथा आनन्दघन में रम रम कर सब कामनाएं पूर्ण करो। इति सप्तमो वर्गः॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य प्रजा के बीच स्तम्भ के समान सर्वाश्रय राजा के पद को परिश्रम से बनाते हैं, और जो उसको अपने कन्धों पर धारण करते हैं, और जो स्तम्भ के मुख्य भाग के समान राजा के प्रधान पद को वृक्ष को वर्धकि के समान शस्त्रास्त्र संचालनों द्वारा बाधक कारणों को नाश करके बनाते हैं, और ज्ञानवान्, वेगवान्, शत्रु पर प्रयाण करने वाले अश्वसैन्य और सेनानायक के लिये परिपक्व अन्न को सब प्रकार से संग्रह करके उन तक पहुँचाते हैं, उन सभी सहोद्योगी पुरुषों का उद्यम हमें प्राप्त हो।

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥

भा०—जो पुरुष मुझ प्रजाजन के लिये मनन करने योग्य ज्ञान को धारण करता है, और जो विद्वान् और वीर तेजस्वी पुरुषों की समस्त आशाओं कामनाओं को धारण करता है, वह गुरु के समीप प्राप्त यज्ञोपवीत वाला द्विज, उत्तम ज्ञानवान् और उत्तम रीति से सबको आनन्दित करने हारा होकर हमें सदा प्राप्त हो, इसको देख कर विविध विद्याओं के वेत्ता विद्वज्जन और मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि जन सदा प्रसन्न होते हैं। उसको हम लोग विद्वानों और वीर पुरुषों के पोषण कार्य में उत्तम बन्धु रूप से बनावें।

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

भा०—जो ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष का दमन साधन, यम नियम पालन, और व्यवस्था हो, उसका दान आदि करने का धन और दण्ड बल, आदि हो, और जो इस ज्ञानी, बलवान् पुरुष की शोभा देने वाली सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक, सर्जनकारिणी या व्यवस्था निर्मात्री और जो इसके प्रमुख स्थान पर शत्रु और संकटों के काटने में समर्थ बलवान् सैन्य अच्छी प्रकार से वेतन पर नियत है, हे पुरुष! तेरे वे सब पदार्थ विद्वान् वीर पुरुषों के अधीन और उनके हित के लिये हुआ करें।

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑।
यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ९ ॥

भा०—जो भाग विजयी राष्ट्र का रोष का कार्य करने वाली सेना खा जाती है, और जो अंश तापदायक और शत्रु सन्तापक वज्र आदि शस्त्रास्त्र बल में लग जाता है, और जो भाग शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले वीर पुरुष के हाथों अर्थात् हनन करने के साधनों और उपायों में लग जाता है, जो राष्ट्र के ऐश्वर्य का अंश छिद्र रहित राष्ट्र प्रबन्ध कार्यों में और प्रबन्धकर्ताओं में व्यय हो जाता है, वे सब कार्य तुझ राष्ट्र और राष्ट्रपति के देवों के अधीन ही हुआ करें।

यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्याप॒वाति॒ य आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धो अस्ति॑।
सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तारः॑ कृण्वन्तू॒त मेधं॑ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥१०॥८॥

भा०—जो वध करने योग्य शत्रु पेट के भीतर पड़े अधकचरे अन्न के समान नाशक विभाग के हाथ से निकल भागे, और जो रोगकारी हिंसक जन्तुओं का परपीड़न का कार्य है, उपद्रव को शान्त करने वाले विद्वान् और वीर पुरुष उत्तम उपाय से उसका विनाश करें। और हिंसाकारी वर्ग को खूब सन्तप्त करें। जिससे वह दुष्टता त्याग सौम्य हो जाय। विशेष देखो यजु० २५। ३३॥ इत्यष्टमो वर्गः॥

यत्ते गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति ।
मा तद्भूम्यामा श्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥११॥

भा०—हे राष्ट्र ! शूल अर्थात् हल आदि द्वारा तोड़े फोड़े गये, तथा सूर्य आदि से संतापित परिपक्व खेतों से जो भाग अलग हो वह भूमि पर न पड़ा रहे, और वह तिनकों घासों में भी न मिल जाय। प्रत्युत वह अन्नादि के इच्छुक विद्वान् और विद्या और विजय के इच्छुक विद्यार्थियों और वीरों को प्राप्त हो। देखो यजु० अ० २५। ३४॥

ये वा॒जिनं॑ परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ई॑मा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑ ।
ये चार्व॑तो मां॒सभि॒क्षामु॒पास॑त उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

भा०—जो विद्वान् लोग अन्नादि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब पके खेतों वाला देखते हैं, और जो इसके विषय में कहते हैं कि वह खेत खूब उत्तम पके धान के गन्ध से युक्त है इस पके खेत को काट के ले जाओ, और जो इस भोगयोग्य राष्ट्र के मन को लुभाने वाले अन्न ऐश्वर्यादि की याचना करते हैं उनका उद्यम और उपदेश हमें प्राप्त हो। देखो (यजु० २५। ३५)

यन्नीक्ष॑णं मां॒स्पच॑न्या उ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्ण आ॒सेच॑नानि ।
ऊ॒ष्म॒ण्या॑पि॒धाना॑ च॒रूणा॑म॒ङ्काः सू॒नाः परि॑ भूष॒न्त्यश्व॑म् ॥ १३ ॥

भा०—जो मन को अच्छे लगने वाले नाना अन्नों और फलों का परिपाक करने वाली और खोदी जाकर उत्तम फल देने वाली भूमि की निरन्तर देख भाल करता है, और जो सब प्राणियों की पालना करने वाले रस या जल से सेचन करने के साधन कूप, तडाग आदि स्थान हैं, और जो विचरने वाले पथिकों के निमित्त ग्रीष्म काल में सुखकारी आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं, और जो स्थान २ पर अङ्कित मार्ग और स्नान करने के तीर्थ आदि स्थान हैं, वे सभी सुखजनक पदार्थ अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को सुभूषित करते हैं। (यजु० २५। ३६)

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्चं पपौ यच्चं घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

भा०—वे सब तेरे काम राष्ट्र में जाने आने के मार्ग, राजसभा आदि के अधिवेशन होने के स्थान, पदाधिकार के योग्य नियुक्ति, प्रजा के मान योग्य जल और अन्न इन सबका निरीक्षण विद्वान् पुरुषों के अधीन रहे। (यजु० २५ । (२८)

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥६॥

भा०—हे राष्ट्र ! विषैले धूम से पीड़ित करने वाले तथा उद्वेजक गन्ध वाले अग्निमय अस्त्र प्रयोग तुझे कभी पीड़ित और दुःखित न करें। खूब भड़कती हुई हंड़िया अर्थात् बारूद से भरा बम्ब आदि तुझे कभी उद्विग्न न करें। प्राप्त हुए, सबको प्रिय, दानशील, परिश्रमी, राष्ट्रपति को, दानशील और विजय के इच्छुक जन स्वीकार करते हैं। इति नवमो वर्गः ॥

यदश्वाय वासं उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

भा०—राष्ट्रपति के आदर के लिये उत्तम वस्त्र बिछाते हैं, ऊपर पहनने का लबादा सर्वोत्तम गृह और अध्यक्ष पद देते हैं। सुवर्ण के आभूषण, प्रजाओं का मिल कर उत्तम से उत्तम अभिनन्दन या वस्त्र आदि उत्तम पदार्थ का देना, और पैरों का रखने का पीढ़ा आदि ये सब प्रसन्न करने के पदार्थ उस बलवान् पुरुष को विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच व्यापक अधिकार वाला और व्यवस्थित करते हैं।

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार तेज घोड़े को एड़ी या चाबुक से पीड़ित कर ठीक मार्ग पर चलाया जाता है, उसी प्रकार जब बिना विचारे

शीघ्रता से कार्य कर डालने वाले तेरे अवसाद अर्थात् पथभ्रष्ट होने पर कोई अपने बल से या पार्ष्णिग्राह अर्थात् पीछे से आक्रमण करने वाली शत्रुसेना से, या अपनी बड़ी शासन शक्ति से तुझे पीड़ा पहुँचावे तो तेरी उन सब त्रुटियों को मैं विद्वान् पुरोहित, यज्ञों में जैसे हवियों को वेद मन्त्र सहित स्रुचों से दिया जाता है उसी प्रकार, महान् बल और वेदज्ञान और ऐश्वर्य द्वारा दूर करूं।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

भा०—राष्ट्र को अपने बल से धारण करने वाले वीर्यवान् पुरुष का शासन चक्र, विद्वानों के बीच सुप्रबन्धक, तथा ऐश्वर्यवान् व्यापक राष्ट्र के ३४ पसुलियों के समान चौंतीसों विभागों को अच्छी प्रकार सुसंगत करे। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग राष्ट्र के सब अंगों को छिद्र अर्थात् त्रुटि रहित रखो। और सब काम और सब ज्ञान त्रुटि रहित सम्पादन करो। पुनः २ घोषणा करके राष्ट्र के अंगों को विभक्त करो। प्रजा को विविध विद्याओं में शिक्षित करो।

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९॥

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्र के प्रजापति से तुलना करते हैं। तेजस्वी सूर्य के आशुगामी, काल का विभागकर्त्ता एक पूर्ण संवत्सर है, उसके भी दो अयन नियन्ता होते हैं। उसी प्रकार ऋतु भी संवत्सर को विभक्त करता है उस ऋतु के भी दो दो मास नियामक हैं। उसी प्रकार हे प्रजापालक राष्ट्रपते ! तथा सबके भोक्ता तेरे ऊपर एक सर्वोपरि ज्ञानवान् पुरुष तुझे विशेष रूप से शासन करने वाला हो, और तेरे अधीन दो शासक प्रजा को नियम रखने वाले, देह में दो भुजाओं के समान नियामक हों। तेरे राष्ट्रिय अंगों में से जिन २ को ज्ञानवान् नियन्ता पुरुष

के अधीन करूं, उन २ अंगों को ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के अधीन अच्छी प्रकार वश करूं।

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः॥ २०॥

भा०—हे राजन्! शस्त्रबल तेरे शरीर पर आघात न पहुँचावे। हे विद्वन्! शासन करने में अकुशल पुरुष लोभी होकर तेरे दोषों की उपेक्षा करके शस्त्रादि से देह के अंगों को कभी छिन्न भिन्न या पीड़ित न करे। अर्थात् तुझे सच्चा शिक्षक प्राप्त हो। हे राजन्! शासन में अकुशल लोभी पुरुष तेरे देहों के अवयवों को व्यर्थ न काटे फाटे।

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य॥२१॥

भा०—हे राष्ट्र! इस प्रकार सुव्यवस्था से तू कभी न मरे, न पीड़ित हो। सुख से गमन करने योग्य मार्गों और उपायों से उत्तम व्यवहारों और योद्धाओं को प्राप्त हो। रथ में हृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान दो योग्य नायक नियुक्त हों। ऐश्वर्यवान् ज्ञानी पुरुष उपदेष्टा आज्ञापक की धुरा अर्थात् मुख्य पद पर उपस्थित हो।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम्। अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् २२।१०

भा०—ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष, हमारे लिये, उत्तम गौओं से युक्त, पृथिवी से उत्पन्न अन्नादि समृद्धि से युक्त, उत्तम अश्वादि से समृद्ध, और सबको पुष्ट करने वाले ऐश्वर्य, को और हममें अनाचार अन्याय और अधर्म अभाव को, तथा पुरुषत्व युक्त पुत्रों को उत्पन्न करे। वह अखण्ड बल से युक्त होकर राष्ट्र का भोक्ता एवं अन्नादि ग्राह्य पदार्थों

से समृद्ध होकर हमारे धन, बल, वीर्य और क्षात्र बल को प्राप्त करे। इति दशमो वर्गः ॥

[१६३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अश्वोऽग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६,७, १३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिः ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१॥

भा०—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से उत्पन्न होने वाले शिष्य का वर्णन करते हैं। हे ज्ञानवान् पुरुष ! जो तू समुद्र या महान् आकाश से उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के समान ज्ञानों के सागर और ज्ञानों में परिपूर्ण गुरु से द्विजन्मा रूप में उत्पन्न होता हुआ, सबसे उत्तम पद पर विराज कर उपदेश करता है। और बाज के दोनों बाजू जिस प्रकार बलवान् होकर आकाश के पार जाने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् आत्मा या पुरुष के वश करने वाले दोनों ज्ञान और कर्म उसको अपार भवसागर से पार करने में समर्थ हों। हरिण की बाहुएं जिस प्रकार जिस प्रकार वेग से वन अदि में उसकी रक्षा करने में समर्थ होती हैं उसी प्रकार सर्वदुःखहारी आत्मा की अज्ञान संकटों और विपक्षियों को दूर करने और पीड़ित करने वाले देह और मन के दोनों बल प्राप्त हों। तभी ऐसा तेरा मातृगर्भ और आचार्यगर्भ से उत्पन्न होना अति आदर योग्य एवं सफल है।

समस्त सूक्त की राजा के पक्ष में लगने वाली अर्थयोजना देखो यजु० अ० २९ । १२-२४ ॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

भा०—यम नियमों के पालन करने और उत्तम संयम कराने वाले गुरु या पिता द्वारा दिये गये इस योग्य शिष्य को, अज्ञान सागर से पार उतरने में समर्थ, ज्ञान कर्म और उपासना तीनों में सिद्ध, एवं तीनों वेदों में पारंगत आचार्य सन्मार्ग में लगावे। सबसे से श्रेष्ठ अज्ञान का नाशक आचार्य इस पर शासन करे। और गौ अर्थात् वेद वाणी को धारण करने वाला आचार्य उसको व्यापक विद्या प्राप्त करावे और वश करने वाली मर्यादा को अपने अधीन रखे। इस प्रकार जिन विद्वान् पुरुषों के अधीन शिष्यगण ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते हुए निवास करें वे विद्वान् जन मिल कर सूर्य्य के समान तेजस्वी गुरु से ही सर्वविद्या के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मचारी को उत्पन्न करते और प्राप्त करते हैं। (राज्यपक्ष में देखो यजु० २९ । १३)

असि॑ य॒मो अस्या॑दि॒त्यो अ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑ ।
असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त आ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥३॥

भा०—हे ब्रह्मचारिन् ! तू यम नियमों का पालन करने वाला, इन्द्रियों को दमन करने हारा होने से 'यम' है। तू भूतल से जल ग्रहण करने वाले सूर्य के समान आचार्य से ज्ञानग्रहण करने वाला, और 'अदिति' अर्थात् माता, पिता, आचार्य का पुत्र और शिष्य होने से भी 'आदित्य' है। हे अज्ञान के नाशक ! तू पालन करने योग्य ब्रह्मचर्यव्रत के पालन से तीनों वेदों में पार करने वाला, और पुत्र तथा शिष्य रूप से माता पिता गुरु को भी इह और पर दोनों लोकों में तारने हारा है। तू अपने प्रेरणा करने वाले आचार्य के साथ विशेष प्रकार से स्नेहवान् और विद्यासम्बन्ध से सम्बद्ध है। ज्ञान को प्राप्त करने के लिये तेरे ऊपर तीन बन्धन कहे गये हैं अर्थात् पितृ ऋण, देव ऋण, और ऋषि ऋण ये तीनों ही बन्धन हैं। उनसे बद्ध ही 'त्रित' है। राष्ट्र और राजा के पक्ष में देखो यजुर्वेद (२९ । १४)

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! ज्ञान प्राप्त करते हुए तेरे ऊपर विद्वान् तीन बन्धन बतलाते हैं। इसी प्रकार कर्मों के करने और ज्ञानों के धारण करने में भी तेरे तीन ही बन्धन हैं, कर्म, कर्मफल और करण। आकाश के समान महान् परमेश्वर के बीच रहते हुए तेरे तीन कर्त्तव्य हैं, स्तुति, प्रार्थना और उपासना या श्रवण, मनन और निदिध्यासन। हे ज्ञानवन् आचार्य ! और तू सर्व श्रेष्ठ, और सब कष्टों का वारण करने-हारा होकर मुझ शिष्य को वहां लेजा, जिस स्थान में कि तेरा सबसे उत्तम जन्म या स्वरूप होता हुआ बतलाते हैं। राजा आदि पक्ष में (देखो यजु० अ० २९ । १५)।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५॥११॥

भा०—हे बलवीर्यसम्पन्न ! तेरे लिये ये पापों को दूर करने और आत्मा को शुद्ध करने वाले व्रत आदि नाना उपाय हैं। और ये शान्ति का ज्ञानप्रदान करने वाले तथा तेरी सेवा करने योग्य उपास्य गुरु के शान्ति-दायक उपदेश करने वाले ज्ञानवचनों या आचरणों के खजानों के समान ज्ञानभण्डार हैं। इस गुरु के अधीन इस आश्रम में तेरे योग्य सुख और कल्याणकारिणी रस्सियों के समान उत्तम मर्यादाओं और व्यापक विद्याओं या वाणियों को मैं साक्षात् देख रहा हूं, जिन का कि सत्यज्ञान और वेद की रक्षा करने वाले विद्वान् जन सब प्रकार से पालन करते हैं। (राजा पक्ष में यजु० २९ । १६) 'शफाः'–शं फणन्ति इति शफाः। इत्येका-दशो वर्गः॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! मैं तेरी आत्मा को ज्ञान और मनन शील चित्त से अति समीप होकर तेरी सेवा और उपासना द्वारा जान लूं, अर्थात् गुरु के हृदयगत ज्ञान को शिष्य समचित्त होकर प्राप्त करे। और हे आचार्य ! दिन के समय में गमन करते हुए और सब पर ऐश्वर्यवान् स्वामी के समान आचरण करते हुए सूर्य के समान तेजस्वी तेरे रक्षण को मैं प्राप्त करूं। और शिर के समान तेरे मुख्य पद को रजोदोष और हिंसा के भावों से रहित तथा सुख से गमन करने योग्य मार्गों से विचरने वाला देखूं। (राजपक्ष में —यजु० २९ । १७) । (२)

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७॥

भा०—हे शिष्य ! इस गुरु गृह में वेदवाणी के प्राप्त करने के अवसर में और योग द्वारा इन्द्रियगण को दमन करने के अवसर में, समस्त कामनाओं को विजय करने की इच्छा करते हुए तेरे सबसे उत्तम स्वरूप को मैं देखूं। जब मनुष्य तेरे भोजन करने योग्य पदार्थ को अनुकूल होकर आदर से प्राप्त करावे तभी तु उत्तम रीति से ग्रसने वाला, भूख से युक्त होकर उत्तम अन्नादि ओषधियों का सेवन कर। राजा के पक्ष में देखो (यजु० । २९ १८)

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

भा०—हे अश्व के समान बलवान् पुरुष ! जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ, मनुष्य, गौ आदि सम्पत्ति, कन्याओं का सौभाग्य, और अनुगामी रक्षकों के दल चलते हैं, विजयेच्छु लोग अश्व के बल को जानते हैं, उसी प्रकार तेरे पीछे २, तेरे अधीन रथ और रमण करने योग्य पदार्थ हों, तेरे अधीन साधारण जन हों, तेरे अधीन गौ आदि पशु हों, तेरे अधीन, तेरी रक्षा में ही तुझे चाहने वाले स्त्री, पुरुषों का सौभाग्य और ऐश्वर्य सुरक्षित

रहे। तेरे अधीन नाना व्रताचरण करने हारे शिष्यगण या शिष्य समूह तेरे ही मैत्रीभाव को प्राप्त हों। और विद्वान् और दानशील पुरुष भी तेरे बल वीर्य का उत्तम आदर करें, उसका महत्व जानें। राजपक्ष में देखो (यजु० २९। १९)

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥

भा०—इस विद्वान् के प्राप्त होने योग्य ज्ञान के साधन ज्ञानमार्ग में वेग से जाने वाले हों। सुवर्णादि को शिर पर रखने वाला ऐश्वर्यवान् धनाढय पुरुष भी इसके नीचे की श्रेणी का है। और जो आचार्य उससे भी अधिक श्रेष्ठ होकर ज्ञानवान् शिष्य के भी ऊपर अधिष्ठाता होकर विराजता है उसे अन्नादि भोग्य पदार्थों को दानशील पुरुष प्राप्त करावें। राजा के पक्ष में—देखो (यजु० २९। २०॥)

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥१०॥१२॥

भा०—अश्व जिस प्रकार पिछले भागों पर कशा द्वारा प्रेरित होकर मध्य भागों को मिलाए हुए, शीघ्र रण में जाने वाले, वेगवान् होकर हंसों के समान पंक्ति दल बनाकर दौड़ते हैं, विजयप्रद संग्राम को जाते हैं, उसी प्रकार योगाभ्यासी विद्वान् जन, गुरुओं द्वारा बतलाये सिद्धांतों और उद्देश्यों को धारण करके, आदित्य के समान प्रमुख पुरुष को अपने बीच में रखते हुए, आने वाली बाधाओं को नष्ट करते हुए, ज्ञानमार्ग में जाने वाले, सब विघ्नों को पार कर जाने वाले, और निरन्तर आगे २ ही बढ़ने वाले आत्मावान् हों। जब वे ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त होने में सब से उत्तम पार पहुँचा देने वाले मार्ग अथवा सब बंधनों को फेंक देने वाले मोक्षव्रत को प्राप्त हों तब वे आनन्द सुख को भोगने और परम मार्ग देवयान को जाने वाले परम हंस के समान अपने व्रत कर्मों और भक्ति

में दृढ़ता से आश्रय पाकर निरन्तर यत्न करें। अश्वों और वीरों के पक्ष में देखो (यजु० २९ । २१) । इति द्वादशो वर्गः ॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तेरा शरीर वेगवान् अश्व के समान शीघ्रता से जाने में समर्थ और बलवान् हो। तेरा चित्त वायु के समान वेग से युक्त हो, तेरे पर्वत शिखरों के समान दूर से सबको दीखने योग्य, कर्म, यज्ञ आदि, कूप, बगीचे, और भवन आदि परोपकारी पदार्थ और उच्च शिखरों वाले बहुत से प्रासाद, जंगल के दुर्गम स्थानों में भी विविध रूप से स्थिर हों। देखो (यजु० अ० २९ । २२)

उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।
अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्यानु॑ प॒श्चात्क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥१२॥

भा०—सर्व व्यापक ज्ञानवान् आत्मा, विद्वानों को प्राप्त होने योग्य ज्ञान से देदीप्यमान होता हुआ स्तुति को प्राप्त होता है। वह स्तुति करने योग्य है। वह जन्म रहित होने से 'अज' है। वह सबका प्रबन्धक और बन्धु होने से 'नाभि' है। वही सब यज्ञों में पुरोहित के समान सब से आगे मुख्य पद या उपास्य पद पर प्राप्त कराया जाता है। उसी को लक्ष्य करके स्तुति कर्त्ता विद्वान् जन आगे बढ़ते हैं। विद्वान् जन उस परमात्मा की ही स्तुति करते, उसी को प्राप्त करने का यत्न करते हैं। राजा के पक्ष में देखो (यजु० २९ । २३)

उप॒ प्रागा॒त्पर॒मं यत्स॒धस्थ॒मर्वाँ॒ अच्छा॑ पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।
अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या अथा शा॑स्ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि १३।१३

भा०—ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष जो सबसे उत्तम स्थान को प्राप्त करे वह पिता और माता और विद्वान् पुरुषों को भी प्राप्त होकर उनकी उत्तम प्रकार से सेवा करने वाला होकर आगे बढ़ता है। तब विद्या आदि देने वाले

मान्य पुरुष के आदरार्थ श्रेष्ठ धन देने की भी इच्छा करे। अध्यात्म में एवं राजपक्ष में—देखो (यजु० अ० २९ । ३४)। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१६४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ देवता—१—४१ विश्वेदेवाः । ४२ वाक् । ४२ आपः । ४३ शकधूमः । ४३ सोमः ॥ ४४ अग्निः सूर्यो वायुश्च । ४५ वाक् । ४६, ४७ सूर्यः । ४८ संवत्सरात्मा कालः । ४९ सरस्वती । ५० साध्याः ५१ सूर्यः पर्जन्यो वा अग्नयो वा । ५२ सरस्वान् सूर्यो वा ॥ छन्दः—१, ९, २७, ३५, ४०, ५० विराट् त्रिष्टुप् । ८, ११, १८, २६, ३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४९ निचृत् त्रिष्टुप् । २, १०, १३, १६, १७, १९, २१, २४, २८, ३२, ५२, त्रिष्टुप् । १४, ३९, ४१, ४४, ४५ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२, १५, २३ जगती । २९, ३६ निचृज्जगती । २० भुरिक् पङ्क्तिः । २२, २५, ४८ स्वराट् पङ्क्तिः । ३०, ३८ पङ्क्तिः । ४२ भुरिग् बृहती । ५१ विराडनुष्टुप् ॥ द्वापञ्चाशदृचं सूक्तम् ॥

(समस्त सूक्त देखो अथर्व० का० ९ । सू० ९, १०)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

भा०—सब पदार्थों का सेवन करने वाले, ज्ञानवान् या वयोवृद्ध, अन्नादि भोजन ग्रहण करने वाले देहवान् जीव का, भरण पोषण करने वाला, बीच में रहने वाला, अन्नादि खाने वाला जाठर अग्नि है। अथवा आत्मा और इन्द्रियों के बीच में स्थित मन सबका भोक्ता होकर विद्यमान है। और तीसरा पोषक तत्व सब अंगों में तेज और बल का सेचन करने वाला आत्मा है। मैं साधक शिरोगत सात मूर्धन्य प्राणों को धारण करने वाले, और शरीर के भीतर प्रविष्ट सब अंगों की प्रजा को राजा के समान पालना करने वाला आत्मा का साक्षात् करता हूं। (२) परमेश्वर पक्ष में—समस्त विश्व को वमन कर देने, अपने में से उगल देने, या रचनेहारा

वा परमसेव्य परमेश्वर 'वाम' है। अपने में ले लेने हारा होने से वह 'होता' है। सर्व पालक होने से 'पलित' है। कर्मफलों का भोक्ता जीव उसके मध्यम भ्राता के समान है। देह के बीच में रहने से 'मध्यम' है। इसका तीसरा भाई 'घृत' अर्थात् अन्न, ज्ञान और वीर्य का सेचन, दान, और बर्षण करने वाला, आचार्य, दाता और वीर्य से युक्त सदेह पुरुष है। इसी पुरुष में सात पुत्रों से युक्त प्रजापति के समान सप्त प्राणों के पिता प्रजापति का स्वरूप साक्षात् करता हूं।

सुप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

भा०—वह आत्मा से संयुक्त देह एक आत्मा रूप रथी से युक्त रथ के समान है। उस देह रथ में सात गौण प्राण जुतते हैं, और एक ही मुख्य प्राण गाड़ी में लगे अश्व के समान बलवान् और कर्म फलों का भोक्ता आत्मा धारण करता और उसे चलाता फिराता है। वह आत्मा स्वयं पूर्व कहे सातों प्राण रूप अश्वों के नामों वाला है। देखने से आत्मा ही चक्षु और सूंघने से वही नाक, सुनने से वही कान कहा जाता है। वह कर्त्ता शरीर में तीन गुण, या वात, पित्त, कफ तीन धातु या अग्नि, जल, वायु तीन तत्वों द्वारा बंधा होने से 'त्रिनाभि' है। वह कभी नाश को प्राप्त न होने से 'अजर' है। उसके चैतन्य के लिये दूसरा कोई सञ्चालक कारण उपेक्षित नहीं होने से वह 'अनर्वा' है। वह स्वयं सञ्चालक होकर अन्यों से सञ्चालित नहीं होता। जिसके आश्रय ये सब प्राणि गण स्थिर हैं। (२) सूर्य सप्तचक्र रथ है। गतिमान् होने से वह 'रथ' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। सात ग्रह उसमें लगते हैं। वह सातों को धारण करता और नमाता है। स्वयं अपने, ग्रह और उपग्रह तीनों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। अथवा तीनों लोकों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। ध्रुव होने से अजर या अचर है। स्वतः गतिमान् होने से 'अनर्वा' है।

ये सब पृथिवी आदि लोक उसी पर आश्रित हैं। (३) परमेश्वर पक्ष में—यह परमेश्वर सबका सञ्चालक होने से 'रथ' है। उसको सातों चित्त भूमियों पर स्थित साधक जन योग द्वारा साक्षात् करते हैं वह व्यापक होने से 'अश्व' है। वह सातों के प्रति, पुत्रों के प्रति, माता के समान अमृत रस पान के लिये नमता है अतः 'सप्तनामा' है। तीन लोकों, प्रकृति के तीनों गुणों को बांधने वाला होने से 'त्रिनाभि' है। उसमें ही समस्त लोक आश्रित हैं। इसी प्रकार संवत्सरात्मक चक्र में अधिक मलमास सहित सात ऋतु हैं। सूर्य एक अश्व है। वह सात किरणों को नमाने या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला है। तीन ग्रीष्म, वर्षा, शरद् रूप में बद्ध है। विशेष देखो (अथर्व० का० ९। सू० ९। २॥)

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सात मुख्य चक्रों वाले महायन्त्र के चलाने के लिए उसमें प्रत्येक चक्र पर एक २ अध्यक्ष इस प्रकार सात अध्यक्ष सञ्चालक नियत हों, और उनके अधीन सात अश्व या प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उस वेगवान् यन्त्र को सञ्चालित करें, और उसमें सात अपने ही बल से चलने वाले कलापुञ्ज भली प्रकार चलते हों, जिन में गमन करने वाले यन्त्रों के पृथक् २ सात स्वरूप या सात प्रकार के यन्त्र स्थापित हों, उसी प्रकार इस रमण करने के देहरूप रथ को सात मुख्य प्राण अपने वश करते हैं। वे सातों ही के भोक्ता इन्द्रिय होकर धारण कर रहे हैं। उनमें रहने वाली सात बहनों के समान सात शक्तियां सात तनू-माताएं 'स्व' अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाली शक्तियां गति कर रही हैं। जिनमें इन्द्रियों के सात स्वरूप स्थित हैं। (२) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ में पञ्चभूत महत् और अहंकार ये सात अश्व हैं, उनमें विद्यमान शक्तियां सात स्वसाएं हैं। (३) आदित्य पक्ष—में सात रश्मियां, सात

ग्रह, सात ऋतु, (४) संवत्सर पक्ष में—अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त्त ये सात कालावयव हैं । स्वयं गतिमान् होने से, या 'स्वः' नाम तेज-तापमय सूर्य से प्रेरित होने से रश्मि 'स्वसा' हैं । विशेष देखो अथर्व० का० ९ । ९ । ३ ॥

को द॑दर्श प्रथ॒मं जाय॑मानमस्थ॒न्वन्तं॒ यद॑न॒स्था बिभ॑र्ति ।
भूम्या॒ असु॒रसृ॑गा॒त्मा क्व॑ स्वि॒त्को वि॒द्वांस॒मुप॑गा॒त्प्रष्टु॑मे॒तत् ॥४॥

भा०—जो हड्डियों आदि शरीर के घटक पदार्थों से रहित होकर भी हड्डियों आदि से युक्त शरीर को धारण और पालन पोषण करता है, उस सबसे पहले और इस शरीर से भी पूर्व विद्यमान, और देह से प्रादुर्भूत होते हुए को कौन देख पाता है । भूमि का विकार पाञ्चभौतिक स्थूल पार्थिवांश, वायु का अंश प्राण, जल अंश रुधिर और यह जीव सभी कहां रहे । उस समय कौन जिज्ञासु होकर इस रहस्य को पूछने के लिये समस्त सर्ग के तत्व को जानने वाले के समीप जाता है । अर्थात् बहुत कम इस तत्व को पूछने वाले हैं । विशेष देखो (अथर्व० का० ९ । ९ । ४ ।)

पाकः॑ पृच्छामि॒ मन॒साऽवि॑जानन्दे॒वाना॑मे॒ना निहि॑ता प॒दानि॑ ।
व॒त्से ब॒ष्कये॒ऽधि स॒प्त तन्तू॒न्वि त॑त्निरे क॒वय॒ ओत॒वा उ॑ ॥५॥१४॥

भा०—मैं ब्रह्मचर्य, तपस्या और गुरु-उपासना द्वारा अपने देह बल-वीर्य और ज्ञान को परिपक्व करने हारा जिज्ञासु, मन से विशेष तत्वज्ञान को न जानता हुआ प्रश्न करता और ज्ञान प्राप्त करता हूं । क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष देखने योग्य, उत्तम पुत्र के निमित्त ही मानो उसके देह-घटक धातुओं को विविध रूप से विस्तृत करते हैं । विद्वानों या प्राणों के ये ही ज्ञातव्य निगूढ़ तत्व गुप्त रूप से रखे हैं । अथवा—सत्य स्वरूप, सब में बसे, वा सब को बसाने वाले आत्मा में ही विद्वान् जन सातों सोम और पाक यज्ञों को विस्तृत करते हैं । उनको न जानता हुआ मैं मन से प्रश्न करता हूं कि वह आश्रय भूत 'वत्स' कौन है ? उसके आश्रय पर सात

तन्तु कैसे फैलाये जाते हैं, उन देवों के ज्ञेय गुप्त रूप कौन से और कहां छुपे हैं ? विशेष देखो अथर्व० ९।६।९। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

अचि॑कित्वाञ्चि॒कितु॑षश्चि॒दत्र॑ क॒वीन्पृ॑च्छामि वि॒द्मने॒ न वि॒द्वान् ।
वि यस्त॒स्तम्भ॒ षळि॒मा रजां॑स्य॒जस्य॑ रू॒पे किमपि॑ स्वि॒देक॑म् ॥६॥

भा०—इस तत्वज्ञान के लिये मैं ज्ञानवान् क्रान्तदर्शी विद्वानों के समीप जाकर स्वयं कुछ भी न जानता हुआ अज्ञानी शिष्य के समान ज्ञान लाभ करने के लिये ही उस परमेश्वर या महान् शक्तिमान् के विषय में प्रश्न करता हूं। मुख्य प्राण जिस प्रकार छः गौण प्राणों पर वशी है, उसी प्रकार इन छहों लोकों को जो विशेष रूप से और विविध प्रकारों से थाम रहा है, अजन्मा, अनादि, सबके सञ्चालक उस परमतत्व के रूप में किसी एक अद्वितीय पदार्थ का उपदेश करो।

इ॒ह ब्र॑वीतु॒ य ई॑म॒ङ्ग वेदा॒स्य वा॒मस्य॒ निहि॑तं प॒दं वेः ।
शी॒र्ष्णः क्षी॒रं दु॑ह्रते॒ गावो॑ अस्य व॒व्रिं वसा॑ना उद॒कं प॒दापुः॑ ॥७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों में से जो विद्वान् पुरुष भी इस सूर्य के समान अति उत्तम कान्तिमान्, व्यापक, गतिमान्, तेजोमय हंस के समान विवेकवान् आत्मा के भीतर छुपे, निगूढ़, चिन्मय स्वरूप को भली प्रकार जानता और साक्षात् करता है वह इस आत्मा के सम्बन्ध में हमें उपदेश करे कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें तेजोमय रूप को धारण करती हुई शिर अर्थात् ऊपर की ओर से मेघ द्वारा जल वर्षण करती हैं, उसी प्रकार इस आत्मा की गोरूप इन्द्रियां शिरोभाग से क्षरणशील आनन्द रस को उत्पन्न करती हैं, और वरण करने योग्य दैहिक आवरण या विषय के स्वरूप को धारण करती हुई ज्ञान सामर्थ्य से, वृक्ष जिस प्रकार चरण भाग से जल पीते हैं, उसी प्रकार उत्तम ज्ञान का पान करती हैं। विशेष विवरण और पहेली का स्पष्टीकरण देखो (अथर्व० का० ९।९।५॥)

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८॥

भा०—जिस प्रकार माता पुत्रों के उत्पादक पुरुष को परस्पर संगम के निमित्त ऋतु के अवसर पर सेवती है, उसके समीप आती है, और पूर्व से कल्पित चित्त से उससे संगत हो जाती है, और बन्धन चाहती हुई गर्भरूप और साररूप वीर्य को धारण करने में समर्थ होकर पति से अच्छी प्रकार संगत होकर रहती है, और पति-पत्नी परस्पर विनयशील होकर परस्पर के वचन प्रतिवचन को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वेद वाक्य के तत्व को जगन्निर्मातृ माता-प्रकृति पिता-परमात्मा को ऋत अर्थात् उसके परम ऐश्वर्यमय बल में बंध कर उसका आश्रय लेती है, उसके धारण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य से वह उसके साथ सदा संगत रहती है। वह ब्रह्म के बीज से गर्भित होकर इसकी शक्ति से ओत प्रोत हो जाती है। इस तत्वज्ञानमय वचन रूप उपनिषत् को ज्ञानवान्, विनयी जन ही प्राप्त करें।

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९॥

भा०—जिस प्रकार कार्य करने में समर्थ और धारण करने में समर्थ पुरुष की शक्ति पर पुत्रों की माता एक चित्त होकर आश्रय पाती है, और अनन्तर बाह्य बाधाओं को वर्जन करने वाली सुरक्षित नाड़ियों के भीतर गर्भ स्थिर हो जाता है अनन्तर बालक उत्पन्न होकर शब्द करता है, इन सब कार्यों में विद्वान् जन तीनों लोकों में समस्त रूपों के पदार्थों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के सामर्थ्य को इस पृथ्वी के समान ही उत्पादक पालक और विश्वजननी रूप में देखा करें।

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् १०।१५

भा०—अकेला सूर्य जिस प्रकार अन्न, जल और तेज को उत्पन्न करने वाली पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु इन तीनों को, और पालन करने वाले अग्नि, वायु और विद्युत् इन तीन को धारण करता हुआ सबसे ऊपर अध्यक्ष होकर विराजता है, इसको कोई पदार्थ मन्द तेज नहीं कर सकता, उसी प्रकार एक अद्वितीय परमेश्वर ही सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों से युक्त तीन प्रकार की प्रकृति, या उत्तम, मध्यम, निकृष्ट या भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों को, और अग्नि, वायु, और जल इन तीन जीवों के पालकों को धारण करता हुआ सबके ऊपर अध्यक्ष रूप में होकर विराजता है। इसके सामर्थ्य और तेज को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि कोई भी तिरस्कृत नहीं कर सकते। विद्वान् लोग उस परोक्ष, तेजोमय परमेश्वर के सेचन के सामर्थ्य के वर्णन में, समस्त साधारण यज्ञ जनों से न सेवन करने योग्य, तथा समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली वेद वाणी को गूढ़ रूप से, भाव पूर्ण रूप से वर्णन करते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

द्वाद॑शारं न॒हि तज्जरा॑य॒ वर्व॑र्ति च॒क्रं परि॒ द्याम॒तस्य॑ ।
आ पु॒त्रा अ॑ग्ने मिथु॒नासो॒ अत्र॑ स॒प्त श॒तानि॑ विंश॒तिश्च॑ तस्थुः ॥११॥

भा०—जिस प्रकार सदागतिशील काल का बारह मास रूप अरों वाला संवत्सर चक्र सूर्य के आश्रय पर सदा घूमता रहता है, वह कभी नाश होने के लिए नहीं होता, प्रत्युत बराबर चलता है, और उससे सात सौ बीस दिन रात उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सत्य चिन्मय आत्मा का बारह प्राणरूप अरों वाला चक्र अर्थात् करणसमूह जो इच्छा करने वाले मन के आश्रय पर चेष्टा करता है, वह उसके नाश के लिये नहीं होता, प्रत्युत उसकी शक्ति के विकास के लिये ही होता है। इस देह में सात सौ बीस जोड़े अर्थात् अध्यात्मतत्व आत्मा को त्राण करने वाले उसकी शक्ति को प्रकट करने वाले होकर, हे ज्ञानवान् पुरुष ! इस आत्मा के आश्रय देह में रहते हैं। संवत्सर में दिन रात्रि के समान प्राण और रयि दो पदा

हैं उनके ही अंशांश रूप से वर्ष के दिन रात्रि के समान ३६०, ३६० कलाएं हैं। इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १-६ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

भा०—विद्वान् लोग सबके पालक कालात्मा सूर्य या संवत्सर को प्रकाशमान तेज के सर्वोत्तम स्थान में स्थित, क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष अथवा हेमन्त, शिशिर को एक मानकर पांच ऋतु रूप चरणों, और १२ मास रूप १२ स्वरूप वाला, और वर्ष द्वारा जल बरसाने वाला, बतलाते हैं। और ये दूसरे विद्वान् जीवन में आनन्द देने वाले, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन रात, मुहूर्त्त इन सात अथवा सात ग्रहों की परिधि से युक्त, छः ऋतु रूप अरों वाले वर्ष से युक्त क्रान्तिचक्र में विविध पदार्थों को दिखाने वाले सूर्य को स्थित बतलाते हैं। (२) अध्यात्म में—ज्ञान करने के पाचों साधनों का स्वामी आत्मा, 'पञ्चपाद' है। १२ प्राणों का स्वामी होने से वह 'द्वादशाकृति' है। उसको कामनाशील देह के परम स्थान हृदय में 'पुरीषी', पुरु अर्थात् प्रीणन साधन इन्द्रियों द्वारा भोग्य विषयों की इच्छा करता हुआ और इस देह रूप पुर का सञ्चालन करता हुआ बतलाते हैं। दूसरे व्यक्ति उसी को सात मूर्धन्य प्राणों के चक्र या समूह या मूल, अधिष्ठान, नाभि, मणिपूर, आज्ञा, सोम, सहस्रदल आदि सात चक्र वाले और मन सहित छहों इन्द्रिय रूप अरों से युक्त इस देह में विविध विषयों के द्रष्टा रूप से स्थित बतलाते हैं। इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १। ११ ॥ और (३) परमेश्वर ब्रह्माण्ड रूप पुर का संचालक होने से 'पुरीषी' है। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द ये ब्रह्म के पञ्चपाद हैं। पञ्चतन्मात्र, पञ्चस्थूल भूत अहङ्कार और महत् ये १२ उसी की शक्ति के द्वारा भौतिक विकास, आकार या विकार होने से वह ब्रह्म 'द्वादशाकृति है। तेजोमय परमेश्वर के परम समृद्ध रूप के निरूपण में उक्त

प्रकार ब्रह्म को सबका उत्पादक पिता पालक बतलाते हैं। दूसरे उसी को सप्ततत्व से युक्त तन्मात्रामय ज्ञानसाधनों से सम्पन्न देह पर द्रष्टारूप समष्टि चैतन्य रूप से वर्णन करते हैं।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३॥

भा०—पांच अरों वाला चक्र जो बराबर घूम रहा है उसके आश्रय में ही समस्त भुवन स्थित हैं। उसका बहुत से भार से युक्त धुरा गरम नहीं होता, वह अपनी नाभि सहित चिर काल से चला आ रहा है, तो भी वह नहीं घिसता आदित्य या संवत्सर चक्र बराबर घूम रहा है। उनमें पांच ऋतु पांच अरे हैं उसका अक्ष अर्थात् अध्यक्ष बहुत से प्राणियों का भरण पोषण करने से 'भूरिभार' है। वह संतप्त नहीं होता, जिस प्रकार चक्र का धुरा बहुत भार लेकर चलता हुआ गरमा जाता है। उसी प्रकार संवत्सर चक्र का केन्द्र तप्त नहीं होता, तो भी वह कालचक्र अनादि काल से चला आ रहा है, वह क्षीण नहीं होता। (२) अध्यात्म में—पांच इन्द्रिय पांच अरे हैं। उनसे युक्त आत्मा के आश्रय ही सब उत्पन्न होने हारे प्राणी गण स्थिर हैं, उसका अध्यक्ष आत्मा सबको धारण करके भी खिन्न नहीं होता, सर्व शक्तिमान् प्रभु अनादि काल से विद्यमान, सबका समान रूप से नाभि अर्थात् आश्रय है, वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। (३) यह समस्त जगत् चक्र भी पांच भूत रूप अरों से युक्त है, उसका अध्यक्ष भी ईश्वर है।

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार उत्तान भूमि पर दश अश्व एक ही रथ में जुड़कर उसको ढो ले जाते हैं, और हाल सहित दृढ़ चक्र बराबर घूमता जाता है, इसी प्रकार उत्तम शक्तिमान् परमेश्वर के आश्रय पर विद्यमान प्रकृति

में ही पांचों भूत और पांच उनकी तन्मात्राएं सब मिलकर दसों परस्पर सम्मिलित होकर इस जगत् को धारण करते हैं, और सर्वत्र समान रूप से नियमपूर्वक चलने हारा काल कभी नाश को न प्राप्त होकर विशेष रूप से वर्त्तता है, व्यतीत होता है। जिस प्रकार देखने वाली आंख प्रकाश से युक्त होकर आगे ग्राह्य विषय तक जाती है और अन्य इन्द्रियगण भी उसी के आश्रय रहते हैं, उसी प्रकार सर्वप्रेरक सूर्य के समान तेजोमय परमेश्वर का सब पदार्थों को दिखाने और बतलाने वाला वेद और प्रकाशमय सूर्यादि प्रकाश युक्त तेज और ज्ञान से युक्त होकर प्राप्त होता है, उसी के ऊपर सब लोक स्थित हैं। (२) अध्यात्म में—सर्ववशकारी प्राण, सबसे ऊपर विद्यमान चिति शक्ति के आधार पर चल रहा है और दश प्राण उसमें युक्त होकर देह को धारण करते हैं। सूर्य रूप आत्मा या सूर्यचक्र सहस्रदल कमल का अन्तश्चक्षु ज्ञान युक्त होकर आगे बढ़ता है उसी के आश्रय सब देहस्थ प्राणी जीते हैं।

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति। तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार एक साथ उत्पन्न हुए वसन्तादि ऋतुओं में से सातवें को एक अधिक मास से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, और छः यम अर्थात् जोड़े, दो दो मासों के बने ऋतुओं को क्रान्तदर्शी विद्वान् 'देवज' अर्थात् तेजस्वी सूर्य से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, उनके समस्त प्राणियों को अभिलषित स्वरूप भिन्न २ रूप में विकार को प्राप्त हुए हैं, वे स्थिर सूर्य के ही धारण सामर्थ्य या तेज के अनुसार विविध रूप से बनते हैं, उसी प्रकार आत्मा से अधिष्ठित देह में एक साथ उत्पन्न शिरोगत सातों में से सातवें मुख्य प्राण को अध्यात्मवेदी ऋषिजन एक मात्र आत्मा के ही मुख्य बल से एवं अकेला ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, और शेष छहों जोड़े

आत्मा की शक्ति से उत्पन्न होते बतलाते हैं, उनके अभिलषित रूप आदि विषय भी स्थाता के धारण सामर्थ्य के अनुसार ही रचे हैं, वे सब रूप वाले देह में विकृत होकर गति करते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

स्त्रियः॑ स॒तीस्ताँ उ॑ मे पुं॒स आ॑हुः पश्य॑दक्ष॒ण्वान्न वि चे॑तद॒न्धः ।
क॒विर्यः पु॒त्रः स ई॑मा चि॑केत॒ यस्ता वि॑जा॒नात्स पि॒तुष्पि॒तास॑त् १६

भा०—आदित्य पक्ष में—सूर्य के रश्मि जल को अपने गर्भ में धारण करने में स्त्रियों के समान होते हैं, और वे ही पुनः भूमि पर पुरुष के समान वीर्यवत् जल सेचन कर ओषधियों के उत्पादक होने से पुरुष के समान होते हैं (२) आत्मा के पक्ष में—ज्ञानवृत्तियां अपने गर्भ में आत्मा को धारण करने से स्त्रियों के समान हैं और वे ही प्राण देने से पुमान् हैं। अथवा वे सब वृत्तियां मुझ पुरुष की ही हैं ऐसा बतलाते हैं। उनको ज्ञानी ही जानता है। अज्ञानी नहीं जानता। ब्रह्मज्ञानी पुरुष पुत्र अर्थात् अल्पायु होकर भी ज्ञानवान् होने से वृद्ध अज्ञानियों के पिता के समान आदरणीय है।

अ॒वः परे॑ण प॒र ए॒नाव॑रेण प॒दा व॒त्सं बिभ्र॑ती॒ गौरुद॑स्थात् ।
सा क॒द्रीची॒ कं स्वि॒दर्धं॒ परा॑गा॒त्क्व॑ स्वित्सूते न॒हि यू॒थे अ॒न्तः ॥१७

भा०—जिस प्रकार गाय परे के अर्थात् पिछले पैरों के नीचे और अगले पैरों के पीछे अपने बछड़े को धारण करती हुई खड़ी होती है, उसी प्रकार यह उषा परम स्थान आकाश से नीचे और अवर पद इस भूलोक से ऊपर, अन्तरिक्ष गत मेघ से बसने वाले जीवलोक का पालन पोषण करती हुई उदित होती है। वह अदृश्य स्थान से न जाने कहां से आती हुई किसी समृद्धतम आधे आकाश को व्यापती है, कहीं भी वह सूर्य को यूथ के बीच में नहीं प्रसव करती। (२) परमेश्वरी शक्ति सर्व व्यापक होने से 'गौ' है। उसका पर पद आकाश और अवर पर यह लोक, दोनों के बीच स्थित जगत् को अपने सामर्थ्य से धारण करती हुई सबको उच्चतम

होकर विराजती है। वह अदृश्य होने से 'कद्रीची' है। वह परमेश्वर शक्ति महत् आदि प्रकृति के विकृत गण में किसी के भी आश्रय होकर जगत् को प्रसव नहीं करती। प्रत्युत परमेश्वर की निरपेक्ष शक्ति ही जगत् को उत्पन्न करती है। अध्यात्म में देखो अथर्व० का० ९। ९। १८॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, इस स्थावर जंगम जगत् के इस लोक में और पर अप्रत्यक्ष लोक में परिपालक परमेश्वर को, इस पृथ्वीलोक से ऊपर और आकाश से नीचे स्थित मेघ के समान सबके जीवनप्रद रूप में साक्षात् जान लेता है, वह इस लोक में कोई विरला ही होता है, जो क्रान्तदर्शी होकर तत्वज्ञान का उपदेश करता है वही यह भी बतलाता है कि इसी प्रकार अन्तःकरण भी कहां से उत्पन्न होता है। (अथर्व० ९। ९। १८)

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

भा०—जो जीवगण इस लोक में हैं वे अज्ञान के कारण ब्रह्म से दूर होने से दूरस्थ हैं। जो परम पद को प्राप्त हो जाते हैं उनको ही ब्रह्म पद के समीप गया बतलाते हैं। जीव और ब्रह्म दोनों के किये कर्म ही सब लोकों को धारण करते हैं। (२) दूर के ग्रह आदि समीप और समीप के चक्रगति वश से दूर हो जाते हैं। चन्द्र और सूर्य के भ्रमण ही लोकों को धारण करते हैं। (अथर्व० ९। ९। १९)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥१७॥

भा०—जीव ब्रह्म वृक्ष पर स्थित दो पक्षियों के दृष्टान्त से वर्णन करते हैं। जिस प्रकार दो उत्तम पंखों वाले पक्षी एक साथ प्रेम से

संयुक्त हुए, एक दूसरे के मित्र बने हुए, एक ही वृक्ष के ऊपर स्थित होकर एक दूसरे से आलिंगन करते या वृक्ष का आश्रय लेते हैं, उसपर सुख लाभ करते हैं, उनमें से एक स्वादयुक्त फल खाता हो दूसरा न खाता हुआ देखा करे, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा दोनों, उत्तम पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' हैं। परमात्मा सब से बड़ा पालक है, जीव अधीनस्थ प्राणों और देहादि संघात का पालक होने 'सुपर्ण' है। वे दोनों साथ रहने वाले साथी हैं। वे व्याप्य व्यापक भाव से सदा सम्बद्ध हैं, पिता पुत्र भाव से, आश्रयाश्रयी भाव से, उपास्य-उपासक भाव से सदा युक्त हैं। दोनों सखा अर्थात् मित्र के समान रहते हैं। वे दोनों एक वृक्ष का आश्रय लेते हैं। व्रश्चनीय अर्थात् काटे जाने वाले देह में जीवात्मा आश्रित है, विराट् ब्रह्माण्ड रूप में परमेश्वर है, जो विराट् प्रलय में काट दिया जाता है। उन दोनों में एक जीवात्मा स्वादु मनोहर वाञ्छित पके फल के समान अपने किये पाप पुण्यमय कर्म के सुख दुःख रूप फल का भोग करता है। और परमेश्वर न करता हुआ केवल साक्षी-मात्र होकर सर्व द्रष्टा होकर रहता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

यत्रा॑ सुप॒र्णा अ॒मृत॑स्य भा॒गमनि॑मेषं वि॒दथा॑भि॒स्वर॑न्ति।
इ॒नो विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः स मा॒ धीरः॒ पाक॒मत्रा वि॑वेश ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार रश्मियां जल के अंश को लेतीं और निरन्तर सब पदार्थों के लाभ या ज्ञान कराने के निमित्त सर्वत्र प्रकाश करती हैं, सूर्य समस्त जगत् का रक्षक है, वह पकने योग्य ओषधि आदि में किरणों द्वारा प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जिस परमेश्वर में उत्तम गति से जाने वाले देवयान मार्ग के आत्मज्ञानी पुरुष उस अमृत, नित्य, अविनाशी, परमेश्वर के स्वरूप के भजन सेवन को ही निरन्तर समाहित चित्त होकर ज्ञान और परम पद के लाभ के लिये उसी की स्तुति करते और अन्यों को उसका उसका उपदेश करते हैं। और वही सबका स्वामी

परमेश्वर समस्त जगत् का रक्षक है। वह ध्यानवान्, धीर बुद्धिमान पुरुष परिपक्व ज्ञान वाले मुझ सधक को इस परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में सब प्रकार से ज्ञान प्रदान करे। (२) अध्यात्म में—यास्क के [निरु० ३। २। ६] अनुसार—इन्द्रिय गण 'सुपर्ण' हैं। अविनाशी आत्म-चैतन्य द्वारा गृहीत ज्ञान को ग्रहण करती हैं। वह आत्मा सब इन्द्रियों का रक्षक है। वह मुझ अपरिपक्व ज्ञानवान् पुरुष को प्राप्त हो।

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

भा०—जिस संसार रूप वृक्ष के ऊपर मधुर कर्म फल के भोक्ता उत्तम कर्म और ज्ञानवान् जीवगण आश्रय पाते, और अपनी सन्तान उत्पन्न करते, और परमेश्वर का भजन करते हैं, उसके उत्तम स्थान में पालनकारी फल की विद्वान् लोग चर्चा करते हैं। जो पुरुष अज्ञानवश सर्वपालक परमेश्वर को नहीं जानता वह ही उस स्वादु परम आनन्द रूप फल को नहीं प्राप्त करता।

यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३॥

भा०—गान करने वाले का त्राण करने वाला परमेश्वर ही गायत्री छन्द में वेद में स्तुति किया गया है। तीनों वेदों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर का ही त्रिष्टुप् छन्दों से वर्णन किया है। जगती छन्दों में भी उसी सर्व व्यापक प्रभु का वर्णन किया गया है। उस प्राप्तव्य परमेश्वर को जो जानते हैं वे अमृतत्व को भोगते हैं। देखो (अथर्व० भाष्य का० ९ सू० १०। १)॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

भा०—वह परमेश्वर गायत्री छन्द से ऋग्वेद को आरम्भ करता है। ऋचाओं के समूह से गान को रचता है। और यजुर्वेद भी विधियों की दृष्टि से अथर्ववेद को रचता है। दो चरणो और चार चरणों वाले अक्षरों से ही विद्वान् लोग सात छन्दों से रची वाणियों का ज्ञान करते हैं। देखो (अथर्ववेद भाष्य का० ९ । १० मन्त्र २)॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्। गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥१८॥

भा०—वह परमेश्वर गति देने वाली कालशक्ति से वेग से गति करने वाले सूर्यादि लोक समूह को आकाश में थामता है, और अधिक वेगवान् के आश्रय पर ही सूर्य के समान तेजस्वी पिण्ड को सर्वत्र भ्रमण करते हुए दिखाता है। गान करने वाले के रक्षक परमेश्वर के ही अधीन अच्छी प्रकार देदीप्यान अग्नि, विद्युत् और सूर्य तीनों हैं। वह महान् सामर्थ्य से और स्वरूप से उससे भी कहीं बढ़कर है। विशेष विवरण देखो (अथर्व० का० ९ । १० । ३)॥ इत्यष्टादशो वर्गः॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥

भा०—जिस प्रकार कोई गृहस्थ सुखपूर्वक दोहने योग्य गाय को चाहता है और कुशल पुरुष उसको दोहता है, उसी प्रकार मैं उस वेद वाणी रूप गौ का दोहन करता हूं, ब्रह्मवाणी का गुरु के समीप जाकर अध्ययन करता हूं। उत्तम कुशल तथा गो अर्थात् वाणी के रस का दोहन करने हारा विद्वान् पुरुष ही इसको दोह पाता है। जैसे अति प्रदीप्त सूर्य जल को वृष्टि रूप में उत्पन्न करता है उसी प्रकार शिष्यों का आज्ञापक आचार्य स्वयं तेजस्वी तपस्वी, या ज्ञान का क्षरण करने हारा होकर सब से उत्तम ज्ञानाभिषेक करता है। उसकी शिक्षा ही मैं सदा उत्तम रीति से उपदेश करता हूं। विशेष विवरण देखो अथर्व० का० ७ । ७३ । ७॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥

भा०—अपने बछड़े की प्यारी गौ अपने वत्स के प्रति प्रेम हिंकार शब्दपूर्वक उस को चूमती हुई चित्त से स्नेहपूर्वक गृह में बछड़े के समीप आ जाती है, और वह मनुष्यों के अन्न, दुग्ध, घृत आदि सब ऐश्वर्यों और बाल वृद्धादि सबको पालने वाली होती है, वह कभी वध न करने योग्य एवं सदा पालने योग्य होकर स्त्री पुरुषों के लिये दूध प्रदान करती है, वह बड़े भारी सौभाग्य की वृद्धि के लिये वृद्धि को प्राप्त हो। उसी प्रकार समस्त लोकों में बसने वाले जीवों का पालन करने वाली और ज्ञानपूर्वक बसे हुए इस लोक रूप वत्स को प्रेम से चाहती हुई प्रभु की परमेश्वरी शक्ति वेद द्वारा ज्ञानोपदेश करती हुई साक्षात् दिखाई देती है। वह अवि-नाशिनी होने से 'अघ्न्या' है। वह आत्मा और मन दोनों को पुष्टिप्रद सामर्थ्य प्रदान करती है। वह उत्तम ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये सबसे बढ़ कर है, वह हमें बढ़ावे। देखो अथर्व० ७। ७३। ८॥

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥

भा०—जिस प्रकार आंख झपकते बछड़े को देख कर प्रेम से गौ शब्द करती है, और उसको प्रेमपूर्वक अपनाने के लिये उसे सूंघती और पुचकराती है, माता के थनों में रस उत्पन्न करते हुए बछड़े को लक्ष्य करके अति कामना करती हुई रंभाती है, उसी प्रकार व्यापक और ज्ञानमय होने से परमेश्वर 'गौ' है। प्रजाजन वत्स हैं। वह मानो सब को दया से अपनाने या सब को ज्ञान कराने के लिये आचार्य के समान उपदेश करती, और सामगान आदि करती है। वह तप करते हुए शिष्य के प्रति उपदेश करने वाले आचार्य के समान आत्मा के प्रति अन्तर्नाद करती हुई ज्ञान-पूर्ण उपदेश करती है, और पुष्टिकारक पदार्थों या ऐश्वर्यों से उन्हें पुष्ट करती है। अन्य पक्षों की योजना देखो (अथर्व० अ० १०। ९। ७॥)

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता। सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति व्व्रिमौहत ॥ २९ ॥

भा०—(१) यह मेघ गर्जना करता है। जिसके साथ २ अति वेग से जाने वाली मध्यमिका वाक् या विद्युत् सब तरफ चमचमाती हुई, ध्वंस होने अर्थात् क्षीण होने वाले मेघ के आश्रय में आश्रित हुई, शब्द किया करती है। वह तीव्र क्रियाओं से मनुष्यमात्र को भयभीत करती है। वह विशेष दीप्तिमती होकर अपना रूप प्रकट करती है। (२) वह परमेश्वर वेद द्वारा आचार्यवत् उपदेश करता है जिसके साथ कि वेद वाणी सदा संगिनी होकर रहती है। वेद वाणी नाशवान् वर्ण की ध्वनि पर आश्रित रह कर ज्ञानों द्वारा मनुष्य का बड़ा उपकार करती है, विशेष २ अर्थ की द्योतिका होकर वरणीय परमेश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करती, उसी का प्रतिपद वर्णन करती है। विशेष देखो (अथर्व० ९ । १० । ७ ॥)

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥१९॥

भा०—जीव आत्मा, गृहों के बीच गृहपति के समान, देहों के बीच उनका धारण करने वाला होकर स्थिर रूप से जीवनप्रद और प्राणसाधक तथा अति वेग से इन्द्रियों में गति उत्पन्न करता हुआ, शरीर को सञ्चालित करता हुआ, प्राण देता हुआ व्याप रहा है। वह जीवात्मा मरने वाले जड़ देह के बीच में अपने आप को धारण करने वाली शक्तियों या अन्नों के द्वारा भोग करता और विचरता है। वह स्वयं मरणधर्मा देह से भिन्न होकर भी मरने वाले शरीर के साथ एक ही आश्रय में रहता है। परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर सबको प्राण देता हुआ, शीघ्र गति देने वाला, कूटस्थ, शरीरों के बीच कर्मानुसार जीव को प्रवेश करता हुआ स्वयं अदृश्य, निष्क्रिय रूप से व्याप रहा। और जीव जड़देह का अपने किये कर्मों द्वारा

या अन्नों से भोग करता है। वह ब्रह्म मरणधर्मा जीव से भिन्न होकर भी जीव के साथ ही व्यापक रूप से रहा करता है। देखो (अथर्व० ९। १०। ८॥) इत्येकोनविंशो वर्गः॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥३१॥

भा०—सब के रक्षक, नाना मार्गों से समीप आते और दूर जाते हुए, कभी भी नाश को प्राप्त न होते हुए अस्त न होने वाले सूर्य के समान विद्यमान स्वयं प्रभु का नाना प्रकारों से मैं साक्षात् करता हूं। परमेश्वर सात्विक मार्ग से साधक के कभी अति निकट और तामस प्रवृत्तियों से कभी बहुत दूर होता प्रतीत होता है। वह उसके सदा साथ रहने वाली अर्थात् स्वाभाविक, और सब तरफ जाने और व्यापने वाली शक्तियों को अपने में धारण करता हुआ उत्पन्न हुए समस्त लोकों के भीतर और बाहर सर्वत्र वर्त्तमान रहता है। (२) जीवात्मा भी समीप और दूर के मार्गों से विचरता, कभी नाश को प्राप्त होता, उस आत्मा का मैं साक्षात् करूं। वह स्वाभाविक और विविध दिशाओं में जाने वाली प्राण और इन्द्रियों की चेष्टाओं पर वश करता हुआ समस्त प्राणों के भीतर चेष्टा करता है। (देखो अथर्व० ९। १०। ११)

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश॥ ३२॥

भा०—जो जीव यह सब कार्य करता है। वह जीव भी इस जीव स्वरूप को नहीं जानता है। और जो इस सब अपने कर्म आदि को साक्षी होकर देखता है वह भी उस सब से पृथक् और छिपा हुआ अदृश्य है। वह माता के गर्भाशय के भीतर लिपट २ कर बहुत से जन्म धारण करता हुआ प्राकृत बन्धन को धारता है या भूमि को प्राप्त होता है। देखो अथर्व० भाष्य ९। १०। १०॥

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

भा०—मेरा पालक और उत्पादक सूर्य है, वही केन्द्र के समान हम सब जीवों का आश्रय है। उसी आश्रय में बन्धु के समान प्रेम से बांधने वाली, माता के समान गर्भ में धारण करके उत्पन्न कर पालने वाली यह पृथिवी है। ऊर्ध्व रीति से अतिविस्तृत, भोग्य भोक्तृ के समान परस्पर संयुक्त सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच में मेरा प्रकट होने का स्थान है। इस स्थान में ही पालक सूर्य अन्नादि ऐश्वर्यों को दोहन करने वाली पृथिवी में गर्भ धारण करता है। अथवा जलादि देने वाले अन्तरिक्ष में गर्भ अर्थात् जल से पूर्ण मेघादि को स्थापित करता है। (२) परमेश्वर प्रकृति पक्ष में—तेजोमय प्रभु ही 'द्यौः' है। वह सबको कर्म बंधनों में बांधने वाला है। सर्व निर्मात्री प्रकृति माता है। ऐश्वर्य दोहन करने हारी प्रकृति है। वह ईश्वरीय शक्ति से विकार को प्राप्त होती है। उसमें ब्रह्म हिरण्यगर्भादि को धारण करता है। अथर्व० ९। १०। १२ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

भा०—हे विद्वन्! मैं तुझ से पृथिवी के परले अन्त को पूछता हूं। मैं उस परले अन्त के विषय में पूछता हूं जिस पर समस्त संसार की धुरी टिकी है। मैं तुझसे पूछता हूं कि भूमियों पर उत्पादक वीर्य के निषेक करने वाले तथा सर्व व्यापक परमेश्वर का उत्पादक वीर्य कौन सा है जिससे यह विविध प्रजाएं तथा लोक लोकान्तर उत्पन्न होते हैं। और पूछता हूं कि वेद वाणी का सर्वोत्कृष्ट परमाश्रय कौन सा है। उत्तर अगले मन्त्र में स्पष्ट है। अथर्व० ९। १०। १३ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ३५।२०

भा०—यह वेदि पृथिवी का परला छोर है। यह परमोपास्य परमेश्वर समस्त संसार का आश्रय है। यह सर्वोत्पादक सूर्य निषेचक परमेश्वर का परम वीर्य रूप तेज है। यह महान् प्रभु ही वेदवाणी का परम रक्षास्थान है। अथर्व० ९। १०। १४॥ इति विंशो वर्गः॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ३६

भा०—सर्पण करने वाले किरण, सम्वृद्धतम जलांश को अपने भीतर ग्रहण करते हुए, प्राणिमात्र को उत्पन्न करने में समर्थ जल को, महान् सामर्थ्य वाले सूर्य के उत्तम शासन से विशेष रूप से धारण करने वाले अन्तरिक्ष में स्थापित करते हैं। वे किरण शक्तिशाली सूर्य की क्रियाओं और स्तम्भन बल से सर्वत्र व्यापकर सबत्र ओर पहुँच जाते हैं। (२) परमेश्वर पक्ष में—अपने से अधिक शक्तिमान् परमेश्वर के बल ऐश्वर्य को भीतर धारण करने वाले सातों महत् अहंकार और पञ्च सूक्ष्मभूत, विविध पदार्थों को धारण करने वाले आकाश में परमेश्वर के शासन में विराजते हैं। वे सातों ईश्वर की धारणशक्तियां, ज्ञान सामर्थ्य से विद्वानों के समान क्रिया और ज्ञान से युक्त होकर, सर्वत्र विकृत होकर, सर्वोत्पादक होकर नाना पदार्थों के रूप में प्रकट हो रहे हैं।

न वि जानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७॥

भा०—जिस तरह का यह मैं हूं सो मैं विशेष रूप से नहीं जानता हूं। मैं तो वस्तुतः मनोरूप अन्तःकरण से प्रकार बंधा हुआ और उसी में छिपा हुआ विचरता हूं। जब सत्यस्वरूप परमेश्वर के संकल्प से प्रथम उत्पन्न विषयग्राही इन्द्रिय रूप ज्ञानसाधन मुझे प्राप्त होते हैं, तभी इस वाणी के द्वारा भजन करने योग्य परम ब्रह्म को अथवा वेद वाणी के भाग अर्थात् प्रतिपाद्य सत्यज्ञान को मैं प्राप्त हूं। (अथर्व० ९। १०। १५)

अपाङ् प्राङे॑ति स्वधया॑ गृभीतोऽम॑र्त्यो॒ मर्त्ये॑ना सयो॑निः । ता शश्व॑न्ता विषूचीना॑ वियन्ता न्य॑न्यं चिक्युर्न नि चि॑क्युर॒न्यम् ३८

भा०—यह जीव अन्न और जल से बने इस शरीर तथा अपने किये कर्मों के फल से बद्ध होकर नीचे अर्थात् तुच्छ योनियों में जाता, और उसी प्रकार कर्मों से बन्द्ध या शरीर में बद्ध होकर उत्कृष्ट देहों में जाता है। वह अविनाशी आत्मा मरणधर्मा जड़देह के साथ मिलकर एक साथ रहता है। आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह वे दोनों परस्पर सदा साथ रहने वाले सभी लोकों में साथ ही जाने वाहे विविध लोकों को प्राप्त होते हैं। सभी जन उनमें से एक को भली प्रकार जान लेते हैं और मूढ़ जन दूसरी आत्मा को नहीं जान पाते।

ऋचो॑ अ॒क्षरे॑ पर॒मे व्यो॑म॒न्यस्मि॒न्देवा अधि॒ विश्वे॑ निषे॒दुः ।
यस्तन्न वेद॒ किमृ॒चा क॑रिष्यति॒ य इत्तद्वि॒दुस्त इमे समा॑सते ३९

भा०—ऋग् आदि चारों वेदों के बीच प्रतिपादित किये गये, जिस अविनाशी, और सबसे उत्कृष्ट तथा विशेष रूप से सब के रक्षक परमेश्वर में सब तेजोमय सूर्यादि लोक आश्रय पा रहे हैं, जो पुरुष उसको नहीं जानता वह ऋग आदि वेदों से क्या करेगा? क्या फल प्राप्त कर सकता है। जो विद्वान् उस परम वेद्य आत्मा को जान लेते हैं वे ही उस आनन्द-मय परमेश्वर की सम्यग् ज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं।

सू॒य॒व॒साद्भग॑वती॒ हि भू॒या अथो॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम ।
अ॒द्धि तृण॑मघ्न्ये विश्व॒दानीं॒ पिब॑ शुद्धमु॑द॒कमा॒चर॑न्ती ॥४०॥२१॥

भा०—हे अविनाशशीले! जिस प्रकार गौ उत्तम तृण आदि खाने हारी होकर शुद्ध जल पीती और तृण खाती, और समस्त संसार को दूध आदि पौष्टिक पदार्थ और कृषि आदि द्वारा अन्न प्रदान कर ऐश्वर्य सुख से पूर्ण करती है, उसी प्रकार हे कभी नाश न होने योग्य परमेश्वरी शक्ते! तू उत्तम 'यवस्' अर्थात् प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य सुखों का अन्यों को प्राप्त

कराने वाली है। तू सदा निश्चय से सेवने योग्य ऐश्वर्यों की स्वामिनी है। हम ऐश्वर्यवान् बनें। छेदन करने योग्य तुच्छ देहबन्धन एवं तुच्छ सांसारिक दुःखों को तू खा जा, नष्ट कर। यह परमेश्वरी शक्ति सर्वत्र व्यापती हुई विशुद्ध ज्ञान रस अन्यों को पान कराती है। देखो अथर्व० का० ७। ७३। ११॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥ ४१॥

भा०—जिस प्रकार ध्वनि करने वाली अन्तरिक्ष की वाणी विद्युत् ध्वनि करती है, वह जलों को उत्पन्न करती, मेघरूप एक आश्रय में रहकर 'एकपदी', मेघ और वायु के आश्रित रहने से 'द्विपदी', और चारों दिशाओं में व्यापने से 'चतुष्पदी', और चार दिशा और चार उपदिशाओं में व्यापने से 'अष्टापदी', और ऊपर की ऊर्ध्व दिशा में भी व्यापक होने से 'नवपदी' होती हुई, सहस्रों प्रकार से जलप्रस्रवण करती हुई, परम आकाश में चमकती है, उसी प्रकार परमेश्वर की वेदवाणी ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाली और ज्ञानवान् विद्वानों को रमण कराने वाली होकर, ज्ञानानन्द रसों को उत्पन्न करती है। वह एकमात्र परम परमेश्वर का ज्ञान कराने से 'एकपदी', गुरु शिष्य दो द्वारा ज्ञान करने कराने योग्य होने से 'द्विपदी', चारों वेद में आश्रित या चारों आश्रमों द्वारा सेवने योग्य होने से 'चतुष्पदी' है। चार वर्ण चार आश्रमों की व्यवस्थापक और उनको ज्ञान देने वाली होने से 'अष्टापदी', वही एकमात्र नवें ब्रह्म के आश्रित होने से 'नवपदी' है। और सहस्रों प्रकार से 'अक्षर' अर्थात् परमेश्वर का वर्णन करने और सहस्रों अक्षर अर्थात् ककारादि वर्णराशियुक्त होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम रक्षास्थान ओंकार में आश्रित है। वह सबको उपदेश करती, ज्ञान प्रदान करती और अज्ञान का नाश करती, सन्मार्ग में प्रेरित करती है। (२) अथवा—'मुखस्थ वाणी सरस्वती' विद्वानों में रमण करने से गौरी, ज्ञानरसों या सञ्चारी भावों को उत्पन्न

करती है। प्राणरूप एक चरण वाली, अथवा अव्याकृत रूप से एक गद्यमय स्वरूप होकर एकपदी, या एक ओंकार रूप होने से एकपदी है। सुप्, तिङ् भेद से द्विपदी, वा मनुष्य की वाणी होने से द्विपदी, नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात भेद से वा अव्याकृत रूप से चौपायों में भी व्याप्त होने से 'चतुष्पदी', सम्बोधन सहित सात विभक्तियों द्वारा जानने योग्य होने से वा अष्टविध प्राणि-सर्ग में व्यापक होने से 'अष्टापदी', नव-विधि वैकारिक सर्ग में व्यापक होने से, वा अव्यय सहित पूर्वोक्त विभक्ति तथा संबोधन युक्त होने से 'नवपदी' होकर, सहस्रों अक्षरों वाली होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम सर्वोत्कृष्ट विशेष ज्ञानवान् पुरुष में विकास को प्राप्त होती है। अथर्व० ९। १०। २१।

प्रमाण—जैसे 'एकपदी'—अज एकपात्। वेद ॥

'द्विपदी'—प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि। गी० अ० १३। १९।

'चतुष्पदी'—प्रकृतिं पुरुषञ्चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च। गी० अ० १३। ११॥

'अष्टापदी'—भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। गी० अ० ७। ९॥

'नवपदी'—अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्। गी० अ० ७। ५॥

सहस्राक्षरा—एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। गी० अ० ७। ६॥

विशेष विवरण देखो अथर्ववेद आलोक भाष्य का० ९। १०। २१।

तस्याः॑ समु॒द्रा अधि॒ वि क्ष॑रन्ति॒ तेन॑ जीवन्ति प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः।
ततः॑ क्षरत्य॒क्षरं॑ तद्विश्व॒मुप॑ जीवति ॥ ४२ ॥

भा०—जिस प्रकार उस विद्युत् से आघात खाकर जलों को बहाने वाले मेघ बहुत अधिक मात्रा में और विशेष रूप से बरसते हैं, उस वर्षा से चारों दिशाओं में बसने वाले जीवगण जीवन धारण करते हैं। उस मेघमयी विद्युत् से ही जल बरसता है और उसी के आश्रय जीव संसार

अपना जीवन धारण करता है, उसी प्रकार उस परमेश्वरी शक्ति से ऐश्वर्यों के समुद्र बहते हैं, उससे चारों दिशाओं में स्थित लोक जीते हैं, उसी से अक्षय जीवन शक्ति प्राप्त होती है, जिससे समस्त जीव संसार जीवन प्राप्त करता है।

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

भा०—मैं शक्तिमान् तथा धूम के समान नीहार (Nebula) को मैं वैज्ञानिक देख रहा हूं। अपेक्षया समीप तथा चारों दिशाओं में फैलने वाले इस नीहार से भी सूक्ष्मतर तथा विविध दिशाओं में गति करने वाले अति सूक्ष्म तत्व जो कि भावी पिण्डों में बलसेचन करने वाले हैं, वे महान् सूर्य को परिपक्व, परिपुष्ट और अधिक प्रतापी बना रहे हैं। वे जगत् को धारण करने वाले तत्व सृष्टि के पूर्व में विद्यमान् थे। (२) परमेश्वर पक्ष में—यह जीव या यह संसार स्पन्दन शील होने से, 'धूम', और शक्तिमय होने से 'शकमय' है। वह अति समीप है। स्वयं उत्पन्न होने और विविध प्रजाओं के उत्पन्न करने में 'विषुवान्' है। उससे भी उत्कृष्ट सर्वसाधक, सब को बल देने वाला परमेश्वर है। उसको विद्वान् जन प्राप्त करने के लिये तप और योग करते हैं। वे धर्म सर्व श्रेष्ठ हैं। (अथर्व० ९।१०।२५)

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥

भा०—इस विश्व में केश अर्थात् किरणों और अपने २ ज्ञापक चिन्हों सहित तीन पदार्थ विद्यमान् हैं जो क्रम से विद्युत्, सूर्य और वायु हैं। वे तीनों अपनी २ ऋतु के अनुसार विशेष २ लक्षणों से अपने आप को दिखलाते हैं। इनमें से एक विद्युत् बरसते मेघ के साथ प्रकट होता है, वह वर्ष में एक बार समस्त ओषधियों और प्राणियों के बीजों को वपन करता

है। वे मौसम में उत्पन्न होते हैं। उनमें से एक सूर्य ज्येष्ठ आदि मास में समस्त विश्व को किरणों से सब प्रकार से देखता और प्रकाशित करता है। और तीसरे वायु का वेग तो देखने में आता है, परन्तु उसका रूप नहीं देख पड़ता। (२) इसी प्रकार विश्व के प्रति परमेश्वर के तीन रूप हैं। वे कालगति के अनुसार संसार को दीखते हैं। पहिला बीजों के समान सबको उत्पन्न करता है, दूसरा सब प्रकार शक्तियों से देखता पालता है। तीसरा संहारकारी रूप है, उसका वेग दीखता है रूप नहीं दीखता, काल होकर तू सबका संहार करता है। अथर्व० ९।१०।२६॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥ ४५॥

भा०—वाणी के चार जानने योग्य स्वरूप माने गये हैं। जो बुद्धिमान वेदज्ञ विद्वान् हैं वे वाणी के इन चारों स्वरूपों को भली प्रकार जानते हैं। उनमें से तीन रूप गुहा अर्थात् बुद्धि में स्थित रहकर प्रकट नहीं होते। और वाणी के चौथे स्वरूप को मनुष्य बोलते हैं।

वाणी के वे चार स्वरूप कौन २ से हैं इसमें बहुत से मत भेद हैं जिनका संक्षेप से उल्लेख करते हैं। (१) भूः, भुवः, स्वः और प्रणव इन चार पदों में समस्त वाणी परिमित है। (२) ऋग्, यजुः, साम और अथर्व (३) सर्प, पक्षी, क्षुद्र सरीसृपों और चौथे मनुष्यों की भाषा। परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी। इन में परा मूलाधार में सूक्ष्म नादरूप से रहती है, हृदयचक्र में वही पश्यन्ति है, बुद्धि में आकर वह मध्यमा है, मुख में आकर वैखरी है। (५) वाणी के ४ रूप हैं नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। नाम संज्ञासंज्ञी सम्बन्ध का द्योतक है, क्रिया का द्योतक आख्यात, विशेषण का द्योतक उपसर्ग है, और अव्यय शब्द को निपात कहा जता है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥२२॥

भा०—विद्वान् लोग परमात्मा को ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। और वह ही गरुत्मान् और दिव्य 'सुपर्ण' कहाता है। विद्वान् लोग एक सत् परमात्मा को ही बहुत तरह से कहते हैं, उसको ही अग्नि, यम और मातरिश्वा नाम से कहते हैं। परमेश्वर ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' है। स्नेही और मृत्यु से त्राणकारी होने से 'मित्र' है। सर्व श्रेष्ठ और दुःख-निवारक होने से वरुण, तेजोमय होने से 'दिव्य' है, भली प्रकार पालन-कारी और पूर्ण होने से 'सुपर्ण' है। महान् आत्मा होने से 'गरुत्मान्' है। वह सब से पूर्व और ज्ञानवान् होने से 'अग्नि', सर्व नियन्ता होने से 'यम', जगन्निर्मात्री प्रकृति में और ज्ञाता आत्मा में भी सूक्ष्मतया व्यापक और गतिदाता होने से 'मातरिश्वा' है। विद्युत् प्राण, जल, समुद्र, सूर्य, अग्नि, मृत्यु, वायु आदि दिव्य पदार्थ भी भिन्न २ गुणों से ही इन्द्रादि नामों से कहे जाते हैं। और उनमें भी वे गुण परमेश्वर से प्राप्त होने से वे सब नाम परमेश्वर में ही मुख्यतया अधिक उचित हैं। अन्यों के वे गौण नाम हैं। वह परमेश्वर अद्वितीय होने से 'एक' है। सर्वत्र व्यापक, सर्वाश्रय, बलरूप एवं कारण होने से 'सत्' है। सब उसी की नाना नामों और अलंकारों से स्तुति करते हैं। विशेष प्रमाण देखो अथर्व० ९। १०। २८॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥

भा०—श्याम वर्ण के, तथा नीचे की तरफ आने वाले, जल से भारी मेघ को ले जाने वाले, उत्तम वेग से जाने वाले वायुगण, जलों के सूक्ष्मांशों को धारण करते हुए जब आकाश की ओर उठते हैं, वे जल के स्थानों से सब ओर फैल जाया करते हैं, और बाद में आकाश से गिरते हुए जल

से बिशाल भूमि विशेष रूप से गीली हुआ करती है, इसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान् जीवगण प्राणमय लिंगशरीरों को धारण करते हुए, काले अशुक्र, नीचे गिराने वाले पापकर्म को दूर करने हारे होकर, ज्ञान प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे सत्य ज्ञानमय प्रकाश के आश्रयस्थान से पुनः लौटते हैं और फिर उनके तेजोमय ज्ञान से यह भूमि सिंचती हैं। वे ज्ञानोपदेश करते हैं। अथर्व० ९।१०।२२॥

द्वाद॑श प्र॒धय॑श्च॒क्रमेकं॒ त्रीणि॒ नभ्या॑नि॒ क उ॒ तच्चि॑केत।
तस्मि॑न्त्सा॒कं त्रि॑श॒ता न श॒ङ्कवो॑ऽर्पि॒ताः ष॒ष्टिर्न च॑लाच॒लासः॑ ॥४८॥

भा०—जिस प्रकार किसी यन्त्र में १२ परिधिएं हों, और एक ही चक्र हो। और तीन धुरे पर लगने वाले पट्टे हों। उसको कोई विरला ही ठीक २ जान सकता है। उस चक्र में तीन सौ साठ खूंटियों के समान चलने और न चलने वाली कलाएं लगी हैं। प्रकार २ कालचक्र में १२ मास १२ परिधियां हैं। संवत्सर का एक चक्र है। उसने तीन मुख्य ऋतुएं तीन धुरे पर स्थित तीन पट्टे हैं। उससे ३६० दिन रात्रि रूप ३६० शंकु के समान कला हैं, जिनके घुमाते ही रात्रि दिन होता है। ब्रह्म पक्ष में— पांच स्थूल, पांच सूक्ष्म, महत् अहंकार ये १२ परिधि हैं। एक ब्रह्म कर्त्ता 'चक्र' है। तीन गुण संसार में बन्धनकारी होने से नभ्य हैं। ३६० संवत्सर की अहोरात्र रूप प्राण 'कलाएं' हैं। अध्यात्म में १२ प्राण हैं। एक आत्मा कर्त्ता है। तीन गुण बांधने वाले हैं। ३६० धारक प्रयत्न कला रूप हैं।

यस्ते॒ स्तनः॑ शश॒यो यो म॑यो॒भूर्येन॒ विश्वा॒ पुष्य॑सि॒ वार्या॑णि।
यो र॑त्न॒धा व॑सु॒विद्यः सु॒दत्रः॒ सर॑स्वति॒ तमि॒ह धात॑वे कः ॥४९॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम दुग्धदात्री माता का स्तन बालक को सुख से सुला देने वाला, सुखप्रद होकर उसे पुष्ट करता है, उसी प्रकार हे वेदवाणि ! और वेद बाणी के जानने वाले विद्वन् और उत्तम ज्ञानमय

परमेश्वर ! जो तेरा पालक स्वरूप उपासक को शान्ति देने वाला है, और जो सुख और आनन्द देने वाला है जिससे समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ ज्ञानों और गुणों को पुष्ट करता है, जो रमणीय सुखों को धारण करता, अपने में बसने वाले शिष्यों और भक्तिमान् प्रिय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करने और उनको ऐश्वर्य देने वाला है, जो सुख कल्याण का देने वाला है, उसको इस जगत् में सबके पोषण के लिये प्रकट करता है। राष्ट्र पक्ष में—देखो यजुर्वेद अ० ३८ । ५ ॥ विदुषी स्त्री माता और द्यौः पक्ष में देखो अथर्व० का० ७ । १० । १ ॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥५०॥

भा०—देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले, दानशील, व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष, अग्नि आदि पदार्थों से होने योग्य, या दान, परस्पर सत्संग और उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मों से उपास्य परमेश्वर की उपासना करते, तथा प्राप्त करने योग्य धर्मार्थ, काम, मोक्ष और पुरुषार्थों की साधना करते हैं। वे नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य अनुष्ठान आदि कर्त्तव्य सबसे उत्तम हैं। जिन कर्त्तव्यों के बीच में रहकर प्रारम्भ के प्रथमाभ्यासी साधनाशील उत्तम पद की कामना करते हुए रहते हैं. और जिन कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहकर ही वे पूर्वोक्त साधक पुरुष बड़े सामर्थ्यवान् होकर सब प्रकार के दुःखों से रहित मोक्ष तक को प्राप्त होते हैं। विशेष सप्रमाण विवेचन देखो अथर्व० ७ । ५ । १ ॥

स॒मा॒नमे॒तदु॑द॒कमुच्चैत्यव॒ चाह॑भिः ।
भूमिं॑ प॒र्जन्या॒ जिन्व॑न्ति॒ दिवं॑ जिन्वन्त्य॒ग्नयः॑ ॥ ५१ ॥

भा०—यह जल जिस प्रकार ऊपर भी जाता है, कुछ दिनों में नीचे भी उतरता है, यह दोनों अवस्थाओं में एक समान रहता है। जल को बरसाने वाले मेघ भूमि को संतृप्त करते हैं, और अग्नियां अन्तरिक्ष को

जल से तृप्त करती हैं, उसी प्रकार यह जीव भी जल के समान दोनों दशाओं में एक समान ही रहता है, अर्थात् कुछ दिनों में वह ऊपर जाता है, उत्तम लोक को प्राप्त करता है। कुछ दिनों तक वह पुनः नीचे लोकों को भी प्राप्त करता है। जिस समय जीव नीचे, भूमि आदि लोक में आता है तब उसके उत्पन्न होने में उत्तम कारण प्राण, आदि उसके उत्पत्ति को पुष्ट करते हैं, और जब ज्ञानी पुरुष उसके ज्ञान को बढ़ाते हैं तब वह उत्तम गति को भी प्राप्त करता है।

दि॒व्यं सु॑प॒र्णं वा॑य॒सं बृ॒हन्त॑म॒पां गर्भं॑ दर्श॒तमोष॑धीनाम्।
अ॒भी॒प॒तो वृ॒ष्टिभि॑स्त॒र्पय॑न्तं॒ सर॑स्वन्त॒मव॑से जोहवीमि ॥५२॥२३॥

भा०—आकाश में स्थित, उत्तम रश्मियों से युक्त, अति वेग से गमन करने वाले, सबकी वृद्धि करने वाले और स्वयं महान्, जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण कर लेने वाले, सबको तेज से दिखाने वाले, स्वयं दर्शनीय, ओषधियों को ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्राप्त होने वाले जलों से तृप्त करने वाले जलों से पूर्ण मेघ या सूर्य का जिस प्रकार सभी आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार मैं साधक अति कामनीय, कान्तिमय, दिव्य, उत्तम पालनकारी और ज्ञानमय, ज्ञान और बल में सबसे महान्, सबसे बड़े प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी अपने वश में रखने हारे, परम दर्शनीय, अति सुन्दर, देह में ताप या जीवन को धारण करने वाले चराचर जगत् को सब तरफ की सुखों की जलधाराओं से तृप्त, एवं आनन्दित करते हुए, उत्तम ज्ञान और कर्म के भण्डार, समुद्र के समान अगाध परमेश्वर की, ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये, उपासना करता हूँ, उसको पुकारता और उसका आश्रय लेता हूँ। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१६५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ ११, १२ विराट्

त्रिष्टुप्। २, ८ ६ त्रिष्टुप्। १३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६, ७, १०, १४ भुरिक् पंक्तिः। १५, पंक्तिः। पंचदशर्चं सूक्तम्॥

कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒तेऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या॥ १॥

भा०—वायु के समान आलस्य रहित छात्रजनो! आप सब लोग एक समान वीर्य, ज्ञान और अवस्था वाले, एक ही स्थान पर रहते हुए, किस प्रकार उत्तम रीति से परस्पर को बलवान् बनाओ? इस बात को अच्छी प्रकार जानो। उत्तर-आप लोगों में एक दूसरे की बलवृद्धि सदा समान क्रिया, समान रहन सहन, वेष, आहार, विहार, चेष्टा आदि से होनी सम्भव है। ये शिष्य आदि जन किस २ देश से आ २ कर और किस विचार या संकल्प से प्रेरित होकर स्वयं बलवान् होकर भी अधिक बलशाली और प्रवृद्ध ज्ञानवान् पुरुष को आदर पूजा देते और उसके अधीन रहते हैं?। उत्तर-उसके अधीन शिष्य बन कर रहने की इच्छा, या वसु अर्थात् ब्रह्मचारी होने की इच्छा से।

कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम॥ २॥

भा०—हे युवा विद्वान् पुरुषो! आप लोग किस के पास से ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्रों के ज्ञान और नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकते हो? अन्तरिक्ष में वेग से जाते हुए बाजों के समान भोग्य व्यसनों या विषयों के प्रति जाते हुए तुम लोगों को अहिंसामय वेदाध्ययनादि यज्ञ-कार्य में कौन तुम्हें वेदाभ्यास कराता है? किस बड़े ज्ञानवान् पुरुष से हम सब मनुष्य अति आनन्द लाभ कर सकते हैं। उत्तर—उस प्रजापति तुल्य, सर्वोपदेशक गुरु से वेदज्ञान प्राप्त करें, वही हमें सत्पथ में चलावे, उसी से हम सुप्रसन्न रहें। अध्यात्म में—(२) मरुतः प्राणगण वे एक ही देह आश्रित रहकर समान वायु की चेष्टा से देह में आरोग्य सुख

वर्षण करते हैं। वसु अर्थात् आत्मा की शक्ति से सब मुख्यप्राण के आश्रय रहते हैं। वे उसी के बलों को सेवते हैं। वही उन पर वश करता है। उसी के ज्ञान और स्तम्भनबल से देह में रमण करते हैं।

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू सबसे अधिक महान्, पूजनीय होकर एक अद्वितीय होकर किस बल पर गमन करता है, हे सज्जनों के पालक तेरा ऐसा बल क्योंकर है, हमसे मिला हुआ है तो भी तेरे सम्बन्ध में नाना विध प्रश्न किये जाते हैं। अतः हे उत्तम आकर्षक गुणों से युक्त, दुःखहारी साधनों से युक्त स्वामिन्! तेरा जो भी हमारे लिये हितकारी वचन हो वह उत्तम २ उपायों से हमें उपदेश कर।

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आशासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! मेरा बलवान् तथा मेघ के समान ज्ञान-जलों की वर्षा करने वाला उपदेश शान्ति को प्राप्त करता है। और मनन-शील पुत्र और शिष्यगण मेरे ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञानों को, पिता के धनों के समान चाहते हैं, इन उत्तम वचनों को सदा ले लेना चाहते हैं। उनको ज्ञानवान् और कर्मनिष्ठ और गुरु और शिष्य हमें अच्छी प्रकार प्राप्त कराएं।

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५॥२८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! क्योंकि तू हमें 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करने योग्य वृत्ति को प्रदान करता है इसलिये हम सैनिक लोग देहों को चमकाते और सुशोभित करते हुए और अपने समीप के बड़े २ सैन्यों सहित तेरा साथ देते हुए इन समस्त पदार्थों को हम अपने उप-

योग में लेते हैं। हे परमेश्वर! तू हमारे जीवात्मा में भी व्यापक है। हम अपने आत्मिक बलों से अपने आपको सुशोभित करते हुए, योगसमाधि का अभ्यास करते हुए, इन गतियुक्त प्राणों को वश में करते हैं।

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये।
अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के बल से जल नहीं उत्पन्न होता अपितु विद्युत् ही बलवान् होकर अपने प्रहारों से जल को नीचे गिराता है उसी प्रकार हे सैनिको! राष्ट्र का धारण पोषण करने वाला आप लोगों का बल कहां विद्यमान रहता है? क्या आप लोगों में रहता है या मुझ सेनापति में? सुनो, मैं निश्चय से तीक्ष्णस्वभाव और बलवान् होकर शस्त्रों के प्रहारों में समस्त शत्रु को नमा लेता हूँ।

भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥

भा०—हे हममें सबसे अधिक बलवन्! हे ऐश्वर्यवन्! हे जलों के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्विन्! तू हमारे परस्पर सहयोग से होने वाले एक समान पुरुषोचित बलों से बहुत काम करता है। और हम बहुत से कार्य जो भी हम मरुद् सैनिक चाहें वह तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से करने में समर्थ होते हैं।

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान्।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥

भा०—वीर सैनिको! मैं अपनी उग्रता से बलवान् होकर राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को नाश करने में समर्थ होता हूँ। और मैं शस्त्रास्त्र और यन्त्र कलादि को हाथ में धारण कर, मननशील प्रजाजन के हित के लिये, इन नाना प्रकार के नदी तड़ाग आदि को सुख से बहने वाले नहर आदि रूप में बनाता हूँ।

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥

भा०—हे पूज्य गुणों से युक्त ! परम आत्मन् ! कोई भी पदार्थ या कार्य तेरी प्रेरणा के बिना नहीं है । तेरे जैसा ज्ञानवान् विद्वान् तथा दान-शील भी कोई और नहीं । हे सबसे अधिक बढ़े हुए ! तू जिन अद्भुत कर्मों को करता है उनको न उत्पन्न होने वाला ही कोई कर सकता है, न उत्पन्न हुआ ही कोई कर सकता है ।

एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् १०॥२५

भा०—एक मेरा ही व्यापक पराक्रम हो । मैं जिन कर्मों को मन की शक्ति से या संकल्प की शक्ति से वश कर लेता हूँ उनको करने में समर्थ होता हूँ, हे वीरो ! मैं निश्चय से बलवान् और विद्वान् होकर जिनको भी प्राप्त कर लेता हूँ । मैं शत्रुहन्ता उन पर ही अपना प्रभुत्व करता हूँ । इसी प्रकार परमेश्वर का बल व्यापक है । अद्वितीय ही अपने व्यापक बल से सृष्टि के कार्य करता, वह ज्ञानवान्, बलवान्, जिन पदार्थों में व्यापक है उन सब पर वह वशी है ।

अमन्दन्मा मरुत स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

भा०—हे नायको ! इस राष्ट्र में आप लोगों के जो स्तुति वचन मेरे लिये हर्षकारी होते हैं, और जो श्रवणयोग्य महान् ऐश्वर्य और प्रभुत्व आप लोग बना रहे हो वह सब आप लोगों को भी सुखकारी हों । हे मित्रवर्गों ! आप लोग अपने शरीरों से मेरे शरीर की रक्षा और वृद्धि के लिये, मेरे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, सुखों के वर्षक उत्तम यज्ञशील मुझ मित्र के लिये, जो यत्न करते हो उसका उत्तम फल आपको भी प्राप्त हो ।

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
सञ्चक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥

भा०—हे प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार करने वाले प्रिय विद्वान् पुरुषो ! आप सब लोग मेरे प्रति अति स्नेहवान् होकर रहो ! और उत्तम गुरु उपदेश, वेद ज्ञान और उत्तम इच्छाओं और शक्तियों को धारण करते हुए चन्द्र या सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण वाले, तेजस्वी और शुद्ध चरित्रवान् होकर उत्तम रीति से अन्यों को उपदेश करके, और उत्तम रीति से तत्वों का आलोचन करके, अपने को आच्छादित करो, अपने को अन्न वस्त्रादि से सुभूषित करो और सुरक्षित रखो। और मेरे राष्ट्र की भी अवश्य रक्षा करो।

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! देखो यहां आप लोगों का कौन आदर सत्कार करता है। हे मित्रों अपने समान स्नेही को ही प्राप्त होवो। हे अद्भुत २ नाना कर्म करने हारे विद्वानो ! आप लोग मनन योग्य को प्राप्त कराते हुए मेरे इन समस्त ऐश्वर्यों और सत्यज्ञानों के शेष न रखकर, पूर्ण रीति से प्राप्त करने वाले और ज्ञाता होवो।

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥

भा०—सेवा शुश्रूषा करने योग्य पुरुष से जिस प्रकार परिचर्या करने वाले पुरुष को शिल्पसाधिका बुद्धि प्राप्त होकर उसे भी शिल्प करने में कुशल कर देती है, उसी प्रकार माननीय पुरुष की बुद्धि भी हमें योग्य बनावे। हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वान् पुरुष के समीप उसके समक्ष

जाकर उसका सत्संग करो। और वह विद्वान् उपदेष्टा आप लोगों को, नाना प्रकार के वेदज्ञान आदरपूर्वक प्रदान करे।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५।२६।३॥

भा०—हे मनुष्यो ! यह आप लोगों के लिये ही उत्तम वेदमन्त्र समृद्ध हैं। सबको हर्षित करने वाले माननीय तथा संसार के कारीगर परमात्मा की यह वेदवाणी है। आप लोग उसके समीप इच्छापूर्वक आवें। हम लोग उत्तम ज्ञान, दृढ़ इच्छाशक्ति, पाप निवारक और शत्रु निवारक बल, और जीवन या जयदायी सामर्थ्य को प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[१६६]

मैत्रावरुणोऽगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, जगती। ३, ५, ६, १२, १३ निचृज्जगती। ४ विराट् जगती। ७, ९, १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। १४ त्रिष्टुप् १५ पङ्क्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१॥

भा०—हे विद्या के अभिलाषी विद्यार्थी जनो ! मेघ के समान निष्पक्षपात होकर ज्ञानवर्षण करने वाले आचार्य के ज्ञान को प्राप्त करने, और बलपूर्वक उसके अधीन रहकर उत्तम द्विजत्व प्राप्त कर विद्या में जन्म लेने के लिये जो आप लोगों का माता पिता से प्राप्त या पूर्व जन्मों से प्राप्त महान् सामर्थ्य है उसका उपदेश करते हैं। नाना प्रकार की वेदध्व-

मित्रों को करने वाले शिष्यो ! जिस प्रकार मार्ग बनाने के लिये वृक्षादि की लकड़ियों को काट दिया जाता है और जिस प्रकार राज्य शासन के जमाने के लिये युद्ध या शस्त्रप्रहारों से शत्रुओं के सैन्यों को काट गिराया जाता है उसी प्रकार आप लोग शक्तिमान् होकर संयम के पालन के लिये बलों का सम्पादन करो।

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रंत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वंयः। नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतंवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार गृहस्थ लोग इन्द्रियोपभोग्य विषयों में रमण करते हुए, मधुर अन्नादि पदार्थ धारण करते हुए, अपने औरस पुत्र को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार सहनशील तपस्विजन अपने पुत्र के समान ही देह को प्रेरणा देने वाले नित्य आत्मा को मधुर आनन्दमय रूप से धारण करते हुए, उसी में रमण करते हुए, उपासना द्वारा उसको प्राप्त हो अतिप्रसन्न हुआ करते हैं। वे सत्य ज्ञान के उपदेष्टा नमस्कार करने वाले विनत शिष्य को अपने ज्ञान से युक्त करते हैं। वे 'स्व' अर्थात् अपने आत्मा के बल से बलवान् होकर दानयोग्य अन्नादि पदार्थों के प्रदान करने वाले को कभी नष्ट नहीं करते।

यस्मा ऊमांसो अमृता अरांसत रायस्पोषं च हविषां ददाशुषे। उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण हितकारी मित्रों के समान जल से सबको सुखजनक होकर इस जीवगण के सुख के लिये बहुत लोकों को जल से सींचते हैं, और वे सबके रक्षक और अमृत, प्राणमय होकर हवि द्वारा यज्ञ करने वाले को धन, गौ आदि समृद्धि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार वीर सैनिक हितकारी मित्रों के समान, अपने २ पदों पर स्थित

होकर अन्न और पुष्टिकारक पदार्थों से सबको सुख देने वाले जिस अन्न-दाता के वृद्ध्यर्थ धनों की समृद्धि को दें वे राष्ट्ररक्षक अमर होकर उसी के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, बहुत से लोकों को बढ़ाते हैं।

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्। भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥

भा०—जो वीर पुरुष अपनी बलशालिनी सेनाओं से समस्त लोकों की धूलियों और लोकों को वायु गणों के समान सब तरफ से व्याप लेते हैं। हे वीर पुरुषो ! वे आप लोगों के तीव्र वेग से जाने वाले अपने आप संयत, उत्तम रीति से बंधे हुए, या जितेन्द्रिय, अश्वगण और सवार लोग वेग से जाते हैं, उस समय सब प्राणी गण भयभीत होते हैं, और सब महल वा उनमें रहने वाले स्त्री आदि जन कांपते हैं। हे वीरो ! तब भी खूब उत्तम नियमों में बंधे, हथियारों के बीच सुसज्जित होकर आप लोगों का प्रयाण करना बड़ा अद्भुत, विस्मयकारी होता है।

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः। विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार सब मनुष्यों के हितकारी तीव्र वेग से जाने वाले वायु गण पर्वतों और मेघों को गुंजाते हैं, आकाश या अन्तरिक्ष पृष्ठ को भी व्याप लेते हैं, जिस प्रकार वायुओं से सब बड़े वृक्ष उनके वेग के भय से कांपते हैं, और ओषधिएं रथ पर चढ़ी स्त्री के समान खूब वेग से उड़ती सी दीखती हैं, उसी प्रकार सब मनुष्यों के हितकारी वीर और सज्जन पुरुषों के रथ आदि जो कि विद्युत् के द्वारा चलते हैं वे पर्वतों की शोभा बढ़ावें और पृथ्वी पर पर्वतों को गुंजावें। वे भूमि और अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर ही चलें। हे वीर पुरुषो ! आपके उखाड़ फेंकने वाले बल के

आधार पर सब सैन्य दल के रक्षक शत्रुजन तथा ऐश्वर्यपालक जन भी भय खाते हैं। और दाहकारी अस्त्रों के धारण करने वाली सेना भी रथ को चाहने वाली नव वधू के समान भीरु होकर मानो अपने नायक को चाहती हुई खूब कांप जाती वा आगे बढ़ती है। इति प्रथमो वर्गः॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा॥६॥

भा०—हे विद्वान् वीर पुरुषो! प्रचण्ड, तीव्र गुण-कर्म स्वभाव वाले आप लोग उत्तम ज्ञान से अपने जन संघों, ग्रामों और प्राणसमूहों को नष्ट न होने देते हुए, उनकी रक्षा करते हुए, हमारी शुभ बुद्धि, ज्ञान और बल को सदा पूर्ण करो। जहां तुम वीरों की हिंसाकरी दांतों वाली चमचमाती विद्युत्शक्ति भूमि और आकाश को फाड़ देती है और खूब लगी हुई या चलाई हुई तेज धार की शस्त्र धारा के समान विद्युत् भी में अश्वादि पशुओं और अधीन होकर लड़ने वाले सैनिकों का नाश कर सग्राम डालती है।

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या॥७॥

भा०—वीर पुरुष युद्धादि में अपने सैन्य और प्रजा के बीच में दृढ़ता आदि गुणों के देने वाले, कभी धन का नाश न करने वाले, सदा समृद्ध, शत्रुओं को खूब काट गिरा देने वाले और अति दानशील, संग्रामों और यज्ञों में उत्तम प्रशंसित होते हैं, वे आनन्दप्रद राष्ट्र की रक्षा के लिये सूर्य समान तेजस्वी पुरुष की अर्चना करते हैं, उसको प्रमुख बना कर उसके अधीन रहते हैं। इसी प्रकार विद्वान् ज्ञान मार्गों में अति आनन्दमय आत्मरस का पान करने के लिये तेजोमय प्रभु की उपासना करते हैं। वे ही शूरवीर परम शक्तिमान् प्रभु के श्रेष्ठ २ कर्मों को भली प्रकार जानते हैं।

शतभुजिभिस्तमभिहुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु॥८॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! सदा बलशाली, नाना वाणियों, ज्ञानोपदेशों व विद्याओं के ज्ञाता, बलवान् होकर जिस पुरुष को बचाते और गर्व-भरी स्तुति या हिंसा होने से पुत्र समान पोषणादि कर्मों से रक्षा करते हो, उसको आप लोग कुटिल मूर्छाकारी प्राणघातक पाप से सैकड़ों को पालने वाले, पुरों या नगरों से सुरक्षित रखो।

विश्वा॑नि भ॒द्रा म॑रुतो॒ रथे॑षु वो मिथ॒स्पृध्ये॑व तवि॒षाण्याहि॑ता।
अंसे॒ष्वा वः॒ प्रप॑थेषु खा॒दयोऽक्षो॑ वश्च॒क्रा स॒मया॒ वि वा॑वृते ॥९॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! तुम्हारे वेग से जाने वाले रथों में सब प्रकार के सुखकारीपदार्थ और परस्पर स्पर्धा से लड़ने वाली सेना, और प्रबल हथियार रखे होने चाहियें। इसी प्रकार तुम्हारे कन्धों पर भी और उत्तम २ मार्गों में खाने योग्य फल आदि उत्तम पदार्थ हों, और तुम्हारे रथ का धुरा दोनों चक्रों के निकट ही विशेष रूप से घूमे।

भूरी॑णि भ॒द्रा नर्ये॑षु बा॒हुषु॒ वक्षः॑सु रु॒क्मा र॑भ॒सासो॑ अ॒ञ्जयः॑।
अंसे॒ष्वेताः॑ प॒विषु॑ क्षु॒रा अधि॒ वयो॒ न प॒क्षान्व्यनु॒ श्रियो॑ धिरे ॥१०॥२

भा०—जो वीर मनुष्य वेग से काम करने वाले होकर मनुष्यों के हितकारी, शत्रु-बाधक बाहुओं पर बहुत से कल्याणकारी कर्त्तव्य धारण करते हैं, छातियों पर सुवर्ण के आभूषण पदक को जो कि उनके किये उत्तम कार्यों और गुणों को प्रकट करते हैं, कन्धों पर शुभ्रवर्ण के वस्त्र, और वाणियों में उत्तम शब्द, और शस्त्रों में तीक्ष्ण धारों को, पक्षों को पक्षियों के समान, विविध प्रकार से धारण करें। इति द्वितीयो वर्गः॥

म॒हान्तो॑ म॒ह्ना वि॒भ्वो॒३॒॑ विभू॑तयो दूरे॒दृशो॒ ये दि॒व्या इ॑व॒ स्तृभिः॑।
म॒न्द्राः सु॑जि॒ह्वाः स्वरि॑तार आ॒सभि॒ः संमि॑श्ला॒ इन्द्रे॑ म॒रुतः॑ परि॒ष्टुभः॑ ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के आश्रय वायुगण होते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन सैनिक वीर, और अन्धकारनाशक विद्वान्

आचार्य के अधीन चतुर विद्यार्थी जन रहें। वे महान् सामर्थ्य से गुणों में महान् अर्थात् आदरयोग्य हों, वे कार्य करने में समर्थ, नाना ऐश्वर्यों से युक्त, दिव्य पदार्थ सूर्य चन्द्र आदि लोक जिस प्रकार नक्षत्रगणों सहित दूर से दीखने वाले होते हैं उसी प्रकार ये भी ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर विस्तृत गुणों और अनुभवों सहित दूरदर्शी हों। वे स्वयं सब उत्तम पदार्थों की कामना करने वाले, आल्हादकारी और स्तुति युक्त, उत्तम वाणी वाले, मुखों से उत्तम वचन बोलनेहारे, परस्पर अच्छी प्रकार मिले हुए, स्नेही, सबको धारण करने और सब विद्याओं का अध्ययन करने वाले हों।

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम्।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

भा०—यह वायुओं का ही महान् सामर्थ्य है, और उनका ही लम्बा चौड़ा दान सामर्थ्य है जो विद्युत् भी जल के साथ विविध कुटिल मार्ग से चमका करता है। उसी प्रकार हे उत्तम कुलों में उत्पन्न और गुणों में प्रसिद्ध विद्वान् पुरुषो! आप लोगों का वह नाना प्रकार का महान् सामर्थ्य है, और आप लोगों का ही वह लम्बा चौड़ा विद्यादान है, आप लोगों का व्रत आचरण भी सूर्य के व्रत के समान ही है। आप लोग जिस उत्तम पुण्यकारी पुरुष के उपकार के लिये विद्या आदि दान करते हो, उसके उपकार के लिये ऐश्वर्यवान् पुरुष भी अपने दान देने योग्य धन से प्रत्यक्ष परोक्ष विविध प्रकारों से सहायकारी होते हैं।

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥

भा०—वायुगण की यह बन्धुता है कि वे गत वर्ष या गत काल के समान शान्तिदायक मेघादि को पुनः लाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार मनुष्यमात्र को सुख और अन्न आदि प्राप्त कराकर अपने वर्षणादि कर्मों सहित ही जाने जाते हैं। उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो!

आप लोगों का वह उत्तम बन्धुभाव है कि आप लोग जीर्घजीवी होकर अतीत काल में भी जो उपदेश करने योग्य उत्तम वेदवचन और ज्ञान रहता है उसकी रक्षा किया करते हो, और इसी उत्तम धारण शक्ति, बुद्धि और अध्ययन आदि कर्म से मनुष्यमात्र के हित के लिये श्रवण करने योग्य ज्ञान की रक्षा करके, स्वयं नेता बनकर उत्तम आचारों और कर्मों के साथ ज्ञान का सम्पादन करते और कराते रहते हो। ऐसा ही किया करो।

येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शू॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न॒ परी॑णसा तुरासः।
आ यत्त॒तन॑न्वृ॒जने॒ जना॑स ए॒भिर्य॒ज्ञेभि॒स्तद॒भीष्टि॑मश्याम् ॥१४॥

भा०—हे वेगवान्, वायुओं के समान सर्वोपकारक विद्वान् और बलवान् पुरुषो! आप लोगों के जिस बड़े भारी सामर्थ्य और ज्ञान से हम बहुत लम्बा जीवन बढ़ा लेते हैं, और आप के जिस विघ्ननिवारक बल पर निर्भर करके लोग नाना यज्ञ करते हैं, मैं उन यज्ञों, दान, सत्संग, उपासना आदि पुण्यकर्मों के साथ २ आप के उसी बल सामर्थ्य से अपने अभीष्ट, मनचाही मनोकामना को प्राप्त करूं।

ए॒ष व॒: स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गीर्मा॑न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒यां वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १५ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सू० १६५ का १५ वां मन्त्र।

इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो मरुच्च देवता छन्दः—१, ४, ५, भुरिक् पङ्क्तिः। ७, ९ स्वराट् पङ्क्तिः। १० निचृत् पङ्क्तिः। ११ पङ्क्तिः। २, ३, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

स॒हस्रं॑ त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्र॒मिषो॑ हरिवो गू॒र्तत॑माः।
स॒हस्रं॒ रायो॑ माद॒यध्यै॑ सह॒स्रिण॒ उप॑ नो यन्तु॒ वाजा॑: ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरी हजारों रक्षा के साधन, उत्तम उद्यमी सहस्रों सेनाएं, और हजारों ऐश्वर्य, और हजारों ऐश्वर्य प्रदान करने वाले ज्ञान ,और नाना ऐश्वर्य और बल और अन्न हमें हर्ष और आनन्द प्राप्त करने के लिये प्राप्त हों।

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

भा०—वे वैश्य गण और विद्वान् जन ! जो विद्या और वयस् में वृद्ध, बड़ी भारी ज्ञानज्योतियों से प्रकाशमान्, विद्वानों के सत्संग से उत्तम शुभ बुद्धिवाले हैं, वे हमें सदा ज्ञानों और रक्षा साधनों सहित प्राप्त होते रहें। और वे जो उत्कृष्ट कोटि के आदमी समुद्र के परले पार भी धन ऐश्वर्य की कामना से व्यापार करते हैं और ऐश्वर्य उपार्जन करते हैं वे भी हमें प्राप्त हों।

मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं में जल प्रकट होने वाली, उत्तम रूप से विद्यमान्, सुवर्ण के समान चमकने वाली मेघमाला लचकती तलवार के समान चमकती है, और जिन वायुओं में समान कान्तिवाली मनुष्य की स्त्री के समान अन्तरिक्षरूप गुफा में विचरने वाली शब्द करने वाली मध्यमा वाक् विद्युत् आश्रित है, उसी प्रकार जिन विद्वानों में, प्रकाशयुक्त और सु-अभ्यस्त, तथा हित और रमणीय ज्ञान से शिष्यों के ज्ञानसामर्थ्य को बढ़ाने वाली, सबको प्राप्त होकर रमण कराने वाली, पुरुषार्थों को प्राप्त कराने वाली, मनुष्य की सभा में एक साथ बैठने वाली स्त्री के समान धर्मसभा आदि सभाओं को धारण करने वाली, हृदय में या बुद्धि के आश्रय होकर विचारपूर्वक मुख से निकलने वाली, ज्ञान देने में श्रेष्ठवाणी अच्छी प्रकार निवास करती है वे विद्वान् जन हमारे आदर के पात्र हों।

परा॑ शु॒भ्रा अ॒यासो॑ य॒व्या सा॑धार॒ण्येव॑ म॒रुतो॑ मिमिक्षुः ।
न रो॑द॒सी अप॑ नुदन्त घो॒रा जु॒षन्त॒ वृधं॑ स॒ख्याय॑ दे॒वाः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार संयोग विभाग करने वाली साधारण गति से बहने वाले और भासने वाले वायु गण, दूर २ तक के देशों को जलों से सींच देते हैं, शब्द करने वाले मेघ और विद्युत् दोनों का भी गर्जन दूर नहीं हटा देते प्रत्युत स्वयं भयंकर वेग से चलकर जल का प्रदान करने वाले होकर, सब प्राणियों के प्रति मित्रभाव के लिये, सबके बढ़ाने तथा तथा पुष्ट करने वाले जल अन्न या सूर्य का सेवन करते कराते हैं, उसी प्रकार विद्वान् लोग अपने से कम अवस्था वाली, अपने समान बल वीर्य धारण करने वाली स्त्री के साथ संगत होने वाले, अलंकारों और उत्तम उज्ज्वल वस्त्रों से शोभायमान होकर उत्तम रीति से स्त्री क्षेत्र में बीज वपन करें। रोने के स्वभाव वाली दुःखिता स्त्री को या दीन दुखिया को भी वे अपने से दूर न करें। बलवान् शत्रुओं के लिये भयंकर होकर भी दिव्य गुणों से युक्त एवं कामनाशील प्रेमयुक्त होकर अपने कुल को बढ़ाने वाली स्त्री को ही मित्रभाव की वृद्धि के लिये उससे और अधिक प्रेम करें।

जोष॒द्यदी॑मसु॒र्या॑ स॒चध्यै॒ विषि॑तस्तुका रोद॒सी नृ॒मणाः॑ ।
आ सू॒र्येव॑ विध॒तो रथं॑ गात्त्वे॒षप्र॑तीका॒ नभ॑सो॒ नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य की मध्यान्ह काल की दीप्ति जिस प्रकार तेज प्रकाश देने वाली होकर विविध लोकों को धारण करने वाले सूर्य के रमणीय बिम्ब को प्राप्त होती है, अथवा वायु की तीव्र गति जिस प्रकार विशेष शिल्प रचने वाले पुरुष के वेगवान् रथ को प्राप्त होती है, उसी प्रकार असुर अर्थात् प्राणप्रिय पुरुष की हितकारिणी, विविध प्रकार से अपने केशों को बांधने वाली, वियुक्त होते हुए माता पिता सम्बन्धियों को देखकर आंखों में जल भरलाने वाली, सब मनुष्यों के लिये उचित स्नेहवाली, दीप्तियुक्त

मुख वाली, कान्तिमती, सुन्दर स्त्री जब अपने अभिलषित पुरुष को स्वीकार करे, तब वह सूर्य की कान्ति के समान और जल की धारा के समान विवाह विधि से धारण करने वाले वर के प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य जलों का ग्रहण करने वाला, ओषधियों को उत्पन्न करने हारा, क्रिया करता हुआ वायुओं की 'गाथा' अर्थात् ध्वनि करने वाली गर्जना को गाता है, तब वे वायुगण संघातयोग्य जलों में व्यापने वाली, सब पदार्थों में गूढ़ रूप से रहने वाली अति बलवती विद्युत् को जलवर्षण और दीप्ति के लिये अन्तरिक्ष में प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का आदरणीय, उत्तम ज्ञान और अन्न सम्पदा से युक्त, ऐश्वर्य को प्राप्त करके वृद्धों की सेवा शुश्रूषा करने वाला शिष्य, जब गाथा अर्थात् वेदवाणी का अध्ययन कर लेता है, या अग्नि की परिक्रमा करता हुआ गाथा अर्थात् वेद मन्त्र का पाठ करता है, तब वर के सखाजन धर्मानुकूल व्यवहारों में अच्छी प्रकार शुभ गुण विद्या आदि स्वभाव द्वारा अपने को मिलाने वाली युवती कन्या को, शुभ कार्य के निमित्त सब प्रकार से दृढ़तया स्थापित करें। उसे किसी प्रकार का क्षोभ न होने दें।

प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७॥

भा०—जो इन विद्वान् पुरुषों का सत्य, वर्णन करने योग, महान् सामर्थ्य है, मैं उसका उपदेश करता हूँ। वह यह कि जो उनमें से वीर्य-सेचन अर्थात् पुत्रोत्पादन करने में चित्त देने वाला, गृहस्थ का अभिलाषी, पुत्रैषणावान्, अहंभाव से युक्त, आत्मवान्, जितेन्द्रिय है वह ही धर्म

और लोकयात्रा में स्थिरचित्त, सुख सौभाग्य से युक्त, पुत्र जनन में समर्थ दारा को विवाहे।

पान्ति मित्रावरुणावव्द्याच्चयंत ईमर्यमो अप्रंशस्तान्।
उत च्यंवन्ते अच्युंता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मित्र अर्थात् सबका स्नेही या प्रजा को मरण से बचाने वाला, तथा वरुण अर्थात् सब दुष्टों का वारक और श्रेष्ठ जन और शत्रुओं को संयमन करने वाला न्यायकारी पुरुष, निन्दनीय पापाचरण से रक्षा करें। और बुरे पापाचारी लोगों का विनाश करें। इस प्रकार न करने से कभी न डिगने वाले स्थिर राष्ट्र भी उत्तम पद से गिर जाते हैं। इस प्रकार दानयोग्य कर आदि संग्राह्य पदार्थों को प्रजा से स्वीकार करने वाला पुरुष सब प्रकार से बढ़ता और इस प्रजाजन को भी बढ़ाता है।

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्तांच्चिच्छवंसो अन्तंमापुः।
ते धृष्णुना शवंसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परिष्ठुः॥ ९॥

भा०—हे शत्रुओं का नाश करने वाले बलवान् पुरुषो! हम प्रजाजनों में से आप लोगों के बल और ज्ञान का दूर और पास कहीं भी कदाचित् कोई पार न पा सके। आप सब लोग शत्रु का पराजय करने वाले बल से सदा बढ़ते हुए, अपने धर्षक बल द्वारा हर्ष करने वाले अधार्मिक शत्रुओं को, जल को तटों के समान, चारों ओर से घेर कर रोक लो।

वयमद्येन्द्रंस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरा मनुष्यात्॥१०॥

भा०—हम लोग परमेश्वर वा राजा के अति प्रिय होकर ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की आज और आने वाले दिनों में आगे भी अन्य मनुष्यों के सत्संग में स्तुति करें। उसके गुणों का वर्णन करें। हम पहले भी और अब सब दिनों उसके गुण गान करें। वह हमें बहुत बल सामर्थ्य प्रदान

करे। और वह सब नायकों में से सबसे बड़ा होकर हमारे अनुकूल सुखदाता हो।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल १।सू० १६५।१५०॥ इति पञ्चमो वर्गः॥

[१६८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती । २५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, भुरिक् त्रिष्टुप । ८, त्रिष्टुप । ६, निचृत् त्रिष्टुप् । १० पंक्तिः ॥

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! मिलकर करने योग्य उपासना, युद्ध, यज्ञ, सत्संग आदि प्रत्येक कार्य में आप लोगों की शीघ्र गति भी एक समान वेग से हुआ करे। उपासना में एक साथ मन्त्रादि कहें, युद्ध में एक चाल से कदम उठावें, सत्संगों में समान भाव से वर्त्तें। आप लोगों में से जो दिव्य गुणों वाले और विद्वानों के उपासक शिष्य आदि हैं, और अग्नि आदि दिव्य पदार्थों को प्राप्त वैज्ञानिक लोग हैं, वे प्रत्येक काम और प्रत्येक ज्ञान को धारण करें, आप लोगों में से नव शिक्षितों को, आकाश और पृथिवी के बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, और बड़े भारी रक्षा कार्य के लिये, दुःखदायी कारणों को दूर कर देने वाले साधनों सहित, सब प्रकार से वरण करूं और उनको कार्य में नियुक्त करूं।

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष निरन्तर देश देशान्तर में भ्रमण करने हारे, बल ऐश्वर्य और आत्मसामर्थ्य से संसार में प्रकट हैं, और स्वयं अपने

बल से बलवान्, शत्रुओं को और बाधक मोह आदि अन्तः शत्रुओं को कंपाकर दूर करने हारे, परम सुखमय सूर्य के समान प्रकाशमय, सर्व-प्रेरक परमेश्वर को साक्षात् करते हैं, वे संख्या में सहस्रों जलतरंगों के समान स्वयं भी ज्ञानों और कर्मों का उपदेश करने हारे, तथा गौओं के समान ज्ञानदुग्ध से सबको पालने वाले, और अभिवादन आदर और कामना करने योग्य, सेचन करने वाले मेघों के समान सुख से ज्ञान का वर्षण करने हारे हैं।

सोमा॑सो॒ न ये सु॒तास्तृ॒प्तांश॑वो हृ॒त्सु पी॒तासो॑ दु॒वसो॒ नास॑त ।
ऐषा॒मंसे॑षु र॒म्भिणी॑व रारभे॒ हस्ते॑षु खा॒दिश्च॑ कृ॒तिश्च॒ सं द॑धे ॥ ३॥

भा०—सोम आदि ओषधियां जिस प्रकार एक २ रेशे में तृप्त अर्थात् रस से पूर्ण होती हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष सौम्य गुणों से युक्त शिष्यों वाले, तथा पुत्री और अपने औरस पुत्रों वाले हैं, वे हृदयों में पूर्ण तृप्त होकर सेवकों के समान सदा सेवा करने को तैयार होकर विराजें। उत्तम गृहस्थ कार्यों को आरम्भ करने वाली, या प्रेमालिंगन करने वाली स्त्री जिस प्रकार कन्धों पर हाथ रखकर पति का आलम्बन और अलिंगन करती है उसी प्रकार इन वीर पुरुषों के कन्धों पर बलवती अस्त्रादि शक्ति आश्रय पाती है, और हाथों में अपना खाद्य भोजन और क्रिया कौशल या कर्त्तव्य अथवा हाथों में हस्तत्राण और काटने वाली तलवार सदा तैयार रहती है।

अव॒ स्वयु॑क्ता दि॒व आ वृथा॑ ययु॒रम॑र्त्याः॒ कश॑या चोदत॒ त्मना॑ । अ॒रे॒णव॑स्तुविजा॒ता अ॑चुच्यवुर्दृ॒ळ्हानि॑ चिन्म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण अपने ही बल से प्रेरित होकर आकाश में अनायास आते जाते हैं, और अपनी गति से आप ही सबको प्रेरित करते हैं, और वे जिस प्रकार रेणुरहित और बलशाली होकर चमकते

सूर्य से रश्मियां पाकर बड़े दृढ़ वनों पर्वतों को भी कंपा देते हैं, उसी प्रकार ये वीर पुरुष और विद्वान् जन धनैश्वर्य के द्वारा नियुक्त होकर, तेजस्वी पुरुष के अधीन अनायास ही जाते आते हैं। वे साधारण मनुष्यों से भिन्न रहकर स्वयं शासनव्यवस्था से प्रजा को संचालित करें। वे हिंसादि दोषों से रहित, बल द्वारा प्रसिद्ध, तीव्र गतिवान्, और चमचमाते शस्त्रों से सुसज्जित होकर शत्रु के दृढ़ सैन्यों और दुर्गों को भी कंपा देते और स्थायी ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करते हैं।

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३नैतशः॥ ५॥ ६॥

भा०—दुधारा तलवार के समान बिजली को धारण करने वाले जैसे वायुगण होते हैं, वे वृष्टियों अन्नों को प्राप्त कराने के लिये आकाश से जल बरसाते हैं, प्रश्न यह है कि उनके बीच में कौन सा बल उसको चला रहा है? उत्तर—जैसे उत्तम अश्व बिना ताड़ना के ही मार्ग में जाता है उसी प्रकार शुक्र कान्ति से युक्त सूर्य जो दिन को करनेहारा है वही सब वायुगण को चला रहा है। ठीक इसी प्रकार हे विद्वान् और वीर पुरुषो! विद्युत् के समान रण में दुधार तलवार और आत्मा में ज्ञान दीप्ति को धारण करने वाले आप लोगों के बीच वह कौन है जो जिह्वा की गति से जिस प्रकार दोनों जबाड़े चलते हैं उसी प्रकार शत्रु को हनन करने वाली दायें बायें या स्वपक्ष परपक्ष की दोनों सेना को अपनी वाणी द्वारा ही सञ्चालित करता है। और आप लोग अन्नों की प्राप्ति के लिये जल बरसाने वाले मेघों के समान बाणों और सेनाओं के सञ्चालन के कार्य में धनुष के बल से शत्रुओं को च्युत करने वाले, बहुत से ऐश्वर्यों के लिये उत्कृष्ट इच्छा वाले, अश्व के समान बिना ताड़ना के ही मार्ग पर जाने वाले हैं। इति षष्ठो वर्गः॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम्॥ ६॥

भा०—इस लोक का सबसे उत्कृष्ट बड़ा भारी कारण या आश्रय कहां है ? 'अवर' अर्थात् उत्पन्न कार्य जगत् किस पर आश्रित है ? हे विद्वान् लोग ! जिस परम आश्रय पर आप पहुँचते हैं उसका उपदेश करो। देवगण जिसके बल से गति करते हैं ? जिस प्रकार शिथिल जलों को वायु गिरा देते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! वह कौन सा बल है जिससे प्रेरित होकर व्यथित दुःखितों को आप प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार वायु गण विद्युत् या मेघ से दीप्तिमान् जलमय मेघ को लाते और बरसाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी सर्वत्र समानभाव से व्यापक, सबके लिये हितकारी, सूर्य के समान दीप्तिमान्, सब शक्तियों के सागर की मेघ के समान आनन्दवर्षी धर्ममेघ, या आत्मा सहित विविध उपायों से प्राप्त करते हो। वह कौन सा है ? उत्तर—वह परमेश्वर है।

सा॒तिर्न वो॑ऽमव॑ती॒ स्व॑र्वती त्वे॒षा विपा॑का मरुतः॒ पिपि॑ष्वती।
भ॒द्रा वो॑ रा॒तिः पृ॑ण॒तो न दक्षि॑णा पृथु॒ज्रयी॑ असु॒र्ये॑व॒ जञ्ज॑ती ॥७॥

भा०—वायुओं का जलादि का विभाग रोगकारी न होकर सुख देने वाला है। वह वायुओं का विभाग वेगवान्, विविध फलों को पकाने वाला, मेघ के जलों को छिन्न भिन्न कर पीसने वाला होता है। वायु गणों का दान सुखजनक, बहुवेगयुक्त, मेघ लाने वाला, बलात् सबको दबाने वाला होता है। इसी प्रकार हे विद्वान् जनो ! वीर पुरुष ! आप लोगों का किया हुआ विभाग भी अन्यों को कष्ट देने वाला न हो, प्रत्युत सुख देने वाला हो। आप लोगों की दीप्ति नाना प्रकार के उत्तम परिणामों को परिपक्व करने वाली हो। और वह आप लोगों का विविध भागों में विभक्त होना भी शत्रु का प्रत्येक अंग पीस डालने वाला हो। और आप लोगों को दिया दान पालन करने वाले यजमान की दी दक्षिणा के समान कार्यक्षमता को बढ़ाने वाला हो। और वह बड़े २ लोगों में भी वेग या शक्ति पैदा कर देने वाला, प्राणों की शक्ति के समान या मेघों के बीच

उत्पन्न विद्युत् के समान या बलवान् पुरुषों की सेना के समान सबको अपने अधीन कर देने वाला और कल्याणकारी सुखदायक हो।

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति॥ ८॥

भा०—जब वायुगण मेघ से उत्पन्न गर्जना को उत्पन्न करते हैं तब जलधाराएं या वेगवान् जलधारा बहाने वाले मेघ विद्युत् के आघातों से बराबर विक्षुब्ध होते हैं, और जब वायुगण सब तरफ वर्षा करते हैं तब मानो पृथिवी पर बिजलियां मानो नीचे को मुंह किये ईषद् हास करती, मुस्कराती हैं। इसी प्रकार विद्वान् लोग जब भी मेघ के समान ज्ञान धाराओं के देने वाले पद पर स्थित होकर परमपवित्र करने वाले ईश्वरोपासना तथा पवित्र कार्यों के लिये वेदवाणी का उच्चारण करते हैं, तब वे बहुत नदियों या बरसते मेघों या गर्जते समुद्रों के समान 'स्तोभ' नामक सामगानोपयोगी ध्वनि को उत्पन्न करते हैं। और जब ऋत्विग्जन पृथिवी पर इस अग्नि को घृत धारा स्नान कराते हैं तब विशेष कान्तियुक्त अग्निज्वालाएं प्रत्यक्ष रूप से मुस्कराती हैं, चमक उठती हैं।

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम्।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्॥ ९॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य बड़े भारी जीवलोक के आनन्दपूर्वक रमण करने के लिये अपना प्रकाश, तीक्ष्ण ताप उत्पन्न करता, और वेग से जाने वाले वायुगणों के समूह को भी प्रेरित करता है, और वे तीव्र वेग से जाने वाले वायुगण जलमय मेघ को उत्पन्न करते हैं, उसके अनन्तर लोग इच्छानुकूल जल और खेतों में अन्न को ही सब ओर बरसा और उत्पन्न हुआ देखते हैं, उसी प्रकार आदित्य के समान तेजस्वी ऐश्वर्यवान् प्रतापी राजा या सेनापति बड़े भारी संग्राम के विजय के लिये तेजस्वी तथा आक्रमण करने में कुशल शत्रुमारक वीरपुरुषों के सैन्य को उत्पन्न

करे और आज्ञा से चलावे। जब वे समवाय या दस्ते या दल बना कर चलने हारे वीर जन असामर्थ्य, थकान प्रकट करते हैं तब वे अपनी रक्षा और अभिलषित वेतन और अन्न को भी प्राप्त करते हैं।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥७॥

भा०—व्याख्या देखो ऋ० १।१६५।१५॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[१६६]

अगस्त्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्द—१, ३ भुरिक् पंक्तिः। २ पंक्ति। ५, ६ स्वराट् पंक्ति। ४ ब्राह्मयुष्णिक्। ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप्॥

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! दुःखों के नाशक! सूर्य के समान तेजस्विन्! तू भी महान् ही है। क्योंकि तू ही इन सब बड़े २ लोकों को अपने से उत्पन्न पुत्रों के समान ही अपना रहा है, उनकी रक्षा करने हारा है। हे वायुओं के प्रवर्त्तक सूर्य के समान और शिष्यों के प्रवर्त्तक ज्ञानवान् गुरु के समान हम सब प्राणियों के पिता के समान सबके उत्पादक! वह तू सर्व पूज्य सब कुछ जानने हारा है। तू तेरे जितने अति प्रिय सुख हैं उन्हें हमें प्रदान कर।

अयुजून्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निषिधो मर्त्यत्रा।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! मनुष्यों के बीच में विद्वान् लोग बुरे मार्गों और बुरे आचरणों का निषेध करते हुए तेरी समस्त मनुष्य प्रजाओं को उत्तम कार्य में प्रेरित करें। क्योंकि सुखों के वर्षानेवाले उत्तम धन के सर्वत्र विभाग कर देने में विद्वान् पुरुषों की सर्व-

साधारण मनुष्यों के प्रति जो प्रेरणा और दानशीलता होती है वह सदा आनन्द से युक्त सबको प्रसन्न करने वाली होती है।

अभ्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तेरी ही वह अवर्णनीय प्रेरणा और शक्ति सर्वश्रेष्ठ और सर्वत्र व्यापक है, जो कि विद्वान्गण अतिपुरातन सनातन से चले आये अनादिसिद्ध ज्ञान का हमें उपदेश करते हैं। काष्ठ में लगा अग्नि जिस प्रकार लगकर खूब चमकता है और आकाश में जिस प्रकार सूर्य चमका करता है उसी प्रकार व्यापक आत्मा में ज्ञानवान् पुरुष भी शुद्ध ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित हो। जल जिस प्रकार द्वीप को घेर लेते हैं और उसको अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार प्राणगण भीतरी और बाहर दोनों ओर से प्राणों को धारण करने वाले देह को बल और अन्न प्रदान करते और पुष्ट करते हैं।

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम्।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सूर्य के समान अन्धकारों और शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस प्रकार अति बल प्रदान करने वाली दक्षिणा के द्वारा दान करने योग्य द्रव्य राशि को यजमान पुरोहित के हाथ सौंपता है उसी प्रकार तू भी सबसे अधिक बलशालिनी 'दक्षिणा' अर्थात् आत्मा की कार्य करने में समर्थ बलवती शक्ति या सेना के द्वारा हम प्रजाजनों को सब ऐश्वर्य देने वाली राज्यलक्ष्मी प्रदान कर। हे राजन् ! जो स्तुतिशील प्रजागण वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् और ज्ञानवान् तुझको चाहती हैं, क्षीर के देने वाले स्तन को जिस प्रकार अन्नों के द्वारा अधिक पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार वे प्रजाएं भी अपने बलों और ऐश्वर्यों से मधुर और शत्रु को कंपाने वाले गर्जनशील तुझ वीर को खूब समृद्ध करें।

त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥५॥८॥

भा०—जिस प्रकार दानयोग्य मेघ के जल, जल के इच्छुक किसी भी किसान को खूब प्रसन्न करते और उसको खेत के काम में लगाने वाले होते हैं उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! दानशील पुरुष ! तेरे ऐश्वर्य सत्य और धन की इच्छा करने वाले के लिये अतिसुख देने वाले और उसको उत्तम कार्य में लगने वाले हों। इसी प्रकार हे आचार्य ! तेरे देने योग्य ज्ञानोपदेश, वेद और सत्य ज्ञान के इच्छुक शिष्य को, उसके अज्ञान को अच्छी प्रकार नाश करने और हृदय को सुखी करने वाले और उसे सन्मार्ग में ले जाने वाले हैं। जो विद्वान् जन, या विद्याभिलाषी जन पहले पृथिवी के समान सबके आश्रयभूत ब्रह्मचर्य, सन्मार्ग और गानयोग्य वेदराशि के अभ्यास की इच्छा करते हैं वे विद्वान् पुरुष हमें खूब सुखी करें। इति अष्टमो वर्गः ॥

प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥६॥

भा०—हे सेनापते ! तू मेघों के समान तुझ पर शस्त्र वर्षाने वाले प्रतिपक्षी पर प्रयाण कर, उन पर चढ़ाई कर, और बड़े भारी पृथिवी के राज्यसिंहासन के प्राप्त करने के निमित्त यत्न कर। कब कर ? जब कि इन अपने वीर सैनिक पुरुषों के बड़े मूल, आधार वाले, दृढ़ अश्वगण, बड़ी २ प्रयाण करने वाली सेनाएं, स्त्रियां और प्रजाएं, पार पहुँचा देने वाली नाव पर वैश्य के समान संग्राम सागर से पार उतारने वाले नायक पुरुष के अधीन रहकर नाना बल कर्म करने को तैयार बैठी हैं।

प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार वेग से बहने वाली, गतिशील, और सब तरफ

जाने वाले वायुओं की ध्वनि सुनाई देती है, और जिस प्रकार वे वायु गण अन्न को चाहने वाले मनुष्य को पशु आदि रक्षा साधनों और जलों सहित प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार धनी लोग रक्षाकारी पुरुषों या नाना उपयों सहित ऋण वाले पुरुष के प्रति अपने को उसके धन का भी स्वामी बतलाते हैं, उसी प्रकार दुष्टों को भय देने वाले, शुक्ल वर्ण के वस्त्रों वाले, उत्तम कर्म और ज्ञान से सम्पन्न, ज्ञानवान्, सब तरफ जाने वाले, वायु और प्राण के समान सर्वोपकारी परिव्राजकों की उपदेशमयी वाणी बराबर सुनाई दे जो विद्वान् पुरुष अपने रक्षासाधनों से और नाना प्रकार उपायों से सेना और सहायक मनुष्यों को चाहने वाले पुरुष को भी ऋणी पुरुष के समान प्राप्त कर, उसे अपने वशकर, उत्तम उपदेशों से उस पर आधिपत्य प्राप्त करते हैं।

त्वं मानेभ्यः इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आचार्य विद्वन्! तू समस्त ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली, शीघ्र ही दुःखों को रोकने और अज्ञान का नाश करने वाली श्रेष्ठ वाणियों को, मान करने वाले उत्तम शिष्यों के लिये खोल २ कर रख। हे ब्रह्मदान के दातः! तू प्राणों के समान प्रिय स्तुतिशील, विद्या की कामना करने वाले शिष्यजनों से इस प्रकार प्रार्थना किया जाता है कि हम सन्मार्ग में उत्तम प्रेरणा वाले, पापों के निवारक, और जीवन देने वाले अमृत को प्राप्त करें। इति नवमो वर्गः ॥

[१७०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम्।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

भा०—जो निश्चय से आज नहीं है वह कल भी नहीं। उसको कौन जानता है जो अद्भुत, आश्चर्यजनक या जो कभी हुआ ही नहीं ? जो सब से भिन्न है उस अन्य का ज्ञान करने का साधन चित्त, इधर उधर सञ्चार करता है, इधर उधर सर्वत्र विचलित होता रहता है, वह स्थिर नहीं होता। और अच्छी प्रकार विचार और स्मरण किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है। अर्थात् आज, कल परसों आदि काल के भागों में उत्पन्न अनित्य पदार्थों को कोई नहीं जानता। तब जो आत्मा कभी उत्पन्न नहीं हुआ उसके विषय में भी कोई क्या जाने ! वह आत्मा सबसे पृथक् रहने से 'अन्य' है। उसका संकल्प विकल्प साधन चित्त है वह इधर उधर जाता, नाना फल भोग करता, एक स्थान पर नहीं टिकता।

किं न॑ इन्द्र जिघांससि भ्रात॑रो म॒रुत॒स्तव॑।

तेभि॑ः कल्पस्व साधु॒या मा न॑ः स॒मर॑णे वधीः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हम तेरे ही भरण पोषण करने वाले वा तेरे द्वारा ही पोषण पाने योग्य, तेरे भाई हैं। तू हमें क्यों मारना चाहता है ? तू उनके साथ उत्तम, साधना द्वारा सबको वश करने वाले व्यवहार से आचरण कर। हमें संग्राम में, एक साथ मिलकर बनी संघशक्ति से जाने योग्य कार्य में मत मार।

किं नो॑ भ्रातरगस्त्य स॒खा सन्नति॑ मन्यसे।

वि॒द्मा हि ते॒ यथा॒ मनो॒ऽस्मभ्य॒मिन्न दि॑त्ससि ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके भरण पोषण करनेहारे ! हे वृक्षादि स्थावर पदार्थों को भी वेग से उखाड़ फेंकने में समर्थ वायु के समान बलशालिन् ! तू हमारा मित्र होकर क्यों हम से अधिक अपने को मानता और हमारा तिरस्कार करता है, जिस प्रकार तेरा चित्त है हम भी उसे प्राप्त करें, जानें तू क्या हमें ही या हमें भी नहीं देना चाहता ? प्राणगण आत्मा को कह रहे हैं वह सबका भरण पोषणकारी होने से भ्राता है। द्रष्टा, श्रोता, मन्ता

आदि समान नामों से कहलाने योग्य होने से 'सखा' है। उसके पास 'मनः' मननसामर्थ्य, ज्ञानसामर्थ्य है। वह अपनी ज्ञान शक्ति ही इन्द्रियों को प्रदान करता है।

अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

भा०—वेदि को विद्वान् पुरुष सुशोभित करें उत्तम रीति से उसका निर्माण करें। अग्नि को आगे प्रज्वलित करें। वहां अमरणधर्मा नित्य जीव को ज्ञान कराने वाले तुझ परमेश्वर की पूजा, उपासना रूप यज्ञ को हम स्त्री पुरुष मिलकर करें।

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥५॥१०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे सब ऐश्वर्यों और बसने बसाने वाले जीवों और लोकों के पालक! तू ही सब प्राणियों, ऐश्वर्यों और लोकों का स्वामी है। उनको अपने वश कर रहा है। हे मित्रों के पालक! तू सब स्नेह करने वालों का पालन पोषण और धारण करने वाला है। तू प्राणों के समान प्रिय विद्वान् मनुष्यों के साथ उत्तम संवाद कर। और ऋतु अनुसार उत्तम अन्नों का अच्छी प्रकार भोग करा। अधीन रहने वाले शिष्य अन्तेवासी 'वसु' ब्रह्मचारी हैं। उनका आचार्य 'वसुपति' है। वे ही 'मरुत' हैं उनसे संवाद कर उनको विद्योपदेश देवे। ऋतु अनुसार अन्नों और हविष्यों का भोग करे। इति दशमो वर्गः ॥

[१७१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः १, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पांक्तिः ॥

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम्।

रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

भा०—हे योग्य शिष्यो ! मैं इस नमाने के साधन, विनय को सिखाने वाले उपाय से तुम्हें प्राप्त होता हूँ। उत्तम वेद के उपदेश से चंचल वृत्ति वाले आप लोगों की उत्तम मति को चाहता हूं। आप सब अपना मनोयोग मुझे दें। आप लोग ज्ञान करने योग्य विद्याओं से आनन्द युक्त हुए प्रसन्न चित्त से क्रोध और हृदय के बीच छुपे अनादर और चंचलता के भाव को वश में करो। और भोक्ता इन्द्रियों को विशेष रूप से वश करो।

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २॥

भा०—हे शिष्य जनो ! हे उत्तम विद्या और शुभ गुण, कर्म, उपदेशों की कामना करने वालो ! यह आप लोगों के लिए विनयशीलता से युक्त, विनय से ग्रहण करने योग्य उत्तम उपदेश हृदय से खूब विचार किया गया और मनन द्वारा धारण करने योग्य है। आप लोग मन से इसको ग्रहण करते हुए सब प्रकार से मनसा, वाचा, कर्मणा, मेरे अति निकट आवो। आप लोग ही अन्नों की वृद्धि करने वाले वायुगण के समान गुरुजनों के प्रति विनयशीलता और उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करने हारे हो।

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग स्तुति किये जाकर और गुरुओं द्वारा उत्तम रीति से उपदेश प्राप्त करके हमें सदा सुखी करो। और उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य का स्वामी अति प्रशंसित होकर हमारे लिये अत्यन्त शान्ति और कल्याण का करने वाला हो। हे विद्वान् वीर पुरुषो ! हमारे पास सब दिनों सब से ऊंचे अत्यन्त सुन्दर, सेवने योग्य ऐश्वर्य और जीतने योग्य राज्यसुख प्राप्त हों।

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो ! इस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष से प्रेरित या भयभीत होता हुआ, और उसी से मैं प्रजाजन भयभीत होकर, कांपता रहता हूँ । इसलिये तुम्हारे लेने योग्य जो तेज धार वाले अस्त्र शस्त्र हैं उनको हम भी अपने पास रखें और आप लोग भी हमें सदा सुखी रखो ।

यावन्तः स्त्रीपुरुषाः भवेयुः तावन्तः सर्वे शस्त्राभ्यासं कुर्युः । इति महर्षिदयानन्दः । 'जितने स्त्री पुरुष हों वे सब शस्त्राभ्यास करें' यह भावार्थ इस मन्त्र पर महर्षि ने लिखा है ।

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५॥

भा०—हे प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे राजन् ! सभाध्यक्ष ! उषाओं के चमकने पर किरण जिस बल पराक्रम से सबको प्रबुद्ध करती है उसी प्रकार सनातन से चली आयी प्रजाओं की बस्तियों में विचारवान्, ज्ञानवान् और माननीय, उत्तम मार्ग में चलने हारे, या वहां के ही रहने वाले पुरुष प्रजा को शिक्षित और जागृत करें । हे राजन् ! वह तु हमें बलवान् तेजस्वी, वीरों और विद्वानों और व्यापारियों से ज्ञान, बल, कीर्त्ति, ऐश्वर्य प्रदान कर । तु स्वयं भी बलवान् तेजस्वी, वृद्ध और स्थिर दृढ़ और शत्रु पराजयकारी बल का देने वाला हो ।

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥११॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू अति बलवान् और सहनशील मनुष्यों की रक्षा कर । उनको अपने अधीन राजपुरुष बना कर रख । तू राष्ट्रदेह को प्राणों के समान प्रिय और शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों,

विद्वानों और व्यापारी वैश्यों के सहयोग से अपने क्रोध, और अनादर के कारणों को दूर करता रह। उत्तम, शुभ, सुखजनक, ज्ञान वाले तथा ध्वजा चिन्हादि वाले वीरों और विद्वानों के साथ शत्रु को पराजित करता हुआ राष्ट्र का पालन करता रह। और हम प्रजाजन उत्तम अन्नादि समृद्धि शत्रु वर्जन करने योग्य बल और जीवन प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः॥

[१७२]

अगस्त्य ऋषिः॥ मरुतो देवता छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ३ गायत्री॥
तृचं सूक्तम्॥

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः।
मरुतो अहिभानवः॥ १॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! आप लोगों का जीवन मार्ग, आगमन और प्रयाण भी अद्भुत् मान करने योग्य और अन्यों को ज्ञान प्रदान करने और चेताने हारा हो। आप लोग जो उत्तम दानशील, सूर्य के समान तेजस्वी होकर सब की रक्षा करने और ज्ञान देने के लिये हों। (२) देह में—प्राणगणों का आयमन, गति और व्यापन चेतनासञ्चार करने वाला हो। जीवनप्रद होने से वे 'सुदानु' हैं। न मरने वाला अविनाशी आत्मा 'अहि' है। उसके भानु अर्थात् तेज और ओज को धारने वाले प्राण 'अहिभानु' हैं। वे देह की रक्षा के लिये होते हैं।

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः।
आरे अश्मा यमस्यथ॥ २॥

भा०—हे उत्तम दानशील और शत्रु सेना के खण्ड २ करने वाले विद्वान् और राष्ट्रदेह के प्राणरूप वीर पुरुषो! आप लोगों की जो बहुत वेग से जाने वाली शत्रुओं को संताप देने, जलाने वाली, हिंसा करने वाली धार या शस्त्र है वह हम से दूर रहे। और वज्र के समान कठोर अस्त्र या दूर तक फैलने वाला विद्युत् जिसको तुम फेंकते हो वह भी दूर ही रहे।

(२) प्राणों की रोगादिनाशक शक्ति शरीर को साधने वाली होने से 'ऋञ्जती शरु' है। 'अश्मा' भोक्ता आत्मा है जिसको वे धारण करते हैं। वह दोनों प्राप्त हों।

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील पुरुषो ! आप लोग जो तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला अत्याचारी राजा है उसके अधीन प्रजा को उससे बचाओ। हमारे जीवन की रक्षा के लिये हमें ऊंचा करो। (२) अध्यात्म में—वायु से जिस प्रकार तृण हिलता है उसी प्रकार चलने वाला यह देह 'तृण-स्कन्द' है। उसके भीतर प्रविष्ट प्राणगण रोग आदि से बचावें। और उनके दीर्घ जीवन के लिये उनको उत्कृष्ट बलवान् बनावें। इति द्वादशो वर्गः॥

[१७३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ११ पंक्तिः ६, ६, १०, १२ भुरिक् पंक्तिः । २,८ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ बृहती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत्।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! जब सूर्य की किरणें अन्तरिक्ष में अपने दिव्य, तेजस्वी निवास या आश्रयस्थान सूर्य को सब तरफ प्रकाशित करें तब प्रातःकाल के समय तू जिस प्रकार भी चाहे या जिस प्रकार तू जानता हो उसी प्रकार तू अज्ञान के नाश करने वाले या अविनाशी ईश्वर की स्तुति करने वाले साम का गान कर। और सबके बढ़ाने वाले सब सुखों के स्वामी की हम भी स्तुति करें। दुधार गौओं के समान ज्ञानरस देने वाली वेदवाणियां, कभी नाश को न प्राप्त होकर, सबको बढ़ाने वाले उपासना

यज्ञ में दिव्य और सबके आश्रय परमेश्वर को सब प्रकार से प्रकट करती हैं।

अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

भा०—प्रजा पर सुखों का वर्षण करने हारा, शत्रुओं पर शस्त्रों का वर्षण करने हारा, बिद्वान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष, अपने चमचमाते शस्त्रों से युक्त बलवान् शस्त्रवर्षी सैनिकों के साथ गमन करे। वह भूखे सिंह के समान खूब बढ़कर उद्यम करे, शत्रु पर सेनाबल को दण्ड के समान उठाकर उससे पाड़ित करे। और वह सबको अन्न, वेतनादि देने वाला, सबका दाता, सबको सत्संगादि कराने वाला, व्यवस्थापक उत्तम मनुष्य, मननशील और शत्रुस्तम्भनकारी पुरुषों के बीच उनकी स्तुति को सुनता हुआ, या उन्हें प्रसन्न करता हुआ अच्छी प्रकार उद्यम करता, और समस्त नर नारियों का अच्छी प्रकार भरण पोषण करता है।

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार होता परिमित उत्तम गणित विज्ञान और शिल्प विज्ञान के नियमों से मापकर बनाये गये गृह में रहता है, और पृथ्वी के गर्भ को धन आदि से पूर्ण कर लेता है, उसी प्रकार किरणों द्वारा जल को लेने हारा सूर्य गमन करता हुआ परिमित स्थानों में व्यापता है, और शरत् अर्थात् बर्ष भर के पृथिवी के मध्य या भीतरी बीजधारक भाग को जल से पूर्ण करता है। जिस प्रकार सवारी को ले जाते हुआ घोड़ा हिनहिनाता है, जिस प्रकार वृषभ हंभारता है, जिस प्रकार राजसभा में दूत अपना संदेश निर्भय होकर कहता है, उसी प्रकार यह विद्युत् गर्जना आकाश और भूमि दोनों को व्यापती है।

ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् और दानशील राजा को स्वयं प्राप्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष, इस राजा के हित के लिये, शत्रु को पदच्युत करने वाले शस्त्रास्त्रों का अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं। शस्त्रास्त्र शत्रु पक्ष के हथियारों की अपेक्षा अधिक वेग से फैलने और जाने वाले हों। हम प्रजागण उन यन्त्रों और अस्त्रों को बनावें और तैयार करें। वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, शत्रुनाशकारी तेज और पराक्रम से युक्त उत्तम सुखदायिनी भूमि में सर्व-श्रेष्ठ होकर, परस्पर असत्याचरण से न वर्त्तने वाले स्त्री पुरुषों के समान रथ पर विराजमान् होकर, पूर्वोक्त शत्रुनाशक साधनों को करे।

तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववृषश्चित्तमसो विहन्ता ॥५॥१३॥

भा०—हे विद्वन् ! तू उस ऐश्वर्यवान् की ही सदा स्तुति कर जो निश्चय से बड़ा बलवान्, शूरवीर, ऐश्वर्यवान्, रथ या रथसेना पर स्थित, हो, और जो अपने प्रति आने वाले शत्रुओं के साथ सबसे अधिक युद्ध करने वाला, मेघ के समान शस्त्रवर्षी वीरों का स्वामी, और आवरणकारी शत्रुओं का विविध उपायों से नाश करने वाला है। (२) अध्यात्म में—इन्द्र अर्थात् आत्मा सत्वगुण से युक्त होने से 'सत्वा', ऐश्वर्यवान् और पूजायोग्य होने से 'मघवा', देह और ब्रह्माण्डरूप रथ पर स्थित, या रस रूप आनन्द में स्थित होने से 'रथेष्ठा' है। वह बड़े योद्धा के समान आवरणकारी अज्ञान का नाशक है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम ॥६॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् अपने महान् सामर्थ्य से सचमुच मनुष्यों के हित के लिये सब कार्य करने में समर्थ है. उसके लिये अगल बगल में रहने वाले छोटे मकानों के समान स्वपक्ष और परपक्ष की सेनाएं भी पर्याप्त नहीं है। वह महान् ऐश्वर्यवान् राजा सबको अच्छी प्रकार अपने

वश कर लेता है। और शत्रुवर्जक बल जिस प्रकार बहुत प्रजा की रक्षा करता है उसी प्रकार वह भी बलवान् होकर बहुत से ऐश्वर्य और बड़े राज्य को धारण करता है, और जलमय मेघ जिस प्रकार समीप विद्यमान् अन्तरिक्ष और पृथवी का भरण पोषण करता है उसी प्रकार वह भी अन्न समृद्धि का स्वामी होकर समीप सोने वाली स्त्री या बन्धुजन के समान स्नेहमयी प्रजा को या पृथवी को पालता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से इतना भारी है कि उसके लिये आकाश और भूमि भी समाने को पर्याप्त नहीं हैं, वह पापनिवारक महान् आत्मा सब में व्यापक है। वही शक्तिमान् होकर पृथिवी को मेघ के समान धारण करता है।

सुमत्सु त्वा शूर सुतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥

भा०—भूमियां जिस प्रकार अन्नों को प्राप्त होकर सूर्य को लक्ष्य करके बहुत प्रसन्न होती हैं, उसी प्रकार हे शूरवीर ! जो भूमिवासी प्रजाएं अपने ऐश्वर्यों, बलवान् अश्वों और वीरों के साथ अपने प्रेरक, विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष को हर्ष के अवसरों में स्वामी में साथ २ बड़ा हर्ष अनुभव करती हैं वे ही संग्राम के अवसरों में सज्जनों के बल को बढ़ाने वाले सबसे उत्तम मार्ग में चलने वाले तुझको प्रेम और उत्साह से युक्त होकर सब तरफ से सुशोभित करने के लिये तैयार रहते हैं।

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥८॥

भा०—हे राजन् ! तेरे समस्त ऐश्वर्य तथा यज्ञ यागादि समुद्र या अन्तरिक्ष के जलों के समान निश्चय से सुख और कल्याणकारी होते हैं, जब तेरी दिव्य गुण वाली उत्तम प्रजाएं इन आप्त पुरुषों और प्राणों में अति हर्ष प्राप्त करती हैं। जब तू माननीय विद्वान् पुरुषों को उत्तम आदर

सत्कार और उत्तम प्रज्ञा या चित्त से प्राप्त होता है तब तेरी सब प्रकार की मधुर वाणी भी अनुकूल होकर सेवन करने योग्य हो जाती है।

असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्रणी पुरुषों के उत्तम उपदेशों से लोग अपनी उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने में सफल होते हैं, उसी प्रकार हे पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त करने कराने हारे नायक विद्वान्! हम लोग उत्तम उपदेशों से ही सुखदायी कामनाओं को प्राप्त होकर, उत्तम रीति से उत्तम मित्रभाव से सखा होकर रहें। ऐश्वर्यवान् पुरुष जिस प्रकार सत्कार पूजा और स्तुति में दत्तचित्त होकर उत्तम स्तुत्य पदार्थ प्रदान करता है, उसी प्रकार वह ऐश्वर्यवान् प्रभु जैसे भीतर वैसे हमारे स्तुति प्रार्थना और उपासना के भीतर विद्यमान रहे। जिस प्रकार वेगवान् रथ या पुरुष हर काम फुर्ती से कर लेता है उसी प्रकार शीघ्र फलप्रद परमेश्वर उत्तम २ वेदोपदेशों को प्राप्त कराता रहे।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥१०।१४॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम मार्ग के नायक पुरुषों के उपदेशों से, मनुष्य परस्पर स्पर्धा या द्वेष संघर्ष को छोड़कर प्रेमी हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे बीच शासन को अपने हाथ में संभालने वाला बलवान्, पराक्रमी, न्यायशील राजा रहे। हम लोग कलहहीन होकर परस्पर प्रेम से रहें। धर्मविरुद्ध स्पर्द्धा न करें जिस प्रकार मित्रता चाहने वाले और मध्यस्थ होने के इच्छुक राजागण, उत्तम शासन में रहकर, पुर या नगर के स्वामी राजा को भेंट पुरस्कार देते हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर! तू ज्ञान वज्र से अज्ञान दूर करने हारा होकर हमारा ही होकर रह, और उत्तम पुरुषों की शिक्षाओं से हम भी मानो द्वेष रहित होकर, मित्रों के इच्छुक और मध्यस्थ पुरुषों

के इच्छुक होकर, उत्तम उपासना और सत्संगों द्वारा इस देहपुरी के पालक आत्मा की शिक्षा करते, उसकी साधना करते हैं।

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११॥

भा०—कोई ही परस्पर संगति योग्य या दानशील राजधर्म निश्चय से ऐश्वर्यवान् राजा को समृद्ध कर देता है। और कोई दूसरा चित्त से कुटिलता करता हुआ इधर उधर भटक जाता है। जिस प्रकार कोई स्थान घाट में पियासे को भी भली प्रकार उसे प्राप्त होकर उसकी प्यास बुझा देता है, और जैसे कोई २ लम्बा रास्ता भी जाने वाले पथिक को इधर उधर कर देता है। इसी प्रकार कोई आत्मा या परमेश्वर की उपासना का साधन इन्द्र को बढ़ा देता अर्थात् इन्द्र के समृद्ध रूप को प्रकट कर देता है और मन से कुटिल सदा इधर उधर भटकता है।

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू हमारा नीचे गिराने हारा कभी न हो। प्रत्युत इस जगत् में सेनाओं और संग्रामों के बीच में तेरा शत्रुओं और पापों को दूर करने वाला वज्र या सामर्थ्य विजयाकांक्षी सैनिकों के साथ रहा ही करता है। जिस महान् वीर्यवान् तेरी शत्रु को दूर कर देने वाली वाणी, वेतन पुरस्कार आदि पाने वाले वीर भटों की प्रसंशा करती है वह तू हमें कभी संकट में न डाल।

एषः स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आ नो ववृत्याः सुवितार्य देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३॥१५॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! हमारा यह बल, संघ और स्तुतिवचन तेरे हित के लिये है। इससे तू हमारे लिये पृथिवी, और सन्मार्ग को प्राप्त करा। हे अश्वसैन्य के स्वामिन्! हे विजयशील राजन्! तू अपने ऐश्वर्य

की वृद्धि, रक्षा और उत्तम प्रयाण के लिये हमें सब तरफ भेज। और हम सर्वत्र अन्न, बल और जीवन या आजीविका देने वाले उपाय को प्राप्त करें। इति पञ्चदशो वर्गः।

[१७४]

अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—निचृत्पंक्तिः। २, ३, ६, ८, १० भुरिक् पंक्तिः। दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

भा०—हे परम ऐश्वर्य युक्त ! तू राजा है। तू मनुष्यों और उत्तम नायक लोगों और जो दानशील धनाढ्य और विद्यादाता विद्वान् हैं उनकी रक्षा कर। हे बलवन् ! तू हम प्रजाजनों का पालन कर। तू हमारा उत्तम वेदमय सत्यज्ञान का पालक और ऐश्वर्यवान् है। तू हमें दुःखों से तारने वाला, सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ, सब धनों को ला देने वाला एवं बसी प्रजाओं को अपनी छत्रछाया में रखने वाला और बल प्रदान करने वाला है।

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दत्।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू दानशील प्रजाओं को अति कोमल वाणी बोलने वाला कर। वे धनादि के मद में परुष भाषण न किया करें। जिस प्रकार सूर्य वर्ष की सातों ऋतुओं को खण्ड २ करता और मेघों द्वारा जल प्रदान करता है, और संयोग विभाग करने में समर्थ बहुत से वज्रों से या विद्युत् से युक्त वायु के लिये जल या मेघ को छिन्न भिन्न करता है, उसी प्रकार जब तू सात प्रकार की शत्रुओं की हिंसाकारिणी पुरियों का नाश करे तब हे अनिन्दनीय ! तू जलों के समान ऐश्वर्यों को प्रदान कर, और बहुत से शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र के युवकगण के प्रोत्साहन के लिये नगर के घेरने वाले शत्रुओं का विनाश कर।

अजा वृतं इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम्।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः॥ ३॥

भा०—हे शत्रुहन्तः राजन्! तू वश जाकर शूर पति वाली सेनाओं को और तुझे अपने मन से चाहने वाली इस पृथिवी को सञ्चालित कर। बहुतों से स्मरण करने योग्य! वीर पुरुषों के साथ तू अन्यों को पीड़ा न देने वाले, शीघ्रगामी रथों के स्वामी अग्रणी को अवश्य सुरक्षित रख। जिससे वह सब कर्मों और राष्ट्र के कार्यों पर रहने के लिए और उच्छृं-खलों पर दमन करने के लिये सिंह के समान निर्भय रहकर राष्ट्र की रक्षा करे।

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान्॥ ४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते! एक ही संग्राम में तेरे वज्र की गर्जती ध्वनि के महान् सामर्थ्य से तेरे शत्रुगण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। यह सब तेरी ख्याति के लिये ही है। राजा जब अपने सैनिकबलों को अपने अधीन खड़ा कर लेता है तब युद्ध द्वारा आज्ञावाणियों को प्रकट करता या भूमियों को अपने अधीन कर लेता है, और वेगवान् दो अश्वों से युक्त रथ में बैठकर, शत्रुपराजयकारी बल से ऐश्वर्यों और संग्रामों पर विजय प्राप्त करता है।

वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः॥५॥१६॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते! वायु के वेग से जाने वाले, सरल गति वाले, सुखप्रद दोनों अश्वों को, और शत्रु के सैन्यों को काट गिराने वाले शस्त्रास्त्र बल को, जिस पर तू चाहे उस पर चढ़ा ले, उस पर सेना-बल और अस्त्रबल से चढ़ाई कर। तू सूर्य के समान तेजस्वी होकर अपने समीप अपने राज्यचक्र को खूब बढ़ा और उसका भार अपने ऊपर अच्छी

प्रकार ले। तब शस्त्रबल को हाथ में लेकर स्पर्धालु शत्रुओं पर आक्रमण कर। (२) अध्यात्म में—दो अश्व प्राण अपान हैं जो वात अर्थात् मुख्य प्राण के दो रूप हैं। इन्द्र आत्मा है। वह जिस पर भी चाहे अपनी स्तुतिकारी वाणी का प्रयोग और प्राणापान का बल रोककर करे। वह आत्मा मुख्य 'चक्र' सहस्रदल को पहुँचे और ज्ञान के वज्र को हाथों में लेकर बाधक वृत्तियों पर विजय करे। इति शोडषो वर्गः॥

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून्।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम्॥ ६॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों के नाशक सेनापते ! तू चोदना अर्थात् वेदाज्ञा के बल से बढ़ी हुई शक्ति से युक्त, सबसे बड़ा आदरणीय होकर, अदानशील लोभी, तथा मित्रघाती को दण्ड देने वाला है। जो लोग तुझ न्यायकारी को अच्छी प्रकार जान लेते हैं वे जब मनुष्यों की सन्तानों को हरते हुए पकड़े जावें तो वे धूर्त लोग एक साथ समवाय बल से तेरे द्वारा दण्डित किये जाया करें।

रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत्॥७॥

भा०—क्रान्तदर्शी पुरुष उत्तम अन्न को प्राप्त करने के निमित्त भृत्य-वर्ग के लिये निवास करने की भूमि का उपदेश करे। वह पृथिवी को खूब ऐश्वर्य बढ़ाने वाली बनावे। ऐश्वर्यवान् पुरुष ही तीनों प्रकार की पर्वतमय, सम, और जलमयी स्थली, अथवा उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों को उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और सुखप्रद पदार्थों से अद्भुत रूप से पूर्ण करे। और वही दुःखदायी रणांगण में कुत्सित वाणी के बोलने वाले को खूब मारे।

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः॥ ८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! नये विद्वान् लोग तुझे उन अनेकानेक तथा सनातन से चले आये प्रजापालनकारी धर्मों का उपदेश करें। तू पहले की शत्रुसेनाओं को विशेष युद्धादि के न करने के लिये पराजित कर। तू शत्रु की नगरियों को तोड़ डाल, और कर न देने वाले, तथा फूट डालने वाले द्रोही लोगों को निरन्तर नमा। और राजा को न स्वीकार करने वाले हिंसक पुरुष का हनन कर उसे दण्ड दे।

त्वं धुनि॑रिन्द्र॒ धुनि॑मतीर्‌ऋ॒णोर॒पः सी॒रा न स्रव॑न्तीः।
प्र यत्स॑मु॒द्रमति॑ शूर॒ पर्षि॑ पा॒रया॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ स्व॒स्ति ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू शत्रु को कंपा देने हारा हो। तू शत्रु को कंपा देने वाले नायकों वाली प्रजाओं को बहती नदियों या देह में बहती नाड़ियों के समान प्रवाह में सञ्चालित कर। जो तू हे शूरवीर ! समुद्र को भी अतिक्रमण करके अपनी प्रजा और सेना के पालन करने में समर्थ है इसलिये तू शीघ्रता से जाने वाले अपने अधीन मनुष्य को, और यत्न-शील पुरुषों को सुख से समुद्र के भी पार कर, संकटों से पार उतार।

त्वम॒स्माक॑मिन्द्र वि॒श्वध॑ स्या अ॒वृक॑तमो न॒रां नृ॑पा॒ता।
स नो॒ विश्वा॑सां स्पृ॒धां स॑हो॒दा वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् १०॥१७

भा०—हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! तू हमारे में से सब प्रकार से सबसे अधिक ईमानदार, कृपालु, चौर्यवृत्ति से रहित, और समस्त नायक पुरुषों में से सबसे उत्तम, मनुष्यों का पालक होकर रह। वह तू हमारी समस्त युद्धक्रियाओं और संग्रामकारी सेनाओं के बीच में शत्रुविजयकारी बल को देने वाला हो। जिससे हम लोग अभिमत पदार्थ, शत्रुवर्जक बल और जीवनप्रद सामर्थ्य लाभ करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१७५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्। २ विराडनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। उष्णिक ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पात्र में रखा हुआ आनन्ददायक ओषधियों का सार देह में हर्ष का सञ्चार और तृप्ति करने वाला होता है और वह मनुष्यों द्वारा पान किया जाता है, इसी प्रकार तुझ प्रजा के पालक का दमनकारी सामर्थ्य महान् है, और सबको हर्ष देने वाला होता है, जिससे तू अति हर्षयुक्त रहता है। तथा जो प्रजाओं द्वारा पालन किया जाता है, हे अश्वसैन्य के स्वामिन् ! हे प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले ! तेरा अति बलवान्, प्रजावर्ग या शासक वर्ग, चन्द्र के समान आल्हादकारी और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला, और सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाला, सहस्रों को ऐश्वर्य विभक्त करने वाला हो।

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरा हर्षकारी तथा दमनकारी शासकवर्ग नायक रूप से स्वीकार करने योग्य तथा बलवान् होकर हमें प्राप्त हो ! हे इन्द्र ! तू या वह शासकवर्ग शत्रुपराजयकारी बल वाला, ऐश्वर्य का सर्वत्र विभाग करने वाला, शत्रु सेनाओं और प्रजा के मनुष्यों को दबाने हारा कभी नहीं मरता।

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तू निश्चय से शूरवीर है। तू सैन्य को व्यूहों में, ऐश्वर्य को प्रजाओं में यथोचित रूप से विभाग करने हारा होकर पैदल योद्धा पुरुषों को और रथसैन्य को भी सञ्चालित कर। तू ही बलवान् होकर व्रत अर्थात् उत्तम कर्मों से हीन प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुषों को अपने तेज से, हंड़िया को आग के समान, संतप्त करे।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

भा०—हे क्रान्तदर्शिन् ! तू सबका स्वामी है । तू अपने बल पराक्रम से सूर्य के समान समृद्धियुक्त, बलवान्, अन्धकारनाशक, राज्यचक्र, बलचक्र, मण्डल तथा शस्त्रबल को अप्रत्यक्ष रूप में धारण कर । और वायु के समान बलवान् सैन्य के तीव्र घुड़सवारों के द्वारा प्रजा के रक्त-शोषण करने वाले आतङ्ककारी दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये उनको काट २ कर नाश कर देने वाले वध अर्थात् शस्त्रबल और राजदण्ड को धारण कर ।

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! दमन का सामर्थ्य, राज्य प्रबन्ध निश्चय से अति अधिक बलशाली, और तेरा कर्म और ज्ञान का सामर्थ्य भी सबसे अधिक यश, अन्न और तेज से युक्त है । बढ़ते हुए और नगर को घेरने वाले दुष्ट शत्रु का नाश करने और धनैश्वर्य प्राप्त कराने वाले उसी दमनसामर्थ्य से तू समस्त अश्वसैन्य को राष्ट्र के भिन्न २ भागों में विभक्त करता हुआ सबको अच्छी प्रकार जान ।

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार प्यासे को जल अति सुखदायी होते हैं, उसी प्रकार पूर्ण विद्वान् विद्योपदेष्टाओं के लिये तू भी अत्यन्त सुख कल्याणकारी के समान यथावत् हुआ कर । तुझे लक्ष्य करके मैं उस नित्य वेद विद्या का प्रदान करता हूँ । जिससे हम सब अन्न, प्रेरणा, उत्तम शिक्षा, पापनिवारक बल, और जीवन प्राप्त कर लें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१७६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् ३ विराडनुष्टुप् । ५ भुरिगुष्णिक् । त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये प्रजाजनों को आनन्दित कर। मेघ के समान दयालु एवं बैल के समान बलवान् होकर ऐश्वर्य का प्रदान कर, या ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में प्रवेश कर। तू शत्रुओं का हनन और अपनी वृद्धि करता हुआ खूब राज्य बढ़ा। और समीप में कहीं भी शत्रु को प्राप्त न कर।

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! जो एक अद्वितीय देखने वालों के व सर्वद्रष्टा है, तू उसको लक्ष्य करके अपनी स्तुति वाणियों का प्रयोग कर। जिसको लक्ष्य करके स्तुति करने से, हल खेंचने वाले बैल के प्रयत्न के अनन्तर या मेघ के वर्षण के बाद खेत में अन्न के समान, आत्मा में अमृत बीज बोया जाता और उत्पन्न होता है, वह समस्त सुखों का वर्षक, मेघ के समान और बलवान् बलीवर्द के समान आत्मा या अन्तःकरण रूप क्षेत्र में, खेत में जौ के समान, दुःखों से छुड़ा देने हारे ज्ञानरूप अन्न की कृषि करता कराता है। वह भवबन्धन काटने के साधन ब्रह्मज्ञान को उत्पन्न करता है।

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

भा०—जिसके हाथों में पांचों राष्ट्रवासी प्रजाजनों के सब प्रकार के

धन और समस्त जन हैं, वह तु जो हम से द्रोह करे उस दुष्ट पुरुष को, आकाश की बिजली के समान पीड़ित कर और दण्डित कर।

पञ्च क्षितयः—पांच प्रकार के प्रजाजन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निषाद, अथवा देव, मनुष्य, पितृ पशु और पक्षीगण। (२) अध्यात्म में—पाचों क्षिति, पञ्च प्राण। 'वसु' = संविद् आदि विभूति। अस्मध्रुग् = अज्ञान।

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

भा०—यज्ञ न करने हारे, बड़ी कठिनता से नष्ट होने वाले उस दुष्ट पुरुष का नाश कर, जो तुझे सुखकारक नहीं होता। हमें उसका धन प्रदान कर। सूर्य के समान विद्वान् पुरुष ही उस धन को प्राप्त करे।

आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत्।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

भा०—विद्या और पुरुषार्थ या राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों से बढ़ने वाले जिसकी अन्नों के प्राप्ति कार्य में सदा अनुकूलता रहती है, हे ऐश्वर्य-वन्! तू उसकी रक्षा कर। तू संग्राम के लिये ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये बलवान्, वेगवान् सैन्य या पुरुष की अच्छी प्रकार रक्षा कर।

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम ॥६॥१६॥

भा०—व्याख्या देखो (सू० १७५, मन्त्र ६) इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१७७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—४ धैवतः। ५ पञ्चमः ॥
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥१॥

भा०—मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला, मेघ के समान सबको विद्या और ऐश्वर्यों का देने वाला, सब मनुष्यों का राजा सब प्रजाओं के बीच में सबसे सत्कार करने योग्य पुरुष ही 'इन्द्र' है, वह प्राप्त हो । हे राजन् ! तू प्रशंसित होकर, यश और धन का अभिलाषी होकर, अपने रक्षणसामर्थ्य से समस्त कामनाओं को प्राप्त कराने और स्वयं करने वाला घोड़ों को जोड़कर हमारे समीप आ ।

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! जो तेरे बलवान् प्रजाओं में श्रेष्ठ और प्रजा और शत्रुओं पर मेघों के समान सुखों और शस्त्रों की वर्षा करने वाले दानवीर और युद्धवीर, महान् ऐश्वर्य और अन्न से युक्त और उच्च उत्तम पदों पर नियुक्त, बैलगाड़ियों या बलवान् अश्वों से युक्त रथों पर सवार, वेग से गमन करने वाले हों, हे राजन् ! तू उन पर शासक होकर विराज । उनके साथ ही सबके समक्ष प्रकट हो । अभिषेक द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त होने पर तुझे बुलाते हैं ।

आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३॥

भा०—हे राजन् ! तू बलवान् रथ और रथसैन्य को अपने अधीन रख, उस पर नायक बन कर रह । तेरे ही कार्य के लिये बलवान् तथा सबको ठीक २ प्रेरने और सञ्चालन करने वाला अभिषिक्त पुरुष सेनानायक हो । जिस प्रकार अभिषेक काल में जलों का परिषेचन किया जाता है उसी प्रकार शत्रु को व्यथित और संतप्त करने वाले नाना सैन्यांग

भी खूब परिपुष्ट हों। हे नरश्रेष्ठ! तू हमें प्राप्त होकर बलवान् अश्वों से या अश्वसैन्य के दो दलों से बलवान् रथ और पूर्वोक्त रथ-सैन्य को जोड़कर, अश्व सैन्यों से रथ-सैन्य को सुरक्षित करके बड़े वेग से प्रयाण कर। (२) अध्यात्म में—बलवान् 'रथ' देह है। 'सोम' वीर्य है। रक्तादि रस 'मधु' है। प्राण और अपान दो 'हरि' हैं। वह चित्तभूमियों के विजय के लिये आत्मवशी होकर प्रस्थान करता है।

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥४॥

भा०—यह 'यज्ञ' अर्थात् सबका उचित आदर सत्कार, सज्जनों का सत्संग और उत्तम व्यवस्था करने हारा राजा और राज्य, दिव्य गुण प्राप्त कराने हारा है। यह शस्त्रादि फेंकने योग्य आयुधों से अति प्रदीप्त होने वाला सेनापति है। ये नाना धनैश्वर्य हैं। हे शत्रुहन्तः! यह महान् ऐश्वर्य, या उत्तम ओषधि रस या सबको सन्मार्ग में चलाने हारा ब्राह्मण-वर्ग है। यह राज्यवृद्धि करने वाला प्रजाजन दूर तक फैला हुआ अथवा बिछा हुआ उत्तम आसनवत् है। हे शक्तिशालिन्! तू इस पर विराज कर आगे बढ़ और अच्छी प्रकार इसका पालन कर और उपभोग कर। इसी राष्ट्र में रथ के दो अश्वों के समान राष्ट्र को वहन करने वाले, योग्य कार्यसञ्चालक सेनापति और न्यायाधीश दोनों को भिन्न २ क्षेत्र में युक्त कर, उनको स्वतन्त्रता से कार्य करने दे। (२) आत्मा सर्वोपास्य होने से 'यज्ञ' है। विद्वानों द्वारा या प्राणों से संगत होने से 'देवयाः' है। प्राणबलों से शरीर को धारण करने या अति पवित्र होने से वह 'मियेध्य' है। अन्न 'ब्रह्म' है। उत्पन्न 'सोम' वीर्य है। अन्न से बढ़ने हारा शरीर बर्हि है। शक्तिमान् आत्मा उसका उपभोग करता है।

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू उत्तम रीति से स्तुति को प्राप्त होकर, वेदज्ञानों को विद्वान् के समान, ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हम लोग मान करने योग्य कार्यकर्त्ता, शिल्पी के ज्ञान और रक्षा साधन से सुरक्षित रहकर, उत्तम विद्याओं का उपदेश करते हुए, प्रतिदिन उत्तम ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करें। और अन्न, बल और जीवन भी प्राप्त करें। इति विंशो वर्गः॥

[१७८]

अगस्त्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पङ्क्तिः। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। २ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आचार्य ! तेरी जो वह प्रसिद्ध श्रवण करने योग्य ख्याति है, जिस से तू विद्वान् उपदेष्टा और स्तुतिशील प्रजाजनों की रक्षा करने में समर्थ होता है, उसी ख्याति से तू हमारे कामना करने योग्य, हमें उत्तम बना देने वाले मनोरथ को भस्म मत कर। मैं तेरी मनुष्यों के योग्य समस्त प्राप्त सम्पत्तियों को सब प्रकार से प्राप्त करूं। (२) हे इन्द्र परमेश्वर जो तेरी श्रुति वेद है जिससे तू विद्वानों को ज्ञान देता है, उससे हमारे मनोरथ को विफल न कर।

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च॥२॥

भा०—राजा सूर्य और विद्युत् के समान तेजस्वी होकर भी हम प्रजाओं को पीड़ित न करें, जो प्रजाएं कि उसकी बहनों के समान उसकी बन्धु होकर वा उसकी शरण में स्वयं आकर एक ही स्थान या देश में नाना कार्य व्यवहार करती है, तथा जो इस राजा के हित के लिते प्राणों के समान प्रिय होकर, उत्तम सुख भोग देने हारी होकर देश भर में

फैलकर रहती हैं। वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, देह में आत्मा और घर में पति के समान, हमारे प्रति मित्र भाव से हमें अन्न और बल आदि प्रदान करे। (२) अध्यात्म में 'योनि' देह है। प्राणगण स्वयं अनायास वा आत्मा के बल से चलने वाले होने से 'स्वसा' है। वे ही आपोमय होने से 'आपः' हैं। उत्तम देह पालक होने से 'सुतुक' है।

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥

भा०—शरण याचना करने वाले कार्यकर्त्ता जनों के वचनों का सुनने वाला, संग्रामों में शूरवीर, शत्रुहन्ता राजा, अपने नायकों सहित विजय करने वाला होकर जब भी अपने सामर्थ्य से करप्रद राष्ट्र के समीप उत्तम आज्ञाओं को उठा देने में समर्थ होता है, तभी वह रथसैन्य को लेकर शत्रु पर प्रहार करने वाला भी हो।

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्।
समर्य इष स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥

भा०—शत्रुहन्ता राजा अपने नायकों के साथ मिलकर उत्तम यश प्राप्त करने की इच्छा से, अपने मित्र राष्ट्र के अन्न को खा जाने वाले शत्रुओं को पराजित करे। अथवा पराजित करने में समर्थ हो। वह कर देने वाले राष्ट्र का उत्तम उपदेष्टा के समान शासक होकर, सत्य २ न्याययुक्त आचरण करने वाला न्यायाधीश होकर, एक दूसरे के विरुद्ध वादीप्रतिवादी की वाणियों से युक्त संग्राम अर्थात् परस्पर विवाद या कलह के अवसर में, उत्तम अन्नों के समान ग्राह्य बातों की ही स्तुति करे, उसको निर्णय रूप से प्रस्तुत करे, ग्राह्य बातों को नहीं। अर्थात् छाज जिस प्रकार तुष को दूर फेंक कर अन्नों को ग्रहण करता है उसी प्रकार बिवादों में न्यायाधीश ग्राह्य सत्य को ले लेवें, असत्यों को नहीं।

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान्।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२१॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! हे उत्तम पूज्य धनाध्यक्ष ! तेरे सहाय से हम बड़े २ अभिमान करने वाले शत्रुओं को भी पराजित करें। तू हमारा रक्षक हो, और तू ही हमारी वृद्धि के लिये हो। हम प्रजागण अन्न और शत्रु को पराङ्मुख कर देने वाला बल और जीवन प्राप्त करें। एकविंशो वर्गः ॥

[१७९]

लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषी ॥ दम्पती देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप् ५ निचृद्बृहती ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१॥

भा०—दिन रात और आयु को निरन्तर न्यून २ करते जाने वाले उषाकालों में भी प्रतिदिन निरन्तर श्रमशील होकर गृहकार्य करती और करता हुआ मैं गृहपत्नी और गृहपति, अपनी आयु के पूर्व के वर्ष व्यतीत करें, बाद में वृद्धावस्था देहों के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है। इसलिये ही वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष अपने यौवन काल में ही अपनी धर्म पत्नियों को प्राप्त करें।

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

भा०—जो भी पूर्ण विद्यावान्, सत्यज्ञान को समान रूप से प्राप्त करने हारे हों वे ज्ञानप्रदान करने वाले उत्तम विद्वानों के साथ मिलकर सत्यज्ञानों की चर्चा करें। वे भी अपना देह गिरा देते हैं, और जीवन का परम प्राप्य फल नहीं प्राप्त करते, इसलिये हे स्त्री पुरुषो ! जब बड़े २ ब्रह्मचारियों तक के देह अस्थिर हैं और वे भी अपने छोटे जीवन में अपना उद्देश्य नहीं प्राप्त कर सके तो फिर गृहस्थियों को अपने गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिये विलम्ब न करना चाहिये,

अवश्य गृहस्थ का पालन करने में समर्थ स्त्रियां यौवन काल में ही वीर्यसेचन में समर्थ पुरुषों के साथ संगति लाभ करें और उत्तम सन्तान प्राप्त करें।

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

भा०—क्योंकि विद्वान् पुरुष भी बिना उद्देश्य के श्रम करने वाले की रक्षा नहीं करते। इसलिये हे प्रियतम ! हे प्रियतमे ! हम दोनों मिलकर अपने से स्पर्धा या संघर्ष करने वालों का मुकाबला करें। इस गृहस्थ में रहकर शतवर्षों में व्यतीत करने योग्य जीवनरूप संग्राम का परस्पर मिलकर विजय करें। और एक दूसरे को अच्छी प्रकार प्राप्त करते और एक दूसरे का अच्छी प्रकार आदर करते हुए दोनों पति पत्नी एक दूसरे को प्राप्त करें, गृहस्थ कार्य निभावें।

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

भा०—रुके हुए नद अर्थात् नाले का जिस प्रकार बल का वेग बड़ा अदम्य होता है उसी प्रकार वीर्य का निरोध करनेहारे विद्याध्ययनशील ब्रह्मचारी का काम, गृहस्थ करने का संकल्प मुझ स्त्री वा पुरुष को भी प्राप्त होता है। वह इस शरीर के स्वाभाविक कारण से और अन्य बाह्य कारणों से और अन्य भी किसी अवर्णनीय परस्पर प्रेम आदि कारण से भी प्रकट हो जाता है। ऐसी दशा में स्त्री अपनी संकोच मुद्रा का लोप कर उसे हटा करके वीर्यसेचन में समर्थ युवा पुरुष को सब प्रकार से प्राप्त होती है। वह भी अधीर सी होकर धैर्यवान् और गंभीर श्वास लेने वाले पुरुष को धारण करे, उसका उपभोग करे।

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

भा०—मैं स्त्री चन्द्र के समान आल्हादजनक, उत्तम सन्तान के प्रसव करने में समर्थ पुरुष को, अति निकटतम हृदय की गहरी तहों में मानो रसवत् पिये हुए के समान ही कहूं, जानूं और अनुभव करूं। हम स्त्रीजन जो भी परस्पर का अपराध करें उसको बहुत सी कामनाओं वाला मनुष्य दूर करके हमें सुखी करे।

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥२२॥

भा०—खोदने के साधन कुदाल, हल आदि से खेत को खोदता हुआ किसान या माली जिस प्रकार क्षेत्र से उत्तम फल प्राप्त करता है उसी प्रकार सैकड़ों दुर्गम अविचल संकटों को दूर फेंक देने में समर्थ, अथवा अप्रिय, कुवचनादि अपराधों को दूर करने वाला, क्षमाशील पुरुष, अवदारण अर्थात् भेदन करने वाले, संकटों को तोड़ने वाले उपायों से खनन करता हुआ, विघ्नों को दूर करता हुआ, उत्तम प्रजा, उत्तम पुत्र, और बल को प्राप्त कराना चाहता हुआ, ऋषि के समान एक दूसरे के वरण वाले वर वधू दोनों को पुष्ट करता है, और ज्ञान धन के देने वाले उत्तम और विद्वानों के आश्रय पर ही सच्ची २ आशाओं और कामनाओं को प्राप्त करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१८०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ७ निचृत् ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। २, ९ भुरिक् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत्।
हिरण्ययां वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! जब तुम दोनों का वेगवान् रथ जलपूर्ण समुद्रों और रमण करने योग्य उत्तम २ स्थल प्रदेशों को, और मनोरंजन

करने वाले स्थानों को जावे, तो दोनों के घोड़े भी उत्तम रीति से वश किये हुए होने चाहिये। लोहे की बनी चक्रधाराएं जिस प्रकार मार्ग को काटती हुई जाती हैं उसी प्रकार तुम दोनों के पवित्र आचार परस्पर के हितकारी और रमणीय होकर एक दूसरे को पुष्ट करें और सब संकटों काटें। तुम दोनों जल के समान मधुर २ जीवन के आनन्द रसों का आस्वाद लेते हुए सब दिनों का उत्तम सेवन किया करो।

युवमत्यस्यावं नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च॥ २॥

भा०—तुम दोनों विविध विज्ञानों से युक्त, सब मनुष्यों में श्रेष्ठ, सत्संगति करने योग्य, अश्व के समान भ्रमणशील परिव्राजक के समीप बड़े विनय से जाया करो। और हे सब प्रकार के उद्यम करने में लगे हुए स्त्री पुरुषो! और हे भौंरा भौंरी के समान मधुवत् मधुर ज्ञान, अन्न, जलादि पदार्थों का उपयोग और संग्रह करने हारे स्त्री पुरुषो! जो भी विद्वान् तुम्हारे पास स्वयं प्रेम से आकर भाई या बहिन के समान तुम दोनों को, ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के सम्पादन करने के लिये अधिक पुष्ट, शक्तिशाली बनाता है, और उत्तम अन्न के उपयोग के लिये तुम्हें उपदेश करता है, तुम उसको विनय से प्राप्त होओ, उसका सदा आदर सत्कार करो।

युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान्॥ ३॥

भा०—जब सूर्य के ताप और प्रकाश के समान शुद्ध अन्तःकरण वाला और उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सत्यज्ञान को प्राप्त करने के अभिलाषी आप दोनों के भीतर ज्ञान का प्रदान करे, तब तुम दोनों हे स्त्री पुरुषो! कच्ची, कम अनुभव वाली स्वयं उन्नति की तरफ जाने वाली अपनी बुद्धि में, वाणी का अनादि काल से प्राप्त जो पक्व सारभूत ज्ञान है उसको धारण करो।

युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने और सब प्रकार के अन्न प्राप्त करने के लिये, तथा तीनों दुःखों से रहित होने और देह के भोजनादि भोग प्राप्त करने के लिये, अन्न सहित घृत को प्राप्त करो, बाधक कारणों को समूल उखाड़ देने वाले कर्मों और ज्ञानों को प्राप्त करो । हे नर नारियो ! आप दोनों को सम्यगदर्शन करने वाले विद्वान् का सत्संग, और मधुर अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति रथ के चक्रों के समान परस्पर एक साथ और एक मार्ग पर चलने पर, स्वमेव प्राप्त होवे ।

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥२३

भा०—जिस प्रकार शत्रुबलों का नाश करने में श्रेष्ठ विजयशील पुरुष, पृथ्वी के भार को अपने ऊपर धारण करने से, नाशकारी शत्रुओं के खण्डन करने के लिये प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! प्रतिग्रह करने योग्य पात्रों में उत्तम, तथा विद्यावृद्ध में वाणी के ऊहापोह द्वारा, तुमको सब प्रकार का उत्तम ज्ञान देने के लिये, दुःखों के नाशक तुम दोनों को प्राप्त होता हूँ । और जिस प्रकार जल नदी आदि पृथ्वी में ही आश्रय पाते हैं इसी प्रकार आप्तजन, आप दोनों की महानुभावता से, सूर्य और पृथिवी के समान स्तुति के योग्य आप दोनों को प्राप्त हों, और सब तत्वों का द्रष्टा विद्वान्, ज्ञान और वयस् में वृद्ध, परस्पर संगत और दानशील और यत्नशील आप दोनों को पाप से परे रखे । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों भृत्यों को नियुक्त करते हो। तब तुम दोनों उत्तम दानशील और विघ्नों के नाश करने में चतुर होकर, अपने प्रजाधारण के सामर्थ्यों से, उत्तम पुत्र के धारण योग्य सामर्थ्य को उत्पन्न करते हो। उस समय वह तेजस्वी विद्वान् वायु के समान सबका जीवनप्रद होकर सबको उत्तम मार्ग में चलावे, और सर्वत्र सुख सौभाग्य द्वारा व्यापे। और वह उत्तम कर्मसम्पादन करता हुआ प्रयोजन के लिये बल को अपने हाथ में लेवे।

व॒यं चि॒द्धि वां॑ जरि॒तारः॑ स॒त्या वि॑प॒न्याम॑हे॒ वि प॒णिर्हि॒तावा॑न्।
अधा॑ चि॒द्धि ष्मा॑श्विनावनिन्द्या पा॒थो हि ष्मा॑ वृषणा॒वन्ति॑ देवम् ७

भा०—हे ऐश्वर्यों के भोग करने वाले स्त्री पुरुषो ! उत्तम स्तुति करने हारे और सज्जनों में उत्तम सत्यवचन कहने वाले हम तुम दोनों की विविध प्रकार की स्तुति करते हैं और तुमसे नाना प्रकार के व्यवहार करते हैं। उसी प्रकार हित चाहने वाला विद्वान् पुरुष भी विविध प्रकार से उपदेश दे। इसी प्रकार व्यवहारवान् वैश्य जन भी बहुत धनसंग्रहवान् होकर तुम लोगों से नाना प्रकार के व्यवहार किया करें। और इसी प्रकार आप दोनों कभी निन्दा योग्य न होकर सब पर सुखों की वृष्टि करने वाले होकर, परमेश्वर और विद्वानों के समीप रहकर विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी वर्ग, और देव के समीप स्थित ईश्वरोपासक जन का पालन किया करो।

यु॒वां चि॒द्धि ष्मा॑श्विना॒वनु॒ द्यून्विरु॑द्रस्य प्र॒स्रव॑णस्य सा॒तौ।
अ॒गस्त्यो॑ न॒रां नृषु॒ प्रश॑स्तः॒ कारा॑धुनीव चितयत्स॒हस्रैः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार विशेष आवाज करता हुआ और वृक्षों को उखाड़ फेंकने वाला वायु सहस्रों गर्जनों से नकारे के समान स्त्री पुरुषों को सचेत करता है, उसी प्रकार विविध उपदेशों से युक्त उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान प्राप्त कराने के लिये

अज्ञान और पाप अपराधों को उखाड़ फेंकने वाला, नायक पुरुषों में से उत्तम नेताओं में प्रशंसा को प्राप्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष, ध्वनि करने वाले मेघ या नक्कारे के समान हजारों उपदेशों या बलवान् उपायों से तुम दोनों को सचेत, प्रबुद्ध और ज्ञानवान् करे।

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

भा०—दानशील पुरुष जिस प्रकार अन्य मनुष्यों के रथ के बल से प्राप्त होता है उसी प्रकार जब तुम दोनों आगे बढ़ने में समर्थ होकर रथादि के सामर्थ्य से आगे बढ़ो, और सबसे आगे बढ़ जाओ। तब तुम दोनों कभी भी असत्याचरण और अशिष्टता का व्यवहार न करते हुए विद्वानों के हित के लिये उत्तम वेगवान् अश्व आदि साधनों को रखो, जिससे हम प्राजावर्ग ऐश्वर्यों से सम्पन्न होवें।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम्।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥२४॥

भा०—हे उत्तम गुणवान् पुरुषो! आज हम आप दोनों के अधीन, रथ के समान संकटों से पार ले जाने वाले नये से नये, दुःखों के निवारक, आकाश में जाते सूर्य के समान ज्ञान वाले विद्वानों की सभा को प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पुरुष को, सुख से दुर्गम मार्गों को तय करने के लिये, उत्तम स्तुतिवचनों और अधिकारसूचक तथा मानवर्धक पदों से पुकारें। और हम प्रजाजन अन्न, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१८१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते। छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६, ७, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥१॥

भा०—हे राष्ट्रसम्पत्ति और व्यापक अधिकार का भोग करने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों अभिलाषा योग्य उत्तम अन्न आदि धनैश्वर्यों के लिये अतिलोकप्रिय होकर यज्ञ करने की इच्छा करते हुए, कभी जलकणों के सदृश तुच्छ प्रजाजनों को जब भी उन्नत करते हो यही आप दोनों का बड़ा भारी दान है जो तुम दोनों की बड़ी कीर्त्ति उत्पन्न करता है। क्योंकि तुम दोनों ही सबको बसाने वाले राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होकर मनुष्यों के रक्षा करने हारे हो। राजा, रानी, सभा सभाध्यक्ष, सेना, सेनापति आदि युगल 'अश्विनौ' हैं।

आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे अश्वों और विद्वानों के स्वामी राजस्त्रीपुरुषो! आप दोनों के अधीन शुद्ध पवित्र आचार वाले, शुद्ध जल और पुष्टिकारक दुग्ध आदि पान करने हारे, वायु के समान वेग से जाने वाले, दिव्य, शत्रु की सीमा का अतिक्रमण कर वेग से आक्रमण करने वाले मन के वेग के समान वेग वाले, बलवान् सुरक्षित पीठ वाले, कवचधारी, वीर और विद्वान् पुरुष स्वयं सूर्य समान प्रकाशमान् होकर, अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा रानी या राजा राजसभा उनको इस राष्ट्र में धारण करें, वे अश्वों के समान उन दोनों को सन्मार्ग पर ले जावें। (२) अध्यात्म में—अश्वी मन और आत्मा हैं। उनके अश्व प्राणगण हैं। वे मन के वेग से चलते और स्व = आत्मा की चेतना से प्रकाशित हैं।

आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रबन्धुरः सुवितायं गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥३॥

भा०—रथ जिस प्रकार नाना वेगों से युक्त, सुखपूर्वक देशान्तर में गमन करने के लिये उपयोगी होता है उसी प्रकार हे एक स्थान पर स्थिर होकर रहने वाले वीर, विद्वान् स्त्री पुरुषो! हे उत्तम आधार या धारण

करने योग्य एवं बुद्धि और विवेक में कार्य करने हारो ! तुम दोनों में जो पुरुष रथ के समान रमण करने और अन्यों को रमण कराने या अपने आश्रय रखकर ले जाने हारा, पृथ्वी के समान पालन करने हारा, उत्तम वेगयुक्त साधनों का स्वामी, वेगवान् पदार्थों और वीरपुरुषों के बीच में व्यवस्थित, बलवान्, मन से भी अधिक वेग और बल वाला, अपने को ही सबसे प्रथम रखने हारा, सबसे अधिक पूज्य सत्संगयोग्य पुरुष है, वही सुख से लोकयात्रा के लिये हमें प्राप्त हो।

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान अश्विनामक स्त्री पुरुषो ! आप दोनों अमुक २ कुल में उत्पन्न हुए, शरीर और अपने गुणों से निष्पाप होवो। आप दोनों परस्पर संगत होकर एक दूसरे को चित्त से चाहो। तुम दोनों में से प्रत्येक विजयशील, एक दूसरे से गुणों में उत्कृष्ट, उत्तम गृहस्थ यज्ञ का करने वाला, तेजस्वी माता पिता का उत्तम भाग्यवान् पुत्र होकर गृहस्थ को धारण करे।

प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५॥२५॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय में व्यापक स्त्री पुरुषो ! हे जिस प्रकार वृषभ गौ के पीछे कामनावश जाता है उसी प्रकार तुम दोनों में से जो भोगों का भोक्ता और सर्वश्रेष्ठ और सूर्य या सुवर्ण के समान सुन्दर रूप का है, वह कामना करने योग्य उत्तम २ पुत्र आदि पदार्थों को लक्ष्य करके, गृहस्थ आदि आश्रमों को जाता है। तुम दोनों में से प्रत्येक के मन और इन्द्रिय रूप अश्व को, मनोरञ्जन करने वाले नाना राजस् भोग और नाना लोक, ऐश्वर्यों से, हृदय को मथन कर देने वाले आकर्षण से, और उत्तम २ वाद्य आदि संगीतों से, स्वरों से विविध प्रकार से तृप्त करें और उनकी वृद्धि करें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के समान हे स्त्रीपुरुषो ! जिस प्रकार सूर्य वर्षणशील होकर सबको व्यापता हुआ मधु अर्थात् जलों को लेना या अन्नों को उत्पन्न करना चाहता हुआ पूर्वप्राप्त जलों को ग्रहण करता है, और वह प्रति ऋतु का स्वामी है, उसी प्रकार तुम दोनों में से शरत् आदि उत्तम रमण करने योग्य ऋतुओं का स्वामी, निषेकादि करने में समर्थ, सब विघ्नों पर विजय पाने वाला, मधुर अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों और पुत्रादि फलों की कामना करता हुआ प्रथम मन से चाही दाराओं को प्राप्त करता है । वे हृदय में व्यापने वाली पत्नियां भी उन दोनों में से एक की सुख प्राप्त कराने वाले कामनाओं और उपायों से, नाना भोग्य ऐश्वर्य सौभाग्यों, बलवान् पुत्रों से, उसको तृप्त और पुष्ट करती हैं । वे उमड़ती हुई नदियों के समान उत्तम कोटि की तथा गुणों से समृद्ध होकर उसे प्राप्त हों । (२) अध्यात्म में सौ वर्ष जीने से 'शरद्वार वृषभ' आत्मा है । वह मधुर फलों की इच्छा से पूर्व विद्वानों के वाणियों पर आचरण करता है । और वे व्यापक सत्य वाली वाणियां उसको प्राप्त होतीं और अपने ज्ञानों से भर देती है ।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्याओं और ऐश्वर्यों के पारंगत ! विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों की स्थिर, अनुभवयुक्त उपदेश वाणी, गुरु द्वारा दिये और शिष्य द्वारा प्राप्त किये जाते समय, तीनों प्रकारों से बहती हुई रची जाय । आप दोनों खूब प्रशंसित और गुरु के समीप विद्या प्राप्त करके, विद्या याचना करने वाले शिष्य को उत्तम मार्ग में रहकर प्राप्त होवो । न जाने योग्य मार्ग के सम्बन्ध में मेरा वचन श्रवण करो । वाणी का तीन प्रकार

से क्षरण = मुख से, चक्षु से और हाथों से अथवा अभिधा, लक्षणा और व्यंजना रूप से। या आकांक्षा, योग्या, आसत्ति से। अथवा शब्द वा अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध से।

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! तुम दोनों में से तेजस्वी और उत्तम रूपवान् पुरुष की वह उत्तम वाणी, त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान आसनस्थ वेदवेत्ताओं की बनी धर्मसभा के बीच में सब मनुष्यों को सन्तुष्ट करे। बलवान् सांड जिस प्रकार गौ के ऊपर वीर्य सेचन करने के अवसर में अति प्रसन्न होता है, और जिस प्रकार वर्षणशील मेघ पृथ्वी पर जल वर्षाने में सबको तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार तुम दोनों में से वीर्य सेचन में समर्थ वीर्यवान् मनुष्य वीर्य-दान देता हुआ स्वयं प्रसन्न हो और सहचरी को भी तृप्त करे।

युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान्।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥२६॥

भा०—हे एक दूसरे के आत्मा के स्वामी स्त्री पुरुषो! तुम दोनों को उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सबके पोषक सूर्य के समान और राष्ट्र को धारण करने वाले राजा के समान जानकर, अग्नि अर्थात् तेजस्वी सूर्य और कमनीय प्रभातवेला के समान स्तुति करता है। जो तुम दोनों को सेवा आदि कर्त्तव्यों का भी पूर्ववत् उपदेश करता हुआ तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करे। इस प्रकार हम सभी प्रजाजन अन्न बल और दीर्घायु प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१८२]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराट् जगती। २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६, ८ स्वराट् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् पुरुषो ! यह सबसे उत्तम देह है । इसमें बलवान् प्राणों का स्वामी, रमण करने और चलाने हारा आत्मा है। उसको उत्तम रीति से अलंकृत करो, उसमें उत्तम गुण और बल धारण कराओ, उसको अच्छी प्रकार प्रसन्न करो। सूर्य के समान तेजःस्वरूप उस आत्मा के पुत्र के समान उसको न गिरने देने हारे, ज्ञान-कर्म दोनों को प्रेरने वाले, उत्तम प्रज्ञा को उत्पन्न करने वाले, प्रजाओं को पालने वाले धन बल से सम्पन्न, उत्तम कर्म और आचरण में सदा पवित्र व्रत का पालन करने वाले, देह में सदा शुद्धि बनाये रखने वाले, दो प्रधान पुरुषों के समान देह में प्राण और अपान हैं। उनको उत्तम सामर्थ्यवान् करो और सब प्रकार से अन्नादि द्वारा हृष्ट पुष्ट करो और तृप्त होवो ।

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

भा०—हे जो स्त्री पुरुष रमणयोग्य गृहस्थरूप रथ को मधुर अन्न और आमोद प्रमोद और स्नेह से पूर्ण कर धारण करते हैं और जो अपने देहरूप रथ को बलवीर्य से पूर्ण रखते हैं, वे इन्द्रतम अर्थात् देहरथ में लगे उत्तम घोड़ों के समान हों, वे सब प्रकार से ज्ञानवान्, ज्ञानप्रद गुरु को उसी रम्य गृहस्थ व्रत से प्राप्त हों। (२) अध्यात्म में वे इन्द्र = आत्मा के प्रमुख बल होने से 'इन्द्रतम' हैं। मुख्य प्राण होने से मरुत्तम, दुःखनाशक होने से 'दस्र', देह में हित होने से 'रथ्य', देह में आश्रित होने से रथीतम हैं। वे अन्न पालित देह का वहन करते हैं। उसी देह से वे सब प्रकार से चेतनावान् आत्मा को प्राप्त हैं।

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

भा०—हे गुरुओ ! आप विद्या का प्रक्रम करने वाले शिष्य की प्रज्ञा या मति को पार करते हो और वेदवाणी के इच्छुक विद्वान् जो कोई भी बिना दान भेंटे के भी आता है उसके लिये क्या आप दोनों उदासीन रहते हैं ? या क्या करते हैं ? उदासीन नहीं रहते, प्रत्युत् ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हो। (२) प्राणापान इस देह में कैसे रहते हैं ? क्या करते हैं ? जो पुरुष अन्न नहीं खाता उसकी क्रियाशक्ति और प्रज्ञा को न्यून कर देते और पीड़ित कर देते हैं। जो वाणी को बोलने वाला 'विप्र' अर्थात् विविध उपायों से शक्ति को अन्नादि से पूर्ण करता है उसको वे प्रकाश, तेज देते हैं।

जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

भा०—सब ओर से भौंकते और भयंकर चीत्कार आदि करते हुए कुत्ते के स्वभाव के जन्तुओं और शत्रुओं का अच्छी प्रकार नाश करो। संग्रामकारी पुरुषों को मारो। हे विद्या और बल से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उक्त कर्मों के करने के नाना साधनों को प्राप्त करो और जानो। और आप लोग उत्तम उपदेष्टा से विद्या प्राप्त करके हरेक वाणी को उत्तम रमणीय गुणों से अलंकृत, रत्नों से जड़ी लड़ी के समान बनाओ। ऐसे आप दोनों कभी असत्याचरण न करते हुए मेरे प्रशंसनीय उपदेश को जानो और उसका पालन करो।

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥५॥२७॥

भा०—आप दोनों स्त्री पुरुष वर्ग मिलकर समुद्रों में, ऐसे २ अपने जनों से युक्त या दृढ़ पक्षों और पतवारों वाले जहाज को, शत्रुनाशकारी वा लेन देन करने वाले व्यापारी पुरुषों के उपयोग के लिये बनाओ। जिससे विद्वानों में विद्यमान् ज्ञान के द्वारा सुख से गमन करने में समर्थ

होकर दूर २ तक पहुँचो, और बड़े भारी जलसागर के भी पार करने में समर्थ होवो (२) अध्यात्म में—यह देह प्राणों के आश्रय पर बना संसार सागर से पार उतरने का 'प्लव' है, आत्मायुक्त होने से 'आत्मन्वान्' है। वाम, दक्षिण पार्श्व पक्षी के तुल्य हैं। इति सप्तविंशो वर्गः॥

अव॑विद्धं तौग्र्यम॒प्स्व१॒॑न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्रवि॑द्धम्।
चत॑स्रो ना॒वो जठ॑लस्य॒ जुष्टा॒ उद॒श्विभ्या॑मिषि॒ताः पा॑रयन्ति ॥६॥

भा०—समुद्र के मध्य भाग में साथ लगी चार २ नौकाएं हों, जो समुद्रों के बीच में आलम्बन रहित, भयजनक अन्धकार के समान गंभीर जल में फंसे और निराश हुए व्यापारी जन को जल अग्नि से युक्त अश्व अर्थात् ऐंजिनों के दो दो स्वामियों से सञ्चालित होकर उसे पार पहुँचा देवें। (२) अध्यात्म में—'जठल' मध्यस्थ मुख्य चित्त में लगी चार नावें चार अन्तःकरण हैं। देहधारी यह 'तौग्र्य', जीव है। जो आलम्बन रहित, निरुपाय अविद्यान्धकार में फंसा और प्राणों में या लिङ्ग शरीरों में फंसा रहता है। अथवा चार नौका चार वेद, जो अज्ञान में फंसे को तारते हैं।

कः स्वि॑द्वृ॒क्षो निष्ठि॑तो॒ मध्ये॒ अर्ण॑सो॒ यं तौ॒ग्र्यो ना॑धि॒तः प॒र्यष॑स्वजत्। प॒र्णा मृ॒गस्य॑ प॒तरो॑रिवा॒रभ॒ उद॑श्विना ऊहथुः॒ श्रोम॑ताय॒ कम् ॥ ७ ॥

भा०—जल के बीच में कौन सा वह वृक्ष खूब अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित है जिसको उत्तम बलवान् पुरुष जल के बीच में अति दुःखी होकर एवं आशावान् होकर खूब अच्छी प्रकार पकड़ लेता है? गिरते हुए वानर के लिये जिस प्रकार पत्ते ही उसको सम्भालने के लिये पर्याप्त होते हैं, उसी प्रकार विद्वान् स्त्री पुरुष भी गिरने वाले, आश्रय की खोज लगाने वाले पुरुष के आलम्बन के लिये पालन करने वाले साधन बनकर, कीर्त्ति के लिये उसे ऊपर उठा लिया करें। पूर्व प्रश्न का उत्तर है—जिस

प्रकार जल से भरे सागर के बीच आलम्बन के लिये वह वृक्ष की बनी नौका ही है जिसे व्यापारी वा परराष्ट्र विजयी आश्रय के लिये पकड़ता है।

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्माद्द्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥२८॥

भा०—हे सदा सत्य का भाषण, मनन और आचरण करने वाले नर नारी जनो ! तुम दोनों के माननीय पुरुष जो वेदोपदेश करें, वह तुम दोनों को सदा अनुकूल हो। इस विद्वानों की सभा से आज अर्थात् अभी तुम निर्णय व्यवस्था आदि प्राप्त करो। इस प्रकार हम सब लोग उत्तम मनोकामना और बल और दीर्घ जीवन प्राप्त करें। इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

[१८३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः ४ भुरिक् पंक्तिः । ५, ६ निचृत् पंक्तिः । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

भा०—जो मन से भी अधिक वेगवान् है, जो तीन बन्धनों वाला, और जो तीन चक्रों वाला है, उसके साथ बलवान् दो अश्व जोड़ो। तीन धातुओं के बने जिस द्वारा उत्तम कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष के गृह को, पखों से पक्षी के समान, प्राप्त होओ। अध्यात्म में—मन से भी अधिक वेगवान् आत्मा है, उसकी तरफ बलवान् प्राण और अपान दोनों का योग करो। योगाभ्यास के बल से उनको वश करो। आत्मा युक्त देह सत्व, रजस्, तमस् तीनों से बंधा होने से 'त्रिबन्धुर' है। मन, वाणी और काया इन तीन कारकों से युक्त होने से 'त्रिचक्र' है। वह वात, पित्त, कफ से युक्त होने से त्रिधातु है। मन आत्मा दोनों योग द्वारा उस प्रभु परमेश्वर का साक्षात् करें।

सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सुख से चलने हारा यान पृथिवी के चारों ओर जाया करता है, जिस पर अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के प्राप्त करने के लिये काम काज वाले आदमी बैठते हैं, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो! सत् आचार-युक्त, रमण करने और कराने वाला गृहस्थ-रथ, निवास योग्य भूमि के समान अपने आश्रय पर बसाने वाली स्त्री को प्राप्त होकर रहता है, जिस में परस्पर के सम्पर्क, संग, अनुराग और प्रेम के आधार पर रहकर दोनों कार्यकुशल स्त्री पुरुष बिराजते हैं। हे स्त्री पुरुषो! देह में उत्पन्न होने वाले उत्तम रूप को भी प्राप्त करो। सूर्य की कन्या उषा अर्थात् प्रभात वेला के सदा नये रूप में प्रकट होने वाले कान्तियुक्त रूप से युक्त होकर, तुम दोनों स्त्री पुरुष परस्पर मिलकर रहो।

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान्।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥

भा०—हे नरनारी जनो! आप दोनों सदाचारयुक्त गृहस्थाश्रम रूप रथ पर आकर स्थित होवो। जो तुम दोनों को रमाने हारा, अन्न, ज्ञान और बल से युक्त तुम्हारे कर्त्तव्य कर्मों के अनुकूल रहता है। हे कभी परस्पर असत्य व्यवहार न करने हारो! आप दोनों जिस द्वारा गृह और लोकयात्रा तथा अपनी स्थिति को प्राप्त करने या निबाहने के लिये और पुत्रलाभ या अपने आत्मा या देह के सुख के लिये प्राप्त होते हो उस रथस्वरूप गृहस्थाश्रम पर आरूढ़ होवो।

मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम्।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्रा विमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों में से कोई भेड़िये के समान कुटिला-चारी हिंसक या चोर स्वभाव वाला पुरुष होकर एक दूसरे को अपमानित

न करे। और तुम में से किसी को चोरस्वभाव की हिंसाशील स्त्रियां भी अपमानित न करें। तुम दोनों एक दूसरे का कभी त्याग न करो। तुम दोनों का यह परस्पर सेवन करने योग्य पृथक् २ भाग है। यह वेदवाणी व्यवस्था करने वाली है। हे एक दूसरे के दुःखों का नाश करने वालो! ये मधुर अन्नों, जलों, उत्तम फलों के खजाने सब तुम्हारे ही उपभोग के लिये हैं।

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान्।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम्॥ ५॥

भा०—हे दुःखों और दुःखदायी कारणों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो! जो पुरुष उत्तम वेदवाणी का विद्वान्, बहुतों को दान देने वाला, श्रमणशील परिव्राजक या विविध दुःखों से रहित, उपादेय ज्ञान बल और ऐश्वर्यादि से युक्त होकर, रक्षा के लिये तुम्हें अपनी शरण में लेता है और जो निश्चित दिशा के समान पूर्वाचार्यों और उपदेशों द्वारा निर्दिष्ट और उपदिष्ट दिशा की ओर अत्यन्त सरल मार्ग से ले जाने हारा हो, वही तुम दोनों के लिये रथ में लगे वृषभ के समान सन्मार्ग पर ले जाने वाला हो। हे सदा सत्य-व्यवहार वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों मेरे वचन को श्रवण करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥६॥२९॥४॥

भा०—हम लोग इस दुःखदायी अविद्यान्धकार के पार पहुँचें और पहुँच गये हैं। आप दोनों के प्रति यह बहुत से कर्त्तव्यों का उपदेश प्रत्येक को पृथक् भी कह दिया जाता है। आप दोनों विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्गों से जीवन यात्रा करो। हम लोग भी इसी प्रकार से उत्तम अन्न, कामना, बल, और उत्तम जीवन प्राप्त करते हैं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[१८४]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ४ भुरिक् पंक्तिः । ५, ६, निचृत् पंक्तिः । २, ३, विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

ता वा॒मद्य ताव॑प॒रं हु॑वेमो॒च्छन्त्या॑मु॒षसि॒ वह्नि॑रु॒क्थैः ।
नास॑त्या॒ कुह॑ चि॒त्सन्ता॑व॒र्यो॑ दि॒वो नपा॑ता सु॒दास्त॑राय ॥ १ ॥

भा०—हे असत्याचरण से रहित विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों चाहे कहीं भी रहें, तो भी ज्ञान का वहन करने या दूसरों तक पहुँचाने वाला विद्वान् व हम लोग, प्रभात वेला के खुल जाने पर तुम दोनों को आज नित्य उत्तम उपदेश दें। उन तुम दोनों को अगले दिन भी प्रेम से उपदेश करें। तुम दोनों में से उषा के समान नित्य अपने रूप को उज्ज्वल प्रसन्न दिखाने वाली कमनीय स्त्री के निमित्त विवाह करने वाला पुरुष उत्तम वचनों से बोले। चाहे तुम दोनों किसी भी दशा या देश में रहो पर असत्य-व्यवहार कभी न करने वाले होकर रहो। और जिस प्रकार वैश्य अपना माल सबसे उत्तम मूल्य देने वाले को देता है उसी प्रकार तुम दोनों में जो स्वामी है वह अधिक सुख देने वाले दूसरे अंग के लिये परस्पर की कामना या प्रेम को कभी नीचे न गिरने देना वाला ही रहे।

अ॒स्मे ऊ॒ षु वृ॑षणा मादयेथा॒मुत्प॒णीँर्ह॑तमू॒र्म्या मद॑न्ता ।
श्रु॒तं मे॒ अच्छो॑क्तिभिर्मती॒नामेष्टा॑ नरा॒ निचे॑तारा च॒ कर्णैः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे बलवान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग व्यवहार करने में कुशल हम लोगों को आनन्दित रक्खो। हृदय की प्रेमतरंग से दोनों सुप्रसन्न रहते हुए उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों तक उठकर उसको आदर से प्राप्त करो, उन तक उत्साहयुक्त होकर पहुँचो। हे उत्तम नरनारियो ! प्राप्त संपदाओं और ज्ञानों का संचय करने वाले स्त्री पुरुषो !

मननशील पुरुषों के उत्तम २ वचनों से मैं आप दोनों को प्राप्त करता हूँ। आप दोनों मेरे वचनों को कानों से श्रवण किया करो।

श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३॥

भा०—हे पालन पोषण करने वाले वर वधू के माता पिता जन ! जिस प्रकार कोई जन्तु बाण से बिंध कर तन्मय हो जाता है इसी प्रकार एक दूसरे के प्रति मनोकामना रूप बाण से आहत हुए स्त्री और पुरुष दोनों यदि कभी परस्पर असत्य आचरण असत्य भाषण चोरी आदि न करके धर्मपूर्वक रहने वाले हों तो वे दोनों एक दूसरे की शोभा और एक दूसरे के आश्रय के लिये होते हैं। प्रजाओं में प्रसिद्ध २ विद्वान् पुरुष भी सूर्य की कान्ति या उषा के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करने वाली वधू और बहुत से सामर्थ्यों से युक्त महान् स्वयंवृत पति, इन दोनों के परस्पर के धारण रूप विवाह को लक्ष्य करके, गुजरे हुए अतीत काल के जोड़ों की भी प्रशंसा किया करते हैं।

अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील, एक दूसरे के प्रति अच्छी प्रकार समर्पण करने वाले वर वधू ! विद्वान् पुरुष यज्ञ की कामना से उत्तम वीर्यवान् पुत्र को प्राप्त करने के लिये, तुम दोनों को देख २ कर प्रसन्न होते हैं। हमारी कामना है कि तुम दोनों की वह उत्तम दानशीलता या परस्पर समृद्धि हमारे लिये मधुर, रम्य और उत्तम फलजनक हो। आप दोनों प्रमाणभूत और मानवीय आप्त, क्रिया कुशल अनुभवी पुरुष के कहे उपदेशों को प्रसन्नता से प्राप्त करो।

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों को ज्ञानवान् पुरुषों ने पाप के मार्ग से बचाने के लिये यह वेदमन्त्रों द्वारा उपदेश किया है। हे ऐश्वर्य-युक्तो! आप दोनों कभी असत्याचरण न करते हुए, पाप या विघ्न बाधाओं को दूर करने में समर्थ पुरुष के अधीन या विघ्नादि से रहित मार्ग में अति प्रसन्न होते हुए, अपनी सन्तान और अपने आप की उन्नति के लिये, उत्तम तथा दुःख से रहित मार्ग और गृह या शरण को प्राप्त करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त १८३। मन्त्र ६ ॥ इति प्रथमो वर्गः ॥

[१८५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ७, ८, १०, ११ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

भा०—द्यावा पृथ्वी रूप से माता पिता के कर्त्तव्यों का वर्णन। माता और पिता इन दोनों में से पहले कौन उत्पन्न हुआ, और बाद में कौन उत्पन्न हुआ, अथवा मुख्य कौन और गौण कौन है? और यह भी बतलाओ कि वे दोनों किस प्रयोजन से उत्पन्न हुए हैं? हे दीर्घदर्शी विद्वान् पुरुषो! आप लोग बतलावें कि इस तत्व का रहस्य कौन भली प्रकार से जानता है। वस्तुतः ये दोनों माता और पिता स्वयं अपने आप अपने देह से और अपनी आत्मा से सब जगत् को या समस्त 'विश्व' अर्थात् जीवमात्र को विविध प्रकार से धारण पोषण करते हैं। और जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी अपने सामर्थ्य से समस्त जल को धारण करती है उसी प्रकार, रात

और दिन के समान और रथ के दो पहियों के समान विविध प्रकार से वर्त्तते हैं।

भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार विचलित न होते हुए, स्वयं पादों से रहित होकर भी सूर्य-पृथ्वी दोनों विचरणशील चरणों से युक्त जीव संसार को अपने भीतर धारण करते हैं, उसी प्रकार दोनों माता पिता भी अधर्मपथ पर न चलते हुए और धर्ममार्ग या गृहस्थ में स्थिर रहते हुए स्वयं विशेष पद या महत्वाकांक्षा से रहित होकर भी, स्पनन्दनशील विशेष चेतनायुक्त चरणों से युक्त गर्भ को धारते हैं। माता पिताओं की गोद में पुत्र के समान पृथिवी और आकाश दोनों स्थायी सर्वप्रेरक सूर्य को धारण करते हैं। माता और पिता दोनों हमें असत्याचरण से उत्पन्न दुःख तथा असामर्थ्य से बचावें।

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत्।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों का जीवों के प्रति दान अखण्ड आकाश, सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी से ही उत्पन्न होता, और वह अविनाशी, पीड़ा न देने वाला, अन्नादि से सम्पन्न, सुखजनक, निष्पाप होता है, उसी प्रकार अखण्ड चरित्रवान् माता पिता का भी दिया हुआ धन निष्पाप, अक्षय, बध आदि द्वारा जीवन नाश के संकटों से रहित, विना किसी का वध किये ही प्राप्त होने वाला, अन्न से युक्त, अति सुखकारी हो। माता पिता उपदेश दाता होकर, परोपदेश करने वाले पुत्र के हितार्थ सभी ग्राह्य पदार्थों को उत्पन्न करें। माता और पिता दोनों हमें बड़े अपराध से बचावें।

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अन्नादि पालन सामर्थ्य द्वारा, पृथिवी और आकाश सूर्य को पुत्र के समान धारण करते हुए, सबका पालन करते हुए भी कभी पीड़ित होकर अपने कार्य से शिथिल नहीं होते, उसी प्रकार माता और पिता भी अन्न आदि पालन और रक्षा के सामर्थ्य द्वारा पुत्रों और प्रजाओं की पालना और रक्षा करते हुए कभी संताप और दुःख अनुभव करने वाले न हुआ करें। वे दोनों सन्तानों को उपदेश करने और कुपथों से रोक थाम करने वाले हुआ करें। वे दोनों विद्वान् पुत्रों के माता पिता बनें, अर्थात् उत्तम सन्तानों को जानें। जिस प्रकार दोनों आकाश और पृथ्वी सूर्य से प्रकाशमान् दिन और चन्द्र के प्रकाश वाली रात्रि दोनों के दोनों रूपों से जीवों की कष्ट से रक्षा और पालन करते हैं, उसी प्रकार दोनों माता पिता भी प्रकाशवान् दिनों के दिन-रात्रि दोनों रूपों से हमें उत्तम योनि में न होने रूप महान् कष्ट से बचावें, वे सन्तानों को उत्तम रीति से पैदा और पालन करें।

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और भूमि दोनों, एक दूसरे से सदा मिले हुए, अति बलशाली, सीमा भागों में मिले हुए, भाई बहन के समान या एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धु होकर, संसार के केन्द्र को सब प्रकार से धारण करते हैं, इसी प्रकार पिता और माता दोनों परस्पर संगत होकर, युवा अवस्था में विद्यमान, एक दूसरे को प्राप्त होने वाले, अपने माता पिताओं के समीप बालक बालिका के समान उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले होकर भी उत्पन्न बालक की नाभि को प्रेम वश बार २ सूंघते या चुम्बन करते हुए हमें असामर्थ्य से उत्पन्न दुःखों से मुक्त करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

उ॒र्वी सद्म॑नी बृह॒ती ऋ॒तेन॑ हु॒वे दे॒वाना॒मव॑सा॒ जनि॑त्री ।
द॒धाते॒ ये अ॒मृतं॑ सु॒प्रती॑के॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो अ॒भ्वात् ॥६॥

भा०—स्त्री पुरुष, पति पत्नी या माता पिता बड़े विशाल हृदय वाले, घर के समान सबको अपनी शरण में लेने वाले, प्रजाओं को बढ़ाने वाले, धन अन्न और सत्यज्ञान से प्रिय बन्धुजनों की रक्षा आदि द्वारा उनको उत्पन्न करने हारे हों। उनको मैं आदरपूर्वक स्वीकार करता हूँ। जो वे दोनों पुत्र प्रजा आदि को और अन्न जल आदि को धारण करते हैं वे उत्तम सुख और ज्ञान प्रतीति वाले, सूर्य पृथिवी के समान होकर कष्ट से हमारी रक्षा करें।

उ॒र्वी पृ॒थ्वी ब॑हु॒ले दू॒रेअ॑न्ते॒ उप॑ ब्रु॒वे नम॑सा य॒ज्ञे अ॒स्मिन् ।
द॒धाते॒ ये सु॒भगे॑ सु॒प्रतू॑र्ती॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अ॒भ्वात् ॥७॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता बड़े यशस्वी, बहुत से पदार्थों के ला देने वाले, दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान हैं, और जो उत्तम ऐश्वर्यवान्, अति वेगवान्, कार्यकुशल होकर बिना विलम्ब के हमारा पालन पोषण करते हैं, मैं उनको इस आदर सत्कार के अवसर पर बड़े आदर भाव से बुलाऊं। वे आकाश और पृथिवी के समान हमें दुःख से बचावें।

दे॒वान्वा॒ यच्च॑कृ॒मा कच्चि॒दागः॒ सखा॑यं वा॒ सद॒मिज्जास्प॑तिं वा ।
इ॒यं धीर्भू॑या अव॒यान॑मेषां॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अ॒भ्वात् ॥८॥

भा०—हम लोग विद्वानों के प्रति जो भी किसी प्रकार का अपराध करें, और कोई भी अपराध मित्र के प्रति या पत्नी पति जमाता या वर-वधू के प्रति करें, उन सब अपराधों को दूर करने का उपाय सदा ही यह दृढ़ व्रत हो। सूर्य और पृथिवी के समान माता पिता हमें पाप से बचावें।

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम्।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता दोनों स्तुतियोग्य, और मनुष्यों के हितकारक होकर मेरी रक्षा करें। और वे दोनों उत्तम रक्षक होकर रक्षण, ज्ञान, आदि गुणों से हमें प्राप्त हों। वणिग् जन जिस प्रकार उत्तम धन देने वाले को अधिक पदार्थ प्रसन्न होकर देता है उसी प्रकार हम ऐश्वर्यवान् होकर, अन्नादि से यथेच्छ प्रसन्न होकर, बहुत अधिक धन और ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा और यत्न करें।

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥

भा०—मैं उत्तम ज्ञानवान् होकर, सूर्य के समान तेजस्वी राजवर्ग और पृथ्वी के समान उसके आश्रय प्रजागण के हित के लिये, सब से प्रथम और सब से उत्तम उस सत्यज्ञान, सत्यव्यवस्था वा वेदवचन का उपदेश करता हूँ, जो सबको श्रवण करने योग्य है। दोनों ही परस्पर प्रेमयुक्त होकर हमारी निन्दा योग्य पाप से रक्षा करें। और नाना रक्षण के उपायों से पालन करें और वे ही दोनों हम सब की रक्षा करें।

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥३॥

भा०—हे आकाश और पृथिवी के समान माता और पिता! जो भी मैं यहां इस लोक में आप दोनों के सम्बन्ध में अन्यों को उपदेश करूं या आप दोनों को जो कुछ कहूं वह सत्य ही हो। आप दोनों सदा विद्वानों और उत्तम गुणों के रक्षण आदि साधनों से सदा समीप और आश्रयरूप होकर रहो। जिससे हम सब लोग अन्न, उत्साह, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ विश्वेदेवा ॥ छन्दः—१, ८, ६ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७ भुरिक् पंक्तिः ६ पंक्तिः । १० स्वराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥

भा०—समस्त प्राणियों को सन्मार्ग पर ले जाने वाला, सबका उत्पादक, प्रेरक और प्रकाशक परमेश्वर, सब सुखद पदार्थों और ज्ञानों का दाता, सब प्रकार और सर्वत्र प्राप्त करने योग्य व्यापक ज्ञान के स्वरूप में समस्त संसार को व्यापता है। वह उत्तम स्तुतियों और स्तुत्य विभूतियों से हमें प्राप्त हो। हे बलवान् युवा पुरुषो ! आप लोग भी उत्तम मन की प्रेरणा, प्रबल इच्छा शक्ति और प्रज्ञा द्वारा समस्त जगत् को और हमें भी आनन्दित प्रसन्न करो।

आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥

भा०—न्यायाधीश, शत्रुओं का नियन्ता, अति श्रेष्ठ राजा सभी शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले अन्य भी जो उत्तम विद्वान् और तेजस्वी, विजयेच्छुक पुरुष हों वे सभी समान प्रेम से युक्त होकर हमें प्राप्त हों। जैसे भी होवे हर प्रकार से सब हमें बढ़ाने वाले हों। वे बल और अन्न को शत्रुविजय और दुष्टों को दमन करने वाला बनावें। वे उस साम्राज्य-पालक बल को प्रजा को व्यथा देने वाला, दुःखदायी न बनावें ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम जनो ! तुम लोग शीघ्र सन्मार्ग पर जाने हारे, प्रेम व्यवहार वाले, आप लोगों में से सबसे अधिक प्रिय, अग्नि या दीपक

के समान सबके आगे चलने और मार्ग दिखाने वाले अतिथि के समान पूज्य विद्वान् की स्तुति करो। जिससे वह सर्वश्रेष्ठ हममें रहकर उत्तम कीर्त्तिमान् हो। वह हमारी अन्नादि समृद्धियों और हमारी इच्छाओं को पूर्ण करे। शत्रुओं पर उद्यत होकर तथा सर्वप्रेरक और सञ्चालक होकर आयुधों और सेनाओं को भी प्रेरित करे।

उप॑ व॒ एषे॒ नम॑सा जिगी॒षोषासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः।
स॒मा॒ने अह॒न्वि॒मिमा॑नो अ॒र्कं विषु॑रूपे॒ पय॑सि॒ सस्मि॒न्नूध॑न् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रातः और सायं उस ही अन्तरिक्ष में नाना रूप के जलों के वर्षण के निमित्त एक-जैसे दिन में भी सूर्य को विशेष २ रूपों का बना देते हैं, और कालपर्यय से अन्न सस्यादि सहित प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार उत्तम दुहने योग्य गौ अपने एक ही स्तनमण्डल में नाना रूप में बदलने वाला दूध प्रदान करने के लिये एक ही दिन में सूर्य से युक्त दिन को व्यतीत करके विनय भाव से घर को आ जाती है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! मैं समान अन्तरिक्ष के नीचे नाना रूप के पुष्टिकारक अन्न के निमित्त एक समान दिन में ही अर्चना करने योग्य विधान या उत्तम उपदेश प्रकट करता हुआ, शत्रु और मित्र प्रजाओं को नमाने वाले शस्त्रबल और विद्याबल या विनय से और विजय करने की इच्छा से, आप प्रजाजन और विद्वान् लोगों के समीप प्राप्त होता हूँ।

उ॒त नो॒ऽहि॑र्बु॒ध्न्यो॒३॒॑मय॑स्कः॒ शिशुं॒ न पि॒प्युषी॑व वेति॒ सिन्धुः॑।
येन॒ नपा॑तम॒पां जु॒नाम॑ मनो॒जुवो॒ वृष॑णो॒ यं वह॑न्ति ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—सबके परम मूल में स्थित, सर्वाश्रय अविनाशी परमेश्वर हमें सुखी करे। जो सबको व्यवस्था में बांधने वाला परमेश्वर दूध पिलाने वाली माता के समान हम सुख की नींद सोने वाले बालकों को सदा प्राप्त होता है। जिसके बल से प्राणों को न गिरने देने वाले देह को हम अपने वश करते और जिसको बलवान् मन की गति से चलने वाले

जीवगण या इन्द्रियगण आत्मारूप से अपने ऊपर धारण करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत नं ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों सहित व्यापने के कार्य में उत्तम है और जिस प्रकार मेघों के आघात करने वाला सूर्य या विद्युत् क्षेत्रकर्षण करने वाले किसानों के मनोरथों को पूरा कर देता है, इसी प्रकार शत्रुओं का नाश करने वाला तेजस्वी पुरुष प्रजा के प्रति अति स्नेहवान् होकर, राष्ट्र पर सब प्रकार से व्यापने और सब प्रकार से उसकी रक्षा और पालन करने के लिये विद्वान् पुरुषों सहित हमारे इस राष्ट्र को प्रशंसनीय रूप से प्राप्त हो। वह ही प्रजाजनों और विद्वानों को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से पूर्ण करता हुआ, बढ़ते और घेरते हुए विघ्नकारी शत्रु और दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर, सब नायकों में से बहुविध शक्तियों और ऐश्वर्यों से सब से महान् होकर, हमारे इस राष्ट्र में आवे, हमें प्राप्त हो।

उत नं ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥

भा०—समस्त नायकों में से उत्तम प्रशंसनीय पुरुष को जिस प्रकार घोड़ों को रथों में जोतने वाले और बुद्धिमान् वीर प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार गौएं नन्हे बच्चे को प्रेम से चाटती हैं और जिस प्रकार गौएं युवा वीर्यवान् सांड को कामनावश चाटती हैं, और जिस प्रकार सन्तानाभिलाषी स्त्रियां सब मनुष्यों में या दृढ़ पुरुष को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हमारे मननशील मनुष्य भी शीघ्रगामी अश्व आदि साधनों से युक्त होकर, कष्टों से पार करने वाले, सब मनुष्यों में उत्तम पुरुष को प्राप्त होते हैं। उसको ही सब स्तुति वाणियां भी प्राप्त होती हैं।

उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥

भा०—सैन्यबल को बढ़ाकर सैनिकों के अधिपति नायक लोग एक चित्त होकर, आकाश और पृथ्वी के बीच वायुगण के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों के बीच में निष्पक्ष रह कर हमारे इस राष्ट्र को अवश्य प्राप्त हों। भूमियों के समान देश की रक्षा करने वाली रथ सेनाएं हृष्टपुष्ट प्रबल अश्वों से युक्त होकर, सूर्य के साथ लगे किरणों के समान अन्धकार-वत् शत्रु पर विजय की इच्छा करने वाले राजा लोग और प्रजा को ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य लोग हमारे राष्ट्र को प्राप्त हों।

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥

भा०—जो इन वीरों और विद्वानों के बीच में अपने बड़े विज्ञान और बल के सामर्थ्य से विशेष ज्ञान प्राप्त करते और शत्रुओं को दूर करने का उपाय करते हैं वे उत्तम प्रयोगों के कुशल पुरुष शत्रुओं को अच्छी प्रकार दूर करने के बल और साधन का प्रयोग करते हैं। उत्तम सुप्रकाश-युक्त दिन में जिस प्रकार हिंसक व्यक्ति शिकार को अच्छी प्रकार मार लेता है उसी प्रकार इनकी नायक सहित सेनाएं हैं वे अन्न से युक्त समस्त देश को मेघों के समान सींचते और उनका उपयोग करते हैं। इसी प्रकार भय से कांपते हुए शत्रु को सब ओर से शस्त्रास्त्रों के बरसते मेघ के समान निरन्तर प्रहार करते हैं।

प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१०॥

भा०—हे राजा प्रजा जनो! आप लोग राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले सभापति, सेनापति, राजा प्रजा, एवं उत्तम स्त्री पुरुषों को राष्ट्र के पालन आदि कार्यों के लिये उत्साहित करें। प्रजा का पोषण करने वाले

राजा को स्वयं बलशाली व्यक्तियों को और द्वेष रहित पर्वतों व देश के प्रकोटों के स्वामी को वायु के समान बलवान् को तथा ज्ञानवान् पुरुष को आगे २ उत्तम पदों पर रखो। इन सब देवों अर्थात् विद्वान् पुरुषों को मैं राष्ट्रपति प्रजा के सुख की वृद्धि के लिये राष्ट्रकार्य में लगाता हूँ।

इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—हे दानशील, यज्ञ सत्संगति और ईश्वरोपासना करने वाले पुरुषो! वह परमेश्वरी वाणी और शक्ति तुम्हारे और हमारे सबके अज्ञान को दूर करने और ज्ञान का प्रकाश करने वाली, सबसे उत्कृष्ट प्राण और बल देने वाली और सबको शरण देने वाली हो। वह जो विद्वानों, विजयेच्छु जनों और अग्नि आदि समस्त लोकों में वसूयु होकर गूढ़ रूप से चेष्टा करती, गति देती है। हम उसी शक्ति की उपासना कर अन्न, बल और जीवन प्राप्त करें। इति पञ्चमो वर्गः॥

[१८७]

अगस्त्य ऋषिः॥ ओषधयो देवता॥ छन्दः—१ उष्णिक्। ६, ७ भुरिगुष्णिक्। २, ८ निचृद् गायत्री। ४ विराट् गायत्री। ९, १० गायत्री च। ३, ५ निचृदनुष्टुप्। ११ स्वराडनुष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्॥ १॥

भा०—मैं अन्न के समान पालक, महान्, समस्त जगत् को धारण करने वाले बल स्वरूप परमेश्वर की निरन्तर स्तुति करूं, जिसके पराक्रम से वाक्, काय, मन तीनों के किये कर्मों में फंसा यह जीव आवरणकारी अज्ञान को पोर २ करके छिन्न भिन्न करके विविध रूप से नाश करने में समर्थ होता है।

स्वादो॑ पितो मधो॑ पितो व॒यं त्वा॑ ववृमहे ।
अ॒स्माक॑मवि॒ता भ॑व ॥ २ ॥

भा०—हे सबके पालक अन्न के समान आनन्द देने वाले ! हे अन्न के समान मधुर एवं अति आनन्ददायक ! तुझे हम वरण करते हैं । तुझे ही हम सबसे श्रेष्ठ जानकर उपास्यरूप से चुनते हैं । तू ही हमारा रक्षक, प्रकाशक, प्रिय, तृप्तिकारक, वृद्धिकारक, शरण में लेने हारा स्वामी हो ।

उप॑ नः पित॒वा च॑र शि॒वः शि॒वाभि॑रू॒तिभि॑ः ।
म॒यो॒भुर॑द्विषे॒ण्यः सखा॑ सु॒शेवो॒ अद्व॑याः ॥ ३ ॥

भा०—हे पालक ! तू अति कल्याणकारी होने से 'शिव' है, तू सुखदायी रक्षा, तृप्ति, प्रीति, कान्ति, दीप्ति, वृद्धि, श्रुति आदि उपायों से हमें प्राप्त होता है । तू सुख आनन्द का एक मात्र उत्पत्तिस्थान, आनन्द की जननी है । तू कभी द्वेष न करने हारा और द्वेष न करने योग्य मि उत्तम सुखस्वरूप, दो के भेद से रहित अर्थात् अनन्य, अद्वितीय है ।

तव॒ त्ये पि॑तो॒ रसा॒ रजां॒स्यनु॒ विष्ठि॑ताः ।
दि॒वि वाता॑ इव श्रि॒ताः ॥ ४ ॥

भा०—हे अन्न के समान सर्वपालक ! अन्न के नाना प्रकार के मधुर आदि रस जिस प्रकार सब पदार्थों में विद्यमान हैं, और जिस प्रकार आकाश में वायु स्थित है उसी प्रकार के अद्भुत २ रस, बल और आनन्द धाराएं विविध रूपों में स्थित हैं, तू और शोभा रूप से विद्यमान है ।

तव॒ त्य पि॑तो॒ दद॑त॒स्तव॑ स्वादि॑ष्ठ ते पि॑तो ।
प्र स्वा॒द्मानो॒ रसा॑नां तुवि॒ग्रीवा॑ इवेरते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वपालक प्रभो ! तेरे प्रदान करते हुए वे नाना रस तेरे ही अलौकिक स्वरूप हैं । हे सबसे अधिक स्वादु ! हे पालक ! रसों का

स्वाद लेने वाले हम प्रबल गर्दन वाले होकर, तेरी नित्य स्तुति किया करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

त्वे पि॑तो म॒हानां॑ दे॒वानां॒ मनो॑ हि॒तम्।
अका॑रि॒ चारु॑ के॒तुना॒ तवाहि॒मव॑सावधीत्॥ ६ ॥

भा०—हे अन्न के समान पालक परमेश्वर ! जिस प्रकार ग्राह्य विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का 'मन' इस अन्न में स्थित है, इसी के आधार पर वह पुष्ट होता है, और जिस प्रकार अन्न की विज्ञानप्रद शक्ति से मन देह भर में सञ्चरणशील होता है, और जिस प्रकार अन्न के तृप्ति करने वाले गुण से यह जीव सर्प के समान मूर्छित करने वाली अमिट भूख प्यास का नाश करता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तुझमें ही बड़े २ प्रकाशमान लोकों का स्तम्भनबल और ज्ञान धरा है। तेरे ही ज्ञान से यह जगत् सुन्दर बना है। तेरी शक्ति से ही सूर्य मेघ को भिन्न भिन्न करता है।

यद॒दो पि॑तो॒ अज॑गन्वि॒वस्व॒ पर्व॑तानाम्।
अत्रा॑ चिन्नो मधो पि॒तोऽरं॑ भ॒क्षाय॑ गम्याः॥ ७ ॥

भा०—हे पालक प्रभो ! तू पालन करने वाले मेघ, विद्युत्, पर्वत, अन्न, आदि सभी पदार्थों में अन्न के समान विविध रूपों में विद्यमान् है। इसीलिये हे प्रभो ! उस अदृश्य, सर्वव्यापक तुझको उन पदार्थों में तुझे ही प्राप्त करते हैं। हे आनन्दमय ! हे प्रकृति मधुर ! हे पालक अन्न के समान हृदय के तृप्तिकारक ! तू इस जन्म में हमारे खाने वा तृप्ति के लिये खूब पदार्थ प्राप्त करा।

यद॒पामोष॑धीनां परि॒शमा॑रि॒शाम॑हे।
वाता॑पे पीव॒ इद्भ॑व ॥ ८ ॥

भा०—जो हम जलों और ओषधियों का शरीर में व्यापने वाला अंश रचा लेते हैं इसलिये हे वात अर्थात् प्राण से बलवान् होने वाले ! तू पुष्ट ही रह।

यत्ते सोम गवांशिरो यवांशिरो भजामहे। वाता॑पे पीव॒ इद्भ॑व ॥९॥

भा०—हे सोम ओषधे! जो तेरा गौ के दूध से मिला और जौ आदि से मिला रस है उसको हम सेवन करें। हे वायु अर्थात् प्राण से पुष्ट होने वाले देह! तू परिपुष्ट हो।

क॒र॒म्भ ओ॑षधे भव॒ पीवो॑ वृ॒क्क उ॑दार॒थिः।
वाता॑पे पीव॒ इद्भ॑व ॥ १० ॥

भा०—हे ओषधे! अन्नादि! तू शरीर का रचने हारा है। तू स्वयं पुष्टिकारक और स्वयं परिपुष्ट, रोगों को दूर करने वाला, शक्तियों और वीर्य आदि धातुओं का उद्दीपक है। हे वायु या प्राण के समान देह में फैलने हारी ओषधे! तू पुष्टिकारक हो।

तं त्वा॑ व॒यं पि॑तो वचो॑भि॒र्गावो॒ न ह॒व्या सु॑षूदिम।
दे॒वेभ्य॑स्त्वा सध॒माद॑म॒स्मभ्यं॑ त्वा सध॒माद॑म् ॥ ११ ॥ ७ ॥

भा०—हे पालक अन्न के समान प्रभो! गौएं या बैलगण जिस प्रकार खाने योग्य दूध और अन्न आदि पदार्थ बहाते और खूब अधिक मात्रा में उत्पन्न करते हैं, और जिस प्रकार हम लोग विद्वान् पुरुषों और अपने लिये भी अन्न को उत्तम वाणियों सहित प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हे स्वामिन्! हम उत्तम वाणियों और स्तुतियों से उस उपास्य तुझको प्राप्त होते हैं, तुझे द्रवित करते हैं, प्रेम और दया से पूर्ण करते हैं। तुझको उत्तम गुणों को प्राप्त करने और अपने हित के लिये, एक साथ संयोग से अति आनन्द देने वाला जान कर तुझे प्राप्त होते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१८८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६, ७, १० निचृद्गायत्री। २, ४, ८, ९, ११ गायत्री ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।
दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥

भा०—खूब तेज से युक्त होकर सूर्य या अग्नि जिस प्रकार किरणों से युक्त होकर सहस्रों को अपने वश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तू भी प्रकाशमान्, दानशील, अति तेजस्वी होकर ज्ञानी और वीर, विजयोत्सुक पुरुषों द्वारा सहस्रों शत्रुओं को जीत कर सब से अधिक प्रकाशित हो । तू दुष्टों का सन्ताप देने हारा, क्रान्तदर्शी होकर उत्तम खाद्य पदार्थों को प्राप्त करा ।

तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते ।
दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

भा०—अन्न प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाले पुरुष का 'यज्ञ' अर्थात् जीवनमय श्रेष्ठकर्म, सहस्रों सुखैश्वर्यों के देने वाले अन्नों को अपने में धारण करता हुआ, देह को न गिरने देने वाला होकर, मधुर अन्न और जल से अच्छी प्रकार कान्तिमान्, उज्ज्वल हो जाता है, इसी प्रकार देह को न गिरने देने वाला आत्मा और राष्ट्र विस्तार को कम न होने देने वाला राजा, वेद और ऐश्वर्य को प्राप्त होने वाले के लिये मधुर अन्न, जल तथा आनन्द से अच्छी प्रकार चमकता है । वह हजारों की सेनाओं को और अध्यात्म में सहस्रों इच्छाओं और वासनाओं को धारण करता है ।

आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् ।
अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्रणीनायक ! तू यज्ञाहुति करता हुआ, या आमन्त्रण पाकर, स्तुतिपात्र होकर, यज्ञ अर्थात् राष्ट्र पालन करने वाले विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा । तू सहस्रों का देने और विभाग करने वाला है ।

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् ।
यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥

भा०—जहां बल से आगे की ओर बढ़ने वाले सहस्रों वीरों से युक्त वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन को तेजस्वी पराक्रमी पृथिवी के स्वामी नरपति विस्तृत करते, उस पर शासन करते हैं, हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग वहां अच्छी प्रकार रहो ।

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च यः ।
दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—विविध गुणों कर्मों से प्रकाशमान् जो चक्रवर्त्ती के समान सर्वत्र अच्छी प्रकार प्रकाशित है वह राजा, और राष्ट्र में फैली हुई बहुत सी, जो द्वारों के समान शत्रुओं को वारण करने हारी प्रजाएं और सेनाएं हैं, वे उत्तम सामर्थ्य वाली होकर, दुग्धादि खाद्य पदार्थों को प्रवाहित करें, अधिक मात्रा में उत्पन्न करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः ।
उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥

भा०—दिन रात्रि के समान हे राजा प्रजावर्गो ! आप दोनों इस देश में एक साथ रहो । आप दोनों उत्तम कान्तिमान्, एक दूसरे की रुचि वाले, उत्तम सुवर्णादि ऐश्वर्यवान् होकर, लक्ष्मी से खूब शोभा को प्राप्त होवो ।

प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥

भा०—विद्वानों में उत्तम, दीर्घदर्शी, दानशील और गुणग्राही, उत्तम वाणी बोलने वाले, विद्या बल का विस्तार करने वाले उत्तम नायक विद्वान् जन हमारे इस प्रजापालन आदि कार्य का सम्पादन करें ।

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे ।
ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥

भा०—हे भरत अर्थात् पालन पोषण करने वाले मनुष्यों की सभे! हे भूमि सम्बन्धी प्रबन्ध करने वाली धर्मसभे! हे उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभे! और भी जो नाना प्रकार की सभा-समितिएं हैं मैं तुम सबसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब हमारी राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये हमें सदा सन्मार्ग में करती रहो।

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे।
तेषां नः स्फातिमा यज॥ ६॥

भा०—समस्त संसार का निर्माता परमेश्वर जिस प्रकार सबको उत्पन्न करने में समर्थ होकर समस्त रूपों को, रुचिकर पदार्थों और समस्त पशुओं को अच्छी प्रकार प्रकट करता है, और जिस प्रकार सूर्य रूपों को और रूप दिखाने वाली किरणों को भी प्रकट करता है, और दोनों ही प्रचुर वृद्धि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् तू भी शिल्पकार पदार्थों को गढ़ने में कुशल होकर, नाना रुचिकर सुन्दर पदार्थों और नाना प्रकार के उपयोगी पशुओं को भी वैज्ञानिक उपायों से प्रकट कर, और उनकी प्रचुर समृद्धि हमें प्रदान कर।

उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज।
अग्निर्हव्यानि सिष्वदत्॥ १०॥

भा०—जिस प्रकार जलों और प्रकाशों या रश्मियों का पालक सूर्य, पान करने योग्य जलों को मेघ द्वारा उत्पन्न करता है, सूर्य का ताप और अग्नि परिपाक करके अन्नों और खाने योग्य फलों को स्वाद युक्त करता है, उसी प्रकार हे वनों और जलों और ऐश्वर्यों के पालक पुरुष! तू विद्वानों, करप्रद प्रजाजनों के हित के लिये अपने सामर्थ्य से उत्तम जल, उत्तम अन्न और उत्तम पालन का उपाय किया कर। अग्रणी नायक और विद्वान् पुरुष खाने योग्य पदार्थों को उत्तम स्वादयुक्त बनावे।

पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते।
स्वाहाकृतीषु रोचते॥ ११॥ ६॥

भा०—ज्ञानवान् परमेश्वर जिस प्रकार गायत्री मन्त्रों से अच्छी प्रकार से प्रकट होता है, और अग्नि जिस प्रकार स्वाहाकारों और स्तुतियों से अच्छी प्रकार प्रकट होता है, उसी प्रकार सबका अग्रणी विद्वान् सबके आगे चलने हारा, विद्वानों और वीर विजेता पुरुषों के बीच वेदज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित होता है, और वही उत्तम वचन, भाषण, उत्तम हव्यादि पदार्थों के उपयोगों में होकर भला और शोभायुक्त प्रतीत होता है। इति नवमो वर्गः ॥

[१८९]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः ३, ५, ६ विराट् पंक्तिः ॥ ७ पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने नय॑ सुपथा॑ राये अस्मान्विश्वा॑नि देव वयुना॑नि विद्वान् ।
युयोध्य॑स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम॑उक्तिं विधेम ॥ १ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू मार्गदर्शक के समान हमें ऐश्वर्य और आनन्द प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार, सुखप्रद मार्ग से ले चल। हे सर्वप्रकाशक ! तू सब जानने योग्य विद्याओं को जानने हारा है। तू हमसे कुटिल कर्मों से उत्पन्न पाप को दूर कर। तेरे लिये हम बहुत २ नमस्कार वचन, सत्कार सहित उत्तम स्तुति करें। (२) विद्वान् पुरुष भी सब विद्याओं को जाने, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार मार्ग पर चले। पापों, कुटिल वृत्तियों को दूर करे, सब लोग उसका अधिकाधिक आदर और उसे नमस्कार किया करें।

अग्ने त्वं पा॑रया नव्यो॑ अस्मान्त्स्वस्तिभिरति॑ दुर्गाणि विश्वा॑ ।
पूश्च॑ पृथ्वी ब॑हुला न॑ उर्वी भवा॑ तोकाय तन॑याय शं योः ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् विद्वन् ! परमेश्वर ! तू सदा नवीन, कभी पुराना न होने हारा, सदा स्तुतियोग्य है। तू सब संकटों से कल्याणकारी, सुखदायक मार्गों और उपायों द्वारा पार कर। तू बहुत से सुखों को देने

वाली नगरी के समान पालक, पृथ्वी के समान आश्रयरूप और विस्तृत हो। और हमारे नन्हे २ बच्चों और बड़े पुत्रों को भी सुख और शान्ति-दायक हो।

अग्ने॒ त्वम॒स्मद्यु॑यो॒ध्यमी॑वा॒ अन॑ग्नित्रा अ॒भ्यम॑न्त कृ॒ष्टीः ।
पुन॑र॒स्मभ्यं॑ सुवि॒ताय॑ देव॒ क्षां विश्वे॑भिर॒मृते॑भिर्यजत्र ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे परमेश्वर! तू रोगकारी, पीड़ादायक रोगों और दुष्ट पुरुषों को हमसे पृथक् कर, जो कि मनुष्यों को सब प्रकार से पीड़ित करते हैं। हे सर्व सुखप्रद! हे दानशील! सत्संग योग्य, सुसंगतिकारक उत्तम स्नेही! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम गति प्राप्त करने के लिये समस्त अमृतस्वरूप, प्राणप्रद, जीवनदाता औषधियों से हमारी निवास भूमि पर हमारे उपयोग के लिये पूर्ण कर।

पा॒हि नो॑ अग्ने पा॒युभि॒रज॑स्रैरु॒त प्रि॒ये सद॑न॒ आ शु॑शु॒क्वान् ।
मा ते॑ भ॒यं ज॑रि॒तारं॑ यविष्ठ नू॒नं वि॑द॒न्मापरं॑ सहस्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशक विद्वन् परमेश्वर! तू हमारा स्थायी पालन करने के नाना उपायों से पालन कर, और तू अग्नि के समान कान्ति और शुद्ध तेज से चमकता हुआ हमारे प्रिय गृह में और देश में आ। हे दुःखों से छुड़ाने हारे! हे बलवान्! निश्चय से स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को तेरा भय न प्रतीत हो, और हे सहनशील! बलवन्! अन्य भी किसी प्रकार का उसको भय न प्राप्त हो।

मा नो॑ अ॒ग्नेऽव॑ सृजो अ॒घाया॑वि॒ष्यवे॑ रि॒पवे॑ दु॒च्छुना॑यै ।
मा द॒त्वते॒ दश॑ते॒ माद॒ते नो॒ मा रीष॑ते सहसाव॒न्परा॑ दाः ॥५॥१०॥

भा०—हे ज्ञानवन्! शत्रु और दुष्ट पुरुषों को अग्नि के सामन संताप देने हारे राजन्! परमेश्वर! तू हत्यारे, हिंसा करने की इच्छा करने वाले शत्रु, और दुःखदायी दांत वाले व्याघ्र आदि, और काटने वाले सर्प, वृश्चिक आदि खा जाने वाले और सा करने वाले, इनके लिये हमें कभी न छोड़। हे बलवन्! हमें कभी मत त्याग।

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६॥

भा०—हे सत्यज्ञान में विशेष रूप से प्रसिद्ध विद्वन् प्रभो ! तुझ सहायक को प्राप्त होकर पुरुष, स्तुति करता हुआ, शरीर की रक्षा के लिये आच्छादन करने योग्य कवच को विशेष रूप से बांधता है, और वह सब प्रकार के हिंसाकारी शत्रु और निन्दक पुरुष से बचाता है। हे देव ! तु कुटिलाचारी लोगों का विविध उपायों से बाधक है।

त्वं ताँ अग्न उभयान्विविद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥

भा०—हे अग्रणी शासक ! हे दानशील एवं सत्कार मान पूजा के योग्य ! तू उन दोनों प्रकार के अच्छे और बुरे ज्ञानी और अज्ञानी छोटे और बड़े सब मनुष्यों को जानता हुआ, प्राप्त होने पर विवेकपूर्वक न्याय करता है, और अधिकार प्राप्त हो जाने पर तू मनुष्यों के हित के लिये शासन करने योग्य और 'शास' अर्थात् खड्ग आदि शस्त्र धारण करने में कुशल हो। और तुझे चाहने वाले अपने प्रिय सहयोगियों से अलंकारों से सुभूषित करने योग्य होकर तु मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर।

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥११॥

भा०—जो ज्ञानवान् पुरुषों और शत्रुनाशक सैन्यों का सञ्चालक है उस नायक के निमित्त हम निश्चित सत्य वचनों का उपदेश करें, और उस शत्रु पराजयकारी पुरुष के अधीन रहकर हम लोग विद्वान् वेदमन्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों और वेदमन्त्रों से सहस्रों ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करें। हम अन्न, पापनिवारक बल और उत्तम जीवन प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१९०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८ त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ स्वराट् पंक्तिः ॥ धैवतः स्वरः ॥

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! अश्वादि से रहित, मेघ के समान शस्त्रादि वर्षण करने में चतुर, हर्षोत्पादक गम्भीर वाणी बोलने हारे, बड़े शास्त्रज्ञान और वेदवाणी और बड़े राष्ट्र के पालक, स्तुतियोग्य ज्ञानी और वीर पुरुष को तू अन्नों द्वारा बढ़ा। 'गाथा' अर्थात् उत्तम वेदादि शास्त्र की कथा या ज्ञानवाणी को दूसरे तक पहुँचाने वाले उत्तम कान्तिमान् मान करने योग्य पुरुष की विद्वान् और साधारण पुरुष भी सब प्रशंसा करते और कीर्त्ति सुनते हैं (२) परमेश्वर पक्ष में—परमेश्वर अन्य पर आश्रित न होने से 'अनर्वा' है। समस्त सुखों की वर्षा करने से 'वृषभ' है। उसकी वेदवाणी हर्षजनक होने से वह 'मन्द्रजिह्व' है। महान् ब्रह्माण्ड या पालक होने से 'बृहस्पति' है। हे विद्वन् तू उसको उत्तम अर्चना करने वाले वेदमन्त्रों से बढ़ा। सब उसकी कथा को रुचि करके सुनें।

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जल की कामना करने वाले कृषकों के लिये जल बड़ा हर्षकारी होता है और पावस ऋतु की वाणियां उस मेघ को लक्ष्य करके उपस्थित होती हैं, और जिस प्रकार वायु बड़ा बलशाली होकर उत्तम जलों को देकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार जो पुरुष जलों के समान विद्या आदि की कामना करने वालों को हर्षजनक होता है, उसको ज्ञानवान् सदस्य पुरुषों की सभी वाणियां प्राप्त होती हैं। वह ही बड़े राष्ट्र और वेद का पालक आचार्य ब्रह्मवेत्ता है। वही निश्चय से ज्ञान करने वाले प्रमाता परमेश्वर के अधीन गति करने वाला होकर उस सत्यस्वरूप परमेश्वर में जा मिलता है। (२) इसी प्रकार राजा को सदस्यों की वाणियां उसी सभापति को लक्ष्य करके प्रस्तुत होती हैं जो

विधाता के समान विद्वानों के बीच सभापति बना दिया जाता है। वह राजा या सभापति बड़े भारी ज्ञान से राष्ट्रैश्वर्य और सत्य न्याय के बल पर अच्छी प्रकार अधिकार करे। वह उत्तम बातों को प्रकट करने वाला कान्तिमान् होकर वरने योग्य वचनों, ज्ञानों और कर्मों को प्रकट करे।

उप॑स्तुतिं॒ नम॑स॒ उद्य॑तिं च॒ श्लोकं॑ यंस॒त्स॑वि॒तेव॒ प्र बा॒हू।
अ॒स्य क्रत्वा॑ह॒न्यो॒३॒ यो अस्ति॑ मृ॒गो न भी॒मो अ॑र॒क्षस॒स्तुवि॑ष्मान् ॥ ३ ॥

भा०—जो हिंस के समान भयंकर, बहुत से बलों और बलवान् पुरुषों का स्वामी, और जो कभी किसी से मारा नहीं जा सके, उस बाधक शत्रुओं से रहित पुरुष के उत्तम कर्म और ज्ञानबल से, मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी और पराक्रमी होकर, अपने दोनों बाहुओं द्वारा प्रशंसा शस्त्रबल के उत्थान, और वेदादि वाणी को अच्छी प्रकार अपने वश करता है।

अ॒स्य श्लोको॑ दि॒वीय॑ते पृथि॒व्यामत्यो॒ न यं॑सद्यक्ष॒भृद्विचे॑ताः।
मृ॒गाणां॒ न हे॒तयो॒ यन्ति॑ चे॒मा बृह॒स्पते॒रहि॑मायाँ अ॒भि द्यून् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ की गर्जना अन्तरिक्ष में होती है उसी प्रकार इस वेदपालक विद्वान् पुरुष का वेदोपदेश भी उपासना करने वाले का पालन पोषण करने वाला और विविध ज्ञानों से युक्त होकर, पृथिवी में वेगवान् अश्व के समान, ज्ञान की कामना करने वाले और पृथिवी के समान ज्ञानजल को धारण करने वाले शिष्य की चित्त भूमि में प्राप्त होता है। और दिनोंदिन वेदज्ञ विद्वान् की ये वेदवाणियां, ढूंढ २ कर शिकार करने वालों के बाणों के समान तथा सर्प के समान कुटिलाचारी तथा अज्ञानी पुरुषों को भी पहुँचती है और इनकी कुटिलता और अज्ञान का नाश करती हैं।

ये त्वा॑ दे॒वोस्रि॒कं मन्य॑मानाः पा॒पा भ॒द्रमु॑प॒जीव॑न्ति प॒ज्राः।
न दू॒ढ्ये॒३॒ अनु॑ ददासि वा॒मं बृह॑स्पते॒ चय॑स॒ इत्पिया॑रुम् ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—हे ब्रह्मदान के देने वाले विद्वन् ! जो पापी जन तुझको वेद-वाणियों के साथ विचरने वाला विद्वान् जानते हुए आदरपूर्वक तेरे समीप आकर रहते हैं, वे भी ज्ञानवान् हो जाते हैं और उत्तम पद तक पहुँच जाते हैं। हे विद्वन् ! तू उत्तम ज्ञान को दुष्ट चित्त वाले पुरुष के लिये भी निरन्तर प्रदान करता है। हिंसक पुरुष को भी तू पालता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्थां दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपावृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् मार्ग जैसे उत्तम रथ आदि से जाने वाले को सुख पूर्वक उद्देश्य तक पहुँचा देता है, उसी प्रकार तु भी उत्तम सदाचार से आगे बढ़ने वाले और उत्तम अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों का उपयोग करने वाले को लक्ष्य तक पहुँचा देता है। मित्र जिस प्रकार अति प्रसन्न होकर अन्याय मार्ग में जाने वाले राजा को भी हित से बुरे मार्ग से हटाकर न्यायमार्ग में चलाता है, उसी प्रकार तू भी अपनी इन्द्रिय आदि को नियम में रखने में असमर्थ स्खलित पुरुष को सन्मार्ग में चलाता है। जो उत्तम धर्ममार्ग से जाने वाले तेरा साक्षात् करते हैं, या अन्यों को उपदेश करते हैं, वे सत्य मार्ग में स्थिर होकर किसी सत्-तत्व को आच्छादित न करते हुए हमारे सामने रहें। वे सब तत्व खोल २ कर कहें।

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम भूमियां जिस प्रकार स्वामी को प्राप्त होती हैं और बहती हुई तटों और भंवरों वाली नदियां समुद्र को जिस प्रकार पहुँच जाती हैं, उसी प्रकार विनयशील तथा वीर्य का स्तम्भन करने हारे विद्यार्थि-जन उदार हृदय वाले तथा निरोध वृत्ति वाले होकर विद्या के अगाध सागर रूप विद्वान् को प्राप्त करते हैं। वह विद्वान् वेदवाणी या ब्रह्मज्ञान

का पालक विद्यार्थियों को हृदय से चाहता हुआ, ऐहिक-पारमार्थिक दोनों वितानों का उपदेश करता है। वह अज्ञानी विद्यार्थियों के लिये ज्ञान बढ़ाने और अज्ञान से पार उतारने वाला होने से 'तर' अर्थात् नौका के समान है, और आप्त और जलों के समान उनके आचार चरित्र शुद्ध करने हारा होने से 'आपः' है।

एवा म॒हस्तु॑वि॒ज्ञातस्तु॒विष्मा॒न्बृह॒स्पति॑र्वृष॒भो धा॑यि दे॒वः ।
स नः॑ स्तु॒तो वी॒रव॑द्धातु॒ गोम॑द्वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥८॥१३॥

भा०—वह महान्, अपने से बड़े विद्यावृद्ध से उत्पन्न, शरीर आत्मा से बलवान्, वेदज्ञ विद्वान् विद्यादाता होकर, वर्षणशील मेघ के समान एवं सर्वश्रेष्ठ रूप से धारण किया जाता है। वह प्रशंसायोग्य पुरुष हमें उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, और उत्तम भूमि, वाणी और पशुओं से युक्त ज्ञान और ऐश्वर्य स्वयं धारण करे और हमें प्रदान करे। हम अन्न या मनोकामना, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१९१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अबोषधिसूर्या देवताः ॥ छन्दः—१ उष्णिक् । २ भुरिगुष्णिक् ३, ७ स्वराडुष्णिक् । १३ विराडुष्णिक् ४, ६, १४ विराडनुष्टुप् । ५, ८, १५ निचृदनुष्टुप् । ६ अनुष्टुप् । १०, ११ निचृत् बृाह्म्यनुष्टुप् । १२ विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् । १६ भुरिगनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

कङ्क॑तो॒ न क॑ङ्क॒तोऽथो॑ स॒तीन॑कङ्कतः ।
द्वावि॑ति प्लु॒षी इति॒ न्य॑दृष्टा॑ अलिप्सत ॥ १ ॥

भा०—अति चञ्चल के समान विष वाला जीव होता है। और दूसरा विषैला जीव जल धारा के समान कुटिल चाल से चलने वाला होता है। ये दोनों ही प्रकार के जीव देखे जाते हैं। और वे दोनों काटने पर भिन्न २ प्रकार से दाहकारी होते हैं। वे जीव प्रायः देखने में नहीं

आते तो भी वे छुपे रूप से अपने शिकार को पकड़ते हैं और काट लेते हैं।

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥

भा०—विषनाशक ओषधि कई प्रकार की होती हैं। जैसे ओषधि समीप आती हुई न दीखने वाले विष जन्तुओं को नाश कर देती है। और दूर जाती हुई भी वह अपने पूर्व प्रभाव या मादकता से उनका नाश कर देती है। और वह उनको ऐसे मारती है जैसे मानो कूट कूट कर आघात करती है। वे उसके प्रभाव से तड़प २ कर मरते हैं। अथवा ओषधि कूटी जाती हुई भी अपने उग्र गन्धों से विषैले जन्तुओं का नाश कर देती है, और पीसी जाकर और भी सूक्ष्म होकर वह विष जन्तु को मानो पीस डालती है। उनका सर्वथा नाश कर देती है।

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥

भा०—शर अर्थात् सरकण्डों में रहने वाले, छोटी जात के सरकण्डों में रहने वाले, दाभ या कुशा घास में रहने वाले, नदियों, तालाबों के तटों में उत्पन्न घासों के बीच, मूंजों में रहने वाले, वीरण नाम तृणों में रहने वाले ये नाना प्रकार के न दीखने वाले अर्थात् छिपे हुऐ विषैले जन्तु सब उन २ तृण आदि पदार्थों के साथ ही चिपटे रहते और उनमें छुपे रहते और घात लगाये रहते हैं।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥

भा०—गौएं जिस प्रकार गोशाला में शान्त होकर खड़ी रहती हैं, हिंसक जन्तु जिस प्रकार वन में छुपे २ घुसे रहते हैं, जिस प्रकार मनुष्यों

के बीच में ज्ञान या ज्ञानी पुरुष शान्त भाव से रहते हैं, उसी प्रकार विषैले जीव भी छुपे रहकर पड़े रहते हैं।

एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव।

अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—ये सभी विषधारी जीव जो दिन में छुपे रहते हैं वे पूर्वोक्त सब रात्रि के प्रारम्भ समय में चोरों के समान प्रत्यक्ष रूप में दीखा करते हैं। जो जीव प्रायः नहीं भी दीखते वे भी सबकी दृष्टि में आकर या स्वयं सब कुछ देखते हुए खूब अपने तईं सावधान होकर रहते हैं। अथवा रात्रि में न दीखने वाले जीव भी सबको नहीं दीखते, इसलिये हे पुरुषो! आप सब सचेत होकर रहो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य या आकाश, मेघादि वृष्टि द्वारा पालक होने से तुम जीवों का पालक, पिता के समान है। यह पृथिवी सबकी माता के समान है। ओषधिगण और चन्द्रमा भरण पोषण करने वाला होने से सबके भ्राता के समान है। ये सब उत्पन्न जीव-जन्तु सब अपने २ सामर्थ्य से चलने, सरकने वाले या सुख से रहने वाले होने से 'स्वसा' अर्थात् भागिनी के समान हैं। वे इनमें से कुछ जो कि देख नहीं पड़ते, दूसरे जो सबको देख पड़ते हैं वे सभी हे प्राणिगणो! तुम रहो और अच्छी प्रकार सुख पूर्वक विचरो।

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।

अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

भा०—जो कन्धों के बल सरकने वाले, जो अंग अर्थात् पावों के बल चलने वाले, सूई के समान कांटे से काटने वाले, और जो अति चचंल,

अतितीव्र वेदना देने वाले हैं, जो कुछ भी यहां दिखाई नहीं पड़ते, हे सब जीवो! तुम सब एक साथ ही हमें छोड़ जाओ या नष्ट हो जावो।

उत्पुरस्तात्सूर्य॑ एति विश्वदृ॑ष्टो अदृष्टहा।

अदृष्टान्त्सर्वा॑ञ्जम्भय॒न्त्सर्वा॑श्च यातुधान्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—सबके देखने योग्य, न दीखने वाले दोषों का भी नाश करने वाला सूर्य पूर्व की ओर उदय होता है। वह सब न दीखने वाले प्राणियों और सब प्रकार की पीड़ा देने वाली जीव जातियों को दूर करता हुआ प्रकट होता है।

उद॑पप्तद॒सौ सूर्यः॑ पु॒रु विश्वा॑नि॒ जूर्व॑न्।

आ॒दि॒त्यः पर्व॑तेभ्यो वि॒श्वदृ॑ष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य नाना विषों और सभी अन्धकारों का नाश करता हुआ ऊपर उठता है, उसी प्रकार पर्वतों से नाना प्रकार के रस औषधियों का आदान करने वाला विषवैद्य सब प्रकार जन्तुओं और ओषधियों के गुणदोषों को प्रत्यक्ष परीक्षण से देखने हारा होकर, न देखे हुए विषों और रोगों का भी नाश करने में समर्थ होता है।

सूर्ये॑ वि॒षमा स॑जामि॒ दृतिं॒ सुरा॑वतो गृ॒हे।

सो चि॒न्नु न म॑राति॒ नो व॒यं म॑रामा॒रे अ॑स्य॒ योज॑नं

ह॒रि॒ष्ठा मधु॑ त्वा मधु॒ला च॑कार ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—सुरा अर्थात् भाप की विधि से शुद्ध जल बनाने वाले के घर में पात्र जिस प्रकार रखा रहता है और उसमें भाप बना जल बूंद २ करके टपकता है, उसी में सब समाता जाता है, उसी प्रकार मैं भी विष को सूर्य में विलीन करता जाऊं। इससे न तो सूर्य ही विष द्वारा मरता है और न हम ही प्राण त्याग करते हैं। इस विष को सूर्य के साथ लगाना विष को दूर करना है। विष हरने के कार्य में यह पदार्थ बड़ा उपयोगी है। हे विष! तुझको भी यह सूर्य मधुर अर्थात् सह्य कर देता है। हे

रोगिन् ! मधु देने वाली ओषधि या यह विषवैद्य भी तुझे सुख दे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इ॒य॒त्ति॒का श॑कुन्ति॒का स॒का ज॑घास ते वि॒षम् ।
सो चि॒न्नु न म॑राति॒ नो व॒यं म॑राम॒ारे अ॑स्य॒ योज॑नं
हरि॒ष्ठा मधु॑ त्वा मधुला च॑कार ॥ ११ ॥

भा०—इतनी छोटी सी पंख वाली वह चिड़िया तेरे विष को खा जाती है। इससे वह भी नहीं मरती है, और हम भी नहीं मरते। इस जन्तु का योग भी विष को दूर करता है। विष के हरने वालों में उसका भी विशेष स्थान है। हे विष! विष को मधुर करने वाली यह तुझे मधुर कर देती है।

त्रिः स॒प्त वि॑ष्पुलिङ्गका वि॒षस्य॒ पुष्प॑मक्षन् ।
ताश्चि॒न्नु न म॑रन्ति॒ नो व॒यं म॑राम॒ारे अ॑स्य॒ योज॑नं
हरि॒ष्ठा मधु॑ त्वा मधुला च॑कार ॥ १२ ॥

भा०—२१ प्रकार की विष खा जाने वाले छोटे पक्षियों की जातियां हैं जो विष के अतिपुष्ट या प्रबल अंश को खा जाती हैं। वे भी विष से नहीं मरतीं। और इस प्रकार हम भी नहीं मरते। (आरे अस्य योजनं) इत्यादि पूर्ववत्।

न॒वा॒नां न॑वती॒नां वि॒षस्य॒ रोपु॑षीणाम् ।
सर्वा॑सामग्रभं॒ नाम॒ारे अ॑स्य॒ योज॑नं
हरि॒ष्ठा मधु त्वा मधु॒ला च॑कार ॥ १३ ॥

भा०—मैं ९०+९=९९ निन्यानवे, विष को हरने वाली समस्त ओषधियों का नाम और स्वरूप लूं, उनको जानूं, उनका अन्यों को उपदेश करूं। (आरे अस्य योजनम्) इत्यादि पूर्ववत्। विष के ९९ प्रकार और उनके ९९ ही प्रकार के प्रतिबन्धक उपाय हैं।

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।

तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥

भा०—३ × ७ = २१ प्रकार के मयूर जाति के पक्षी हैं, और सात प्रकार की स्वयं गति करने वाली नाड़ियां होती हैं। वे सब विशेष रूप से विष को ऐसे दूर करती हैं, जैसे कहारियां या नदियां जल को हर ले जाती हैं। मुर्गी की जातियों का गुदा भाग सर्प के काटे विष को बार २ लगाने से चूस लेता है। क्रम से एक के बाद एक लगाने से २१ मुर्गियों के बाद विष शमन हो जाता है। ऐसे पक्षियों के २१ प्रकार होना सम्भव है।

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।

ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥

भा०—इतना सा कुसुम भी विष की औषध है। उस विष के स्थान को प्रस्तर या शस्त्र से छेद दूं। उससे विष दूर २ तक जाने वाली धाराओं में फूट निकलता है।

कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।

वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥१६॥२४॥१॥

भा०—छोटा सा नेवला जो पर्वत से पला हुआ आता है वह मानो यह कहता है कि वृश्चिक का विष उससे निर्बल है। तो फिर हे काटने वाले बिच्छू ! तेरा विष अब प्रबल नहीं है। तेरी भी औषध नकुल आदि प्राणियों में विद्यमान है। इस सूक्त के ८ वें मन्त्र में सूर्य को जहां विष नाशक बतलाया है वहां सूर्यवर्ग में पठित अर्कपत्री, आदित्यभक्ता आदि ओषधियों का भी उपदेश विष प्रयोग पर जानना चाहिये। 'अर्क' के अनुभूत चिकित्सा सागर में नीचे लिखे गुण प्राप्त होते हैं—

(१) सर्प का विष उतारने के लिये उसके दंश पर आकड़े का दूध टपकता रहे जब तक शरीर में विष रहेगा तब तक दूध सूखता रहेगा

जब विष का दोष शरीर में न रहेगा तब दंश पर भी दूध न सूखेगा। (अनु० चि० २८। ७६)

(२) अर्क की तीन कोंपलें गुड़ में लपेट, खिलाकर ऊपर घी पिलाने से सांप का विष उतरता है। (अनु० चि० २८। ७८)

(३) बिच्छू के दंश पर अर्क का दूध लगाने से उसका विष उतर जाता है। (अनु० चि० २८। ७९)

इसकी जड़ पानी के साथ पीसकर पिलाने से सांप का विष उतरता है। (अनु० चि० २८।८०)

(४) अर्कपत्री–इसको घिस कर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

(५) इसको सर्पदंश पर लगाने और खिलाने से सर्प का बिष उतरता है (अनु० चि० ३०। ३, ७)

मन्त्रों में 'हरिष्ठाः' शब्द है। कदाचित् वह हरीठा हो। हरीठा के गुण—इसकी गिरी को पानी में पीस कर पिलाने से बिष उतर जाता है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के निम्नलिखित सूक्त भी विशेष प्रकाश डालते हैं। अथर्व० (५। १३। १-११), (५। २३। १-१३), (४। ३१। १-१२), (२। २३। १-६), (६। १२ १-३), (६। ५२। १-३) (७। ५६। १८) (१०। ४। १-२६) इनमें सर्पविष के प्रकार, अन्य विषैले जन्तु, उनकी ओषधियों, सर्पों की जातियों, वृश्चिक, तथा बिश्वदृष्ट, सूर्य आदि का प्रकारान्तर से न्यूनाधिक वर्णन है। इति षोडशो वर्गः॥

इति चतुर्विंशोऽनुवाकः॥

इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम्

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

[१]

आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । १३ स्वराट पंक्तिः । २, १५ विराड जगती । १६ निचृज्जगती । ३, ५, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६, ११, १२, १४ भुरिक् त्रिष्टुप । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने द्यु॒भिस्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्वी ! हे मनुष्यों और नायकों के भी पालक राजन् ! प्रभो ! तू तेजस्वी कर्मों से प्रसिद्ध हो । जिस प्रकार अग्नि शीघ्र दीप्ति से अन्धकार का नाश करता है उसी प्रकार तू भी दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा और सब प्रकार से तेजस्वी हो । मेघ के जलों में अग्नि जिस प्रकार विद्युत् रूप से उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी आप्त पुरुषों से और प्रजाजनों से अधिक शक्तिशाली रूप से प्रकट हो । जिस प्रकार अग्नि पत्थरों की रगड़ से प्रकट होता है उसी प्रकार तू 'अश्मा' अर्थात् वज्र, शस्त्रास्त्र बल से उसके भी ऊपर अध्यक्ष रह कर प्रकट हो । वनों ,जंगलों से, उनके वृक्षों से जिस प्रकार महान् दावानल उत्पन्न होता है और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् जलों से, विद्युत् उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी वन अर्थात् सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से या बहुत सी संख्या में विद्यमान् सेना-दलों से प्रकट या प्रसिद्ध हो । जिस प्रकार अग्नि ओष-धियों से उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी 'ओषधि' अर्थात् शत्रु को

संताप देने वाले वीरपुरुषों की सेनाओं से राष्ट्र के रोगों के समान पीड़ादायक जनों को दूर करने हारा हो। हे मनुष्यों के पालक! तू मनुष्यों के बीच मन, वाणी और काय, तीनों में पवित्र हो। दण्डनीति के अनुसार चार प्रकार से शुचि रहने का उपदेश है धर्म, अर्थ, काम और भय में राजा को शुद्ध रखना चाहिये। वह अधर्म से किसी को न सतावे, अन्याय से धन न छीने, दूसरों की स्त्रियों, कन्याओं का कामी होकर आहरण न करे, शत्रुओं से संग्राम काल में भयभीत न हो।

तवा॑ग्ने हो॒त्रं तव॑ पो॒त्रमृ॒त्वियं॒ तव॑ ने॒ष्ट्रं त्वम॒ग्निदृ॑ताय॒तः।
तव॑ प्रशा॒स्त्रं त्वम॑ध्वरीयसि ब्र॒ह्मा चासि॑ गृ॒हप॑तिश्च नो॒ दमे॑ ॥२॥

भा॰—हे विद्वन् नायक! दान देने द्वारा उत्तम सत्कार भी तेरा ही है, यज्ञ के समान पवित्र कार्य तेरा है। प्रति ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाले ऋत्विजों के योग्य आदर सत्कार और यज्ञ में नेष्टा के समान नायकपन अर्थात् अन्यों को सन्मार्ग में ले चलने का कार्य तेरा ही हो। और तू ही अग्नि को प्रकाशित करने वाला, अपने समान अन्य विद्वान् और तेजस्वी को उत्पन्न करने वाला अग्नियों को प्रज्वलित एवं उनसे यज्ञ करने हारा हो। सत्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, अन्न और वेदानुकूल न्यायव्यवस्था करने वाला तेरा ही सर्वोपरि प्रधान शासन हो। तू अध्वर अर्थात् प्रजाओं को पीड़ा का नाश और अहिंसा का पालन करना चाहता है। तू राष्ट्र पालन के कार्य को यज्ञ के समान करना चाहता है। तू ही चारों वेदों के जानने वाले ब्रह्मा के समान सबका स्वामी हो। घरों में हमारे बीच गृहस्वामी के समान राष्ट्र का पालक हो।

त्वम॑ग्न॒ इन्द्रो॑ वृ॒ष॒भः स॒ताम॑सि॒ त्वं विष्णु॑रुरुगा॒यो न॑म॒स्यः॑।
त्वं ब्र॒ह्मा र॑यि॒विद्ब्र॑ह्मणस्पते॒ त्वं वि॑धर्तः सचसे॒ पुर॑न्ध्या ॥ ३ ॥

भा॰—हे सूर्य के समान प्रकाशमान! तू ऐश्वर्यवान्, उत्तम सुखों को देने हारा, सत्पुरुषों के बीच नमस्कार और पूजा करने योग्य है। तू

व्यापक सामर्थ्यवान्, बहुतों से स्तुति किया जाय। तू वेदों का विद्वान् सब पदार्थों को जानने हारा हो। हे वेद के पालक ! हे विविध उपायों से राष्ट्र का धारण करने हारे ! तू पुरा अर्थात् राष्ट्र को धारण करने वाली बुद्धि और राजनीति के साथ रहता हुआ समवाय बना कर रह। (२) परमेश्वर ब्रह्म अर्थात् वेद का पालक और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली शक्ति से युक्त है। वह स्वयं 'ब्रह्मा' अर्थात् सब से महान् है।

त्वम॑ग्ने राजा वरु॑णो धृतव्र॑तस्त्वं मित्रो भ॑वसि दस्म ईड्यः॑।
त्वम॑र्य॒मा सत्प॑ति॒र्यस्य॑ सम्भुजं॒ त्वमंशो॑ वि॒दथे॑ देव भाज॒युः ॥४॥

भा०—हे पदार्थों के प्रकाशक राजन् ! तू गुणों से राजा है। सबसे श्रेष्ठ, सब दुःखों का वारक सत्य व्रतों का धारण करने वाला, सब का स्नेही, दुःखों और दुष्टों का नाशक और सबसे स्तुति योग्य है। तू शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी, सज्जनों का प्रतिपालक है। और जिस राष्ट्र के उत्तम रीति से भोग और पालन करने के लिये तू मुख्य आज्ञापक होता है, हे राजन् ! उसी के ज्ञानपूर्वक धनादि प्राप्त करने के निमित्त न्यायपूर्वक विभाग करने हारा हो।

त्वम॑ग्ने त्वष्टा॑ विध॒ते सु॒वीर्यं॒ तव॒ ग्नावो॑ मित्रमहः सजा॒त्यम्।
त्वमा॑शु॒हेमा॑ ररि॒षे स्वश्व्यं॒ त्वं न॒रां शर्धो॑ असि पुरू॒वसुः॑ ॥५॥१७॥

भा०—हे तेजस्विन् ! तू सबको बनाने हारा है, कुल्हाड़े या शस्त्र के समान काम करने वाले विद्वान् को उत्तम बल प्रदान करता है। हे स्तुति-वाणियों के स्वामिन् ! हे मित्र के समान सबका आदर करने वाले ! कार्यकर्त्ता के साथ तेरा ही बन्धुभाव है। तू ही सबका बन्धु है। तू बहुत शीघ्र ऐश्वर्य आदि से बढ़ाने वाला होकर उत्तम अन्नादि रथादि सैन्य और वाहनों से युक्त ऐश्वर्य को प्रदान करता है। तू बहुत सी, अनेक, प्रजाओं का बसाने वाला, तू मनुष्यों के बीच में शत्रुनाशकारी शस्त्रास्त्रों का धारण करने वाला बलस्वरूप है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्वम॑ग्ने रु॒द्रो अ॑सु॒रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे ।
त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शङ्ग॒यस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॑सि॒ नु त्मना॑ ॥६॥

भा०—हे आग के समान तेजस्विन् राजन् ! तू दुष्टों को रुलाने हारा 'असुर' अर्थात् शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, महान् है। तू द्युलोक सम्बन्धी वायुओं के वर्षाकारी बल के समान विजय करने वाले विजिगीषु के शत्रुमारक सैनिकों के परस्पर सम्मिलित बल का स्वामी हो। जिस प्रकार अग्नि वेगवान् वायुओं को बढ़ाता है उसी प्रकार हे राजन् तू वा के समान वेग से जाने वाले अश्वों से प्रयाण कर। तू सबको शान्ति सुख पहुँचाने वाला सबका पोषक होकर, आत्मसामर्थ्य से सेवा करने वाले, कार्य कर्त्ताओं की रक्षा करता है।

त्वम॑ग्ने द्रविणो॒दा अ॑रं॒कृते॒ त्वं दे॒वः स॑वि॒ता र॑त्न॒धा अ॑सि ।
त्वं भगो॑ नृपते॒ वस्व॑ ईशिषे॒ त्वं पा॒युर्दमे॒ यस्तेऽवि॑धत् ॥ ७ ॥

भा०—हे सूर्य के समान सब सुखों के देने हारे ! तू खूब पुरुषार्थ करने वाले को धनों, ऐश्वर्यों का देने वाला है। तू सर्वप्रद, उत्पादक, सब रमणीय रत्न आदि पदार्थों को धारण करने वाला है। हे मनुष्यों के पालक ! तू सब ऐश्वर्यों का स्वामी होकर समस्त ऐश्वर्यों का और बसी प्रजा का स्वामी हो। जो तेरे दमनकारी शासन में काम करता, तेरी सेवा परिचर्या करता है, तू उसका पालन करने हारा है।

त्वाम॑ग्ने॒ दम॒ आ वि॒श्पतिं॑ वि॒शस्त्वां राजा॑नं सुवि॒दत्र॑मृञ्जते ।
त्वं विश्वा॑नि स्वनीक पत्यसे॒ त्वं स॒हस्रा॑णि श॒ता दश॒ प्रति॑ ॥८॥

भा०—हे नायक राजन् ! प्रजाएं तुझको दमन कार्य में प्रजा पालक बनाती हैं। और वे ही तुझको उत्तम दानशील, उत्तम प्राप्त ऐश्वर्य का रक्षक, उत्तम ज्ञान का रक्षक राजा बनाती हैं। हे सौम्य सुख ! हे उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! तू सब पदार्थों का स्वामी है। और तू दस सौ हजार अर्थात् दस लाख १०००००, सैन्यों पर भी स्वामी है।

त्वाम॑ग्ने पि॒तर॑मि॒ष्टिभि॒र्नर॒स्त्वां भ्रा॒त्राय॒ शम्या॑ तनू॒रुच॑म् ।
त्वं पु॒त्रो भ॑वसि॒ यस्तेऽवि॑ध॒त् त्वं सखा॑ सुशे॒वः॑पास्या॒धृषः॑ ॥९॥

भा०—हे ज्ञानस्वरूप राजन् ! लोग यज्ञों और सत्कारों से तुझको पालक माता पिता जानकर तेरी सेवा करते हैं । अग्नि के समान प्रत्येक देह में कान्तिस्वरूप तेरी उत्तम कर्मानुष्ठान से भाई के समान बन्धुता उत्पन्न करने के लिये सेवा करते हैं । जो तेरी अच्छी प्रकार से सेवा करता है तू उसका पुत्र के समान सहायक हो जाता है । तू ही सखा, उत्तम सुख देने वाला होकर, तिरस्कार और बलत्कार करने वालों से उसकी रक्षा करता, उसे बचाता है । राजा विस्तृत राष्ट्रदेह में शोभायमान होने से 'तनूरुच' है ।

त्वम॑ग्ने ऋ॒भुरा॒के न॑म॒स्य॒ स्त्वं वाज॑स्य क्षु॒मतो॑ रा॒य ई॑शिषे ।
त्वं वि भा॑स्यनु॑ दक्षि दा॒वने॒ त्वं वि॒शिक्षु॑रसि य॒ज्ञमा॒तनिः॑ ॥१०।१८॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् प्रतापिन् राजन् ! तू तेजस्वी, सत्य के बल से चमकने वाला, महान् सामर्थ्यवान् है । तू समीप विद्यमान् और सबके नमस्कार करने योग्य है । तू प्रचुर अन्न आदि भोग्य सामग्री से युक्त बल और विज्ञान तथा ऐश्वर्य का स्वामी है । तू विशेष रूप से चमकता है, शोभा पाता है, तू क्रम से अपने शत्रुओं को भस्म कर देता है । और आत्मसमर्पक पुरुष के हित के लिये विविध विद्याओं को सिखाने वाला और विविध उपायों से दमन करने वाला होता है । तू यज्ञ, विद्या और धन, प्राण आदि के दान कार्य को सदा करता है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्वम॑ग्ने अदि॑तिर्देव दा॒शुषे॒ त्वं होत्रा॒ भार॑ती वर्धसे गि॒रा ।
त्वमिळा॑ श॒तहि॑मासि॒ दक्ष॑से॒ त्वं वृ॑त्र॒हा व॑सुपते॒ सर॑स्वती ॥११॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप ! हे सब सुखों के दातः ! दानशील पुरुष के लिये तू सूर्य के समान अक्षय शक्ति, जीवन और ऐश्वर्य का भण्डार

है। तू ही सब सुखों और ज्ञानों को देने वाली वाणी, तथा सूर्य की दीप्ति के समान सब तत्व को प्रकाशित करने वाली वाणी होकर, वेद वाणी से उसे बढ़ाता है। तू बल और क्रिया शक्ति को बढ़ाने के लिये सौ बरसों की आयु तक प्राप्त होने वाली अक्षय अन्नसम्पदा के समान जीवनप्रद है। हे ऐश्वर्य के पालक! हे बसे प्रजाजन के पालक! तू विघ्नकारी तथा अज्ञान का नाश करने हारा और नदी के समान उत्तम ज्ञानजल से सब को पवित्र करने हारा है।

त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ सन्दृशि श्रियः।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः॥१२॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! तू सुख से धारण करने योग्य एवं अपने आश्रितों का उत्तम रीति से पोषक है। तेरे दर्शनीय चाहने योग्य वरण करने में ही उत्तम बल और उत्तम शोभाएं और लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। तू ज्ञान और ऐश्वर्य का साधक और संग्रामों से पार उतारने वाला है। तू सदा बढ़ने वाला और प्रजा को बढ़ाने वाला है। तू द्रव्य-सम्पदा के समान अपने में सबको रमाने वाला है। तू बहुत से सुख ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला और सब प्रकारों से विस्तृत और अतिविस्तारवान् है।

त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्॥१३॥

भा०—हे विद्वन्! पृथिवी माता के पुत्र प्रजागण, पृथिवी के स्वामी तेजस्वी राजा गण और अखण्ड ब्रह्म और अविनाशिनी वेदवाणी के उपासक जन तुझको अपना मुख बना लेते हैं, तुझे अपना प्रमुख, अपना प्रतिनिधि और आदेश देने वाला नियत कर लेते हैं। हे मेधाविन्! शुद्ध-चित्त वाले जन, तुझे अपनी जिह्वा अर्थात् वाणी बना लेते हैं। अर्थात् तेरी ही वाणी उनके अभिप्राय का स्पष्ट करे यह उनको अभिमत होता है। राजा लोगों के मुख और वाणी विद्वान् दूत होते हैं। दान आदि सत्कर्मों

में स्थित लोग भी हिंसादि से रहित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्यों में तुझको ही प्राप्त होते हैं। विद्वान् लोग तेरे अधीन रह कर ही सब प्रकार से प्राप्त अन्न धन ऐश्वर्यादि का ही भोग करते हैं।

त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥ १४ ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशवन् राजन्! तेरे अधीन रहकर समस्त चिरंजीवी, परस्पर द्रोह न करते हुए, तुझ प्रमुख पुरुष के साथ या तुझ द्वारा प्राप्त हुए अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का भोग करते हैं। और तेरे द्वारा ही सब मनुष्य ऐश्वर्य का भोग करते हैं। तू ही बलवीर्य धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं का ग्रहण, स्वीकार और वश करने हारा होकर, पवित्र रूप में प्रकट हो।

त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे। पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

भा०—हे सब ज्ञानों के प्रकाशक! तू उन सबके साथ मिलने पर भी सबके समान है, और प्रत्येक के भी बराबर है। और बल से हे उत्तम गुणों से प्रसिद्ध! हे दानशील! तू सबसे अधिक बढ़ जाता है। तू सबसे अधिक शक्तिशाली है। जो पृथ्वी पर अन्न आदि है वह भी तेरे महान् सामर्थ्य से ही विविध रूपों से उत्पन्न होता है। तेरे वश में ये दोनों एक दूसरे की मर्यादा को सीमित करने वाले सूर्य पृथिवी के समान राजा प्रजा वर्ग या माता पिता और गुरु शिक्षक वर्ग हैं, वे तेरे ही अधीन तेरे से उतर कर पूज्य हैं। तू सब से अधिक पूज्य है।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः। अस्माँश्च ताँश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ ॥ १९ ॥

भा०—जो विद्या जल से स्नान करने के इच्छुक विद्यार्थी जन, और विद्वान् पुरुष स्तोता, नाना विद्याओं को उपदेश करने वाले विद्वानों के हित अपनी उत्तम वाणी वा चक्षु आदि इन्द्रियों को आगे किये, सावधान, आशुगामी मन के उत्तम रूप वाली, मनन क्रिया से युक्त, चित्त वृत्ति का दान गुरुओं के अति समीप आकर करते हैं उनके प्रति सब कुछ समर्पण करते हैं और जो विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष विद्वानों को उत्तम सत्कारयुक्त वाणी को आगे रखकर अश्व अर्थात् राजसी सम्पत्ति का दान करते हैं। हे विद्वन् प्रभो! हमें और उन प्रतिग्रह देने और लेने वाले दोनों को निश्चय से उत्तम ऐश्वर्य, आवास आदि, प्रदान कर। हम सब उत्तम वीर्यवान् वीर पुत्र आदि से सम्पन्न होकर ज्ञानयज्ञ अध्ययन, अध्यापन और संग्राम और यज्ञ के अवसर में भी बड़े महत्वपूर्ण, वृद्धिकारी वचन और वेदमन्त्र रूप बृहती वेदवाणी को भी कहें, उच्चारण करें। अभ्यास करें और उपदेश करें। एकोनविंशो वर्गः॥

[२]

गृत्समद ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २, ७, १२ विराट् जगती। ४ जगती। ५, ६, ९, १३ निचृज्जगती। ३, ८, १०, ११ भुरिक् त्रिष्टुप्॥

त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

यज्ञेन॑ वर्धत जा॒तवे॑दसम॒ग्निं य॑जध्वं ह॒विषा॒ तना॑ गि॒रा।
स॒मि॒धा॒नं सु॑प्र॒यसं॒ स्व॑र्णरं द्यु॒क्षं होता॑रं वृ॒जने॑षु धू॒र्षद॑म्॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो! आप लोग ज्ञान और धनैश्वर्यों में विख्यात, अतितेजस्वी, उत्तम अन्नसम्पदा से पूर्ण, सुख के मार्ग में ले जाने वाले, प्रकाशमान्, सबको अपनी शरण में लेने और सबको अन्न वेतनादि देने हारे, शत्रु को वर्जन करने में समर्थ सैन्यबलों के बीच में राष्ट्र धुरा के भार को उठाकर ले चलने वाले, और 'धुर्' अर्थात् मुख्य पद पर विराजने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, नायक पुरुष का, परस्पर प्रेम, सत्संग,

संगठन से, ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न और कर से, विस्तृत राष्ट्र और वाणी से सत्कार करो। (२) सर्वैश्वर्यमान् सर्वज्ञानमय होने से परमेश्वर 'जातवेदाः' है। प्रकाशस्वरूप होने से 'अग्नि,' सबका तृप्तिकारी होने से 'सुप्रया', सुखप्रद आनन्दमय परम पुरुष होने से 'स्वर्णर्', सब बलों और लोकों का धारक होने से 'धूर्षद्' है।

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥

भा०—गौएं जिस प्रकार गोशालाओं में बछड़ों के प्रति प्रेम से बद्ध होकर हंभारती हैं उसी प्रकार हे राजन्! प्रजाजन भी दिन रात तुझे लक्ष्य करके तेरे प्रति अपने निवेदन और प्रार्थनाएं किया करते हैं। हे बहुतों से वरण करने योग्य तू सब ऐश्वर्यों का स्वामी अच्छी प्रकार दृढ़ होकर मनुष्यों के जीवन के वर्षों तक दिनों के समान रात के समयों में भी चमकता है। राजा का प्रबन्ध दिन के समान रात्रि में भी बराबर रहे।

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग लोकों के आश्रयभूत पृथिवी पर उत्तम गति करने वाले रथ को जिस प्रकार चलाते हैं, और जिस प्रकार वे उत्तम गति और क्रियाओं को उत्पन्न करने वाले, शीघ्र वेग के उत्पादक तेज से युक्त अग्नि को यन्त्रों से प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार उस क्रियाकुशल, राजा और प्रजाओं के बीच अतिमतिवान्, रथ के समान सन्मार्ग से ले जाने वाले, ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी, भूमि निवासी प्रजाओं के बीच मित्र के समान स्नेहवान्, सबसे श्रेष्ठ नायक को, सब लोकों के आश्रयभूत परमपद पर नियत करते हैं, उसको उत्तम पद प्रदान करते हैं। (२) परमेश्वर समस्त उत्तम कर्मों का कर्त्ता होने से 'सुदंशा' है। व्यापक और सत्संग होने से 'अरति' है। रसमय होने से 'रथ' है। तेजस्वरूप होने से 'शुक्रशोचिः' है।

तमुत्तमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ४

भा०—जिस प्रकार बड़े भारों को दूर तक ढो ले जाने में समर्थ अग्नि को 'ह्वार' अर्थात् गुप्त स्थान में रखते हैं, और पृथ्वी पर वेग से चलने वाले, नाना धुरों से गति देने वाले अग्नि को विद्वान् लोग यन्त्र में स्थापित करते हैं, उसी प्रकार उस राष्ट्र के कार्यभार को उठाने में समर्थ पुरुष को अपने गृह में प्रजाजनों के हितार्थ विद्वान् लोग स्थापित करते हैं। उसी प्रकार उत्तम कान्तिमान्, उत्तम रुचि वाले, उत्तम प्रकृति के, चन्द्र या सुवर्ण के समान सबके आल्हादक पुरुष को कुटिल कार्यों के दमन करने के लिये स्थापित करें। इसी प्रकार पृथ्वी को ऐश्वर्ययुक्त करने वाले, इन्द्रियों से ज्ञान करने वाले आत्मा के समान अध्यक्षों द्वारा प्रजाजन को सदा सावधान करने वाले, ऐश्वर्य के भोक्ता, राष्ट्रपालक, बल का पालन करने वाले उस नायक पुरुष को राजा और प्रजावर्ग के जनों के अनुकूल करके विद्वान् लोग स्थापित करें।

स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ५।२०

भा०—होता नाम ऋत्विक् जिस प्रकार यज्ञ को सब प्रकार से सम्पादित करता है और उसको अन्य सहायकजन वाणी और चरुओं से सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार वह परमेश्वर कभी नाश न होने वाले, अनादि काल से वर्त्तमान सनातन साश्वत विश्वरूप यज्ञ का सब प्रकार से सम्पादन कर रहा है। मननशील मनुष्य उस ही परमेश्वर को ग्रहण करने योग्य उत्तम गुणों और ज्ञानों से तथा वेदवाणी या स्तुति द्वारा सुभूषित करते हैं। वह हरणशील, नाश करने या खा जाने वाले दाढ़ों से युक्त पुरुष के समान समस्त जगत् को प्रलयकाल में परमाणु २ करके ग्रस जाने वाला, बढ़ती हुई नाना लोकों की प्रजाओं में सबका पालन

पोषण करता है । आकाश या सूर्य जिस प्रकार विस्तृत प्रकाशों से आकाश और पृथिवी दोनों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर स्वयं प्रकाशस्वरूप होकर आकाश और भूमि दोनों को मानो चेतना से युक्त कर रहा है, उनमें जान सी डाल देता है ।

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि । आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥ ६ ॥

भा०—प्रदीप्त होता हुआ अग्नि जिस प्रकार हममें बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! हे प्रभो ! अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ बहुत ऐश्वर्ययुक्त धनसम्पदा को हमारे कल्याण के लिये प्रदान करता हुआ, हमारे बीच प्रकाश कर । और आकाश और पृथ्वी, माता पिता तथा राजा प्रजावर्गों को हमारे उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने और जन्म-लाभ करने के लिये हमारे अनुकूल बना । और हे ज्ञानवन् ! प्रकाशक ! हे सब सुखों के देने वाले ! तू मनुष्यों को भक्ष्य और ग्राह्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये समर्थ कर ।

दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि । प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! परमेश्वर ! एवं राजन् ! तू हमें वृद्धि करने वाले बड़े २ अक्षय भोग्य पदार्थ प्रदान कर । तू हमें सहस्रों सुखों के देने वाले पदार्थ दे । श्रवण करने के लिये हे विद्वन् ! हमारे लिये द्वारों के समान ज्ञान के पट खोल दे । और ऐश्वर्य, धन ज्ञान और महान् सामर्थ्य से राजा प्रजा, गुरु, शिष्य, आकाश और भूमि इनको उत्तम प्रकाश से युक्त कर । शुद्ध सूर्य के प्रकाश को जिस प्रकार प्रभात वेलाएं विशेष रूप से प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त प्रजाएं भी विशेष तेजस्वी बनें ।

स इ॒धा॒न उ॒षसो॒ राम्या॒ अनु॒ स्व१॒र्ण दी॑देदरु॒षेण॑ भा॒नुना॑ ।
होत्रा॑भिर॒ग्निर्मनु॑षः स्वध्व॒रो राजा॑ वि॒शामति॑थि॒श्चारु॑रा॒यवे॑ ॥८॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य स्वयं प्रकाशित होता हुआ रात्रियों के पीछे आने वाली उषा वेलाओं को अति उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित करता है, और जिस प्रकार अग्नि दिन रात अपने उज्ज्वल प्रकाश से सब प्रकार सुखों को तथा ताप शक्ति को प्रकट करता या चमकाता है, वह विद्वान् पुरुष सब दिन और रात अपने क्रोध आदि कुटिल भाव से रहित ज्ञान के तेज से समस्त सुख तथा उत्तम उपदेश प्रकट करे। (२) इसी प्रकार तेजस्वी राजा अपने उज्ज्वल तेज से दिन रात प्रजा के सुख को चमकाता रहे, बराबर बढ़ाता रहे। उत्तम पूजनीय प्रजा को पालन करने हारा, प्रजा की हिंसा न करने वाला राजा समस्त प्रजाओं में अतिथि के समान पूजनीय, मनुष्यमात्र के लिये सञ्चालक, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष, कर आदि लेने के कार्य और उत्तम आज्ञावाणियों से मनुष्यों को उत्तम मार्ग पर ले चले।

ए॒वा नो॑ अग्ने अ॒मृते॑षु पू॒र्व्य॒ धीष्पी॑पाय बृ॒हद्दि॑वेषु॒ मानु॑षा ।
दुहा॑ना धे॒नुर्वृ॒जने॑षु का॒रवे॒ त्मना॑ श॒तिनं॑ पुरु॒रूप॑मि॒षणि॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्नि के समान विद्वन्! हे पूर्व विद्वानों से विद्वान् हुए! तू हमारे दीर्घजीवी, बड़े भारी ज्ञान और प्रकाश से युक्त, और बलशाली जीवों में, मनुष्योचित नाना सुखों और ऐश्वर्यों और कर्मों और बुद्धियों की वृद्धि कर। स्वयं आत्मसामर्थ्य से दूध देने वाली गाय के समान तू पुरुषार्थ करने वाले पुरुष के हित के लिये, उसकी इच्छा होने पर, सैकड़ों सुखों वाले बहुत से रूपों के ऐश्वर्य की भी वृद्धि कर। (२) परमेश्वर सबसे पूर्व और पूर्ण होने से 'पूर्व्य' है। वह अविनाशी बड़ी कामना वाले जीवों में ज्ञान और कर्मों का उपदेश करता, पुरुषार्थी को उसकी वित्तैषणा, लोकैषणा आदि होने पर कर्त्ता के आत्म-सामर्थ्य के अनुसार नाना रूप ऐश्वर्य प्रदान करता है।

वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥ १० ॥

भा०—हे नायक ! हम अश्वों और विद्वान् पुरुषों के बल से, अन्न धनैश्वर्य और ब्रह्म अर्थात् वेद-ज्ञान से, सब मनुष्यों को अतिक्रमण करके, बल, बुद्धि, ज्ञान, ऐश्वर्य में उनसे अधिक होकर, अपने अपने उत्तम बल, वीर्य, और ज्ञान का अन्यों को ज्ञान करावें, उसका अन्यों के उपकार में प्रयोग करें। हमारा तेज और बल तथा ऐश्वर्य, यश मनुष्यों के बीच अपार होकर, सूर्य के समान प्रकाशित हो। और पांचों जनों के ऊपर स्थित होकर नायक हमारे पाचों प्रकार के प्रजाजनों के बीच अपार अन्न, यश, बल को प्रकाशित करे।

स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

भा०—हे बलशालिन् परमेश्वर ! ज्ञानवान् पुरुष, अक्षय तथा अति सूक्ष्म और अपने देह गृह में दीपक के समान चमकने वाले जिस परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, और जिसमें या जिसके अधीन रहकर शम, दम आदि उत्तम कर्मों में प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष नाना काम्य सुख प्राप्त करते हैं, वह तू हमें उस यज्ञ का उपदेश कर।

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे ज्ञान में प्रसिद्ध ! तेरी स्तुति करने वाले और अन्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले हम लोग दोनों ही, तेरी शरण, तेरे सुखमय आश्रम में रहें। तू बहुत सुवर्णादि से युक्त, उत्तम प्रजा से युक्त, उत्तम सन्तानों से युक्त, तथा बसने योग्य गृह भूमि आदि ऐश्वर्य और दान देने योग्य धन को हमें प्रदान करने में समर्थ हो। (२) परमेश्वर

वेदों का और ज्ञानों का उद्भव होने से 'जातवेदाः' है। हम सब उसकी शरण में या सुखमय परमानन्द स्वरूप में लीन रहें। वह हमें बहुतों को सुखी करने में समर्थ बहुत से उत्तम प्रजा सन्तान आदि वाले लोकों ऐश्वर्यों और धनों को देने वाला है।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माँश्च ताँश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ १३॥ २१॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल २। सू० १। म० १६॥ इत्येकविंशो वर्गः॥

[३]

गृत्समद ऋषिः॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, १० त्रिष्टुप्। ७ जगती॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात्।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन्॥ १॥

भा०—अति प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष स्थापित होकर पृथिवी पर प्रत्येक पदार्थ पर अपना वश करता हुआ साक्षात् समस्त लोकों पर अध्यक्ष रूप में स्थित है। वह तेजस्वी पुरुष सबको अपने अधीन कर लेने और उनको इष्ट पदार्थ देने वाला, पापाचारों से पवित्र करने हारा, उत्तम ज्ञान, व्यवहार, तेज और रक्षा के साधनों से युक्त होकर, उत्तम प्रजावान्, उत्तम शत्रु हिंसाकारी, विजयेच्छु होकर, अन्य विद्वानों का सत्कार करता हुआ उनको अपने साथ मिलावे।

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान्॥ २॥

भा०—जिस प्रकार सब स्थानों को प्रकाशित करता हुआ उत्तम ज्वाला वाला अग्नि अपने महान् सामर्थ्य से तीनों प्रकार की अग्नि, विद्युत्, सूर्य रूप अग्नियों को प्रकट करता हुआ, घृत से युक्त मन्त्र से चरु को युक्त कर यज्ञ के मूर्धा भाग कुण्ड में उत्तम प्रकाशमान् किरणों को प्रकट करता है, और जिस प्रकार सबसे स्तुति किया गया सूर्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, और आकाश तीनों लोकों को और सब स्थानों को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ और उदक को वर्षाने वाले स्तम्भक मेघ से अन्न उत्पन्न करने वाले क्षेत्र को सींचता हुआ महान् जगत् के मूर्धास्थान आकाश में दिव्य किरणों को प्रकट करता है, उसी प्रकार सब मनुष्यों से स्तुति करने योग्य विद्वान् पुरुष अपने धारण सामर्थ्यों और तीनों प्रकार के तेजों एषणाओं और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि व्यवस्थाओं को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ, उत्तम दीप्तिमान्, दीप्तियुक्त ज्ञान और मननकारी अन्तःकरण से ज्ञान के योग्य आत्म भूमि को आर्द्र करता हुआ, जगत् के प्रजापालक सर्वोच्च स्थान में स्थित होकर दिव्य गुणों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करे।

ई॒ळि॒तो अ॑ग्ने॒ मन॑सा नो॒ अर्ह॑न्दे॒वान्य॑क्षि॒ मानु॑षा॒त्पूर्वो॑ अ॒द्य।
स आ व॑ह म॒रुतां॒ शर्धो॒ अच्यु॑त॒मिन्द्रं॑ नरो बर्हि॒षदं॑ यजध्वम् ॥३॥

भा०—हे ज्ञानवन् तेजस्विन्! तू सब मनुष्यों से पूर्व सबसे वन्दना करने योग्य है। तू मन से और ज्ञान से आज के समान सदा ही सब विद्वानों को सत्कार योग्य पदार्थ देता है। तू अन्यों का सत्कार करने हारा है। वह तू सब वीर पुरुषों के बल को और कभी परास्त न होने वाले ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति को धारण कर। हे नायक पुरुषो! आप लोग उस उत्तमासन पर विराजे ऐश्वर्यवान् पुरुष की उपासना और आदर सत्कार करो।

दे॒व॑ ब॒र्हि॒र्वर्ध॑मानं सु॒वीरं॑ स्ती॒र्णं रा॒ये सु॒भरं॒ वेद्य॑स्याम्।
घृ॒तेना॒क्तं व॑सवः सीदते॒दं विश्वे॑ देवा आदित्या य॒ज्ञिया॑सः ॥४॥

भा०—हे कमनीय गुणों से युक्त तथा वृद्धिशील स्वामी को बढ़ाने हारे प्रजाजन ! तू बढ़ता हुआ उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर खूब विस्तृत इन सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली पृथ्वी में उत्तम रीति से सब का भरण पोषण करता हुआ ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये यत्नवान् हो। यज्ञ में बिछे हुए और जल से प्रोक्षित कुशासन पर जिस प्रकार वेदी में विद्वान्-जन विराजते हैं उसी प्रकार हे राष्ट्रनिवासिजनो ! हे सब विद्वान् पुरुषो ! और हे तेजस्वी राजागणो और ज्ञान धनैश्वर्यादि के दान प्रतिदान करने-हारो ! 'अदिति' भूमि के शासको और अखण्ड ब्रह्म के उपासको ! और हे यज्ञ करने और यज्ञ अर्थात् प्रजापति राजा और परमेश्वर की सेवा करने हारो ! आप सब लोग जल से सिंचे इस राष्ट्र में विराजो, तेज और अन्नादि पुष्टिकारक पदार्थों से सम्पन्न प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजो।

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५।२२॥

भा०—जिस प्रकार बड़े २ द्वार सुख से आने जाने योग्य हों उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग, सुख से गृहस्थ कार्य में प्रगति करने वाली, भूमि के समान उदार एवं सन्तति उत्पन्न करने में समर्थ, कमनीय अपने पुरुषों को चाहने वाली स्त्रियों को अन्न आदि सत्कारों सहित विशेष रूप से प्राप्त करो। विविध सुखों को प्राप्त करने कराने वाली, ज्वरादि रोगों से रहित रहती हुईं, अपने वर्ण को, कीर्ति और अन्न को और उत्तम पुत्र से युक्त गृह को पवित्र करती हुईं, स्त्रियों को विशेष ख्याति लाभ करावो और उन्हें आदर दो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्वते।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

भा०—दिन और रात्रि जिस प्रकार उत्तम कर्मों को करवाते हैं, जलादि से सींचते रहते हैं, नाना शब्दों से गुंजित रहते हैं, दोनों ही यज्ञ

का स्वरूप बनाते हुए पट बुनने वाली वरणी के समान चलते हैं, उसी प्रकार घर में स्त्री और पुरुष दोनों उषा काल के समान कान्तियुक्त और नक्त अर्थात् रात्रिकाल के समान एक दूसरे को सुख-निद्रा, रात्रि आदि देने वाले हों। वे दोनों हमें अच्छे विनययुक्त उत्तम कर्मों को भली प्रकार से करावें। वे दोनों सुखों के वर्षाने वाले, एक दूसरे के प्रेम से सिक्त, हृष्टपुष्ट, निषेक करने और धारने में समर्थ हों। वे दोनों रमणीय मनोहर शब्दों को बोलते हुए एक दूसरे के प्रति आत्मदान एवं सुसंगति-जनक गृहस्थ-यज्ञ के स्वरूप को और विस्तृत प्रजातंतु को भी बुनने के यन्त्र वरवाणियों के समान परस्पर मिलकर बुनते हुए, परस्पर की कामना और इच्छाओं को भली प्रकार से पूर्ण करते हुए, पुष्टिकारक अन्न और दुग्धादि से भरपूर होकर रहें।

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥

भा०—देवतुल्य पूज्य पुरुषों के प्रति उत्तम सत्कार करने में कुशल, एक दूसरे को इच्छापूर्वक स्वीकार करने वाले, उत्तम कोटि के अति-विद्वान्, सुन्दर शरीर वाले, रूप लावण्ययुक्त, एक दूसरे का सत्कार करने वाले होकर, सरल निष्पक्ष होकर, एक दूसरे के प्रति आत्मा को समर्पण करें और परस्पर संगत होंवे। वे दोनों स्त्री पुरुष ऋतु २, प्रत्येक उपयुक्त अवसर में, समय २ पर विद्वानों का सत्संगत करते हुए पृथिवी के बीच तीनों सेवने योग्य धर्म, अर्थ, और काम को प्राप्त करने के निमित्त परस्पर एक दूसरे की चाहना करें और संग करें।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥

भा०—सरस्वती देवी हमारी बुद्धि और कर्म को सत्कर्म में प्रवृत्त

कराती हुई, और अभिलषित सुख देने वाली इडा देवी, सब को अति-शीघ्र ले जाने या कार्य करने वाली और स्वयं शीघ्र कार्य करने वाली भारती, ये तीनों देवियें स्वधा अर्थात् अन्न के द्वारा आश्रय को प्राप्त करके, त्रुटिरहित, सावधानता से इस वृद्धिशील गृहस्थ का अच्छी प्रकार पालन करें। 'सरस्वती'—उत्तम ज्ञान वाली विदुषी। 'इळा' अन्नदात्री भूमि के समान सब सुखों को उत्पन्न करने वाली। 'भारती' मनुष्यों को सुख और आश्रय देने वाली। स्त्री ही के तीनों गुण हैं विदुषी, अन्न साधिका, और गृहस्थ सुख देने वाली। इन तीनों गुणों से युक्त स्त्रियां गृहस्थ बसा कर घर का पालन करें। राष्ट्र पक्ष में विद्वत्सभा, भूमि या अन्न की उपज आदि की प्रबन्धकर्त्री सभा और समाज की सुव्यवस्था करने वाली सभा क्रम से सरस्वती (Legislative) इळा (Revenue) भारती (Municipality) वे तीनों ही राष्ट्र में अपना स्थान पाकर दोषरहित कार्य सम्पादन करें और प्रजा की रक्षा करें।

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः।
प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥

भा०—सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण का, वीर्य, बल और अन्न को धारण करने वाला, वा उत्तम प्रजनन या संतानोत्पादन के सामर्थ्य को धारने वाला, विद्वानों और उत्तम गुणों की कामना करने हारा, वीर्यवान् पूर्ण युवापुरुष और स्त्री अति शीघ्र ही उत्तम सन्तान रूप से उत्पन्न हों। अथवा—उक्त गुणविशिष्ट वीरपुत्र उत्पन्न हों। जगत्कर्त्ता परमेश्वर हमें कुल सन्तति को बांधने वाली उत्तम सन्तान प्रदान करे। और वह सन्तति देवों और अपने माता पिता आदि विद्वानों के लिये रक्षा करने वाले साधन अन्न आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०॥

भा०—जलों का पालक मेघ जिस प्रकार वृष्टिरूप में जलधाराएं छोड़ता हुआ उपस्थित होता है, और जिस प्रकार रश्मियों का पालक सूर्य रश्मियों द्वारा प्रकाश दान देता है, और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् सैन्यदल का पति शरवर्षण करता हुआ उपस्थित है, और जिस प्रकार वट आदि महावृक्ष अपने फलों को दूसरों के उपकारार्थ प्रदान करता हुआ खड़ा रहता है, उसी प्रकार गृहस्थ पुरुष जो कि नाना भोग और संविभाग करने योग्य दानधन का स्वामी है वह पुत्र पौत्रादि तथा ब्राह्मण, अतिथि आदि को अपना अन्न धन आदि त्याग करता हुआ सदा उपस्थित है। और अग्नि जिस प्रकार क्रियाओं से अन्न को अच्छी प्रकार पका देता और दूसरों के खाने योग्य बना देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानों और उत्तम कर्मों के द्वारा ग्रहण करने योग्य अन्न और गूढ ज्ञानों को भी अच्छी प्रकार अन्यों को प्रदान करे। वह अच्छी प्रकार स्वयं ज्ञानवान् होकर उस ज्ञान आदि पदार्थ को तीनों प्रकार से अर्थात् वाणी द्वारा, क्रिया द्वारा और उपयोग व व्यवहार द्वारा अच्छी प्रकार प्रकाशित करे। और विद्वानों का हितैषी दोषों को शान्त करने हारा विद्वानों के लिये भोग्य अन्नादि पदार्थ को प्राप्त करावे।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥२३॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि में घृत का सेवन किया जाता है, और अग्नि के बढ़ाने का आधार घृत है, घृत अर्थात् स्निग्ध पदार्थ पर ही वह आश्रित है, स्निग्ध पदार्थ से उत्पन्न तेज ही अग्नि का तेज है, वह अन्न के साथ घी को प्राप्त कर तृप्ति करता है, उसी प्रकार यह मेघ जल को भूमि पर सेचन करता है, और इस मेघ का उद्भवस्थान भी जल ही है। वह मेघ भी जल के रूप में स्थित है। उसकी स्थिति, उत्पत्ति, जल ही है। हे मेघ! तू अन्न को उत्पन्न करने के लिये जल को प्राप्त करा, और

समस्त प्रजावर्ग को हर्षित कर और उत्तम रूप से प्रदान किये इस प्रकार के अन्न को जल के रूप में तू हे वर्षणशील मेघ! सर्वत्र प्राप्त कराता है। तू धन्य है। इसी प्रकार हे वीर्य सेचन में और गृहस्थ धारण करने में बलवान् युवक पुरुष! तू सेचन करने योग्य वीर्य का सेचन कर। इस पुरुष का मूल उत्पादक कारण वीर्य ही है। यह पुरुष उस निषेक योग्य वीर्य ही के आश्रय में स्थित है। इस पुरुष शरीर का धारण करने वाला तेज, ओज या जन्म, स्थिति और स्वरूप तीनों 'घृत' अर्थात् यह वीर्य ही है। तू उस वीर्य को उत्तम अनुकूल अन्न खाकर, अन्न के अनुरूप ही धारण कर, और अन्य संगिनी को भी तृप्त, सुप्रसन्न कर। हे वीर्य सेचन में समर्थ! तू उस धारण करने योग्य वीर्य को उत्तम रीति से प्रदान करने की विधि से यथाविधि धारण करा। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[४]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ८ स्वराट् पंक्तिः। २, ३, ५, ६, ७ आर्षी पंक्तिः। ४ ब्राह्म्युष्णिक्। ९ निचृत् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम्।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः॥ १॥

भा०—जो अल्प व्यवहारज्ञ, स्वल्प विद्याप्रकाश से युक्त मनुष्यों के हितार्थ सूर्य के समान या स्नेही सखा के समान सहायक, खूब उत्पन्न पदार्थों का जानने वाला, और उनको अपने आश्रय में धारण करने वाला, विद्या और ऐश्वर्य का देने वाला होता है, उस उत्तम रीति से प्रकाशित होने वाले, पापों और दुराचारों को अच्छी प्रकार वर्जने और छुड़ाने हारे, अतिथि के समान पूज्य, उत्तम अन्नादि सामग्री और विद्या और प्रेमादि सद्गुणों से युक्त, प्रजाओं के बीच में अग्रणी आचार्य की आप के हित के लिये प्रशंसा करता हूँ। (२) विद्युत् उत्तम प्रकाशवान् होने से 'सुद्योत्मा' है। रोगहारी और तमोनाशक होने से 'सुवृक्ति' है। विद्वान्

पुरुषों के नाना प्रयोगों में आकर बहुत ऐश्वर्य के उत्पादक मित्र के समान सबका पालक पोषक है। (३) परमेश्वर प्रकाशस्वरूप, पापहारी, पूज्य, आनन्दमय, मित्र, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सब को धारण करने वाला है।

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्विता दधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥

भा०—विद्युत्-विद्या के विद्वान् जिस प्रकार इस विद्युत् को विशेष उपाय करते हुए जलों के स्थान और वेगवान् पदार्थ इन दोनों स्थानों से ही प्रजाओं के हितार्थ प्राप्त करते हैं, यह विद्युत् बहुत से पदार्थों में व्यापक होकर विद्वान् पुरुषों के प्रायः सभी कार्यों में प्रयुक्त हो। वह प्रकाशमान् कार्यों में शक्तिस्वरूप, वेगवान् व्यापक गुणों वाला है। उसी प्रकार तपस्वी लोग प्रजाओं के बीच मनुष्यों के लिये इस विद्वान् की परिचर्या करते हुए इसको प्रजाओं के समीप दो रूपों में धारण करें। एक विद्यादाता का रूप दूसरा आचार शिक्षक का। वह बहुत सामर्थ्यवान् सब प्रकार की विपत्तियों और शत्रुओं का वारण करने में समर्थ हो। वह विद्वानों के बीच ऐश्वर्यवान्, और वेगवान् अश्वों से युक्त हो।

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥

भा०—सुख से निवास करने की इच्छा करते हुए विद्वान् लोग, मननशील प्रजाओं में, नायक और ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को, प्राण और मित्र के समान अतिप्रिय बनाकर रखें, जो कि दानशील पुरुष के गृह में विपत्तियों का नाशकारी, विरोधियों को भस्म करने वाला, सब समृद्धियों का बढ़ाने हारा है। वह रात्रियों को दीपक के समान कामना वाली प्रजाओं को प्रकाशित करता है (२) परमेश्वर को मित्र के समान प्रिय जानकर उसकी उपासना करें। वह रात्रियों को चन्द्र या अग्नि के समान अपने आत्मसमर्पक के हृदय में सब शुभ कामनाओं को प्रकाशित कर देता है।

अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार ओषधि वनस्पतियों में अपनी ज्वाला को पुष्ट करता है, और बालों को घोड़े के समान ज्वालाओं को कंपाता है, उसी प्रकार जो नायक परसैन्य को भस्म करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले सैन्यों और प्रजाओं के बीच वाणी को विविध प्रकार से धारण करता है, विविध आज्ञाएं प्रदान करता है और घेरने वाले शत्रुओं को कंपाता है, जिस प्रकार रथ में लगने योग्य अश्व उस नायक पुरुष का पोषण करना भी अपने देह के पोषण के समान सबको अतिप्रिय होना चाहिये। और जिस प्रकार जलती हुई और बढ़ती हुई अग्नि में अपने प्रकाश से अच्छी प्रकार मार्ग आदि दिखाने का विशेष गुण सबको प्रिय होता है इसी प्रकार अपने विरोधी जनों को भस्म करने वाले, बल और ऐश्वर्य में निरन्तर बढ़ते हुए उस नायक पुरुष की सम्यक् दृष्टि ही सबको प्रिय लगती है।

आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत् ५॥२४

भा०—जिस प्रकार यह जीव है जो कि एक शरीर में वृद्ध होकर भी बार २ युवा हो जाया करता है, जिस 'अहं' पदवाच्य जीव के अव्यक्त महान् रूप को ज्ञानप्रद गुरु या स्तोता लोग ज्ञान के जिज्ञासुओं को बराबर बतलाते हैं पर तो भी उसका स्वरूप नहीं प्रतीत होता, वह आत्मा अपने अतिमनोहर स्वरूप को आश्चर्यजनक या चित्स्वरूप में रमण करने वाले तेज से जानता है, इसी प्रकार नायक की बढ़ाई को कविजन श्रोतृजनों के प्रति वर्णन करते हैं तो भी उसका गूढ़रूप नहीं पता चलता। वह अनुभवी वृद्ध होकर भी कार्य करने में सदा युवा रहता है,

वह अद्भुत तेज से अपने रम्य रूप अर्थात् प्रजामनोहारी रूप से प्रकट करता है, वही नायक होने योग्य है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत्।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः॥६॥

भा०—नायक संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों के प्रति प्यासे के समान अर्थलिप्सु होकर प्रकाशित हो। वह जलप्रवाह के समान अदम्य वेग से प्रयाण करे। वह स्वयं रथसेना का स्वामी होकर हर्षसूचक शब्द करता हुआ मार्ग से जावे। सूर्य के समान या नक्षत्रों से मण्डित आकाश के समान अपने बन्धुजनों से मुस्कराता तथा सुप्रसन्न होता रहे। वह चित्ताकर्षक, या शत्रु को काट गिरा देने वाले मार्ग पर चलता हुआ और शत्रुजनों को संतापजनक और स्वयं भी तपस्वी होकर अतिरम्यरूप में जाना जावे। नायक चित्ताकर्षक या शत्रु-निकृन्तन के मार्ग से जाने से 'कृष्णाध्वा' है।

स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी पशुर्नैति स्वयुरगोपाः।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम॥७॥

भा०—जो उत्तम नायक पृथ्वी पर पराक्रम करता, शत्रु की बड़ी भारी सेना को भस्म कर दे, जो स्वयं प्रयाण करने हारा, अपने से अन्य किसी रक्षक की अपेक्षा न करता हुआ, स्वयं सबको भली प्रकार देखता हुआ, विविध देशों में ठहरता, शत्रु पर अभियोक्ता या आक्रामक होकर चढ़ाई करता हुआ और जो सूर्य के समान तेजस्वी होकर निरन्तर आक्रमण करने वाले सैन्यों को अपने तेज से संतप्त करता हुआ, बड़े सामर्थ्य से अपने व्यथादायी शत्रुओं को उच्छिन्न करता हुआ, बड़े भारी ऐश्वर्य या राज्य का मानो भोग करने में समर्थ होता है, वही तेजस्वी पुरुष यथार्थ में 'अग्नि' कहाने योग्य है।

नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! अब पहिले से चले आए तेरे व्रत या रक्षणकार्य के अधीन, तृतीय संख्या के यज्ञ या सवन काल में तू हमें मनन करने योग्य ज्ञान का उपदेश कर। हमें संयमशील वीरों और पुत्रों शिष्यों से युक्त, बड़े भारी उत्तम अन्नादि समृद्धि से युक्त, बल ज्ञान और उत्तम संतान या उत्तराधिकारी से युक्त गृह, पशु, धनधान्य, सुवर्णादि स्थायी सम्पत्ति प्रदान कर। राजा आदि शासकवर्ग अपने तीसरे सवन अर्थात् नौकरी के काल के उपरान्त अपने पहले प्राप्त शासन के अनुभव अन्यों को दें। इसी प्रकार आचार्य आदि भी तीसरे वानप्रस्थकाल में अपने पूर्व के प्राप्त ज्ञान के अनुशीलन कार्य में नयों को मनन योग्य विज्ञान प्रदान करें।

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ९॥२५

भा०—हे विद्वन् ! जिस प्रकार आकाश में वायुगण या सूर्य की किरणें मेघों को और जलों को छिन्न-भिन्न करते हुए मेघों को निर्बल कर आप उनसे प्रबल हो जाते हैं, उसी प्रकार विद्वानों के समान ज्ञान और मनन में आनन्द लेने हारे उत्तम पुरुष अपनी बुद्धि में ज्ञानों का विभाग अर्थात् पृथक् विवेचन करते हुए अपने से पूर्व के जो लोग उस कार्य से उपरत हो चुके हैं उनसे भी अधिक विद्वान् हों। वे रथों पर आनन्द से युद्ध करने हारे वीरों के समान ही उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, अभिमानी शत्रु को पराजित करने वाले हों। जो पुरुष उपदेश करते हैं उन विद्वान् पुरुषों को वह नाना प्रकार का कामना करने योग्य ऐश्वर्य वा दीर्घ जीवन तू प्रदान कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५]

सामाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृदनुष्टुप् २, ४, ५ अनुष्टुप् । ८ विराडनुष्टुप् । ७ भुरिगुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।

प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥

भा०—ज्ञानवान् पुरुष अपने पालक मां बाप, गुरु, आचार्य आदि पितृतुल्य जनों से धनैश्वर्य और विद्या प्राप्त करके, स्वयं उनकी रक्षा करने के लिये उनका भी पिता हो जाता है, और स्वयं ज्ञानवान् पुरुष ज्ञानदान करने वाला होकर ज्ञान से तृप्त करने के कारण अपने पालक पितृतुल्य पुरुषों का भी पिता होता है, वह उनको सब दुःखों पर विजय करने वाला सर्वश्रेष्ठ धन को प्रदान करता है, इसी प्रकार हम लोग ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर इन्द्रियों और शत्रुओं पर संयम या वश करने में समर्थ होकर विजय करने वाले ऐश्वर्य और क्षात्रबल के दान देने में समर्थ हों।

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।

मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २ ॥

भा०—जिस यज्ञ के नायक में सात रश्मिएं जुड़ी हैं वह मनुष्यों के समान ही स्वयं आठवां, देवों में देव, परम देव है। वह सबको पवित्र करने और प्रेरने वाला होकर समस्त जगत् में व्यापक है। यज्ञ में सात ऋत्विजों पर जिस प्रकार एक 'होता', होता है उसी प्रकार देह में सात प्राणों पर उनका प्रेरक आत्मा या मन है। संसार में सात ऋतुओं पर एक सूर्य उसमें आठवां परमेश्वर परम पावन सर्वत्र व्याप्त है।

दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।

परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ ३ ॥

भा०—जो समस्त विश्व को धारण करता है, और जो भी विद्वान् वेदादि सत् शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञानों का उपदेश करता है वह उन सबको निश्चय

से व्यापता और जानता है। वह समस्त क्रान्तदर्शी पुरुषों के जानने और करने योग्य कार्यों और ज्ञातव्य ज्ञानों के ऊपर चक्र पर चढ़े हाल के के समान विद्यमान है।

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥ ४ ॥

भा०—जिस कारण पवित्र ज्ञान और कर्म के साथ वह सर्वश्रेष्ठ शासनकर्त्ता परमेश्वर सब प्रकार से पवित्र है, इसलिये उस परमेश्वर के सनातन से चले आये व्रतों-धर्मों को जानने पौर पालन करने वाला पुरुष, वृक्ष के शखाओं के समान, बराबर वृद्धि को प्राप्त होता और यथाक्रम से बराबर ऊंचे ही ऊंचे चढ़ता है।

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५ ॥

भा०—जो बहिनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली, 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को प्राप्त करने वाली प्रजाएं, भूमि, जल, पर्वत, या पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश तीनों से बहुत प्रकार के इस वरणीय उत्तम धन को प्राप्त करती हैं वे मनुष्य प्रजाएं, इस अपने नायक के ही स्वीकार्य धन को दुधार गौ के समान प्राप्त करती हैं। प्रजाएं जो भी धन मिलकर प्राप्त करती हैं वह एक प्रकार से राजा का ही ऐश्वर्य है। (२) जो 'स्व' आत्मा की तरफ जाने वाली चित्तवृत्तियां कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों से श्रेष्ठ इस आत्मतत्व को प्राप्त करती हैं, या वेदत्रयी से इस श्रेष्ठ आत्म-ज्ञान को प्राप्त करती हैं, वे आत्मा को प्राप्त होने वाली वाणियों या गौओं के समान, इस सर्वप्रणेता परमेश्वर के ही श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त करतीं और अन्यों को प्राप्त कराती हैं।

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ६ ॥

भा०—जल को धारण करती हुई मेघमाला को पृथ्वी के समीप आते देखकर जिस प्रकार कृषक प्रसन्न होता है, इसी प्रकार माता के समीप स्वयं पति को प्राप्त होने वाली स्वयंवरा कन्या ब्रह्मचर्य द्वारा तेज को धारती हुई प्राप्त हो। ऐसी कन्याओं में किसी के आ जाने पर गृहस्थयज्ञ का कर्त्ता वर्षा पाकर जौ के समान अति प्रसन्न होता है। (२) आत्मा की तरफ जाने वाली चित्तवृत्ति जब प्रमाता आत्मा के समीप वीर्य या तेज को धारती हुई पहुँचाती है तो उन वृत्तियों के उदय होने पर अविनाशी आत्मा सब संग दोषों से दूर रहता हुआ, वृष्टि से यवक्षेत्र के समान खूब प्रसन्न हो आनन्द लाभ करता है।

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम्।

स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥

भा०—स्वयं मनुष्य, ऋतु २ में यज्ञ करने वाले ऋत्विज के समान अपने ही धारण पोषण करने वाले की प्रतिसमय सत्संगति, उपासना और स्तुति करे। और अनन्तर हम उस स्तुतियोग्य सदा संगतियोग्य उपास्य परमेश्वर का खूब भजन करें, और उसके प्रति दान और अपने को समर्पण करें।

यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः।

अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार यह विद्वान् पुरुष सब उपासना सत्कार और दान करने योग्य आदरणीय पुरुषों के लिये खूब अन्न आदि प्रदान करता है, उसी प्रकार जिस भी यज्ञ, उपासना आदि कर्म को हम करते हैं, वह सब हे परमेश्वर ! तेरे ही निमित्त करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[६]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १, ३, ५, ८ गायत्री। २, ४, ६ निचृद्गायत्री। ७ विराड्गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः ।

इमा ऊ षु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि समीप रखी हुई समिधा को प्रज्ज्वलित कर देता है उसी प्रकार हे ज्ञानवन् ! गुरो ! ईश्वर ! आप भी इस अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली समिधा को जो शिष्य रूप से आप के समीप प्राप्त है उसे स्वीकार करें, प्रेमपूर्वक अपनावें, उसे ज्ञानाग्नि से प्रज्ज्वलित करें । और हे शिष्य ! इन वेदवाणियों का तू उत्तम रीति से श्रवण कर ।

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे ।

एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥

भा०—हे शीघ्रगामी साधनों में वेग देने वाली अग्नि ! तेरा इस क्रिया से यन्त्र बनावें । हे बलशक्ति को न गिरने देने वाली ! हे उत्तम णों में प्रसिद्ध ! तेरा हम इस सूक्त अर्थात् अग्निविद्या के उपदेश से सम्पादन, संचालन और प्रयोग करें ।

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः ।

सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥

भा०—हे द्रविण, ऐश्वर्य या जल को देने वाली अग्नि ! द्रुतगमन करने वाले, वाणी या विशेष शब्द के साथ सेवन योग्य तुझको हम उत्तम सेवा चाहने वाले, वेदवाणियों से प्राप्त करते हैं ।

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।

युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि ॥ ४ ॥

भा०—हे अपने अधीन बसने वाले शिष्यों और प्रजाजनों के पालक ! हे उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले ! वह तू उत्तम ऐश्वर्यवान् और विद्वान् होकर, ज्ञानसम्पादन कर और औरों को ज्ञान सम्पादन करा । हम से द्वेषयुक्त व्यवहारों को पृथक् कर और करा ।

स नो॑ वृ॒ष्टिं दि॒वस्परि॒ स नो॒ वाज॑मन॒र्वाण॑म् ।
स नः॑ सह॒स्रिणी॒रिषः॑ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् रूप अग्नि आकाश से वृष्टि देता है, और अश्व के बिना वेगवान् रथ देता है और सहस्रों सुखप्रद कामनाएं पूर्ण करता है, इसी प्रकार वह विद्वान् हम पर अपने ज्ञानप्रकाश से सुखों का वर्षण करे, हिंसक योद्धा से रहित संग्राम पर विजय प्राप्त करावे, बिना अश्व के वेगवान् रथ को संचालित करे और हमारी ओर सहस्रों सुख देने वाली कामनाओं को प्रेरित करे ।

ईळा॑नाया॒वस्य॑वे॒ यवि॑ष्ठ दूत नो गि॒रा ।
यजि॑ष्ठ होतरा ग॑हि ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि और सूर्य तापवान् होने से 'दूत' है, जल-कणों को पृथक् करने से 'यविष्ठ' है, वृष्टि अन्न आदि देने से 'यजिष्ठ', और प्रकाश आदि देने और जल आदि लेने से 'होता' है, वह इच्छ अर्थात् अन्न के इच्छुक तथा अपनी रक्षा चाहने वाले को पर्जन्यवाणी के साथ प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे दुष्टों के संतापक ! हे बलशालिन् ! हे दानशील ! हे अधिकार आदि देने वाले तू स्तुति करने वाले और रक्षा के चाहने वाले पुरुष को और हमको आज्ञावाणी सहित प्राप्त हो ।

अ॒न्तर्ह्य॑ग्न॒ ईय॑से वि॒द्वाञ्जन्मो॒भया॑ कवे ।
दू॒तो जन्ये॑व॒ मित्र्यः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे क्रान्तदर्शिन् ! तू दुष्टों के लिये संतापकारी तथा सज्जनों के लिये हितकारी के समान, मित्रों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् होकर इहलोक और परलोक में इन दोनों जन्मों के सम्बन्ध में उपदेश कर ।

स वि॒द्वाँ आ च॑ पिप्रयो॒ यक्षि॑ चिकित्व आनु॒षक् ।
आ चा॒स्मिन्त्स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ८ ॥ २७ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् विद्वन् ! तथा ईश्वर ! सब कुछ जानता हुआ तू

सबको प्रसन्न और पूर्ण करता है, और सबके अनुकूल पदार्थ निरन्तर देता है। तू इस महान् ब्रह्माण्ड और पृथ्वीलोक में और उत्तमासन पर आकर विराजता है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृद् गायत्री । ४ त्रिपाद्गायत्री । ५ विराट् पिपीलिका मध्या । ६ विराड गायत्री ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर ।
वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥ १ ॥

भा०—हे युवा ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे गृहस्थ में बसने और बसाने हारे ! हे पालन पोषण करने हारे राजन् ! तू सर्वोत्तम तथा बहुतों के चाहने योग्य ऐश्वर्य को सब तरफ से प्राप्त कर और ला।

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च ।
पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! हमारे ज्ञानप्रकाश पुरुष तथा साधारण प्रजाजन पर शत्रु अपना स्वामित्व प्राप्त न करे। प्रत्युत तू ही उस शत्रु से हमें पार कर, उस पर विजयी बना।

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव ।
अति गाहेमहि द्विषः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तेरे द्वारा हम लोग जल की धाराओं के समान सब शत्रुओं और अप्रियों को पार कर जावें, ।

शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे ।
त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥

भा०—हे पवित्र करने हारे ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! घृतों से आहुति किये गये अग्नि के समान अति तेजों से युक्त होकर तू शुद्ध आचारवान्, स्तुतियोग्य, सत्कारयोग्य होकर बड़े रूप में विविध दिशाओं में प्रकाशित हो ।

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः ।
अष्टापदीभिराहुतः ॥ ५ ॥

भा०—राजा उत्तम पृथिवियों से, मेघों नदियों तथा नहहरों से, आठ सचिव रूप पदाधिकारी लोगों से बनी राजसभाओं से सभापति रूप से स्वीकृत हो ।

द्रन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को अन्न के समान खाता है उसी प्रकार विद्वान् भी वृक्ष वनस्पति के ही अन्न वाला अर्थात् बानस्पतिक भोजन करने वाला हो। जिस प्रकार अग्नि घृत से सब प्रकार सींचा जाकर खूब बढ़ता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी घृत, दुग्ध आदि सारवान् पदार्थों का आसेचन, सेवन करने वाला हो । वह अग्नि अति-पुरातन अविनाशी है तो विद्वान् भी दीर्घजीवी हो । अग्नि सब को भस्म करने वाला है, विद्वान् उत्तम पदार्थों को लेने और विद्यादि को देने वाला हो । अग्नि सदा स्वीकारने योग्य श्रेष्ठ है, विद्वान् सर्वश्रेष्ठ और श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाला हो । अग्नि बलवान् वायु से उत्पन्न होने और अरणियों द्वारा बलपूर्वक मथन करने पर उत्पन्न होने से बल का पुत्र है, विद्वान् बलवान् वीर्यवान् माता पिता का पुत्र हो । अग्नि अद्भुत गुणों वाला है, विद्वान् आश्चर्यकारी विद्या और चमत्कारी गुणों से युक्त ऐसा हो जैसा पहले कोई न हुआ हो । (२) इसी प्रकार परमेश्वर संसार वृक्ष को अन्न के समान प्रलयाग्नि में खा जाने से 'द्रु-अन्न' है । सर्पणशील सूर्य आदि लोकों को प्रेरने वाला है । शेष विशेषण स्पष्ट हैं । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता छन्दः—१ गायत्री २ । निचृत पिपीलिकामध्या गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री । ४ विराड् गायत्री । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

वाजयन्निव नू रथान्योगां अग्नेरुप स्तुहि ।
यशस्तमस्य मीळहुषः ॥ १ ॥

भा०—जो अग्नि रथों के प्रति अश्व के समान आचरण करने वाला तथा प्रचुर अन्न उत्पन्न कराने में समर्थ हो उस यशस्वी तथा जल बर्षाने वाले अग्नि के अनुकूल अवसरों का वर्णन कर ।

यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥

भा०—जो सूर्य दानशील मेघ को उत्तम रीति से लाने में समर्थ होता है वह स्वयं भी नाश न होकर तीव्रता से जल को वाष्प के रूप में जीर्ण करता हुआ, जठर में अन्न के समान वायु में विलीन करता हुआ, प्रदीप्त अग्नि के समान उत्तम पराक्रम वाला होता है। इसी प्रकार नायक और विद्वान् भी कर और वृत्ति आदि देने वाले या आत्मसमर्पक पुरुष को सन्मार्ग में ले जाने वाला हो, वह स्वयं युवा, शत्रु का नाश करता हुआ, आहुति से तीव्र अग्नि के समान उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों से उत्तम रीति से कार्यारम्भ करने वाला, उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हो ।

य उं श्रिया दमेष्वा दोषोषसिं प्रशस्यते ।
यस्यं व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, सूर्य, विद्युत् आदि घरों में, गृहकार्यों में अपनी कान्ति से दिन रात उत्तम ही कहा जाता है, जिसका व्रत, कर्म और स्वभाव, प्रकाश, दाह आदि कभी नष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार जो पुरुष गृहों में, गृहस्थों में दिन और रात उत्तम लक्ष्मी, धनैश्वर्य सम्पदा से रहता है, जिसका व्रत, नित्य धर्माचरण कभी खण्डित नहीं होता है वह ही प्रशंसा के योग्य होता है। उसी प्रकार जो राजा प्रजा और शत्रुओं के दमन कार्यों में शोभा, शान या बड़ी राजलक्ष्मी सहित रहे और जिसकी आज्ञा या नियम, कानून न टूटें वह दिन रात प्रशंसनीय है ।

आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा ।
अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि सूर्य के समान तेज से और ज्वाला से चमकता है, और अपने अविनाशी गुणों से चमकता रहता है, उसी प्रकार जो पुरुष सूर्य के समान ही अति आश्चर्यकारी तेज से और प्रकाश से अपने स्थायी गुणों से अपने को प्रकट और सब के प्रति प्रिय रूप में प्रकट करता हुआ सर्वत्र प्रकाशित होता है वह प्रशंसा योग्य है।

अग्निमनु स्वराज्यमग्निमुकथानि वावृधुः।
विश्वा अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार आहुति के भक्षक अग्नि को लक्ष्य कर यज्ञादि में वैदिक सूक्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वह अग्नि शोभा कान्तियों को धारता है उसी प्रकार यह जो समस्त राज्य लक्ष्मियों को अपने वश में रखता है उस ही ऐश्वर्य के भोक्ता, अपनी राजसत्ता के स्वामी अग्रणी नायक को लक्ष्य करके नाना स्तुतिवचन बढ़ते हैं।

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम्।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥ ६ ॥ २९ ॥ ५ ॥

भा०—हम ज्ञानमय विद्वान् ऐश्वर्यवान्, व्यापारी तथा प्रेरक राजा इन दानशील तेज व्यक्तियों की रक्षाओं से कभी नाश को न प्राप्त होते हुए, संघ बना कर सब कार्यों में समर्थ हों। और सेना की इच्छा वाले शत्रुओं को भी हम पराजित कर लें। इत्येकोनत्रिंशद्वर्गः ॥

[९]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः ॥ षड्च सूक्तम् ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥

भा०—होता आदि ऋत्विजों के बैठने के स्थान वेदी में चरु आदि का ग्रहण करने वाला अग्नि जिस प्रकार प्रकाशित होकर विराजता है, उसी

प्रकार शासन के अधिकार देने और लेने वाले विद्वानों के विराजने के स्थान सभाभवन में सब राज्यभार को स्वीकार करने वाला ज्ञानी नायक तथा विद्वान् तेजस्वी पुरुष प्रकाश करता हुआ, उत्तम बल से युक्त, कार्यकुशल, अपने कर्त्तव्य कर्मों और उत्तम शील आचार के नाश न होने से उत्तम बुद्धि और ज्ञान से युक्त, राष्ट्रवासियों में सब से श्रेष्ठ और अन्यों को सुख से बसाने वाला, सहस्रों का भरण पोषण करने में समर्थ, पवित्र सत्य वाणी बोलने हारा होकर, वेदी में होता या अग्नि के समान मुख्य आसन पर विराजे।

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार संतापकारी, वर्षणशील, सब कार्यों का प्रवर्त्तक, दीपक के समान सन्मार्ग में ले जाने वाला, किरणों और भूमियों का रक्षक है, उसी प्रकार हे नायक! तू ही हमारा परम पालन पोषण करने और रक्षा करने हारा है। हे समस्त समृद्धियों की मेघ के समान वर्षा करने हारे दयालो! तू ही सब का बसाने हारा और सन्मार्ग में प्रजाओं को चलाने हारा है। हे अग्रणी! तू ही हमारे विस्तृत राष्ट्र में पालकों के और हमारे भी शरीरों का प्रमादरहित होकर रक्षक और प्रकाशक हो, और हमें ज्ञान प्रदान कर।

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥

भा०—हे तेजस्विन्! हम तेरे सर्वोत्कृष्ट विद्यासम्बन्धी जन्म के निमित्त तेरा विशेष आदर करें, और तेरे साथ रहते हुए सभा आदि स्थानों में तेरे उससे कम महत्व के जन्म अर्थात् माता पिता से हुए जन्म के सम्बन्ध की भी स्तुतियुक्त वचनों से चर्चा करें, उस सम्बन्ध में भी तेरी मानहानि न करें। तू जिस योनी अर्थात् गृह या मातृकुल से

उत्पन्न हो उसका भी आदर करें। खूब प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार चरु घृत आदि की आहुति देते हैं उसी प्रकार खूब तेजस्वी तुझ में प्रजाजन अन्न और कर आदि उपादेय पदार्थ अच्छी प्रकार प्रदान करें।

अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥ ४ ॥

भा०—हे नायक ! तू दानशील होकर अन्न आदि देने और विद्वानों से स्वीकार करने योग्य पदार्थों का दान दे और उसके द्वारा अन्यों से मैत्रीभाव उत्पन्न कर। शीघ्र ही देने योग्य धन को देने का उपदेश कर। निश्चय तू ही ऐश्वर्यों का स्वामी है। तू शीघ्र कार्य कराने में समर्थ अति तेजस्वी वाणी का आज्ञापक, प्रवक्ता है।

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् नायक ! दर्शनीय ! हे प्रजा के दुःखों का नाश करने वाले ! प्रतिदिन बढ़ते हुए तेरा दोनों प्रकार का, इस पृथिवी और आकाश का ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होता है। तू विद्वान् उपदेष्टा पुरुष को अन्न आदि से युक्त कर और उसको उत्तम पुत्र वाले धन का स्वामी कर।

सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥१॥

भा०—हे सेनानायक ! तू वह इस सैन्यबल से उत्तम रीति से प्राप्त धन की रक्षा करने हारा, सब से सत्संगति और मैत्रीभाव रखता हुआ, विद्वानों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों को मिलाता और वेतनादि देता हुआ, कहीं भी हिंसित न होकर, हमारा रक्षक और संग्राम आदि संकटों से पार करने वाला, एवं तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् होकर प्रकाशित हो और ऐश्वर्य का दान कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट् त्रिष्टुप् ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः ॥

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥

भा०—अग्रणी विद्वान्, नायक नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों का देने वाला, युद्ध में शत्रुओं को ललकारने वाला, विपत्ति-कालों में प्रजाओं द्वारा उत्सवों में मित्रों द्वारा पुकारे जाने और निमन्त्रित किये जाने योग्य, सर्वश्रेष्ठ है । जब मननशील गुरु, या मनन करने योग्य सचिवादि के गुप्तमन्त्र द्वारा बल और ज्ञान में खूब प्रदीप्त होता है तब इस पृथिवी पर राजा, और अन्नादि के लाभ में पिता, और वाणी विद्या से प्राप्त कराने में आचार्य, पालक पिता के समान हो जाता है । वह चिरजीवी राज्यलक्ष्मी को वस्त्रों के समान बाह्य शोभा रूप से धारण करता हुआ या लक्ष्मी को स्वयं आच्छादन अर्थात् उसकी रक्षा करता हुआ, विविध ज्ञानों से युक्त, न्याय व्यवहारों द्वारा विवेकशील, और दुष्टों से राष्ट्र को कण्टकशून्य करता हुआ, श्रवण करने योग्य, ज्ञानवान् और यश का पात्र और बलवान् हो ।

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तु मेरे ग्राह्य उपदेश का श्रवण कर । ज्ञानवान् पुरुष चित्तदीप्ति वाले सूर्य या अग्नि के समान तेजस्वी होकर सब प्रकार की वाणियों से विविध ज्ञानों का देने वाला, शिष्य और पुत्र परम्परा से नित्य, सदा अमर हो जाता है । वह विविध ज्ञानों को धारण करने हारा कार्य सम्पादन करता है । उसके रमणीय उपदेशरूप 'रथ' को धारण करने वाले, दोष से रहित, आदित्य के समान तेजस्वी, वृद्धिशील या ज्ञानवान् स्त्री पुरुष धारण करते हैं ।

उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग नायक को, ऊपर उठने वाली अर्थात् अभ्युदय-शालिनी प्रजा के बीच उत्तम रीति से ऐश्वर्ययुक्त और अभिषिक्त करते हैं। और वह बहुत से सुवर्ण वाली अर्थात् ऐश्वर्य से सम्पन्न प्रजाओं के बीच उनका भी वश करने हारा होकर रहे। शत्रुओं द्वारा पीड़ित हुई प्रजा में भी वह अपने तेज के कारण बहुत बड़े २ बलों और सहायकों से न घिरा रहकर भी स्वयं उत्तम चित्त या उत्तम ज्ञान वाला तथा अन्यों को उपाय बतलाने वाला होकर रहता है ।

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ ४ ॥

भा०—समस्त प्राणियों में रहने वाले, तिर्यग् योनि में भी जाने वाले, जीवन रूप से और भी अधिक विस्तृत, सदा बढ़ने वाले, विविध रूपों से व्यापक, अन्नों द्वारा कार्य करने वाले द्रष्टृशक्तिरूप जीवात्मारूप अग्नि को हम अन्न से और जल से पुष्ट करते हैं।

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥ ५ ॥

भा०—नायक अग्रणी पुरुष साधारण मनुष्यों से आश्रय करने योग्य, चाहने योग्य रूप रंग वाला, अपने शरीर से खूब हृष्ट पुष्ट शत्रु को कभी सह नहीं सकता। उस प्रतिदेश में व्याप्त शक्तिशाली को सब प्रकार से मैं प्रजाजन अभिषिक्त करता हूँ, और वह राक्षसों से भिन्न उत्तम भद्रपुरुष के से चित्त से उस मेरे दिये ऐश्वर्य का प्रेम से सेवन करे।

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥२॥

भा०—हे ज्ञानवन् नायक ! तू श्रेष्ठ एवं शत्रु के निवारण करने वाले बल से शत्रुओं का विजय करता हुआ अपने सेवनीय अंश राष्ट्र को प्राप्त कर । हम दूतगण तुझको विचारने योग्य मन्त्र के समान यह हित उपदेश करते हैं । उत्तम वचनों से युक्त वाणी से मैं तुझको ऐश्वर्य का विभाग करने हारा, बहुत अधिक अन्न से सम्पर्क रखने हारे भोग्य पदार्थ का भागी स्वीकार करता हूँ । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[११]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८, १०, १३, १६, २० पंक्तिः । २, ६ भुरिक पंक्तिः । ३, ४, ६, ११, १२, १४, १८ निचृत् पंक्तिः । ७ विराट् पंक्तिः । ५, १६, १७ स्वराड् बृहती भुरिक् बृहती १५ बृहती ॥ २१ त्रिष्टुप् ॥ एकविंशर्चं सूक्तम् ॥

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू हमारी पुकार या निवेदन को सुन । हमें पीड़ा मत दे । हम तुझे ऐश्वर्यों के दान देने के लिये सदा उद्यत रहें । निश्चय से बसे प्रजाजन के बीच रहने वाले, अन्न और बल-पराक्रम से युक्त ये धनों के स्वामी बहते हुए महा नदों के समान तुझ को बढ़ाते हैं ।

सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! हे शूरवीर ! तू जिन पूर्व से विद्यमान् और पूर्वजों से शासित भूमियों को प्राप्त हुआ, और जिनकी मेघ के समान सिंचाई करता रहा है, वे भूमियां यदि मुकाबले पर मारने योग्य शत्रु ने घेर ली हों तो उस न मरने हारे आत्मा के समान अपने को अमर अविनाशी मानता हुआ और विद्योपदेशों से बढ़ता हुआ तू शत्रु को अवश्य छिन्न भिन्न कर, निचे गिरा डाल ।

उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥

भा०—हे शूरवीर सेनापते ! जिन उत्तम वचनों में और उपदेष्टाओं के स्तुतिवचनों या उपदेशों में तू कामनावान् है, और जिन में तू खूब हर्ष लाभ करता है, वे शुभ फल देने वाले वायु के समान बलशाली तेरे उपकार के लिये ही विस्तृत होते हैं ।

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे अति तेजस्वी चमचमाते बल को बढ़ाते हुए और बाहुओं में शुभ्र चमचमाते शस्त्रसमूह को धारण करने वाले शूरवीर पुरुष तुझे प्राप्त हों । और तू उनसे अतितेजस्वी सूर्य के समान बढ़ता हुआ हमारी प्रजाओं का नाश करने वाली शत्रुसेनाओं को सूर्य के समान संतापदायी नायक द्वारा पराजित कर । अथवा हमारी प्रजाओं और सेविका भृत्याओं को भी शत्रु बल को पराजित करने योग्य बना ।

गुहा हितं गुह्यं गूळहमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे निर्भय वीर ! तू अपने बल पराक्रम से, गुहा अर्थात् छिपने के स्थान में स्थित, अपने को छिपा लेने में कुशल, गुप्त और प्रजाओं के बीच ढके मायावी, और प्रजाओं को ही क्षीण करते हुए या प्रजाओं में घर किये हुए, दानशील और व्यवहारशील भाग को स्तम्भित अर्थात् विघ्नों से कार्य करने में असमर्थ बनाने वाले अवश्य हन्तव्य शत्रु का विनाश कर।

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे पहले किये बड़े कार्यों की हम स्तुति करें,

और नये किये गये कार्यों की भी स्तुति करें। बाहुओं में शस्त्रास्त्रसमूह धारण करना चाहते हुए आप की या बाहुओं में चमकते हुए शस्त्र की हम स्तुति करें। सूर्य की धारण और आकर्षण या ताप और प्रकाश दोनों प्रकार की किरणों के समान तेरे शौर्य को बतलाने वाले दोनों अश्वों की हम स्तुति करते हैं।

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥

भा०—हे सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्विन्! संग्राम में प्रयाण करने की इच्छा वाले तेरे दोनों अश्व, प्रताप को दर्शाने वाले शब्द या गर्जन को करते हैं। तेरा राष्ट्र बढ़े, वह खूब प्रसन्न हो। तू शत्रु पर चढ़ाई की इच्छा करता हुआ मेघ के समान प्रजापालन करने हारा संग्राम कर, और राष्ट्र में रमण कर, उसका सुख से उपभोग कर।

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥

भा०—पर्वत के समान अचल, मेघ के समान शत्रुओं पर और अपनी प्रजाओं पर शरों और ऐश्वर्यसुखों की वर्षा करने हारा, तथा पालन करने के साधनों में सम्पन्न पुरुष, सदा अप्रमादी रहता हुआ निरन्तर उच्च आसन पर बैठे। वह उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों से और माता के समान पालन पोषण करने वाली प्रजाओं और घोर गर्जन करने वाले तोप आदि साधनों से राष्ट्र को निरन्तर वश करता हुआ एक साथ अच्छे प्रकार आक्रमण करे। बहुत दूर २ तक वेदवाणी की वृद्धि करते हुए विद्वान् पुरुष, परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट वेदशास्त्र की वाणी का निरन्तर विस्तार करें।

इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा, बड़े भारी वेग से जाने वाले अश्व-

सैन्य का आश्रय लेकर, आलस्य प्रमाद में पड़े हुए, मायावी, छली, कपटी, बढ़ते हुए शत्रु का सर्वथा विनाश करे। और सिंहगर्जना करने वाले इस बलवान् पुरुष के वज्र या शस्त्रास्त्र बल से राजवर्ग और प्रजावर्ग स्वसैन्य और शत्रुसैन्य दोनों भय से कांपें। (२) अध्यात्म में सिन्धु और प्राणमय कोश में व्यापने वाला मायावी अर्थात् बुद्धि का स्वामी बलवान् मन वृत्र है। इसको अर्थात् आत्मा ही प्रेरित करता है। धर्ममेघ समाधि में आनन्दवर्षा करने वाले इस आत्मा के ज्ञानवज्र या चेतना से प्राण अपान दोनों चलते हैं।

अरो॑रवी॒द्वृष्णो॑ अ॒स्य॒ वज्रोऽमा॑नुषं॒ यन्मा॑नुषो नि॒जूर्वा॑त् ।
नि मा॒यिनो॑ दान॒वस्य॑ मा॒या अपा॑दयत्पपि॒वान्त्सु॒तस्य॑ ॥१०॥४॥

भा०—इस बलवान्, शस्त्रवर्षणकारी पुरुष का शस्त्रास्त्रबल घोर गर्जन करे, और जो मननशील ज्ञानवान् है वह विनाश करे। दुष्टभाषण करने वाले, व्रतादि का खण्डन करने वाले पुरुष की समस्त मायाओं को वह वीर विनष्ट करे, नीचे गिरावे। इति चतुर्थो वर्गः॥

पिबा॑पि॒बेदि॑न्द्र शूर॒ सोमं॒ मन्द॑न्तु त्वा म॒न्दिन॑ः सु॒तास॑ः ।
पृ॒णन्त॑स्ते कु॒क्षी व॑र्धयन्त्वि॒त्था सु॒तः पौ॒र इन्द्र॑माव ॥ ११ ॥

भा०—हे शूरवीर! जिस प्रकार सोम ओषधिरस या प्राणवायु का पान किया जाता है उसी प्रकार तू ऐश्वर्य का बराबर उपभोग कर। उत्पन्न अपने पुत्रों के समान अति हर्षजनक अभिषेक प्राप्त अध्यक्ष जन तुझे हर्षित करें। कोखें पूरने वाले भोजनों के समान वे अध्यक्षजन तेरी कोखों को पूर्ण करें। अर्थात् दांये बांये रहकर तेरे बल को बढ़ावें। इस प्रकार अभिषिक्त पुर का अध्यक्ष पुरुष राजा और समृद्ध राज्य दोनों की रक्षा करे।

त्वे इ॑न्द्रा॒प्य॑भूम॒ विप्रा॒ धियं॑ वनेम ऋत॒या सप॑न्तः ।
अ॒व॒स्यवो॑ धीमहि॒ प्रश॑स्तिं स॒द्यस्ते॑ रा॒यो दा॒वने॑ स्याम ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे अधीन रह कर हम विविध विद्या और धनों को पूर्ण करने वाले तथा सत्य वाणी से सम्बद्ध होते हुए रहें। उत्तम कर्म और ज्ञान का सेवन और आचरण करें। ज्ञान रक्षा और उत्तम आनन्द लाभ की इच्छा करते हुए हम तेरी उत्तम स्तुति को धारण करें और तेरे उत्तम शासन को बनाये रखें। हम प्रजाजन शीघ्र ही तेरे ऐश्वर्य दान के सत्पात्र हों।

स्याम॒ ते त॑ इन्द्र॒ ये त॑ ऊ॒ती अ॑व॒स्यव॒ ऊर्जं॑ व॒र्धय॑न्तः ।
शु॒ष्मिन्त॑मं॒ यं चा॒कना॑म देवा॒स्मे र॒यिं रा॑सि वी॒रव॑न्तम् ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जो हम लोग तेरे पालन सामर्थ्य से रक्षा, ज्ञान, प्रीति, शत्रुनाश, वृद्धि आदि की कामना करते हुए बल पराक्रम को बढ़ाते रहते हैं, वे हम तेरे होकर रहें। जिस अधिक बल वाले, वीर्यवान् पुत्र भृत्य मित्रादि से युक्त ऐश्वर्य को हम चाहते हैं, हे राजन् ! तू वही हमें प्रदान करता है।

रासि॒ क्षयं॒ रासि॑ मि॒त्रम॒स्मे रासि॒ शर्ध॑ इन्द्र॒ मारु॑तं नः ।
स॒जोष॑सो॒ ये च॑ मन्द॒साना॒ः प्र वा॒यव॑ः पा॒न्त्यग्र॑णीतिम् ॥ १४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् देव ! तू हमें निवास करने योग्य घर दे। हमें मित्र प्रदान कर, हमें वायुओं का सा प्रबल बल प्रदान कर। और जो सब को हर्षदायक, समान रूप से परस्पर प्रेम करने वाले हैं और जो सर्वश्रेष्ठ नीति और युद्ध में आगे बढ़ती सेना की रक्षा करते हैं वे विज्ञानवान् और बलवान् होने से 'वायु' नाम से कहाने योग्य हैं।

व्य॑न्त्विन्नु येषु॑ मन्द॒सान॑स्तृ॒पत्सोमं॑ पाहि द्र॒ह्यदि॑न्द्र ।
अ॒स्मान्त्सु पृ॒त्स्वा त॑रु॒त्राव॑र्धयो॒ द्यां बृ॒हद्भि॑र॒र्कैः ॥ १५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस पूर्व कहे विद्वानों और वीर पुरुषों के आश्रय होकर प्रजाजन ऐश्वर्य की कामना करते और उसको प्राप्त करते और भोग करते हैं, उन पर ही निर्भर रह कर हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू भी पूर्ण तृप्त और

दृढ़ होकर उस ऐश्वर्य की रक्षा कर। हे संकटों और अविद्या से पार उतारने हारे! सूर्य जिस प्रकार बड़े २ प्रकाशों से और अन्नों से भूमि और आकाश को बढ़ाता, समृद्ध करता है, उसी प्रकार तू हमें संग्रामों के बीच बड़े उत्तम २ विचारों और तेजस्वी पूज्य वीर पुरुषों से बढ़ा। इति पञ्चमो वर्गः॥

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान्।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन्॥ १६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे दुःखों से पार उतारने वाले! जो पुरुष वेदोक्त वचनों से सुखस्वरूप तेरी सेवा करते, तेरी उपासना करते, तेरे सुख का आनन्द अनुभव करते हैं वे निश्चय से बहुत बड़े आदमी हो जाते हैं। वे तेरी रक्षा में रहते हुए, गृह के समान वृद्धिशील राष्ट्र को विस्तृत करते हैं। वे ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र।
प्र दोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम्॥१७॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष! तू तेजस्वी वीर पुरुषों के बीच अति प्रसन्न होता हुआ तीनों लोकों में सूर्य के समान, ऐश्वर्य का उपभोग कर। हे विद्वन्! आचार्य! तू तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों पर प्रसन्न होकर शरीर, आत्मा और मन तीनों की तपस्याओं, वा तेजस्विता, वेदवाणी और दीर्घ आयु इन तीनों के प्राप्त करने के लिये वीर्य की रक्षा कर, अथवा 'सोम' अर्थात् विद्या के इच्छुक शिष्य की रक्षा कर। हे शूरवीर! तू शरीर में स्थित बालों के समान अपने शरीर पर आश्रित जनों पर अति प्रसन्न होकर उनके ही बल पर अपने शत्रुओं को खूब अच्छी प्रकार कंपा, भयभीत कर। और अश्वों के द्वारा राष्ट्र की अपने पुत्र के समान पालन कर और अन्नरस के समान भोग को प्राप्त कर।

धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम्।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र॥ १८॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र वायु जल देने वाले मेघ को आच्छादन करने वाले मकड़ी के जाले के समान छिन्न भिन्न कर देता है, और मनुष्य के लिये सूर्य के प्रकाश को खोल देता है, और वह प्रकाशों का विघ्न-कारक मेघ एक ओर हट जाता है, उसी प्रकार हे वीर पुरुष ! जिस बल से अपने सैन्य आदि काटने वाले तथा बढ़ते हुए शत्रु को नाशकारी पुरुष मकड़ी के जाले के समान छिन्न भिन्न कर नीचे गिरा देता है, तू उस बल को धारण कर । और तू श्रेष्ठ पुरुष के लिये प्रकाश को प्रकट कर । हे ऐश्वर्यवन् ! वह तू संकटों का नाश करने हारा होकर दक्षिण हाथ में विराज, अर्थात् सबका पूज्य होकर रह ।

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ १९ ॥

भा०—जो पुरुष तेरे रक्षा आदि साधनों से समस्त स्पर्धा करने वाली ललकारने वाली शत्रु-सेनाओं और दुष्ट-पुरुषों को पार कर जाते हैं, हम उनको प्राप्त करें । हे राजन् ! तू हमारे उपकार के लिये और तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने वाले पुरुष के लिये, मित्रता के कारण, हमें वह उत्तम शिल्पी लोगों से प्राप्त होने योग्य रुचिकर रूप प्राप्त करा ।

अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥

भा०—सूर्य और विद्युत् जिस प्रकार तेज ताप से युक्त होकर मेघ को छिन्न भिन्न करता है, विद्युत् यन्त्र के चक्र को चलाता है, तथा बढ़ता हुआ मेघ को उत्पन्न करता और फैलाता है, उसी प्रकार शत्रुनाशकारी पुरुष अंगारों के समान दाहकारी वीर पुरुषों का स्वामी होकर, समस्त ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले तथा अतिहर्ष से युक्त, संघबल, सैन्यबल और धनबल तीनों प्रकार के साधनों से सम्पन्न राष्ट्र के हित के लिये, लक्षों सैन्य को बढ़ाता हुआ उसको खूब विस्तृत करे । वह सूर्य के

समान द्वादश राजचक्र को संचालित करे और घेरने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करे।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः २१।६।१

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! वह तेरी बल और उत्साह उत्पन्न करने वाली प्रभात वेला प्रकाशमयी होकर स्तुतिकर्ता पुरुष को श्रेष्ठ ज्ञान प्रत्यक्ष में प्रदान करती है। हे ऐश्वर्यवन्! तू हमारे बीच में ऐश्वर्यवान् होकर स्तुति करने वाले विद्वान् उपदेशकों को दान दे और उनको अतिक्रमण करके दुःखित मत कर। हम लोग उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञान प्राप्त कराने के लिये बहुत उत्तम एवं बड़े ज्ञान वेद का उपदेश करें। इति सप्तमो वर्गः॥

इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[१२]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१—५, १२—१५ त्रिष्टुप्। ६—८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ भुरिक् त्रिष्टुप्। पंचदशर्चं सूक्तम्॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥१॥

भा०—जो अपनी शक्तियों से प्रकट होकर सबके आदि में विद्यमान, मननशील, सूर्य के समान सबका प्रकाशक, अपने ज्ञान और कर्म के बल से समस्त पृथिवी आदि पदार्थों को सब प्रकार सुशोभित करता है, जिसके बल से आकाश और पृथिवी दोनों कांपते और चल रहे हैं, हे मनुष्यो! ऐश्वर्य की महत्ता से वह 'इन्द्र' कहलाता है।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! जो चलायमान, अति विरल और तरल पदार्थों से बनी, भूकम्पों से कांपती हुई पृथिवी को दृढ़ करता है, जो

खूब भड़कते हुए, आग उगलते हुए पर्वतों को रम्य बनाता है, जो बहुत बड़े अन्तरिक्ष को बनाता है, जो सूर्य आदि लोकों से मण्डित ऊपर के आकाश को थाम रहा है, वह परमैश्वर्यवान् होने से परमेश्वर ही 'इन्द्र' कहाता है।

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

भा०—जो सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुमय स्वरूप को व्यापक-कर, उनमें आघात या गति या प्रथम स्पन्दन उत्पन्न करके उनमें गति या क्रिया उत्पन्न करता है और जो निरन्तर गति करने वाले प्रकृति के त्रसरेणुमय अवयवों को चलाता है, जो वेदवाणियों को उत्तम रीति से प्रकट करता है, या जो गौ अर्थात् सूर्यों और पृथिवी आदि लोकों को ऊपर आकाश में चला रहा है, जो घेरने वाले अज्ञान आवरण को दूर हटाता, जो परस्पर उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष, नर मादा दोनों के बीच अग्नि अर्थात् चेतना जीव को उत्पन्न करता है, जो हर्षावसरों में समस्त दुःखों को दूर करता है, हे विद्वान् जनो! वह इस समस्त संसार का संचालक, द्रष्टा 'इन्द्र' है।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

भा०—जिसने ये समस्त गतिशील सूर्य आदि लोक बनाये या जिसने इन सबको गतिमान् किया है, जो नीचे ले जाने वाले तथा नाश उत्पन्न करने वाले स्वीकृत रूपों को दबा देता है, व्याध जिस प्रकार निशाने को नहीं चूकता उसी प्रकार सर्वविजयी, होकर पोषण योग्य लाखों देहों का स्वामी होकर अपने वश में रखता है, हे लोगो! वही परमेश्वर है।

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ५।७

भा०—जिस परमेश्वर के विषय में प्रायः लोग पूछा करते हैं कि बतलाओ वह कहां है? और इस परमेश्वर को कुछ लोग घोर, सबका हनन करने वाला भयानक काल बतलाते हैं, और कुछ लोग इसके विषय में कहा करते हैं कि वह है ही नहीं, वह सबका स्वामी उद्वेगकर्त्ता पुरुष के समान समस्त पदार्थों का विनाश करने में भी समर्थ है। इसके विषय में सत्यज्ञान प्राप्त करो, विश्वासपूर्वक यह सत्य जानो कि हे विद्वान् लोगो! वही 'इन्द्र' सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर है। इति सप्तमो वर्गः ॥

यो रध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒ यो ब्र॒ह्मणो॒ नाध॑मानस्य की॒रेः। यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शि॒प्रः सु॒तसो॑मस्य॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥६॥

भा०—जो उत्तम रीति से आराधना करने वाले उपासक का सत् शास्त्रानुकूल प्रेरणा करने हारा है, जो कृश, निर्बल और स्वल्प धन और शक्ति वाले को साहसपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा करने वाला है, जो वेद और वेदज्ञ को प्रेरने वाला है, वेद का ऋषियों के हृदय में प्रकाश करने वाला, वेदज्ञ विद्वानों को उपदेश द्वारा अन्यों पर अनुग्रह करने के लिये प्रेरित करने वाला है, जो हृदय में पाप कर्मों के लिये पश्चात्ताप करने वाले जो पुनः सन्मार्ग में सदाचार पूर्वक रहने की प्रेरणा करने हारा है, जो स्तुति करने वाले और उत्तम कार्य करने वाले को उत्तम कार्य की प्रेरणा करता है, जो उत्तम ज्ञानों वाला तथा उत्तम शक्तिशाली होकर, 'ग्रावा' अर्थात् उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों के सत्संग करने वाले का रक्षक और उत्तम ऐश्वर्यों, ज्ञानों और उत्तम शिष्यों को उत्पन्न करने वाले वैश्य, विद्वान्, शिष्य और आचार्य इनका रक्षक, और उनकी इच्छापूर्त्ति करने और आनन्द देने हारा है, हे विद्वान् पुरुषो! वस्तुतः वह ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' है।

यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः। यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां ने॒ता स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ७ ॥

भा०—जिस परमेश्वर के निर्देश में अश्व तथा शीघ्रगामी और व्यापक पृथिवी सूर्य आदि और विद्युत्, आयु आदि हैं जिसके निर्देश में गौएं वेद वाणियां, इन्द्रियां, उत्तम भूमियां और गतिमान् सभी लोक हैं, जिसके निर्देश में समस्त 'ग्राम' अर्थात् संघ हैं, जो परमेश्वर सबके प्रेरक सूर्य और उसके समान उत्पादक वीर्यवान् पुरुष को और जो कमनीय कान्तिवाली, प्रभात वेला को उत्पन्न करता है, जो समस्त नदियों, प्रकृति के परमाणु, कारण दशा में स्थित तत्वों, लिङ्ग, शरीरों, लोकों आदि का भी नायक, संचालक है, हे मनुष्यो ! वही 'इन्द्र' है ।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

भा०—जिस परमेश्वर को दुःखों के कारण रोने वाले तथा उत्तम मार्ग में यत्नशील स्त्री पुरुष विविध प्रकार से पुकारते हैं, जिसको उत्तम कोटि के और निकृष्ट कोटि के बड़े छोटे, ऊंचे नीचे सभी शत्रुगण भी विविध प्रकार से बुलाते हैं, और एक ही रथ पर बैठे हुए स्त्री पुरुष भी भिन्न २ नामों से याद करते हैं, हे मनुष्यो ! वह परमेश्वर 'इन्द्र' है ।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥९॥

भा०—जिस परमेश्वर के विना मनुष्य काम आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं करते, देवासुर-संग्राम में एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लोग भी जिसको अपनी रक्षा के लिये पुकारते हैं, जो समस्त विश्व का मापनेवाला है, दृढ़ से दृढ़ पदार्थों और दुर्गों और शत्रुगण को भी गिरा देने और भय से विमुख कर देनेहारा है, हे पुरुषो ! वह 'इन्द्र' है !

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान । यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥८॥

भा०—जो बड़ा भारी पाप करनेवालों को और शासन न मानने

और उत्तम मार्ग को न जानने वाले उच्छृङ्खलों और अज्ञानियों को सदा बाणों और शासनरूप दण्ड से नष्ट करता है। जो कुत्सित वाणी बोलने और निन्दित कर्म करनेवाले की निन्दित वाणी को कभी फलने नहीं देता और नाशकारी दुष्ट पुरुष का नाशक है, हे विद्वान् पुरुषो! वह ऐश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' पद से कहाता है। इत्यष्टमो वर्गः॥

यः शम्ब॑रं॒ पर्व॑तेषु क्षि॒यन्तं॑ चत्वारि॒ंश्यां श॒रद्य॒न्ववि॑न्दत्।
ओ॒जा॒यमा॑नं॒ यो अहिं॑ ज॒घान॒ दानुं॒ शया॑नं॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥११॥

भा०—४० वर्षों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करने वाले, पर्वतों में तपश्चर्या करते हुए तथा शांति को वरने वाले व्यक्ति को जो परमेश्वर प्राप्त होता है, अर्थात् ८ वर्ष की आयु से विद्याभ्यास आरम्भ कर ४८ वें वर्ष तक जो ब्रह्मचर्य तथा तपस्यापूर्वक विद्याभ्यास करता है परमेश्वर उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है, और जो परमेश्वर बल पकड़नेवाले, सर्प के समान कुटिल, मर्मच्छेदी, हृदय में अव्यक्त रूप से रहने वाले अज्ञान को नष्ट करता है, हे पुरुषो! वही सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यः स॒प्तर॑श्मिर्वृ॒षभ॒स्तुवि॑ष्मानवासृ॑जत्सर्त॑वे स॒प्त सिन्धू॑न्।
यो रौ॑हि॒णमस्फु॑र॒द्वज्र॑बाहु॒र्द्यामा॒रोह॑न्तं॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ १२ ॥

भा०—जो परमेश्वर सूर्य के समान सात रश्मियों वाला, मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला, वायु के समान बहुत बलवान् होकर, सर्वत्र गति करने तथा सब जगत् के संचालन करने के लिये; नदियों तथा प्राणों के समान सात प्रकृति-विकृतियों को रचता है। जो सशस्त्र वीर पुरुष के समान आकाश में वट के समान फैलते हुए संसार को ज्ञानवज्र से विनष्ट कर देता है, हे पुरुषो! वह परमैश्वर्यवान् 'इन्द्र' है।

द्यावा॑ चि॒दस्मै॑ पृथि॒वी न॑मेते॒ शुष्मा॑च्चि॒दस्य॒ पर्व॑ता भयन्ते।
यः सो॑म॒पा नि॑चि॒तो वज्र॑बाहु॒र्यो वज्र॑हस्तः॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥१३॥

भा०—आकाश और पृथिवी दोनों लोक इसके आगे झुकते हैं, इसके बल से ही पर्वत और मेघ भी भयभीत से होकर कांपते हैं। जो समस्त जगत् का पालक और समस्त ऐश्वर्यों का पालक, सर्वत्र व्यापक, वज्र के समान सब पापों को वर्जन करने में समर्थ, और उस वर्जनकारी बल से सबको दण्ड देने वाला है, हे मनुष्यो ! वही परमैश्वर्यवान् 'इन्द्र' परमेश्वर है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

भा०—जो परमेश्वर सवन, अर्थात् यज्ञ, प्रार्थना, उपासना, ज्ञानसम्पादन, ऐश्वर्य वृद्धि आदि करते हुए पुरुष की रक्षा करता है। जो परमेश्वर विद्या और बल परिपक्व करने और तपस्या से आत्मा को परिपक्व करने वाले की रक्षा करता है। अपनी रक्षाकारिणी शक्ति से स्तुति करने और अन्यों को ज्ञानोपदेश करने वाले की, और जो ऊंची गति करने वाले, अधर्म को लांघकर धर्ममार्ग में जाने वाले धर्मात्मा पुरुष की रक्षा करता है, जिसको वेद बढ़ाता, या जिसके गुणों का महान् स्वरूप प्रकट करता है, जिसकी महिमा को औषधिवर्ग और वीर्य बढ़ा रहा है, जिसकी यह समस्त आराधना और ऐश्वर्य है, हे पुरुषो ! वही परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥६॥

भा०—जो परमेश्वर दुर्धर्ष और अजेय होकर भी सवन, यज्ञ, प्रार्थना, उपासना करने वाले के लिये और बल, ज्ञान, और वीर्य को ब्रह्मचर्य और तपस्या से परिपक्व करने वाले पुरुष के लिये सब प्रकार का ज्ञान, धन, अन्न और बल प्रदान करता है, वह तू निश्चय से सत्य स्वरूप है, तेरी सत्ता में वस्तुतः कोई संदेह नहीं। हे परमेश्वर ! प्रति

दिन, हम लोग तेरे प्रिय और उत्तम वीर्यवान् होकर तेरे विषयक ज्ञान का उपदेश करें। (अथर्ववेद भाष्य का० २० । सू० ३४।१-१८) इति नवमो वर्गः ॥

[१३]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, १०, ११, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, १३ त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जती । ५, ६ विराट् जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते । तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार ऋतुमती स्त्री पुत्र उत्पन्न करने हारी होती है, और उससे उत्पन्न हुआ पुत्र जिन जलों के भीतर लिपटा हुआ बढ़ता है वह उन जलों के भीतर प्रविष्ट होकर रहता है, वह प्रेममयी माता ही उस अपने से उत्पन्न पुत्र को दूध पिलाने वाली होती है। किरण के समान सुन्दर उस बालक के लिये सबसे प्रथम वह दुग्ध ही पान योग्य होने से 'पीयूष' है और वह अति उत्तम, प्रशंसा-योग्य होता है। ठीक इसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषों की बनी सभा ही राष्ट्र के भोक्ता या तेजस्वी उदीयमान राजा को उत्पन्न करने वाली है। उससे प्रकट होकर वह उन आप्त पुरुषों और प्रजाओं में प्रवेश करता है जिनमें कि वह बढ़ता है। प्रेम से प्राप्त होकर वह उत्पादक मातारूप राष्ट्र प्रजा पुष्टिकारक पदार्थों का पान करा २ उसकी वृद्धि करती है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा के लिये वह ही प्रजा का दिया पुष्टिकारक अंश या भाग सबसे उत्तम है।

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् । समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥

भा०—दूध को स्तनों में धारण करती हुई, सहवासिनी होकर

पत्नी सर्व प्रकार से इस पति को प्राप्त हो। प्रजा को पालने के लिये भोजन उपस्थित करे। अनुकूल होकर चलने में उत्तम आचार से रहने वालों का यही एक जैसा मार्ग है। जो उन नाना व्यवस्थाओं को, बालकों की जननियों या माताओं या देवियों को सबसे प्रथम या मुख्य-रूप से जानता है, वही प्रशंसनीय है।

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते। विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर समस्त पदार्थ प्रदान करता है वही एक समस्त पदार्थों के अनुकूलवेदनीय सुखकारी उपयोग का उपदेश करता है। वह नाना रूपों को मूर्त्तिमान् और रुचिकर बनाता है, और उन २ कर्मों को करने वाला भी वह अकेला ही जाना जाता है। उस अद्वितीय परमेश्वर की ही ये समस्त विविध प्रेरणाएं हैं, वही एक सब संसार-सञ्चालन आदि की पीड़ाओं को सह रहा है। जो परमेश्वर उन सब क्रियाओं को पहले ही से कर रहा है और करता है वही सबसे अधिक स्तुतियोग्य है।

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते। असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥

भा०—अपनी प्रजाओं के हित के लिये गृहपति जिस प्रकार पोषण-कारी पशु, अन्न, भूमि आदि समृद्धि का विभाग करते हुए राजा का आश्रय लेकर बैठते हैं, उसी प्रकार लोग जिस परमेश्वर को प्रजाओं के हित के लिये समृद्धिमय जानकर विविध प्रकार से भजन करते हैं, और जिस प्रकार आगामी काल के लिये लोग ऐश्वर्य को गांठते हैं और जिस प्रकर लोग भविष्य के लिये अपनी पीठ या आधार को पक्का मजबूत बनाने हैं, उसी प्रकार जिस परमेश्वर को धन के समान विद्यमान तथा

देह से पीठ के समान संसार भर को थामने वाला, और प्रभावशाली जानकर उसके साथ प्रेम बनाकर उसको अपने से जोड़ते हैं। और मनुष्य जिस प्रकार अपनी दाढों से भोजन चबाकर खाता है उसी प्रकार जो परमेश्वर सब संसार का पालक होकर भी दाढों से भोजन के समान ही समस्तजगत् को प्रलय काल में ग्रास कर जाता है, और जो तू हे परमेश्वर! उन नाना कर्मों को सबसे पहले से ही करता आ रहा है वह तू वेदों द्वारा प्रशंसा के योग्य है।

अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—हे मेघ के नाशक सूर्य के समान अज्ञान-आवरण के नाशक परमेश्वर! तू सूर्य के प्रकाश के द्वारा अच्छी प्रकार से देखने के लिये पृथिवी को बनाता है। और जो तू वेग से जाती हुई भूमियों, नदियों और लोकों के मार्गों को प्रकट और बेरोक कर देता है। जलों से सींच कर जिस प्रकार अन्न से युक्त क्षेत्र ओषधिवर्ग को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष उत्तम स्तुतियों से सर्वप्रकाशक, बलवान् तुझको प्रकट करते हैं वह तू वेदवाक्यों से स्तुति के योग्य है। ति दशमो वर्गः ॥

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ।
सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥

भा०—जो परमेश्वर सूर्य के ऊपर निर्भर कर भोजन और श्रेष्ठ वृद्धि कर धन को प्रदान करता है, और जो परमेश्वर गीली ओषधियों से सूखे और मधुर अन्न आदि को प्राप्त करता है, वही परमेश्वर सूर्य में ही अपार खजाना गुप्त रूप से स्थापित करता है, और जो समस्त संसार का अकेला ही ईश्वर है वह तू प्रशंसनीय वचनों के योग्य है।

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥७॥

भा०—जो परमेश्वर अपने धारण सामर्थ्य या ईश्वरीय नियम से जगत् को पालन करने के हेतु फूलों वाली उत्तम फल उत्पन्न करने वाली और सब प्राणियों को रोगादि से बचाने वाली नाना ओषधि लताओं को धारण करता है और जो अन्तरिक्ष और पृथिवी में एक से एक भिन्न चमकने वाले पदार्थ उत्पन्न करता है और जो स्वयं महान् होकर नाना विनश्वर पदार्थों को रचता है वह तू स्तुति करने योग्य है ।

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर बहुत पदार्थों और लोकों को बनाने हारा है, जो बसने वाले प्राणियों के साथ विद्यमान मनुष्यों को मारने वाले घातक कारण का विनाश करने, अन्नादि से प्राप्त करने, और प्राणनाशक पदार्थों के नाश करने के लिये अन्न उत्पन्न करने वाली भूमि के मुख को सदा खुला रखता है वह ही तू स्तुति के योग्य है ।

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥

भा०—जिस परमेश्वर के दश गुणा सौ अर्थात् सहस्रों साथी हैं । जिस अद्वितीय परमेश्वर के गुणश्रवण और आनन्दलाभ करने के लिये वेद को तूने प्रेरित किया है जो बिना रस्सी के ही दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार बांध लेता है, जो विनाश से बचाने के लिये उत्तम रीति से रक्षा करने में कुशल है, वह तू हे परमेश्वर ! सबसे प्रशंसा करने योग्य है ।

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च सन्दृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—इस परमेश्वर के महान् पौरुष के अधीन ही सब प्रकार की नियम व्यवस्थाएं हैं। वे उसके पुरुषतत्व को हमें बतलाती हैं। सब मनुष्य सब कर्मों को करने वाले विश्वस्रष्टा की आराधना के निमित्त ही उत्तम ऐश्वर्य को धारण करते हैं। वह परमेश्वर ही सूर्य के समान छहों विस्तृत दिशाओं को या द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि और आपः, ओषधि इन छहों को, और पांच देखने वाली इन्द्रियों को धारण करता है; और जो तू पालक, पूरक और सबसे उत्कृष्ट है, वह तु सबसे श्रेष्ठ प्रशंसनीय है।

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु। जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

भा०—हे वीर परमेश्वर ! तेरा बल पराक्रम उत्तम रीति से गुरु जनों से उपदेश किये जाने योग्य है। तू एक ही महान् कर्म और ज्ञान के बल से समस्त बसे जगत् को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में कारणरूप से स्थिर रहने वाला और बलवान् जो तू है उस का ही ज्ञान और बल सर्वोत्कृष्ट है। वह तू जिन सब कार्यों को करता है वही तू प्रशंसनीय है।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्। नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू पापों से युक्त पुरुषों को इस संसार के कष्टमय महासागर से सुखपूर्वक तर जाने के लिये, कर्मबन्धनों का नाश करने और शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराने के लिये और तन्तु के समान शिष्यपरम्परा और पुत्रपरम्परा बनाये रखने के लिये भी ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग को रणमीय कर देता है। नीच पथ में रहते हुए को भी तू ऊपर उठाता है। दूर त्याग किये जिसको बन्धु बान्धव जन छोड़कर चले गये ऐसे अनाथ को भी ऊपर उठाता है। अन्धे अर्थात् ज्ञानहीन और बहरे अर्थात् उपदेशविहीन पुरुष को भी वेदज्ञान के उपदेश से युक्त करता है। वह तू प्रशंसनीय है।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! तेरा बहुत सा बसे प्राणिजनों और लोकों के हित के लिये धन है। जो बहुत ही अद्भुत धन है, हे सबको बसाने हारे! वह हमें दान देने के निमित्त दो। हम यज्ञ कीर्त्ति और ज्ञान में कुशल, उत्तम वीर्यवान् होकर, सब दिनों, यज्ञों, ज्ञानयोग्य शास्त्रों का बहुत गुण कथन करें, कहें। इति द्वादशो वर्गः॥

[१४]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ९, १०, १२ त्रिष्टुप्। २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्पंक्तिः। ११ भुरिक् पंक्तिः॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥

भा०—हे अध्वर अर्थात् हिंसारहित, परस्पर प्रेम, सत्संग, प्रजापालन के कार्यों की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषो! पात्रों से जिस प्रकार ओषधिरस निर्बलों को दिया जाता है और उससे उनको पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार साथ रहकर रक्षा करने वाले या एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य का भोग करने वाले सहयोगियों द्वारा ऐश्वर्यवान् पुरुष या राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ और हर्ष और तृप्ति को देने वाले अन्न को नहरों और वृष्टियों से खूब सींचो, अन्न की खूब खेती करो। वीर पुरुष सदा ही इस ऐश्वर्य, उत्तम अन्न, भक्ष्य पेय सामग्री की कामना करता रहता है। वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार इस जल का पान करना चाहता है उसी प्रकार राष्ट्र का प्रबन्ध करने और उसको बढ़ाने वाले राजा के उपभोग के लिये इस ऐश्वर्य और अन्न का पान, उपभोग प्रदान करो। यही वह चाहता है।

अध्व॑र्यवो यो अ॒पो व॑व्रि॒वांसं॑ वृ॒त्रं ज॒घाना॒शन्ये॑व वृ॒क्षम् ।
तस्मा॑ ए॒तं भ॑रत तद्व॒शाय॑ँ ए॒ष इन्द्रो॑ अर्हति पी॒तिम॑स्य ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त विद्वान् पुरुषो ! विद्युत् जिस प्रकार वृक्ष को भस्म कर देता है उसी प्रकार जो ज्ञान और प्रजा के कामों को घेरने वाले शत्रु का नाश करता है, उन २ नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को चाहने वाले इसके लिये इस ऐश्वर्य को लाओ, पूर्ण करो। यह शत्रुहन्ता वीर पुरुष ही इस राष्ट्र का उपभोग करने के योग्य है।

अध्व॑र्यवो यो दृभी॑कं ज॒घान॒ यो गा उ॒दाज॒दप॒ हि व॒लं वः ।
तस्मा॑ ए॒तम॒न्तरि॑क्षे॒ न वात॒मिन्द्रं॒ सोमै॒रोर्णु॑त॒ जूर्न वस्त्रैः॑ ॥३॥

भा०—हे हिंसारहित प्रजापालन के कार्यों को चाहने वाले विद्वान् पुरुषो ! जो शत्रुहन्ता वीर पुरुष प्रजा को त्रास देने वाले का नाश करता है, जो गौओं को गोपाल के समान भूमियों और प्रजाओं को उत्तम मार्ग में चलाता है, नगर पुर आदि के घेर लेने वाले शत्रु को मेघ को वायु के समान छिन्न भिन्न कर दूर करता है, उस पुरुष के लिये अन्तरिक्ष में वायु के समान यह समस्त ऐश्वर्य है। उत्तम वस्त्रों से जिस प्रकार वृद्ध या विद्योपदेष्टा गुरु को आदरपूर्वक सुशोभित करते हैं उसी प्रकार उस शत्रुघातक ऐश्वर्यवान् पुरुष को अच्छी प्रकार उत्तम वस्त्रादि से आच्छादित कलंकृत करो।

अध्व॑र्यवो॒ य उर॑णं ज॒घान॒ नव॑ च॒ख्वांसं॑ नव॒तिं च॑ बा॒हून् ।
यो अर्बु॑द॒मव॑ नी॒चा ब॑बा॒धे तमिन्द्रं॒ सोम॑स्य भृ॒थे हि॑नोत ॥४॥

भा०—प्रजा का हिंसा कार्य न हो ऐसा प्रबन्ध करने वाले हे विद्वान् शासक पुरुषो ! जो वीर पुरुष दूसरे के माल को या सत्य को छुपाने वाले और प्रतिघात करने वाले शत्रु का भी नाश करने में समर्थ है और जो सौ के बीच में अकेला रहकर भी शेष ९९ शस्त्रधारी हाथों को रण में पछाड़ सके, जो अरबों शत्रुगण को नीचे दबाकर पीड़ित कर सके, उस

सेनापति को ऐश्वर्य के धारण और राष्ट्र के पालन करने के लिये आगे बढ़ाओ। उसको राज्य का सर्वोत्तम पद प्रदान करो।

अध्व॑र्यवो॒ यः स्वश्नं॑ ज॒घान॒ यः शुष्ण॑म॒शुषं॒ यो व्यं॑सम्।
यः पिप्रुं॒ नमु॑चिं॒ यो रु॑धि॒क्रां तस्मा॒ इन्द्रा॒यान्ध॑सो जुहोत॥ ५॥

भा०—प्रजा में परस्पर के नाश को न चाहने वाले हे व्यवस्थापक लोगो! जो प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष को दण्डित करता है, जो प्रजा का रक्तशोषण करने वाले को और स्वयं किसी को शोषण या निर्बल न किया जा सकने योग्य अदस्य शत्रु को भी मार सके, जो विविध अंशों अर्थात् प्रजापीड़ित उपायों वाले दुष्ट को दण्डित करता है, जो अपना ही पेट भरने वाले और अधर्म को न त्यागने वाले को दण्डित करे, जो रुधि अर्थात् प्रजाओं को पाप करने से रोकने वाली नियम मर्यादाओं को लांघ जाने वाले का नाश करे, उस शत्रुनाशक वीरपुरुष के लिये समस्त अन्न आदि नाना उपभोग योग्य पदार्थ प्रदान करो।

अध्व॑र्यवो॒ यः श॒तं शम्ब॑रस्य॒ पुरो॑ बि॒भेदाश्म॑नेव पू॒र्वीः।
यो व॒र्चिनः॑ श॒तमिन्द्रः॑ स॒हस्र॑म॒पाव॑प॒द्भर॑ता॒ सोम॑मस्मै॥६॥१३॥

भा०—हे युद्धयज्ञ के सिद्ध करने में कुशल पुरुषो! जो प्रजा की शान्ति और सुख को रोकने वाले दुष्ट पुरुषों की पहले से ही विद्यमान सैकड़ों नगरियों या पलने के स्थानों या अड्डों को पत्थर के ढेले के समान अपने शस्त्रबल से तोड़ डाले, और जो पुरुष अति तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से युक्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रु के सैकड़ों नगर तोड़े और हजारों को छुरे से बालों के समान काट २ कर साफ कर दे, ऐसे बहादुर पुरुष के लिये राष्ट्र का ऐश्वर्य प्रदान करो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

अध्व॑र्यवो॒ यः श॒तमा स॒हस्रं॒ भूम्या॑ उ॒पस्थेऽव॑पज्जघ॒न्वान्।
कुत्स॑स्या॒योर॑तिथि॒ग्वस्य॑ वी॒रान्न्यवृ॑ण॒ग्भर॑ता॒ सोम॑मस्मै॥ ७॥

भा०—हे युद्धयज्ञ के कर्त्ता और राष्ट्र की हिंसा न चाहने वाले

विद्वान् पुरुषो ! जो भूतल पर स्वयं शत्रुहन्ता होकर, निन्दित आचरण करने वाले, अतिथिवत् अपने से ऊंचे पद पर स्थित पूज्य पुरुषों पर आक्रमण करने वाले, मनुष्य के सैकड़ों, हजारों वीरों को एक दम दूर करे, यह ऐश्वर्य या अभिषेक योग्य पद उसको प्रदान करो।

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रजापालन आदि उत्तम काम करने के अभिलाषी जनो ! नायक पुरुषो ! आप लोग जो कुछ भी स्वयं प्राप्त करना चाहें, उसे शीघ्र धारण करते हुए, उस ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होकर रहो और उसे भी प्राप्त कराओ। और जगत् प्रसिद्ध सेनापति या राजा के लिये बाहुबल से पवित्र हुआ ऐश्वर्य लाओ। हे उसके साथ संगति और मैत्री करने या ऐश्वर्य देने वाले पुरुषो ! उसको उत्तम प्रकार का ऐश्वर्य निःस्वार्थ भाव से प्रदान करो।

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम्।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त प्रकार के विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उसके लिये पक्व अन्न और सुखकारी समृद्धि उत्पन्न करो। वन में अच्छी प्रकार पवित्र किये पदार्थ के समान सैन्यदल के आधार पर प्राप्त ऐश्वर्य सेवन करने के निमित्त उत्तम रीति से लाओ। वह प्रेम से सेवन करता हुआ तुम्हारे हाथों से तैयार किये ऐश्वर्य को सब प्रकार से चाहता है। इसलिये इन्द्र पद पर स्थित सभापति के लिये अतिहर्षजनक ओषधिरस के समान पुष्टिप्रद एवं स्वच्छ पवित्र ऐश्वर्य प्रदान करो।

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥

भा०—हे प्रजापालन रूप यज्ञ की इच्छा करने हारे शासक विद्वान्

पुरुषो ! जिस प्रकार दूध से गौ का थान पूर्ण रहता है उसी प्रकार ऐश्वर्यों से पृथिवी के पालक राजा को खूब पूर्ण करो। मैं इस प्रजाजन के भरण पोषण के सामर्थ्य को जानता हूँ। राष्ट्रयज्ञ का करने वाला राजा भी इस देने वाले को जाने।

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रजापालन को चाहने और परस्पर हिंसा को न चाहने के इच्छुक पुरुषो ! जो व्यवहारयोग्य व्यापार से प्राप्त धन का और जो पृथिवी से प्राप्त होने वाले अन्न सुवर्ण आदि का और क्षमा अर्थात् भूमि से प्राप्त होने वाले क्षेत्र, सेना, पशु हस्ति आदि का भी राजा है, उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को, यव या अनाज से भड़ोले के समान, नाना ऐश्वर्यों से पूर्ण करो। हे नायको ! नाना अध्यक्ष जनो ! तुम्हारा कर्म ही वह रहे।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १३। मन्त्र १३॥ इति चतुर्दशो वर्गः।

[१५]

गृत्समद ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। ७ स्वराट् पंक्तिः। २, ४, ५, ६, ९, १० त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ८ विराट् त्रिष्टुप्। पंचदशर्चं सूक्तम्॥

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

भा०—उस महान् सत्यस्वरूप परमेश्वर के बड़े २ सच्चे २ कार्यों और साधनों का अच्छी प्रकार वर्णन करता हूँ। वह परमेश्वर तीनों लोकों में अथवा सूर्य आदि और पृथिवी आदि लोकों और मनुष्य आदि प्राणियों में उत्पन्न जगत् सर्वप्रेरक बल, और प्राणों की रक्षा करता है।

अपने अति आनन्दमय स्वरूप में प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म रूप को वह ऐश्वर्यवान् प्रभु बिनष्ट करता अर्थात् विकृत करता है।

अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २॥

भा०—बांस या स्तम्भ के विना ही जो शून्य में बड़े भारी नक्षत्र आदि से भरे द्युलोक को स्थिर कर रहा है। इसी प्रकार बिना आश्रय के ही सूर्य पृथिवी दोनों लोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी को भी धारण कर रहा है। और पृथिवी को विस्तृत करता है। ऐश्वर्यवान् परमेश्वर यह सब जगत् के सञ्चालक बल के कारण ही करता है।

सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३॥

भा०—माप २ कर जिस प्रकार घर बनाया जाता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने निर्माणसाधनों से और विज्ञानयुक्त नियमों से अति वेग से चलने वाले या प्राचीन और वर्त्तमान के भी समस्त लोकों को विशेष रूप से रचता है। वह मानो वज्र से नदियों के खुदे मार्गों को काटता है। और दूर तक जाने वाले मार्गों से जाने के लिये उन नदियों को अनायास ही रचता है। वह सर्वप्रेरक और उत्पादक बल को अपने वश में रखने के कारण ही ये सब कर्म करता है।

स प्रवोळ्हॄन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४॥

भा०—समस्त पदार्थों के संयोग और विभाग करने में समर्थ प्रकृति के परमाणु २ तक को छिन्न भिन्न करने हारा वह 'इन्द्र' परमेश्वर विनाश या प्रलय को अच्छी प्रकार लाने वाले अग्नि जलादि तत्वों को व्यापकर, अग्नितत्व के खूब प्रज्वलित हो जाने पर एक दूसरे पर आघात प्रतिघात करने वाले समस्त संसार को भस्म कर देता है। और वही

परमैश्वर्यवान् प्रभु इस जगत् को गौओं अश्वों और रथादि साधनों से रच देता है। उत्पन्न होने वाले जगत् के उन २ नाना कर्मों को वह परमेश्वर अति आनन्द में मग्न रहता ही करता है। अथवा उन २ कर्मों को वह प्रभु उत्पादक और प्रेरक बल के हर्ष या उत्कर्ष होने से ही करता है।

स ईं मही धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ५।१५

भा०—वह परमेश्वर चलने वाले जल और चलने वाली इस बड़ी भारी पृथ्वी को भी बराबर चलते रहने के लिये प्रहार करता है, उसको गति देता रहता है। और वह इस बड़ी भारी नदी के समान बराबर चलने वाले प्रवाह से अनादि संसार को या तृष्णा रूप नदी को पार होने के लिये इस नदी का नाश कर देता है। उस भोगतृष्णा से पूर्ण नदी में स्नान न करने वालों, उसमें न डूबने वालों को बड़े कल्याण और सुख के साथ पार कर देता है। वे उस नदी से पार निकल कर महान् ऐश्वर्य को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं। ऐश्वर्यवान् प्रभु ये सब कार्य अपने महान् उत्पादक सामर्थ्य के सर्वातिशायी होने के कारण करता है।

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से बन्धन में पड़े तथा उन्नत मार्ग पर चलने वाले जीव को स्वयं प्राप्त करता, उस पर अनुग्रह करता है। अपने ज्ञानवज्र से प्रभात वेला के समान कान्तिमती चेतना के शकटरूप इस देह को अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है अर्थात् विदेह मुक्ति प्राप्त होती है। स्वयं वह प्रभु निर्वेग, निष्क्रिय रहकर भी वेग वाली ज्ञान क्रियाओं से क्लेशों को काट डालता है। यह सब वह प्रभु सोम अर्थात् उत्पन्न होने वाले एवं प्रभु के उपासना करने वाले जीव के आनन्द के निमित्त ही करता है।

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥

भा०—वह विद्वान् परमेश्वर दीप्ति वाले लोकों या प्रकाशों के आच्छादक घोर तम को दूर करता है। और प्रकट होकर उच्च पद पर स्थित होता है। वह परमेश्वर सबकी प्रार्थनाओं को सुनने वाला होकर प्रत्येक स्थान में विद्यमान है। वह विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होता है और विविध ज्ञानों को प्रकाशित करता है। वह विविध कर्मों का उपदेश करता है। महान् ऐश्वर्य के अति उत्कर्ष के कारण या उत्पन्न संसार और जीवगण के आनन्द लाभ के निमित्त परमेश्वर यह नाना कार्य करता है।

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥

भा०—परमेश्वर विद्वान् ऋषियों द्वारा और तेजस्वी सूर्य आदि लोकों द्वारा, जगत् के ज्ञान को घेरने वाले अज्ञान को और चक्षु आदि को घेरने वाले अन्धकार को नष्ट करता है। वह स्तुति किया जाता है और वही पोरु पोरु से बने हुए देह के दृढ़ अंगों को विविध शक्तियों से संचालित करता है। इन प्राणियों की भिन्न २ निमित्तों से उत्पन्न रुकावटों को दूर कर देता है। वह प्रभु जीवों को आनन्द देने या सर्वैश्वर्यवान् होने से ये सब कार्य करता है।

स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर आलस्य के द्वारा दूसरों के ऐश्वर्य पर मुंह लगाने वाले और अन्यों को त्रास देने वाले दुष्ट पुरुष को उखाड़ कर नष्ट कर देता है। इसी प्रकार हिंसक पुरुष का भी नाश करता है। वह समस्त विश्व का बनाने वाला प्रभु इस लोक में हित और रमणीय

वस्तु को प्राप्त कराता है। सोमस्य मदे० इत्यादि पूर्ववत्! 'प्राव:'—अवधातुरत्र हिंसार्थः। भ्वादिः॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१०॥१६॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १।१।२१॥ हे ऐश्वर्यवन्! तेरी वह उत्साह उत्पन्न करने वाली धनैश्वर्यवती दानक्रिया उत्तम उपदेश करने वाले विद्वान् को निश्चय से श्रेष्ठ अभिलषित फल प्राप्त करावे। तू हममें ऐश्वर्यवान् होकर ज्ञानोपदेष्टा लोगों को दान कर, उनका अतिक्रमण या तिरस्कार करके उनको दग्ध या संतप्त न कर। हम उत्तम पुत्र और भृत्यवान् होकर ज्ञानादि के अवसर पर वृद्धिकर वचन और स्तुति कहें और उपदेश करें। इति षोडशो वर्गः॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ७ जगती। विराड् जगती ४, ५, ६, ८ निचृज्जगती च। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे॥ १॥

भा०—यज्ञ में अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर जिस प्रकार सर्वोपरि स्तुतियोग्य परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति और अग्नि में अन्नादि चरु दिया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! मैं आप समस्त सत्पुरुषों के बीच में सबसे अधिक स्तुतियोग्य, विद्या, ऐश्वर्य और आयु में सबसे बड़े के लिये यज्ञ में उत्तम स्तुति और उत्तम अन्नादि पदार्थ प्रस्तुत करूं। कभी नाश न होने वाले, कभी जरावस्था को प्राप्त न होने वाले, अपरिणामी, नित्य, कालक्रम से स्थावर और जंगम सबको जीर्ण करते हुए, मेघ के समान सबके सेचक, सदा से युवा परमेश्वर को हम रक्षा आदि कार्यों के लिये पुकारें।

यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या। जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥

भा०—जिस महान् 'इन्द्र', परमेश्वर से भिन्न कुछ भी अन्य पदार्थ नहीं। इसके आश्रय में ही समस्त बल वीर्य एक स्थान पर एकत्र हुए हैं। वह परमेश्वर अपने पेट में ओषधिरस के समान समस्त जगत् और ऐश्वर्य को धारण करता है। अपने विस्तृत व्यापक रूप में बड़े भारी बल को धारण करता है। वह हाथ में खड्ग के समान ज्ञानवज्र को धारण करता और शिर या मस्तक भागों में सर्वोपरि प्रज्ञा और उत्तम विज्ञान धारण करता है।

न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः। न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र चलने वाले अश्वों द्वारा कोई पुरुष बहुत से योजनों तक चला जाता है उसी प्रकार हे परमेश्वर! शीघ्रगति करने वाले तत्वों से तू बहुत से योगों से बने पदार्थों में व्यापता वा उन्हें बनाने में समर्थ है। तेरा ऐश्वर्य आकाश और पृथिवी दोनों से भी नहीं नापा जा सकता। वह उन दोनों से कहीं अधिक है। और तेरा रथ अर्थात् रमण करने योग्य आनन्दरस भी मेघों से कम नहीं, उनसे भी कहीं बढ़कर है। वह समुद्रों से भी कम नहीं है। समुद्रों और मेघों का जलरूप रस भी उस आनन्दरस से कहीं न्यून है। तेरे बलवीर्य को कोई पा नहीं सकता।

विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते। वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥

भा०—दानशील, आदर सत्कार, सत्संग, मान और पूजा के योग्य, सबको पराजित करने हारे, सुखों की वृष्टि करने वाले, सर्वत्र व्यापक उस परमेश्वर के प्राप्त करने और जानने के लिये सब ही यज्ञ करते,

अपनी बुद्धि को दौड़ाते और यत्न करते हैं। हे प्रभो! तू सब सुखों का वर्षण करने वाला, सबसे बड़ा विद्वान्, विशेष रूप से अलंघनीय, है। तू अन्नादि पदार्थों से हमें समस्त सुख प्रदान कर। वर्षा करने वाले प्रकाशमान सूर्य और विद्युत् द्वारा हे ऐश्वर्यवन्! इस जगत् का पालन कर।

वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ५॥१७

भा०—वेदमय ज्ञानकोश, तथा सुखों और आनन्दों के वर्षक मधुर ज्ञान की दीप्ति, ये दोनों सुखों के वर्षक प्रभु के आनन्द को अन्न के समान उपयोग करने वाले बलवान् आत्मा के पालन करने के लिये हैं। यज्ञशील स्त्री पुरुष अखण्डित ब्रह्मचर्य के पालक हों। लोग भी बलवान्, दृढ़ और ज्ञानजलों के वर्षक हों। वे पुष्टिकारक ओषधिरस को तथा ज्ञान और ऐश्वर्य को उत्पन्न करें और प्रदान करें।

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! तेरा वज्र सुखों का वर्षक और शत्रुओं की शक्ति का प्रतिबन्धक हो। तेरा रथों का बल शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रवर्षी हो। तेरे दोनों अश्व बलवान् हों। तेरे शस्त्रास्त्र दृढ़ हों। हे सर्वोत्तम! बलशाली दमन का और सुखों के वर्षक ऐश्वर्य का तू स्वामी हो। उससे तू सदा तृप्त हो।

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे॥७॥

भा०—ऐश्वर्यों या शसानकार्यों के बीच में प्रतिपक्षियों के पराजय करने में समर्थ होकर मैं, संग्रामों में तुझको नाव के समान तारक तथा आज्ञावचन का स्वामी जानकर तुझको ही धन सहित प्राप्त होता हूँ। तू हमारे इस वचन को ही बहुत समझता है। हम ऐश्वर्यवान् तुझको जल

के कूप के समान ऐश्वर्य का अक्षय कूप जानकर रात दिन अपने क्षेत्र सींचते हैं, अपना कारबार पुष्ट करते हैं। परमेश्वर भी जीवन-संग्राम में नाव के समान है। वेदवचनों का स्वामी होने से 'वचस्यु' है। मैं काम क्रोध आदि को दबा कर उपासना के अवसरों में वेद मन्त्र से उसकी प्रार्थना करूं। वह हमारे इस थोड़े से बचन को बहुत करके लेता है। उसको हम परमैश्वर्य का अक्षय कूप जानकर उससे अपने क्षेत्र आत्मा को निरन्तर सींचें।

पुरा संम्बाधादभ्या वंवृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवंसस्य पिप्युषी।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसी-
महि ॥ ८ ॥

भा०—घास चारे के ऊपर परिपुष्ट होने वाली गाय जिस प्रकार बछड़े के पास प्रेम से उस पर संकट आने के पूर्व जा आती है, उसी प्रकार पीड़ा या विपत्ति होने के पूर्व ही तू हमें प्राप्त हो। हे अपरमित ज्ञान और क्रियासामर्थ्य से युक्त! स्त्रियों से जिस प्रकार उनके इच्छुक पुरुष मिल जाते हैं उसी प्रकार तेरे उत्तम ज्ञानों से हम एक बार अच्छी प्रकार व्याप जावें।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुंहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षां स्तोतृभ्यो माति धग्भगों नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ९।१८

भा०—व्याख्या देखो सू० २।१५।१० ॥ अष्टादशो वर्गः ॥

[१७]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराड् जगती। २, ४ निचृज्जगती। ३, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत्पंक्तिः॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तदंस्मै नव्यमङ्गिरस्वदंर्चत शुष्मा यदंस्य प्रत्नथोदीरंते।
विश्वा यद्गोत्रा सहंसा परींवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरंयत् १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! इस सूर्य की प्रेरकशक्ति के अंश जो कि पुरातन काल से वर्त्तमान रहते हुए उदय को प्राप्त होते हैं, प्रकट होते हैं, उनको और जो भी समस्त बीज भूमि में सुरक्षित रहते हैं वे जब एक साथ ही अंकुर रूप में परिवर्तित होकर बाद में और भी पुष्ट हो जाते हैं उन सबको वह परमेश्वर आनन्द विकास के लिये, या जगत् के हर्ष के लिये बढ़ाता, प्रेरित करता है। इसलिये परमेश्वर के उस सामर्थ्य को प्राण के समान स्तुति या वर्णन योग्य जान कर उसकी उपासना करो।

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत्।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥

भा०—वह परमेश्वर ही होना सम्भव है जो निश्चय से सबसे प्रथम इस संसार के धारण पोषण करने के लिये बड़ा बल पराक्रम प्रकट करता हुआ अपने महान् सामर्थ्य और स्वरूप को सर्वत्र प्रकट करता है। युद्धों में शूरवीर जिस प्रकार अपने शरीर को सब तरफ से कवच आदि से सुरक्षित कर लेता है उसी प्रकार मानो जगत् में व्यापक परमेश्वर भी अपने आप को सब ओर से ढंक सा लेता है। जिस प्रकार सिर पर वीर पुरुष उजली पगड़ी या मुकटादि पहरता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से तेजस्वी सूर्य या नक्षत्रादि मण्डित आकाश को धारण किये हुए है।

अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥ ३ ॥

भा०—और हे परमेश्वर ! तू सबसे प्रथम सबसे आदि में, बड़े जगत् को उत्पन्न करने और चलाने में समर्थ बल वीर्य को प्रकट करता है, और जो तू इस जगत् के भी पूर्व अपने ज्ञान के अनुसार बल को प्रकट करता है तब जिस प्रकार रथ में स्थित तीव्र अश्वों के संचालक

सारथि द्वारा विशेष रीति से चलाए गये वेगवान् अश्व एक साथ और पृथक् २ भी वेग से दौड़ते हैं. उसी प्रकार सूर्यरथ में स्थित आकर्षक व्यापक शक्ति से विविध दिशाओं में चलाये गये वेगवान् ग्रह एक स्थान आकाश में रहकर, पृथक् २ अपने २ गतिमार्गों या क्रान्तिमार्गों पर खूब वेग से दौड़ लगा रहें हैं।

अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत। आ रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४ ॥

भा०—और जो समस्त उत्पन्न लोकों और पदार्थों में भी व्याप कर अपने महान् बल से अपने को सबका ईश्वर प्रकट करता हुआ, सबसे उत्कृष्ट बलशाली होकर बहुत बड़ा हो जाता है, अग्नि जिस प्रकार तेज से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी अपने तेज से या सूर्यादि द्वारा आकाश और पृथिवी दोनों को दो पक्षों के समान मानो सींकर फैला देता या व्यापता है। और दूर २ तक स्थित अंधकारों को सूर्य के समान अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है।

स प्राचीनान्पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः। अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥५॥१६

भा०—वह परमेश्वर अति पुरातन, पर्व पर्व अर्थात् तह पर तह जमने से बने पर्वतों को काल क्रम से और भी दृढ़ करता है, और जलों के भी सार भाग अन्न को नीचे भूमि तल पर उत्पन्न करता है। वह समस्त जगत् का पोषण करने वाली पृथिवी को धारण कर रहा है। और अपनी निर्मात्री व्यापक शक्ति से आकाशमण्डल और उसमें स्थित ग्रह तारा सूर्य जगत् को नीचे गिरने या स्थानभ्रष्ट होने से थामे रहता है।

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि। येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥ ६ ॥

भा०—परमेश्वर जगत् के जन्म होने से लेकर इसे सब प्रकार से पुत्र को पिता के समान खूब अलंकृत करता है। वह परमेश्वर बहुत ऐश्वर्य के देने से 'तुविष्वनि' है। वह हिंसाकारी दुष्ट पुरुष को नीचे गिरा कर पृथक् करता है।

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्। कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः ॥ ७ ॥

भा०—गृह में बूढ़ी हो जाने वाली कन्या जिस प्रकार माता पिता के साथ सदा रहती हुई एक ही घर से ऐश्वर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार हे प्रभो! तुझे अपना गृह जानकर तुझ में ही आश्रय पाकर जीर्ण होने वाला मैं, सर्वसाधारण में रहने सहने के स्थान से उठकर वहां से हटकर तुझ ऐश्वर्यवान् को प्राप्त होकर याचना करता हूँ। तू उत्तम ज्ञान प्रदान कर, प्रतिमास उत्तम वस्तुएं उपस्थित कर, जिससे सबको तू तृप्त करता है उस शरीर के सेवन करने योग्य भाग को हमें दे।

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दुदिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान्।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हम लोग तुझको ही सबका पालक और ऐश्वर्यों का भोक्ता कहते हैं, वैसा जान कर तुझको पुकारते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! तू समस्त कर्मों का फल देने वाला और तू समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला है। हे ऐश्वर्यवन्! तू नाना प्रकार के रक्षा आदि कार्यों से हमारी रक्षा कर। हे ऐश्वर्यवन्! हे सब सुखों के वर्षक! तू हमें खूब ऐश्वर्यवान् कर।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १७।९॥ इति विंशो वर्गः॥

[१८]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः । ४, ८ भुरिक् पंक्तिः । ५, ६ स्वराट् पंक्तिः । ७ निचृत् पंक्तिः २, ३, ९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकुशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार नया रथ, ऐसा जोड़कर बनाया जाय जो कि सब सुखों का देने वाला हो जिसमें घोड़े के जोड़ने के चार स्थान हों, तेज मध्यम और मन्द तीनों प्रकारों की गति से चलने वाला, तीनों गतियों पर शासन या वश करने के मन्त्र से युक्त हो, घोड़ों के मुखों में लगने वाली सात रासों के समान सात वश करने के साधन लगे हों, जिसमें दश थामने और चलाने के यन्त्र हों, जो सुख का देने वाला हो, ऐसा रथ जिस प्रकार साथ जुड़ी स्तम्भ करने वाली मुट्ठियों से प्रभात में वेग से चलाने योग्य होता है उसी प्रकार यह जीवात्मा प्रभात काल में इच्छाओं से और भजन क्रियाओं से रमण करने योग्य होता है। वह रमणकारी होने से 'रथ' है। सदा नित्य होने से 'नव' है। संगदोष से रहित है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों में संलग्न रहता है। अथवा चारों वेदों से संदेह समाधान करने वाला या चारों अन्तःकरणों से युक्त है। वह तीनों वेद वाणियों को धारण करने हारा, मन, वाणी, काया, तीनों पर शासन करने वाला, मूर्धागत सात प्राणों से सात रश्मि वाला है। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दश साधन नाव में लगे चप्पुओं के समान जीवन यात्रा करने में साधन हैं, वह मनुष्य का आत्मा परम सुख का अभिलाषी होकर, यज्ञादि साधनों और उत्तम विचारयोग्य बुद्धियों से प्राप्त होता है। परमात्मा पक्ष में—परमात्मा रसरूप एवं रमण योग्य होने से 'रथ' है। स्तुति योग्य और अद्भुत होने से 'नव' है। शुद्ध होने से 'सस्नि' है। अन्तःकरण चतुष्टय से समाहित होकर जानने योग्य होने

से 'चतुर्युग' है। तीनों लोकों पर शासक होने से या वेदत्रयी तीनों प्रकार की वाणियों को धारने हारा होने से 'त्रिकश' है। सप्तलोकों का शासक होने से 'सप्तरश्मि' है। दशों दिशाओं के स्वामी के समान त्राण करने वाला होने से 'दशारित्र' है। वह सुख देने वाला होने से 'स्वर्ष' है। वह यज्ञों और उत्तम मननों द्वारा प्राप्त करने योग्य है। वही योगाभ्यास द्वारा एकाग्रचित्त से प्राप्त किया और ध्यान किया जाता है।

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा॥ २॥

भा०—वह परमेश्वर पहले, दूसरे और तीसरे, भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौः तीनों में समवेत है। वह मननशील एवम् मनुष्यों के हितार्थों का देने वाला है। सबसे उत्कृष्ट, सबसे अधिक बलवान् होकर अपने से भिन्न प्रकृति के गर्भ, हिरण्यगर्भ या ब्रह्माण्ड आदि विकारों को उत्पन्न करता, धारण करता है, उस संसार को फिर अन्य अर्थात् उस परमेश्वर से भिन्न महत् आदि एवं पृथ्वी आदि प्रकृति-बिकृति पदार्थ ही प्रकट करते हैं, और वह परमेश्वर अपने से भिन्न उपासक जीवों से साक्षात् प्राप्त किया जाता है।

हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये॥३॥

भा०—सदा वेदबचन या गुरु उपदिष्ट ज्ञान के अनुसार जिस प्रकार शिल्पीजन रथ में वेगवान् बायु अग्नि दोनों को वेग से जाने के लिये अश्वों के समान जोड़ लेता है उसी प्रकार मैं नये से नये स्तुति करने वाले उत्तम रीति से कथित वेदमन्त्र से उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के रमणयोग्य परमानन्दमय स्वरूप में आने या सुख को प्राप्त करने के लिये दुःखों के दूर करने वाले मन और आत्मा दोनों को योग द्वारा जोड़ दूं। हे

परमेश्वर ! इस लोक में तुझे प्राप्त करके बहुत से विद्वान् जन रमण करते हैं, और दूसरे केवल यज्ञ करते हुए भी तुझे अच्छी प्रकार प्राप्त न कर आनन्द लाभ नहीं कर पाते।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू स्तुति द्वारा अभ्यर्थना किया जाकर प्राण अपान रूप दो साधनों से, चार वेदों से, चार अन्तःकरणों और मन सहित इन्द्रियों से, आठों प्रमाणों और दश यमों और नियमों से हमारे ब्रह्मास्वाद में हमें प्राप्त हो। हे उत्तम धनैश्वर्य के स्वामिन् ! समस्त प्राप्त ऐश्वर्य तुझे ही दिया जाता है। हमें संग्राम करने वाले न कर।

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥२१

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू बीस, तीस, चालीस तीव्र बुद्धि वाले विद्वानों के द्वारा हमें प्राप्त हो। और इसी प्रकार पचास, साठ और सत्तर रमण करने के सुख साधनों से ऐश्वर्य पालक के पद को प्राप्त हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! ८०, ९०, १०० तीव्र बुद्धिमान् विद्वानों से धारण किया जाकर तू हमें साक्षात् प्राप्त हो। यह ऐश्वर्य सुख देने वाले कार्यों में तेरी ही कामना से हर्ष और आनन्द लाभ के लिये बढ़ाया गया है।

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर। रमण

करने योग्य आनन्द के धारण करने के कार्य में स्त्री पुरुष को नियुक्त कर।

न स इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

भा०—मेरा ऐश्वर्यवान् परमेश्वर से मैत्री भाव कभी न टूटे। उसका दिया धन ज्ञान हमें गौ के समान नाना सुख प्रदान करे। सबसे महान्, दुःखों को दूर करने वाले, सूर्यरश्मि के समान प्रकाशक तथा बाहु के समान अवलम्बदायक, उत्तम २ फलदायक, उपास्य प्रभु के अधीन रहकर हम विजयशील होवें।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ९।२२

भा०—व्याख्या देखो सू० १७। ९॥ इति द्वाविंशो वर्गः॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ६, ८, विराट् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। ३ पंक्तिः। ५, ७ भुरिक् पंक्तिः। ५ निचृत् पांक्तिः॥

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥

भा०—हे मन को वश करने वाले विद्वान् पुरुषो! हे वेदज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के चाहने वाले नायक पुरुषो! जिसके आश्रय में ऐश्वर्यवान् आत्मा शक्ति में बढ़ता हुआ उत्तम ज्ञानमय प्रकाश में स्थान प्राप्त करे, उस जीवन धारण करने वाले ज्ञान और शक्ति उत्पन्न करने या देने वाले ज्ञानमय प्रभु के आनन्द रस का आत्मसंतोष प्राप्त करने के लिये पान किया करो।

अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

भा०—इस मधुर आनन्दरस को खूब प्राप्त करता हुआ, ज्ञानवज्र को धारण करता हुआ विद्वान् पुरुष, विश्व के महासागर में विद्यमान, विघ्नकारी प्रबल अज्ञान रूप शत्रु को, विविध उपायों से कुठार से वृक्ष के समान काट गिरावे। तब समृद्ध और प्रसन्न और उत्साहित प्रजाओं के अन्नादि ऐश्वर्य, घोंसलों के पक्षियों के समान और दिनों को सूर्य की किरणों के समान, आप से आप प्राप्त हो जाते हैं।

स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर ऐश्वर्यवान्, गुणों और कर्मों में महान् होकर अव्यक्त तम, प्रलयदशा में अविकृत प्रकृतितत्व में व्याप्त होकर, आकाश में प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच में विशेष वेग या स्पन्दन को अच्छी प्रकार उत्पन्न करता है। तब वह महान् आकाश को और सूर्य या आकाश को प्रकट करता है। और सब पदार्थों को प्रकट करने वाले तेजस्तत्व से सब किरणों को प्रदान करता, दिनों के समान नाश होकर भी पुनः उत्पन्न और अस्त होने वाले जीवों के ज्ञानों और कर्मों को साधता है।

सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४॥

भा०—वह परमेश्वर अपने को उसके अधीन सेवक और उपासक रूप से सौंप देने वाले मनुष्य को, अद्भुत २ और अनुपम बहुत से ऐश्वर्य प्रदान करता है, वह सूर्यादि के समान जगत् के आच्छादक अन्धकार और अज्ञान का नाश करता है। वह सूर्य के समान तेजस्वी पद या प्रकाशवान् आत्मस्वरूप के प्राप्त करने के लिये, एक दूसरे से अधिक तेजस्वी होने में स्पर्धा करने वाले मनुष्यों के लिये जो सब दिन समान रूप से आश्रय करने योग्य और निरन्तर सहायक होता है।

स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ् मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥२३॥

भा०—परमेश्वर उपासक जन के लिये सूर्य के गुणों से भी बढ़कर तेजस्वी है। वह उपासक के दुर्गुणों को हटाकर निष्पाप धन प्राप्त करा देता है। जो पुरुष अपने धन का नाश कर ले वह उस व्यापक प्रभु को नहीं प्राप्त कर सकता। स्तुति किया गया प्रभु सूर्य से बढ़कर है। वह दानशील सूर्य या मेघ के समान उसको योग्य और पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त कराता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार धान काट लाने वाले कृषक के हित के लिये न सूखे सामान्य जौ आदि को सूखा कर देता है, और प्रकाश देने के लिए आवरण करने वाले मेघ के ९९ खण्डों को विशेष रूप से संचालित करता है, उसी प्रकार वह परमेश्वर कामनावान् होकर, स्तुति करने वाले एवं समान रूप से 'रथ' अर्थात् रमण साधन आत्मा को तन्मय करने वाले उपासक के हित के लिए, सदा हरे भरे, कदन्न के समान कुत्सित आचरण वाले बलशाली कामवेग को विनष्ट कर देता है। और इच्छानुसार दानशील पुरुष के लिये वह परमेश्वर शान्ति के नाशक, आत्मा को घेरने वाले अज्ञान के पालन करने वाली बासनाओं या वासनाओं के उदय होने की नाड़ियों को विशेष रूप से छिन्न-भिन्न करता है।

एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! हम स्वयं अपने आत्मा से अपने आप को बलवान् और ज्ञानवान् करते हुए, तेरे श्रवण करने योग्य गुणों

के समान ही तेरे कहने योग्य स्तुतिवचन को भी प्राप्त करें। और हम तेरे उस मैत्रीभाव का सुखपूर्वक उपभोग करें, और अप्रमादी रहकर हम अदानशील हिंसक पुरुष के हिंसाकारी कृत्य का विनाश करें।

एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥

भा०—गमन करने वाले जिस प्रकार मार्गों को बना लेते हैं, और जिस प्रकार अन्यों को ज्ञान देने की इच्छा करने वाले पुरुष नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे शूर पुरुष के समान सब संकटों से बचाने हारे प्रभो! ज्ञान और शरण के इच्छुक, तथा आनन्द को चाहने वाले, सबकी आकांक्षा के पात्र परम मेधावी परमेश्वर ही में हर्ष प्राप्त करने वाले, योगिजन, तेरे ज्ञानमय स्वरूप और नाना ज्ञानों, कर्मों, उत्तम आचरणों का स्वयं आचरण करते, और उनका अन्यों को उपदेश करते हैं। वे ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मसाक्षात्कार की अभिलाषा करते हुए, हे परमेश्वर! तेरी नई से नई अनुपम प्रेरणा, सर्वोत्तम बल, और तेरे में उत्तम निवास, और तेरे परम सुख को प्राप्त करते हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १८। ९ ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२०]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। २ बृहती। ३ पंक्तिः। ४, ५, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥

भा०—संग्राम की कामना करने वाला वीर पुरुष जिस प्रकार रथ

को शस्त्रास्त्रों से खूब पूर्ण कर लेता है, और अन्न को ढोना चाहने वाला मनुष्य जिस प्रकार शकटादि को भरता है, और वह वेग से या शीघ्रता से जाना चाहने वाला जिस प्रकार रथ का आश्रय लेता है, और ऐश्वर्य चाहने वाला जिस प्रकार 'रथ' अर्थात् युद्धविजयी रथ को चाहता है, उसी प्रकार हम लोग हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे स्तुतिकर्त्ता, प्रकाशित होते हुए और बुद्धि से तेरे जैसे या तुझे अपनाने वाले नायक पुरुषों से सुखयाचना करते हुए, तेरे ज्ञान ऐश्वर्य को पुष्ट करें। तू हमें भली प्रकार जान।

त्वं न॑ इन्द्र त्वाभि॑रू॒ती त्वा॑य॒तो अ॑भिष्टि॒पासि॒ जना॑न्।
त्वमि॒नो दा॒शुषो॑ वरू॒तेत्थाधी॑र॒भि यो नक्ष॑ति त्वा ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तू रक्षा, ज्ञान, बल आदि से हमारे बीच में विद्यमान अपने प्रेमी भक्तों को आने वाली विपत्तियों से बचाने वाला है। तू अपने को तेरे तईं समर्पण करने वाले को विपत्तियों से बचाने वाला, अपनी शरण में स्वीकार करने वाला, उसके प्रति सत्यबुद्धि और सत्यकर्म वाला है, जो कि सत्यबुद्धि होकर तुझे ही अपना एकमात्र जान तेरे पास आता है।

स नो॒ युवेन्द्रो॑ जो॒हूत्रः॒ सखा॑ शि॒वो न॒राम॑स्तु पा॒ता।
यः शंस॑न्तं॒ यः श॑शमा॒नमू॒ती पच॑न्तं च स्तु॒वन्तं॑ च प्र॒णेष॑त् ॥३॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और राजा हमारे बीच उत्तम उपदेश करने वाले और स्तुति करने वाले की रक्षा के द्वारा उसे उत्तम मार्ग से ले जाता है। धर्म मर्यादाओं को लांघकर चलने वाले और अन्यों को सन्ताप देने वाले को दण्ड द्वारा उत्तम मार्ग में ले जाता है, अथवा जो प्लुतगति अर्थात् सब धर्मों को लांघकर संन्यास मार्ग में जाने वाले और अपने आत्मबल को तपस्या द्वारा परिपक्व करने वाले को सन्मार्ग से ले जाता है, वह सुखों से जोड़ने और दुःखों से दूर करने वाला, नित्य तरुण निरन्तर उत्तम पदार्थ देने वाला, अथवा भक्त प्रेमी जनों से नित्य

स्मरण किया और पुकारे जाने वाला, मित्र, कल्याणकारी है, वह हमारे पुरुषों और प्राणों का भी पालक और रक्षक हो।

तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य! तू परम ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति कर, उसी की चर्चा कर, जिसकी शरण में रहकर पहले भी लोग वृद्धि पाते रहे, और कामादि शत्रुओं का नाश करते रहे हैं। वह ज्ञान, धन और वृद्धि की कामना करने वाले, नये शरण में आये, अपने आश्रय में बसे भक्त की कामना को स्वयं प्राप्त होकर पूर्ण करता है।

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥५॥२५॥

भा०—वह परमेश्वर ज्ञानवान् पुरुषों को और तेजस्वी अग्नि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों और लोकों को, उनके उत्तम मार्ग में प्रेरणा करता हुआ उनके कथन योग्य बड़े २ ऐश्वर्यों और बलों को धारण करके, सूर्य के साथ प्रभातवेलाओं को और स्तुतियों को चाहता हुआ, सबको खा जाने वाले लोभ, मोह या अज्ञान सम्बन्धी पूर्वजन्म के बन्धनों को भी शिथिल कर देता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥६॥

भा०—वह श्रुति अर्थात् वेदों से श्रवण करने योग्य ऐश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों का प्रकाशक है। वह मननशील ज्ञानी पुरुष के सब कष्टों का सर्वोत्तम नाश करने वाला और सबसे ऊपर, सबसे अधिक पूज्य और शक्तिशाली है। वह सब विघ्नों को परास्त करने हारा संसार भर को धारण पोषण करने वाले सामर्थ्य का स्वामी है। वह शरण में प्राप्त हुए सेवक के प्रिय शिर के समान पूजनीय, सिर आखों पर रहकर अपने अधीनस्थ का भरण पोषण करता, पालता है।

स वृ॑त्र॒हेन्द्रः॑ कृ॒ष्णयो॑नीः पुरन्द॒रो दासी॑रैरय॒द्वि ।
अज॑नय॒न्मन॑वे॒ क्षाम॒पश्च॑ स॒त्रा शंस॒ं यज॑मानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार काले अन्धकार की उत्पादक रात्रियों को दूर करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर विघ्नों और आवरणकारी मोह आदि का नाशक, देहपुरी के बन्धन का तोड़ने वाला होकर, कृष्ण अर्थात् पापयुक्त कर्मों को उत्पन्न करने वाली लौकिक सुख के देने वाली और ज्ञान और पुण्य का नाश करने वाली चित्तवृत्तियों को तितिर बितिर करता है। जिस प्रकार सूर्य मनुष्य को भूमि और जल प्रदान करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी मननशील मनुष्य के भोग और उपकार के लिये भूमि और जल दोनों ही उत्पन्न करता है। और वह दानशील मनुष्य की स्तुति या कीर्त्ति को सत्य के बल से बढ़ाता है।

तस्मै॑ त॒वस्य॒ मनु॑ दायि स॒त्रेन्द्रा॑य दे॒वेभि॒रर्ण॑सातौ ।
प्रति॒ यद॑स्य॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोर्धुर्ह॒त्वी दस्यू॒न्पुर॒ आय॑सी॒र्नि ता॑रीत् ॥८॥

भा०—जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार सत्र अर्थात् यज्ञ में जलप्रद मेघ की वृद्धि के लिये वृष्टिकारक बल को बढ़ाने वाला चरु ही निरन्तर दिया जाता है, उसी प्रकार अभीष्ट अर्थात् पाने योग्य फल प्राप्त करने के लिये सत्याचरण और मिथ्याचार से रहित सत्य उपासना द्वारा उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त विद्वान् पुरुषों द्वारा आत्मा की शक्ति को बढ़ाने वाला दान, स्तवन आदि कर्म फल निरन्तर देते या त्यागते रहना चाहिये। इस जीव के अज्ञान को बांधने वाले ज्ञान और कर्म रूप दोनों बाहुओं से अज्ञान नाशक बल को धारण कर लेते हैं तब वह आत्मा के नाशकारी अन्तःशत्रुओं का नाश करके आवागमन सम्बन्धी देहबन्धनों को पार कर जाता है। अध्यात्म में—आवागमन का बन्धन आत्मा के लिये आयसी पुर या फौलादी गढ़ है। वही यह भौतिक देह है। प्राणमय, विज्ञानमय मनोमय कोश तीनों 'राजसी पुर' हैं, और आनन्दमय कोश

हिरण्ययीपुर या हिरण्ययकोश है। सभी कोश प्राणों पर आश्रित होने से आसुर कहाते हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त। म० ९ ॥ इति षडविंशो वर्गः ॥

[२१]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ६ त्रिष्टुप्। ४ विराट् जगती। ५ निचृज्जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१॥

भा०—जो समस्त विश्व को जीतने वाला, सबसे उत्कृष्ट है, जो धन, ऐश्वर्य द्वारा भी सबको जीतने वाला, सबसे अधिक धनी है, जो सुख में भी सबको जीतने वाला, आनन्दमय है, जो सत्य के बल से सबको जीतने वाला है, जो समस्त मनुष्यों को जीतने वाला सबसे बड़ा प्रधान नायक है, जो सत्यादि उत्पन्न करने में श्रेष्ठ भूमि को अपने वश करने वाला है, जो अश्व अर्थात् व्यापक पदार्थों और भोक्ता जीवों को भी अपने अधीन रखने वाला है, जो गमनशील पृथ्वी सूर्य आदि का भी जीतने वाला है, जो जलों, प्राणों, प्रजाओं और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का जेता है, ऐसे ऐश्वर्यवान् सर्वोपास्य दानशील परमेश्वर के प्राप्त करने के लिये, अति कमनीय आत्मा को उसके समीप तक लेजा और अर्पित कर।

अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जो सर्वत्र व्यापक, समस्त जगत् का भंग, नाश, प्रलय करने वाला समस्त ऐश्वर्य को उचित रूप से विभाग करने वाला, किसी से और कभी भी उलंघन न करने योग्य, सबका सहन करने वाला, विश्व का विधाता, बहुत ज्ञानोपदेश करने वाला सब जगत् को उठाने वाला, जगत् का धारण और संचालन करने वाला, दुस्तर, अपार सामर्थ्य वाला, सत्य से विजयशील है उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये सदा नमस्कारयुक्त वचन का प्रयोग करो।

सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३॥

भा०—जो सत्य से शत्रु का पराजय करने वाला, सब मनुष्यों को सेवन करने योग्य या सब प्रजाजन का भोक्ता, सब जन्तुओं को अपने अधीन रखने में समर्थ, दुष्टों को च्युत करने वाला, दुष्टों पर वज्र का प्रहार करने वाला, प्रेम और सेवा को देखकर मेघ के समान बरसने वाला, ऋतु, सत्य का एकमात्र पुञ्ज, सहनशील, प्रजाओं में व्यापक शासन वाला है, मैं ऐसे परमेश्वर के किये गये बल पराक्रम आदि का अन्यों को उपदेश करूं।

अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर किसी अन्य से प्रेरित न होने वाला, काम्य सुखों की वर्षा करने वाला, हिंसकों का हिंसक, गम्भीर, अपार सामर्थ्यवान्, महान्, तथा क्रान्तदर्शिता और बुद्धिमत्ता में जिसका कोई पार नहीं पा सकता ऐसा वह है। हिंसकों को दूर करने और उत्तम ऐश्वर्यवान् समृद्ध पुरुषों को प्रेरणा करने वाला है, दुष्टों को शिथिल करने वाला है, बलवान् है, महान् और उत्तम उपास्य है। वह ही उषाओं को और सुख को उत्पन्न करता है।

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः। अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥

भा०—उपासना, सत्संगति और दान आदि श्रेष्ठ कर्म से और उपास्य परमेश्वर, कर्मों और बुद्धियों को प्राप्त करने वाले, कामनावान्, मेधावी पुरुष, अपनी बुद्धियों और उत्तम कर्मों की वृद्धि और उन्नति करते हुए उत्तम ज्ञानमार्ग को प्राप्त कर लेते हैं। ऐश्वर्यवान् के अधीन अपनी वृद्धि और उन्नति करते हुए, सब प्रकार का उपदेश देने वाली वेदवाणी को समीप बैठकर प्राप्त करने से अपनी रक्षा, ज्ञान, सद्गति, आत्मतृप्ति आदि की आकांक्षा करते हुए, उत्तम वाणियों और उत्तम ऐश्वर्यों बलों और ज्ञानों को करते हैं।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ६॥२७

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! आप हम में सर्वोत्तम ज्ञान और धन बल वीर्य धारण करो, प्रदान करो, बलवान् सामर्थ्यवान् पुरुष की सुचित्तता, चेतना, सावधानता और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो। ऐश्वर्यों की वृद्धि, शरीरों की रोगरहितता, और वाणी की मधुरता, दिनों का सुदिनपन प्रदान करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[२२]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ अष्टिः। २ निचृदतिशक्वरी। ४ भुरिगतिशक्वरी। ३ स्वराट् शक्वरी ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथ्वी को प्रकाश देने और उसका रस लेने

वाला महान् सूर्य बहुत बल वाला होकर, पृथिवी वायु और द्युलोक में स्थित और ओषधि अन्नादि प्राप्त होने वाले जल का व्यापक तेज से पान करता है, और वायुमण्डल को जल से तृप्त या पूर्ण कर देता है, उत्पन्न चर अचर जगत् को भली प्रकार वश करता है, उसी प्रकार महान् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक अपने सामर्थ्य से यवादि ओषधियों पर आश्रित रहने वाले जीव जगत् का पालन करता है, उसे खूब तृप्त कर देता है। और उत्पन्न हुए जगत् को भली प्रकार वश करता है। जिस प्रकार सूर्य जल से जगत् को हर्षित करता है उसी प्रकार परमेश्वर इस जीव संसार का पालन करके जीव जगत् को हर्षित और सुखी करता है और उसको बड़े २ भारी काम करने में समर्थ करता है। जिस प्रकार चन्द्र सूर्य को प्राप्त होता, उसी के आश्रय बढ़ता और गति करता है उसी प्रकार वह भक्त सत्याचरण करने वाला महान् होकर इस विशाल, सर्वैश्वर्यदाता सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है, उसी में समवेत या आश्रित होकर रहता है।

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ २॥

भा०—सब कान्तियों और दीप्तियों का स्वामी परमेश्वर अपने बल से हिंसाशील को दबा देता है। वह प्रभु द्यौ और पृथिवी दोनों को पूर्ण कर रहा है। उस परमेश्वर के बल से यह संसार बढ़ता है। वह परमेश्वर जगत् के एक अंश को अपने जठर में प्रलीन कर धर लेता है, एक अंश को व्यक्त रूप में उत्पन्न करता है। चन्द्र समान आह्लादक दिव्य गुणों वाला तथा सत्याचरण वाला व्यक्ति उस परमेश्वर को प्राप्त होता है।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ ३॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू बल वीर्य, पराक्रम के साथ ही प्रसिद्ध है। जो कर्मशक्ति और ज्ञानशक्ति के साथ ही प्रकट हुआ है, बल, दीप्ति के साथ ही समस्त संसार को धारण कर रहा है। तू संसार के उत्पादक सामर्थ्यों सहित महान् है। सहनशील, सबका द्रष्टा, अभिलषित ऐश्वर्य धन स्तुतिशील पुरुष को देने हारा है। (सः एनं० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

(१-३) देखो अथर्व० भाष्य का० २ । सू० ९५ । १-३ ॥

तव॒ त्यन्नर्यं॑ नृतोऽप॑ इन्द्र प्रथ॒मं पू॒र्व्यं दि॒वि प्र॒वाच्यं॑ कृ॒तम् ।
यद्दे॒वस्य॒ शव॑सा॒ प्रारि॑णा॒ असुं॑ रि॒णन्न॒पः ।
भुव॒द्विश्व॑म॒भ्यादे॑व॒मोज॑सा वि॒दादूर्जं॑ श॒तक्र॑तुर्वि॒दादिष॑म् ४।२८।२

भा०—हे परमेश्वर ! हे समस्त संसार को अपनी शक्ति से नचाने हारे ! हे सर्वैश्वर्यवन् ! तेरा ही वह नरों का हितकारी, सर्वश्रेष्ठ, सब से पूर्व का कार्य है जो कि ज्ञान में अच्छी प्रकार वर्णन करने और प्रवचन द्वारा शिष्यों को उपदेश करने योग्य है। वह यह कि देदीप्यमान सूर्य या अग्नितत्व के बल से प्राण या वायुतत्व को गति देता हुआ तू जलतत्व में गति उत्पन्न करता है। तथा प्रकाशरहित समस्त संसार को अपने पराक्रम से व्याप लेता है। तू सैकड़ों कर्मों और ज्ञानों का स्वामी होकर बल देता और प्रेरणा भी प्रदान करता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[२३]

गृत्समद ऋषिः ॥ देवताः—१, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पतिः । २—४, ६—८, १०, १२—१६, १८ बृहस्पतिश्च ॥ छन्दः—१, ४, ५, १०, ११, १२ जगती । २, ७, ८, ९, १३, १४ विराट् जगती । ३, ६, १६, १८ निचृज्जगती । १५, १७ भुरिक त्रिष्टुप् । १९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥
एकोनविंशर्चं सूक्तम् ॥

ग॒णानां॑ त्वा ग॒णप॑तिं हवामहे क॒विं क॑वी॒नामु॑प॒मश्र॑वस्तमम् ।
ज्ये॒ष्ठ॒राजं॒ ब्रह्म॑णां ब्रह्मणस्पत॒ आ नः॑ शृ॒ण्वन्नू॒तिभिः॑ सीद॒ साद॑नम् ।१

भा०—हे वेदज्ञान के पालक परमेश्वर ! गणनायोग्य प्रमुखों में सबके प्रमुख और उनके पालक, कवियों में महाकवि और सर्वोपमायोग्य तथा श्रवण करने योग्य कीर्त्ति में सर्वश्रेष्ठ, बड़ों २ के भी राजा तुझको हम पुकारते हैं। तू हमारी स्तुति श्रवण करता हुआ रक्षा आदि शक्तियों सहित विराजने योग्य प्रत्येक स्थान पर विराजमान है।

देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२॥

भा०—हे बलवानों में बलवान् ! हे बड़े २ लोकों और वेदवाणी के पालक प्रभो ! सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् जन तेरे यज्ञसम्बन्धी अर्थात् उपासना करने योग्य, परम भजन करने योग्य स्वरूप को प्राप्त करते हैं। आप किरणों समेत सूर्य के समान परम ज्योति से तेज और समस्त बड़े २ लोकों और वेदमय ज्ञानों के उत्पादक एवं प्रकट करने वाले हो। (२) राजा महान् राष्ट्र का पालक होने, से बड़े २ ऐश्वर्यों का स्वामी होने से 'बृहस्पति' और 'ब्रह्मणस्पति' है।

आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि। बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! पापों से पूर्ण कर्म को और अज्ञानमय अन्धकार को विविध उपायों से नष्ट करके, आप, ज्योतिर्मय सत्य के रथ में स्थित होते हो, जो कि दुष्ट पुरुषों को भय देने वाला, शत्रुओं का नाश करने वाला, राक्षस स्वभाव विघ्नकारी पुरुषों का नाशक, दुर्गम बाधाओं का नाश करने वाला, सुख देने वाला तथा प्रकाश स्वरूप है। (२) राजा पापों, अज्ञानों को दूर करे। तेजस्वी, भयंकर, शत्रुनाशक, दुष्टनाशक, प्रजा सुखकारक, सामान्य और धन के उत्पादक रथ पर विराजे।

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४॥

भा०—हे बड़े व्रतों और बड़े लोकों के पालक परमेश्वर ! तू उत्तम न्याययुक्त मार्गों, नीतियों से सबको सन्मार्ग पर चलाता और उनकी रक्षा करता है। जो तेरे प्रति अपने को सौंप देता है उसको पाप, कष्ट, कभी नहीं व्यापता। तु वेद, वेदज्ञ और ईश्वर के विरोधी पुरुषों को तपाने वाला, और क्रोध आदि अन्तःशत्रुओं और अभिमानियों का नाश करने हारा है। तेरा वह प्रसिद्ध बड़ा भारी महान् सामर्थ्य है।

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—हे वेद और महान् विश्व के पालक परमेश्वर ! तू उत्तम रक्षक होकर जिसकी रक्षा करता है उसको किसी भी प्रकार से न कोई पाप, न दुर्गति, न शत्रुजन और न दोनों पक्षों के भेदू लोग मार सकते हैं। तू उसके समीप सब नाशकारी कारणों को दूर कर देता है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥

भा०—हे महान् विश्व के पालक प्रभो ! तू हमारा रक्षक, उत्तम मार्ग बनाने वाला, विविध सत्योपदेशों का उपदेष्टा, सबका विशेष रूप से सर्वोपरि द्रष्टा है। तेरे महान् व्रत के लिये हम उत्तम मनन करने वाली बुद्धियों और मन्त्रों सहित तेरी स्तुति करते हैं। हम पर जो भी कोई कुटिलता या क्रोध आदि करे उसको उसकी अपनी दुःखदायिनी प्रकृति वेगवती तलवार होकर नष्ट करे। मनुष्य की अपनी कुटिलता ही उसकी नाशकारी होती है।

उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥

भा०—हे परमात्मन् ! जो पुरुष हम अपराध रहितों को पीड़ित करता है, और अदानशील पुरुषों का संगी है, पर्वत शिखरों में विचरने वाले 'वृक' भेड़िये के समान हिंसक है, उसको हमारे मार्ग से दूर कर । विद्वानों और उत्तम गुणों को प्राप्त करने के लिये हमारे लिये सुख से गमन करने योग्य उपाय और मार्ग बना ।

त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥

भा०—हे बड़े लोकों के रक्षक परमेश्वर ! हम तुझको अपने शरीरों का पालक मानते हैं । हे अपने शत्रुनाशक बल से संकटों से पार उतारने वाले ! हम तुझे सब पर अध्यक्ष रूप से आज्ञा देने वाला, हमें चाहने वाला स्वामी स्वीकार करते हैं । तू दिव्य गुणों और उत्तम विद्वानों और परमेश्वर की निन्दा करने वालों का विनाश करता है, जिससे दुष्ट आचरण वाले दुर्बुद्धि लोग भविष्य में प्राप्त होने वाले या उत्कृष्ट हमारे सुख को न विनष्ट करें ।

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर ! उत्तम बुद्धि करने वाले तुझ सहायक से, हम मननशील पुरुषों के हितकारी लोग, चाहने योग्य धन को प्राप्त करें । आघात करने वाली, अदानशील तथा उत्तम कर्मों से रहित जो दुष्ट प्रजाएं हमपर आक्रमण करती हैं उनका तू नाश कर ।

त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—हे परमात्मन् ! पालन करने और ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले, शुद्ध पवित्र आचारवान्, तथा सहायक से हम उत्तम ज्ञान, बल और दीर्घजीवन धारण करें । कुख्याति वाला, और दुष्ट शासन करने वाला, बुरे २ उपदेश देने वाला दुष्ट पुरुष, तथा सबको मारने और ठगने वाला वञ्चक पुरुष हम पर कभी प्रभुता न करे । हम लोग उत्तम कीर्त्ति वाले, उत्तम उपदेष्टा होकर उत्तम बुद्धियों से युक्त होकर स्वयं तरें और अन्यों को संकटों से पार उतारें । इति त्रिंशो वर्गः ॥

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥११॥

भा०—हे महान् वेदज्ञान के पालक ! तू अनुपम दानशील है । तू बलवान्, पुकार पर पहुँचने वाला, कामादि शत्रु को खूब पीड़ित करने वाला, देवासुर संग्रामों में शत्रु को पराजित करने हारा, न्यायशील पितृ-ऋण आदि के चुकाने में सहायता देने वाला, और तीव्र स्वभाव के तथा अपनी वीरता में हर्ष अनुभव करने वाले गर्वीले शत्रुओं का भी दमन करने हारा है ।

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः १२

भा०—जो व्यक्ति उत्तम भावनाओं से रहित चित्त से दूसरे की हिंसा करता है, और अन्य शासन करने वालों में या शस्त्रों हथियारों के कारण अतिभयंकर होकर प्रजा का उद्वेजक तथा गर्वी होकर हनन करना चाहता है, हे वेदवाणी के पालक न्यायकारिन् ! उसका हथियार हमें स्पर्श न करे । उस दुखदायक चेष्टा वाले बलवान् पुरुष के क्रोध और अभिमान को हम तुच्छ समझें और नहीं सा कर दें ।

भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव १३

भा०—वह बृहस्पति परमेश्वर प्रजा के पालन पोषण के कार्यों में सदा आदरपूर्वक स्तुति करने योग्य, विनय और आदर से प्राप्त करने योग्य, ज्ञानों और बलों में व्यापक, बहुत प्रकार के और बहुत से धनैश्वर्य को प्रजाओं में विभक्त करने वाला, प्रजाओं का स्वामी, नाश करने की इच्छा वाले समस्त देवासुर संग्रामों का शत्रु के रथों के समान संहार करे।

तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम्।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय १४

भा०—हे बड़ों २ के मालिक! जो दुष्ट पुरुष, प्रसिद्ध बल वाले तुझे निन्दा का पात्र बनाते हैं, अर्थात् तेरी निन्दा करते हैं तू उन विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को अति तेजस्विनी और संताप देने वाली व्यवस्था से पीड़ित कर। जो प्रशंसा करने योग्य ज्ञान और बल है उसको प्रकट कर। और पाप से परिपूर्ण पुरुष को विविध उपायों से पीड़ित कर।

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् १५।३१

भा०—हे बड़ों के भी पालक! जिस तेज को सर्वश्रेष्ठ स्वामी पाने योग्य है, जो प्रकाशयुक्त, मनुष्यों के बीच कर्म और ज्ञान उत्पन्न करने हारा होकर विशेष रूप से प्रकाशित होता है, जो अन्य को भी चमकाता है, हे वेदज्ञान, सत्य, न्याय और धर्म में प्रसिद्ध! तू हम में वही सर्वोत्तम अति अद्भुत, अलौकिक ब्रह्मतेज, स्थापन कर।

बृहस्पते! अति यदर्यो अर्हात् इत्येतया ऋचा परिदध्यात्तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामः अतीव वा अन्यान् ब्रह्मवर्चसमर्हति। द्युमदिति द्युमदिव वै ब्रह्मवर्चसं विभाति। यद् दीदयत् शवस ऋत प्रजातेति, दीदायेव वै ब्रह्मवर्चसम्। तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् इति। चित्रमिव वै ब्रह्मवर्चसम्। ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवतीति। ऐतरेय ब्राह्मणे ४।११ इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः। आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥

भा०—हे बड़ों के भी पालक प्रभो ! जो द्रोही, प्राप्त करने योग्य प्रत्येक स्थान में नित्य रमण करने वाले होकर अन्न आदि भोग्य पदार्थों में आक्रमण करके पदार्थ हर लेना चाहते हैं, उन चोर पुरुषों से हमें भय न हो। जो विद्वानों के बीच में भी त्याग, या विघ्नवर्जन के बल को हृदय में धारण करते हैं, हे बड़ों २ के भी पालक ! वे शान्तिमय, सुखकारी वचन से भिन्न दूसरे उपाय को नहीं जानते। वे त्यागशील जन 'साम' उपाय को ही सर्वश्रेष्ठ जानते हैं।

विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः। स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥१७॥

भा०—विषम दशाओं के उपस्थित रहने पर भी साम के ही उपाय को उत्तम कहने वाला जो प्रभु है वही सर्वोत्पादक तुझको समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ बना देता है। वही धनों को संग्रह करने वाला, वही धनों को लेने और देने में समर्थ है। वही बड़े राजैश्वर्य का पालक, वही द्रोही पुरुषों को नष्ट करने और दण्ड देने में समर्थ है। वही बड़ी न्याय व्यवस्था के धारण करने वाले के पद पर स्थित होने योग्य है।

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः। इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८॥

भा०—हे बड़े राष्ट्र के पालक ! हे तेजस्विन् ! जिस प्रकार मेघ किरणों के समूह को प्रथम रोक लेता है और फिर छिन्न भिन्न होकर जल त्याग देता है तो यह सब सूर्य की शोभा के लिये ही होता है, इसी प्रकार पालन सामर्थ्य से युक्त शासक जो भूमियों के समूहों या क्षेत्रों को विशेष रूप से प्राप्त करता, और फिर तेरे लिये कर रूप से अन्न प्रदान करता

है, तो वह तेरी ही लक्ष्मी के वृद्धि के लिये हो। और विद्युत् के योग से अन्धकार या श्यामपन से घिरे हुए जल के सागर अर्थात् प्रचुर जल को जो बृहस्पति अर्थात् प्राणों का पालक वायु पुनः नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार राष्ट्र-पालक वीर सेनापति के साथ मिलकर दुःख शोकादि से घिरे हुए, सैनिकों के महासागर के समान अपार सैन्यबल को नीचे गिरा देता, मारकर भूमि में गिरा देता है।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥३२॥६॥

भा०—हे ब्रह्माण्ड, प्रकृति और ज्ञानमय वेद के पालक परमेश्वर! हे बड़े राज्य के पालक राजन्! तू इस संसार और राष्ट्र का नियामक है। तू हमें उत्तम वचनों अर्थात् वेदों का ज्ञान करा। हमारे पुत्र पौत्र आदि को ज्ञान ऐश्वर्यादि से तृप्त और पूर्ण कर। विद्वान् गण जो पदार्थ प्रदान करते हैं वह सब कल्याणकारी होता है। हम उत्तम वीरपुरुषों से युक्त होकर संग्राम में और ज्ञान सभाओं में बहुत उत्तम वचन कहें। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

[२४]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—११, १३—१६ ब्रह्मणस्पतिः । १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च देवते ॥ छन्दः—१, ७, ९, ११ निचृज्जगती । १३ भुरिक् जगती । ६, ८, १४ जगती । १० स्वराड् जगती । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२, १६ निचृत् त्रिष्टुप् । १५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा। यथा नो मीढ्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥

भा०—बृहती नाम वेदवाणी के पालक हे विद्वन् ! तू इस नवीन अर्थात् शिष्यों ने जिसको पहले नहीं जाना ऐसी, या सदा नवीन सदा सत्य महावाणी द्वारा उत्तम आजीविका को प्राप्त करने में अधिकारी है। वह तू इस को प्राप्त कर और हम तेरी भरण पोषण की सेवा करें। जिससे तेरा मित्र, तेरे समान नाम वाला दूसरा अध्यापक भी मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करने वाला होकर, हमारी स्वल्पमति को बढ़ाता और सधाता है। उसी प्रकार तू भी हमारी बुद्धियों को सिद्ध, निश्चित, ज्ञानवान्, परिपक्व कर।

यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविंशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

भा०—जो दबाने योग्य भीतरी और बाह्य शत्रुओं को बल पराक्रम से दबा लेता है, जो क्रोध या ज्ञान से शान्तिनाशक शत्रुओं के विघ्नों को मेघों के जलों को सूर्य या विद्युत् या वायु के समान छिन्न भिन्न कर देता है, जो स्थिर अविद्यादि शत्रुओं को अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है, वही 'ब्रह्मणस्पति' वेद का पालक है, और वही वसु अर्थात् २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के पालक शिष्य के भीतर भी प्रवेश करता है।

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥३॥

भा०—तेजस्वियों में जो सबसे अधिक तेजस्वी होता है उसका यह अलौकिक कर्म होता है कि उसके समक्ष दृढ़ पदार्थ भी शिथिल हो जाते हैं, और बलशाली भी कोमल होकर झुक जाते हैं। वह विद्वान् और राजा बड़े बल से भूमियों और भूमिवासी प्रजाओं को उत्तम मार्ग में चलाता और उत्तम २ ज्ञानवाणियों का उपदेश करता है। आत्मा पर आवरण डालने वाले को भेद डालता और अज्ञानान्धकार को छिपा देता, और प्रकाश के समान सुख और तेज को प्रकट करता है।

अश्मा॑स्यमव॒तं ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्मधु॑धारम॒भि यमोज॒साऽतृ॑णत् ।
तमे॒व विश्वे॑ पपिरे स्व॒र्दृशो॑ ब॒हु सा॒कं सि॑सिचु॒रुत्स॑मु॒द्रिण॑म् ॥४॥

भा०—बड़े भारी बल का पालक सूर्य जिस प्रकार जल के भार से नीचे को झुके हुए, मीठे जल को धारण करने वाले, व्यापक विद्युत् को फेंकने वाले मेघ का बल से आघात करता है, उस मेघ को सब आदित्य के किरण पान किया करते हैं, और वे किरण जल से भरे कूप के समान जल से पूर्ण मेघ को एक साथ ही बहुत सा सींच लेते हैं, इसी प्रकार बड़े बल का पालक शक्तिमान् पुरुष अपने आगे झुके हुए, शस्त्र-बल से गिराये हुए, अन्नादि सुखजनक भोग्य पदार्थों को धारण करने वाले जिस परराष्ट्र को अपने बल से छिन्न भिन्न कर देता है, उसका सब सुख प्रकाश के देखने वाले विद्वान् जन उपभोग और पालन करें। जल वाले कूप के समान बहुत बार सींचें।

सना॒ ता का चि॒द्भुव॑ना॒ भवी॑त्वा मा॒द्भिः श॒रद्भि॒र्दुरो॑ वरन्त वः ।
अय॑तन्ता चरतो अ॒न्यद॑न्य॒दिद्या च॒कार॑ व॒युना॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥५॥१

भा०—वेदविद्या रूप धन का पालक परमेश्वर या विद्वान् पुरुष, जिन ज्ञानों और कर्मों का प्रकाश करता है, वे सब सनातन हैं। उनमें से कईयों के द्वार वर्त्तमान में खुल जाते हैं, कईयों के भविष्य में, कईयों के सम्बन्ध में महीनों लग जाते हैं, और कईयों के सम्बन्ध में वर्ष लग जाते हैं। कई बार स्त्री पुरुष विशेष प्रयत्न न करते हुए भी, अनायास नाना फलों का उपभोग करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

अ॒भि॒नक्ष॑न्तो अ॒भि ये तमा॑न॒शुर्नि॒धिं प॑णी॒नां प॑र॒मं गुहा॑ हि॒तम् ।
ते वि॒द्वांसः॑ प्रति॒चक्ष्यानृ॑ता॒ पुन॒र्यत॑ उ॒ आय॒न्तदुदी॑युरा॒विश॑म् ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानबल में पहुँचते हुए जो विद्याभिलाषी पुरुष गुप्त स्थान में रखे व्यापारी-धनाढ्यों के धन के समान बुद्धि में रखे विद्योपदेष्ट

पुरुषों के उस सर्वोत्कृष्ट ज्ञानकोश को प्राप्त कर लेते हैं, वे लोग अनृत अर्थात् असत्य बातों का परित्याग करके फिर वे जहां से उस गुरुगृह में आए थे उसी अपने पितृगृह में चले जाते हैं।

ऋतावा॑नः प्रति॒चक्ष्या॑नृ॑ता॒ पुन॒रात॒ आ त॑स्थुः क॒वयो॑ म॒हस्प॒थः।
ते बा॒हुभ्यां॑ धमि॒तम॒ग्निमश्म॑नि॒ नकि॒ः षो अ॒स्त्यर॑णो ज॒हुर्हि तम् ॥७॥

भा०—सत्यज्ञान अर्थात् वेद का सेवन करने वाले क्रान्तदर्शी ज्ञानी लोग, ऋत अर्थात् सत्यज्ञान से अविद्या के कार्यों को विवेकपूर्वक त्याग करके, फिर इस लोक से बड़े मार्गों को प्रस्थान करते हैं। वे बाहुओं के बल से जलाई गई तथा पत्थरों में रहने वाली संमुख में स्थापित और अग्नि का परित्याग कर देते हैं, यह जानकर कि यह कुछ नहीं है, यह रमण के योग्य नहीं है।

ऋ॒तज्ये॑न क्षि॒प्रेण॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्यत्र॒ वष्टि॒ प्र तद॑श्नोति॒ धन्व॑ना।
तस्य॑ सा॒ध्वीरिष॑वो॒ याभि॒रस्य॑ति नृ॒चक्ष॑सो दृ॒शये॒ कर्ण॑योनयः ॥८॥

भा०—बड़े राष्ट्र का पालक राजा, वेदविद्या का पालक विद्वान् पुरुष जिस प्रदेश या पदार्थ को भी चाहता है उस प्रदेश को या उस पदार्थ को वह सत्यवचन और व्यवहाररूप डोरी से कसे, बिना बिलम्ब के कार्य करने वाले ज्ञानरूप धनुष से, उस २ अभिलषित पदार्थ को प्राप्त कर लेता है। वहां उसकी उत्तम इच्छाएं ही उत्तम बाण के समान हैं। जिनसे वह अपने सब संकटों और दुष्ट भावों को उखाड़ फेंकता है। वे कान में स्थान प्राप्त करके अर्थात् वे दूसरे के कर्णगोचर होकर मनुष्यों को उत्तम उपदेश कहते हुए उनको सन्मार्ग दिखाने के लिये होते हैं।

स सं॑न॒यः स वि॑न॒यः पु॒रोहि॑तः॒ स सुष्टु॑तः॒ स यु॒धि ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑।
चा॒क्ष्मो यद्वाजं॒ भर॑ते म॒ती धना॒दित्सूर्य॑स्तपति तप्य॒तुर्वृथा॑ ॥९॥

भा०—जो बड़े राष्ट्र का पालक, बड़े विद्याविज्ञान का पालक विद्वान् है वह उत्तम मार्ग से प्रजा को ले जाने वाला, उत्तम नीतिमान् हो। वह

विनीत, विनयशील हो। वह यज्ञ में पुरोहित के समान सबके सामने अध्यक्ष मार्गदर्शक हो। वह उत्तम स्तुतियुक्त, सुशिक्षित हो। वह युद्ध में भी कुशल हो। वह सबको स्पष्ट आज्ञा देने वाला, उत्तम वाणी से उपदेश देने वाला जब अपनी मनन शक्ति से ज्ञानयज्ञ करता है तब वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर निष्प्रयोजनों को सन्तप्त करने हारा होकर तपता है।

विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः॥ १०॥ २॥

भा०—सब सुखों की वृष्टि और वृद्धि करने वाले बड़े बल और ज्ञान के स्वामी के प्रदान किये उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान सब कार्यों को सिद्ध करने वाले होते हैं। सबके चाहने योग्य ज्ञान ऐश्वर्य के स्वामी प्रभु के ये सब दिये दान हैं, और उसका ऐश्वर्य भी व्यापक, सर्वोपरि सामर्थ्यवान् सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध है, जिससे दोनों प्रकार के विद्वान् जन नाना धनों का भोग करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः॥

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः॥११॥

भा०—हे परमेश्वर! जो तू बाद में उत्पन्न अनित्य कार्यजगत् में सब प्रकार से व्यापक सामर्थ्य वाला होकर सर्वत्र रमनेहारा अपने बल से इस महान् संसार को धारण कर रहा है, वह तू सबका प्रकाशक, सर्वव्यापक, ब्रह्माण्ड का पालक है। वह तू ही सब प्रकाशमान सूर्यादि को और उन समस्त बड़े २ लोकों को प्रत्यक्ष में विस्तृत करता है और प्रकट करता है।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम्।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम्॥१२॥

भा०—हे उत्तम धन वाले तथा ऐश्वर्यवान् और बृहत् राज्य के पालक राजा और सभापति ! तुम दोनों का सब कुछ सत्य होना चाहिये। और तुम दोनों के कर्त्तव्य और नियम को सभी आप्त प्रजाएं कभी नष्ट नहीं करतीं। रथ में लगे दोनों वेगवान् अश्व जिस प्रकार देशान्तर में पहुँचाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी हमारे स्वीकार करने योग्य अन्न को प्राप्त करो।

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मण-स्पतिः ॥ १३ ॥

भा०—और शीघ्र वेग से जाने वाले, रथ को ढो ले जाने वाले घोड़ों के समान राज्यकार्य को धारण करने वाले उत्तम २ शासक भी जिसकी आज्ञा को विनय से श्रवण करते हैं, जो सभा में उत्तम पद पर स्थित, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला होकर, उत्तम बुद्धि से नाना ऐश्वर्यों को धारण करता और प्राप्त करता है, जो बलवान् शत्रुओं को भी दबाने वाला होकर अपने वश हुई पृथ्वी के अनुसार ही ऋण या कर लेता है, वह निश्चय से बलवान् और ऐश्वर्यवान् होकर संग्राम में भी बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान का या बड़े भारी सेनाबल का पालक होता है।

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥ १४ ॥

भा०—बड़ा काम करने की इच्छा करते हुए तथा बड़े भारी धन, जन, राष्ट्र के स्वामी का क्रोध भी उसके अपने वश, अधिकार और विशेष जितेन्द्रियता के अनुसार ही सत्य अर्थात् उचित फलदायक हुआ करता है। जो पुरुष किरणों से सूर्य के समान अपनी वाणियों या आज्ञाओं को अन्यों के ऊपर चलाता है या जो भूमियों पर शासन करता है वह उन

अधीनों को ज्ञानप्रकाश और व्यवहारज्ञान, विजय के लिये विभक्त करता या प्रदान करता है। और उसकी रीति, गति या नीति या आज्ञा बड़ी भारी बहती नदी के समान बड़े अदस्य बल से स्वतन्त्र ही निकलती है।

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३वयस्वतः।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् १५

भा०—हे बड़े ऐश्वर्य के पालक! उत्तम नियमव्यवस्था के करने वाले हम दीर्घजीवन और बल के उत्पादक ऐश्वर्य के सब दिनों स्वामी हों। तू हम वीर पुरुषों को वीर पुरुषों के बीच में जोड़ कर रख। तू सबका स्वामी होकर वेदज्ञान के अनुसार मेरे आवेदन को प्राप्त कर।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥३॥

भा०—हे ज्ञान और ऐश्वर्य के पालक! तू उत्तम नियामक, व्यवस्थापक है। तू इस वेद का ज्ञान कर और पुत्र और शिष्य को सुखी कर, जिसकी विद्वान् जन रक्षा करते हैं वह समस्त जगत् सुखकारक होता है। उत्तम वीर्यवान् होकर यज्ञ और संग्रामादि में हम बहुत उत्तम उपदेश करें। इति तृतीयो वर्गः॥

[२५]

गृत्समद ऋषिः बृह्मणस्पतिर्देवता॥ छन्दः—१, २ जगती। ३ निचृज्जगती ४, ५ विराड् जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत्।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

भा०—वेद का ज्ञाता पुरुष जिस २ को अपना शिष्य बनाता है उस २ शिष्य द्वारा वह दूसरे शिष्य को प्राप्त करके शिष्य परम्परा से आगे बढ़ता है। उस समय वह अग्नि को जलाने वाले के समान ही होता है। जैसे मनुष्य न चमकते हुए काठ को प्रज्वलित करता है उसी

प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अंग २ में विनयशील शिष्य को विद्या की दीप्ति से चमकाता हुआ, वेदज्ञान का संस्कार करके, याचनाशील शिष्य को उत्तम ब्रह्मज्ञान का दान करके स्वयं ही बढ़ता है। इस प्रकार वह पुत्र से पौत्र के समान शिष्य प्रशिष्य को विद्यावान् करके गुरुपरम्परा और वंशपरम्परा से आगे बढ़ता है।

वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधाति त्मना।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥२॥

भा०—समृद्ध राष्ट्र का पालक राजा जिस २ को अपना सहयोगी या नियुक्त भृत्य बना लेता है उसके पुत्र और पौत्र को भी बढ़ाता है। और हिंसाकारी शत्रु की भूमियों से अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, अथवा याचनाशील प्रजाजन के ऐश्वर्य की भूमियों से बढ़ाता है। और स्वयं सबका ज्ञान रखता है। स्वयं भी प्रसिद्ध होता है, स्वयं भी बढ़ता है।

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥ ३॥

भा०—धनैश्वर्य का पालक राजा, जिस २ को अपना साथी बना लेता है, आग की ज्वाला के समान उस अग्रणी नायक पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति फिर निवारण करने या टूटने योग्य नहीं होती। वह स्थिरता से नियुक्त कर दिया जाता है। नदी या समुद्र जिस प्रकार जल को अपने भीतर ले लेना चाहता है, और जिस प्रकार बलवान् सांड निर्वीर्य बधिया बैलों को धर दबाता है, उसी प्रकार वह उत्तम कार्य-कुशल पुरुष अपने पराक्रम से सत्य के हनन करने वाले, या शस्त्र से आघात करने वाले शत्रुजनों को भी मुकाबला करके अपने वश कर लेता है। (२) अथवा नकारोऽत्रैवार्थस्तदनुवादी। वेदविज्ञानी जिसको अपना शिष्य बनाता है उसका गार्हपत्य अग्नि के ज्वाला के समान ही गुरुशिष्य

का बन्धन भी स्थिर बनाये रखने के लिये ही होता है। वह कर्मनिष्ठ विद्वान् जलों को नदी के समान, निर्बलों को बली के समान, सत्यज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पुरुषों को सब प्रकार से चाहता है।

तस्मा॑ अर्षन्ति दि॒व्या अ॑स॒श्चतः॒ स सत्व॑भिः प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति।
अनि॑भृष्टतविषिर्ह॒न्त्योज॑सा॒ यंयं॒ युजं॑ कृणु॒ते ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥ ४ ॥

भा०—महान् राज्य का पालक राजा जिस २ को राज्यकार्य में नियुक्त करता है उसे कामनायोग्य अन्यों से अप्राप्त विभूतियां प्राप्त होती हैं। वह वीर पुरुषों और बलों सहित सबसे श्रेष्ठ होकर सबकी भूमियों में भ्रमण करता है, वह सेना से कभी च्युत नहीं होकर पराक्रम से शत्रु का नाश करता है। (२) इसी प्रकार आचार्य जिसको शिष्य बनाता है उसे अन्य मूर्खों से अप्राप्य वेदवाणियां प्राप्त होती हैं, वह वीर्यों से युक्त होकर वेदवाणियों से विचरता है। बल से कभी भ्रष्ट न होकर ओज से पापों का नाश करता है।

तस्मा॒ इद्विश्वे॑ धुनयन्त॒ सिन्ध॒वोऽच्छि॑द्रा॒ शर्म॑ दधिरे पु॒रूणि॑।
दे॒वानां॑ सु॒म्ने सु॒भगः॒ स एध॑ते॒ यंयं॒ युजं॑ कृणु॒ते ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥५॥४

भा०—महान् ऐश्वर्य और बल का पालक राजा जिस २ को अपना सहयोगी बना लेता और राज्यकार्य में नियुक्त करता है उसके लिये समस्त समुद्र, नदी, जल आदि चलते हैं। वे सब नदी आदि उसे बहुत से निर्दोष सुख प्रदान करते हैं। वह विद्वानों और विजयी पुरुषों के योग्य सुख में उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर बढ़ता है। इसी प्रकार गुरु का जिस पर अनुग्रह होता है उस पर प्राणगण सुख बरसाते हैं। वह दिव्य पुरुष इन्द्रियों के सुख में भी सौभाग्यवान् होकर संवित् आदि सिद्धियों में वृद्धि को प्राप्त होता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२६]

गृत्समद ऋषिः ॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ जगती २, ४ निचृज्जगती ॥
चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥

भा०—सरल, कार्यों के साधन करने में कुशल, कर्मण्य, उपदेष्टा पुरुष कार्य के नाशक विघ्नों को, अन्धकार को किरणों के समान, या वन को कुठार के समान दूर करे। देवतुल्य उत्तम गुणों का इच्छुक पुरुष उत्तम गुणों के विरोधियों का तिरस्कार करे। उत्तम रक्षक, संग्रामों में दुःख से विजय करने योग्य कठिन शत्रु का विनाश करे। और यज्ञशील, दानशील, और सत्संतगशील पुरुष अदानी असंगति के योग्य कुसङ्गी पुरुष के भोग्य ऐश्वर्य को विविध रूपों में विभक्त कर दे।

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥

भा०—हे वीर तथा विविध विद्याओं को कथन करने हारे विद्वन्! तू उत्तम सत्संग कर, विद्या आदि दान दे। मननशील पुरुष से उत्तम गुण और ज्ञान प्राप्त कर। विघ्न का नाश करने के लिये अपने चित्त को कल्याण विचार वाला बना। उत्तम अन्नादि उपादेय पदार्थ उत्पन्न कर। जिससे तू उत्तम ऐश्वर्यवान् हो। हम सब महान् यज्ञ के पालक प्रभु और आचार्य की रक्षा, को प्राप्त करें।

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धमना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

भा०—जो पुरुष श्रद्धा से युक्त मन वाला होकर, देने योग्य अन्न रत्नादि और ग्रहण करने योग्य ज्ञान ऐश्वर्यादि के हेतु, विद्या के अभिलाषी शिष्यों के पिता के तुल्य आचार्य की, और वेद के पालक प्रभु की, सब प्रकार से सेवा करता है वह ही जन से, वही प्रजा से, वही उत्तम जन्म जन्म से, वह पुत्रों और भृत्यादि और नायक पुरुषों से शक्ति को प्राप्त करता और नाना धनों को प्राप्त करता है।

यो अ॒स्मै ह॒व्यैर्घृ॒तव॑द्भि॒रवि॑ध॒त्प्र तं प्रा॒चा न॑यति॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ।
उ॒रु॒ष्यती॒मंह॑सो॒ रक्ष॑ती रि॒षो॒३॑होश्चि॑दस्मा उरु॒चक्रि॒रद्भु॑तः ॥४॥५॥

भा०—जो मनुष्य धन का स्वामी होकर, घृतों से युक्त अन्नों से उस प्रभु की सेवा करता है उसको वह ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु ले जाता है, उसको पाप से बचाता, महापातक तथा हिंसाओं से भी बचाता है। वह परमेश्वर बड़ा भारी कारीगर अद्भुत् तथा आश्चर्यजनक है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[२७]

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ आदित्यो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, १३, १४, १५, निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ८, १२, १७ त्रिष्टुप् । ११, १६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः । ९, १० स्वराट् पंक्तिः ॥
सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

इ॒मा गिर॑ आदि॒त्येभ्यो॑ घृ॒तस्नूः॑ स॒नाद्राज॑भ्यो जु॒ह्वा॑ जुहोमि ।
शृ॒णोतु॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा भगो॑ नस्तुविजा॒तो वरु॑णो॒ दक्षो॒ अंशः॑ ॥१॥

भा०—प्रकाशमान् सूर्य की किरणों के लिये जिस प्रकार 'जुहू' नाम चमाच के द्वारा घृत चुआते हैं, अर्थात् जल वर्षाने वाली आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैं तेजोमय ज्ञान और बल वीर्य प्रदान करने वाली वेदवाणियों का, तेज से चमकने वाले तथा वीर्यरस को ग्रहण करने वाले उत्तम विद्यार्थियों के लिये, वाणी द्वारा कथन करता हूँ। स्नेही मित्र, दुष्टों को बांधने वाला न्यायकारी, ऐश्वर्यवान् आप्तजन, हममें से जो बहुत से गुणों में प्रसिद्ध, व्यवहार कुशल, क्रियावान् और शत्रुनाशक, इनमें से प्रत्येक हमारी शिक्षाप्रद वाणियों का श्रवण करें।

इ॒मं स्तोम॒ सक्र॑तवो मे अ॒द्य मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णो जुषन्त ।
आ॒दि॒त्यासः॒ शुच॑यो॒ धार॑पूता॒ अवृ॑जिना अनव॒द्या अरि॑ष्टाः ॥२॥

भा०—स्नेह करने वाला, न्यायकारी और श्रेष्ठ, ये सब उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले होकर, तथा सूर्य की किरणों के समान प्रकाशक और बारहों मासों के समान नाना सुखों का देने वाले होकर, शुद्ध पवित्र आचार वाले होकर वाणी से पवित्र होकर, वेद त्याज्य पाप कर्मों से रहित तथा अनिन्दित आचार वाले होकर, अन्यों की हिंसा न करने वाले होकर, मेरे इस स्तुतिवचन को प्रेमपूर्वक सुनें।

त आ॒दि॒त्यास॑ उ॒रवो॑ गभी॒रा अद॑ब्धासो॒ दिप्स॑न्तो भूर्य॒क्षाः।
अ॒न्तः प॑श्यन्ति वृजि॒नोत साधु सर्वं॒ राज॑भ्यः पर॒मा चि॒दन्ति॑ ॥३॥

भा०—जो पुरुष सूर्य की किरणों या स्वतः सूर्य के समान प्रकाशमान, प्रजाओं से जलों के समान करों को लेने वाले महान् सामर्थ्य वाले, गम्भीर स्वभाव वाले, अखण्ड शासन करने वाले शत्रुओं से न मारे जाने वाले, स्वयं दुष्टों को दण्ड देने वाले, बहुत से दूतादि रूप चक्षुओं वाले, वा बहुत से अध्यक्षों के स्वामी होते हैं। वे पापों और साधु कर्मों को अपने भीतर ही देख लेते हैं, उन प्रकाशमान तेजस्वी पुरुषों के लिये दूर २ की वस्तुएं भी सब समीप के समान ही हो जाती हैं।

धा॒रय॑न्त आ॒दि॒त्यासो॒ जग॒त्स्था दे॒वा विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः। दी॒र्घाधि॑यो॒ रक्ष॑माणा असु॒र्य॑मृ॒तावा॑न॒श्चय॑माना ऋ॒णानि॑ ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य की किरणों के समान प्रजाओं से कर लेने वाले उनके हित के लिये करों को पुनः उन पर बरसा देने वाले, अत एव समस्त भुवन के रक्षक, जंगम और स्थावर सबका धारण पोषण करते हुए, दीर्घदर्शी, प्राणों के समान रमण करने योग्य उत्तम अन्न, जल तथा धन की रक्षा करते हुए, सत्य ज्ञान, सत्य आचरण, धन और जल अन्न आदि से सम्पन्न होकर, जलों को मेघों के समान ऐश्वर्यों और कर आदि का शनैः २ संग्रह करते हुए, अपने भीतर ही सब पाप और पुण्य का विवेक कर लेते हैं।

विद्यामादित्या अवसो वा अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ५॥ ६

भा०—हे सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश करने वाले और राष्ट्र में कर आदि लेने वाले अध्यक्ष पुरुषो ! और हे श्रेष्ठ पुरुषों के मान करने और दुष्टों का नियमन करने वाले न्यायकारिन् ! आप लोगों के इस पालन और करादान का जो भी सुखकारी परिणाम हो उसे मैं भय या संकट के अवसर पर अवश्य प्राप्त करूं ! हे प्रजा को मरण से बचाने और दुष्टों के निवारण करने वाले अध्यक्षो ! तुम्हारे उत्तम न्याय-शासन में दुराचारों और दुःखदायी संकटों को गढ़ों के समान दूर से ही त्याग दूं। इति षष्ठो: वर्गः ॥

सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥

भा०—हे न्यायकारिन् ! हे दुष्टों के वारण करने हारे ! हे उत्तम ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! और कर आदि लेने वाले राजगणो ! आप लोगों का मार्ग सुख से जाने योग्य, कण्टकरहित, उत्तम और कार्य साधने वाला है। उसी मार्ग से हमें अध्यक्ष रूप से आज्ञा दो। हमें कभी नाश न होने वाला सुख प्रदान करो ।

पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥

भा०—राजा के पुत्र के समान अपने अधीन रखने वाली राजसभा, न्यायसभा और जनसभा, अखण्ड शासन शक्ति वाली और न्यायकारी सुगम उपायों से हमें परस्पर के द्वेष के भावों और द्वेषकारी पुरुषों से पार करें। सखा के समान प्रजा के स्नेही, और रात्रि के समान सब दुःखों के वारण करने वाले शासक का सुखदायी शरण भी बहुत बड़ा और प्रजा का

वर्धक हो। हम भी बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त होकर रोगों और शत्रुओं से पीड़ित न होते हुए, सुखी रहें।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥

भा०—आदित्यगण तीनों भूमियों को और तीनों आकाशों को सत्यबल के द्वारा धारण कर रहे हैं। अर्थात् अग्नि, वायु, और सूर्य भूमि अन्तरिक्ष और आकाश को धारण करते हैं। इन तीनों लोकों में इनके तीन ही प्रकार के मुख्य २ कार्य हैं। हे तेजस्वी पुरुषो! उनके समान ही आप लोगों का भी ज्ञानव्यवहार और परस्पर के लेन देन के व्यवहार में सत्य के बल से ही महान् सामर्थ्य है। हे न्यायकारिन्! हे दुष्टवारक! हे सखे! वह सामर्थ्य उत्तम रीति से बना रहे।

त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥

भा०—ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर चलने वाले मनुष्य के हित के लिये, हित और प्रिय वचन बोलने वाले, सूर्य के समान ज्ञान से प्रकाशमान, शुद्ध आचार-व्यवहार और अन्तःकरण वाले, अभिषेक जलों से पवित्र, स्वप्न अर्थात् निद्रा आदि में न फंसे हुए सावधान, आंख न झपकने वाले अर्थात् दृष्टिदोष से रहित, शत्रु से न मारे जाने योग्य, बहुत प्रशंसनीय तथा बहुश्रुत विद्वान् पुरुष, दिव्य तथा प्रकाशमान ज्ञान, कामना और व्यवहार इन तीनों को धारण करते हैं।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥७॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ! दुःखों और दुष्टों के वारक! हे सुरा आदि मादक पदार्थों से रहित, व्यसनों से मुक्त! जो दानशील, ज्ञानप्रकाशक सूर्यादि के समान उपकारी जन हैं, और जो सामान्य मनुष्य हैं उन

सबका तू राजा है। हे विद्वन् ! हमें विविध विद्याओं के दर्शन करने के लिये सौ बरस की आयु प्रदान कर। हम सुखपूर्वक धारण करने योग्य पूर्ण आयुएं प्राप्त करें, भोगें। इति सप्तमो वर्गः ॥

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११॥

भा०—अदिति अर्थात् अखण्ड ब्रह्म के उपासक ब्रह्मज्ञानी पुरुष, न दायें न दक्षिण दिशा में, न बायें न उतर दिशा में, न आगे न पूर्व दिशा में, न पीछे न पश्चिम दिशा में कभी विचिकित्सा या संदेह को प्राप्त होते हैं। वे कभी और कहीं भी भ्रम में नहीं पड़ते हैं, उनका ज्ञान सर्वगामी होता है। हे प्रजाओं और शिष्यों को बसाने वाले विद्वान् और बलवान् पुरुषो ! मैं परिपक्व ज्ञानवाला और धीर होकर दक्षिणादि दिशाओं में कभी संदेह में न पडूं प्रत्युत् आप लोगों से सन्मार्ग में ले जाया जाकर भयरहित परम ज्योति ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करूं और उसका परम आनन्द प्राप्त करूं।

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥

भा०—जो राजाओं और सत्यमार्ग में ले जाने वाले उत्तम नायकों को ज्ञानोपदेश प्रदान करता है, जिसको सदा स्थिर रहने वाली ज्ञान-नीतियां और समृद्धियां भी बढ़ाती हैं, वह ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों का देने वाला, ज्ञानों, यज्ञों और संग्रामों में प्रशंसित, धनसम्पन्न होकर रथ से रथी के समान अपने रमणीय कार्य से सबसे प्रथम आगे बढ़ता है।

शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥

भा०—जो पवित्र आचारवान् व्यक्ति कभी हिंसित और हिंसक न होकर, उत्तम अन्नोत्पादक जलों का सेवन करता है, वह दीर्घजीवी और

उत्तम वीर्यवान् होता है। जो तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के उत्तम शासन में रहता है उसको शत्रुगण और विपत्तियां न समीप से और न दूर से ही नष्ट कर सकती हैं।

अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४॥

भा०—हे शासन करने वाली विदुषि! हे मरण से रक्षा करने वाले सुहृत्! हे श्रेष्ठपुरुष! हम जब भी कोई आप लोगों के प्रति अपराध करें तो भी हमें सुखी करो। मैं बहुत बड़ा भयरहित प्रकाश प्राप्त करूं। हमें लम्बी चौड़ी अन्धकारमय दशाएं प्राप्त होकर हमारा नाश न करें। हम तामसी दशाओं में न पड़े रहें।

उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन्।
उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥

भा०—इस राजा के लिये शासकवर्ग और शास्यवर्ग दोनों अच्छी तरह एक दूसरे को प्राप्त होकर बढ़ाते हैं। उत्तम ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार आकाश से वृष्टि प्रदान करके सब अन्न को पुष्ट करता है इसी प्रकार राजा भी उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर ज्ञानवान् पुरुषों से उत्तम सुखवृष्टि प्रदान करता और प्रजा को पुष्ट करता है। वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का संग्रामों में विजय करता हुआ प्रयाण करता है। और राजावर्ग प्रजावर्ग समृद्ध होकर इसके लिये उत्तम कर्म साधने वाले होते हैं।

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥ १६ ॥

भा०—हे तेजस्वी ज्ञानवानो! हे पूजनीय सत्संग योग्य पुरुषो! आप लोगों की जो अद्भुत बुद्धियां और बुद्धियों द्वारा किये गये कार्य हैं, जो द्रोह बुद्धि वाले शत्रु के लिये गंठे हुए पाशों के समान हैं, मैं उनको

रथ से अश्व के स्वामी के समान पार कर जाऊं। हम लोग कुशलतापूर्वक बड़े सुखमय गृह में सदा रहें।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥८॥

भा०—हे राजन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं सर्वप्रिय, उत्तम ऐश्वर्यवान् तथा बहुत दान देने वाले, बन्धु के समान सदा प्राप्त होने वाले पुरुष की सुख समृद्धि को कभी स्पर्धा से न लूं। हे राजन् ! उत्तम नियन्त्रण से युक्त ऐश्वर्य से मैं बञ्चित न रहूँ। हम उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर तेरे शासन के बहुत २ गुण कहें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२८]

कूर्मो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ७, ११ त्रिष्टुप्। ८ विराट् त्रिष्टुप। ९ भुरिक त्रिष्टुप्। २, १० भुरिक् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥

भा०—यह समस्त जगत् क्रान्तदर्शी, सूर्य के समान तेजस्वी, स्वयं प्रकाशित होने वाले परमेश्वर से ही प्रकट होता है। इसी प्रकार विद्वान् से सब ज्ञान प्रकट होता है। वह अपने महान् सामर्थ्य से समस्त सत् पदार्थों को प्राप्त होता है।

तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥

भा०—किरणों वाली प्रभात वेलाओं के आने पर जिस प्रकार अग्नियां जीर्ण या अल्पप्रकाश हो जाती हैं, उसी प्रकार हम लोग दिनोंदिन वेदवाणियों से युक्त वृद्धावस्था की आयु विवेक प्रज्ञाओं के उषाकालों के समीप प्राप्त होने पर व्यतीत करें। हे परमेश्वर ! हम उत्तम बुद्धि से

युक्त होकर तेरी स्तुति करते हुए तेरे उपदेश किये धर्मकार्य में रहकर उमत्त ऐश्वर्यवान् हों।

तव॑ स्याम पुरुवीर॑स्य॒ शर्म॑न्नुरुशंस॑स्य वरुण प्रणेतः।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अ॒भि क्षमध्वं॒ युज्या॑य देवाः ॥ ३ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ राजन्! हे उत्तम नायक! हम लोग बहुत से वीर पुरुषों के स्वामी तथा बहुतों से प्रशंसित जो तू है उसकी शरण में रहें। हे विजयेच्छुक पुरुषो! आप सब लोग हमारे बीच कभी पीड़ित न होकर, अखण्ड परमेश्वर या राजा के या राष्ट्रभूमि के पुत्र के समान होकर, परस्पर के सहायक होने के लिये सब प्रकार से समर्थ, सहनशील हो।

प्र सी॑मादि॒त्यो अ॑सृजद्विध॒र्ता ऋ॒तं सिन्ध॑वो॒ वरु॑णस्य यन्ति।
न श्रा॑म्यन्ति॒ न वि मु॑चन्त्ये॒ते वयो॒ न प॑प्तू रघुया परि॑ज्मन् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विविध रश्मियों से जल को धारण करने वाला सूर्य जल को वृष्टिरूप में उत्पन्न करता है, उत्तम रूप से अन्न को उत्पन्न करता है, और मेघ की जलधाराएं बहती हैं और समुद्र को जाने वाली जल की नदियां बहती हैं, वे कभी न थकती हैं न चलने से रुकती हैं, इसी प्रकार समस्त संसार को अपने भीतर ले लेने वाला परमेश्वर 'ऋत' अर्थात् इस गतिशील, व्यक्त संसार को बहुत ही खूबी से बनाता है, वह स्वयं इसको विशेष रूप से और विविध उपायों से धारण कर रहा है। सर्वश्रेष्ठ उस प्रभु के शासन में ये जलधाराओं के समान बन्धन में बंधे जीवगण अन्न और जीवन प्राप्त करते हैं। ये जन्म तथा मरण से कभी नहीं थकते। कभी पूर्ण मुक्त नहीं होते अर्थात् मुक्ति का सुखभोग कर फिर जन्म धारण करते हैं। वे वेग से जाने वाले पक्षियों के समान इस भूलोक पर ऊपर नीचे विचरते रहते हैं।

वि मच्छ्र॑थाय रश॒नामि॒वाग॑ ऋ॒ध्याम॑ ते वरुण॒ खामृ॒तस्य॑।
मा तन्तु॑श्छेदि॒ वय॑तो॒ धियं॑ मे॒ मा मात्रा॑ शार्य॒पसः॑ पु॒र ऋ॒तोः ॥५॥

भा०—हे श्रेष्ठ प्रभो ! बंधी रस्सी के समान पाप और अपराध को आप मुझसे विशेषरूप से ढीला कर दो। मेघ के जल से जिस प्रकार नदी या खुदे हुए तालाब को खूब भर देते हैं उसी प्रकार हम तेरे धनैश्वर्य और सत्यन्याय के कारण खूब समृद्ध और सम्पन्न हों। बुनने वाले जिस प्रकार तागा न टूटना चाहिये उसी प्रकार प्रजातन्तु और यज्ञतन्तु के कर्म को विस्तारते हुए यज्ञतन्तु और प्रजातन्तु न टूटें। ऋतु के पूर्व जिस प्रकार अन्न की मात्रा न समाप्त होनी चाहिये उसी प्रकार ठीक प्रयाण काल या मृत्युगति के पूर्व मेरे कार्यों की मात्रा, अर्थात् कर्मों द्वारा बना शरीर नष्ट न हो। इति नवमो वर्गः ॥

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! मुझसे आप भय दूर करें। हे सत्य व्यवहार के स्वामिन् ! तू अच्छी प्रकार प्रकाशमान है। तू मुझ पर अनुग्रह कर। बछड़े से रस्सी को जिस प्रकार खोलकर पृथक् कर दिया जाता है उसी प्रकार हे प्रभो ! तू मुझसे पापबन्धन को छुड़ा दे। तेरे समीप या दूर तुझसे भिन्न कोई आंख के झपक के काल के लिये भी ईश्वर या संसार का चलाने हारा नहीं है।

मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! हे वायु के समान प्राणों के देने वाले ! ये जो तेरे पाप करने वाले का नाश कर देते हैं, तेरी संगत मैत्री और उपासना में रहते हुए हमें उन शस्त्रों से मत पीड़ित होने दे। हम लोग प्रकाश से दूर के स्थानों को न जावें। और हमारे जीवन की वृद्धि के लिये हिंसाकारियों का बिनाश कर।

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ ! हे बहुतों में प्रसिद्ध ! बहुत से गुणों, बलों में प्रसिद्ध प्रभो ! तेरे लिये हम पहले भी नमस्कार और सत्करादि वचन कहते रहे हैं, और निश्चय से बाद में भी तेरे लिये नमस्कार आदि सत्कार-योग्य वचन कहेंगे। पर्वत के समान अचल तुझमें ही सर्वश्रेष्ठ कर्म दृढ़ता से स्थिर हैं।

परं ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९॥

भा०—हे राजन् ! जिन ऋणों को मैंने किया या जो मुझ पर अन्यों द्वारा किये हुए प्रमाणित किये गये हों उनको मुझसे दूर कर, उनको उतरवाने की व्यवस्था कर। मैं प्रजाजन दूसरे के किये से, दूसरे की कमाई से भोग न करूं। क्योंकि हमारी बहुत सी प्रभात वेलाएं ऋण की चिन्ता से ऐसी होती हैं जैसी मानो प्रभात वेलाएं हुई ही न हों। हे सर्वश्रेष्ठ ! उन दुःख चिन्ताओं की घड़ियों में हम जीवों को शिक्षित कर। प्रजा में राजा ऐसी व्यवस्था करे कि कोई किसी का ऋणी न हो। सब अपने परिश्रम का भोग प्राप्त करें। ऋण की चिन्ता में दिनों का सुख नष्ट न करें। राजा ऋणापहारियों को दण्डित करके शिक्षा दे।

यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०

भा०—हे राजन् ! जो मेरा सहयोगी या मित्र होकर मुझ भीरु पुरुष को सोते समय में भय बतलावे, या जो चोर या डाकू हम प्रजाजन को मारता, पीड़ित करता है, हे दुष्टनिवारक राजन् ! तू उस भयकारी साथी, मित्र, चोर या डाकू से हमें बचा।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ११॥१०
भा०—व्याख्या देखो सू० २७ । मं० १७ ॥ इति दशमो वर्गः ॥

[२९]

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः १, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ६, ७ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१॥

भा०—हे नियम व्यवस्थाओं के स्थिर करने और प्रजा के रक्षक शिक्षण आदि के व्रतों को धारण करने हारे तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग प्रबल इच्छा, ज्ञान और कर्म वाले होकर, एकान्त में सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री के समान पाप आदि अपराध को मुझ प्रजाजन से दूर करो । हे सर्वश्रेष्ठ राजन् ! हे मित्रवद् गुरो ! हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों के सुनते हुए मैं ज्ञानवान् पुरुष, प्रजा के सुख और कल्याण की रक्षा करने के लिये आप से प्रार्थना करता हूँ ।

यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥२॥

भा०—हे तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र में उत्तम ज्ञान स्वरूप और आप लोग ही ओज, बल, पराक्रमस्वरूप हो । आप लोग परस्पर के द्वेष और अप्रीति के कारणों को सदा दूर करते रहो । आप लोग मुकाबले पर दुष्टों को पीस डालने में समर्थ होकर सब कुछ कर सकते हो । आप ही लोग हमें वर्त्तमान में और भविष्य में भी सुखी करो ।

किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥ ३ ॥

भा०—हे सबको बसाने और राष्ट्र में बसने वाले प्रजा जनो ! हे

वसु नाम के विद्वान् ब्रह्मचारी जनो ! कहो, आप लोगों की क्या प्रिय सेवा हम लोग करें ? प्राप्त होने योग्य या बन्धुजनों के योग्य तथा विभागयोग्य धनादि पदार्थ से भी आप लोगों का क्या आदर सत्कार करें। हे स्नेही पुरुष ! हे सर्वश्रेष्ठ ! हे अखण्ड शासन के कर्त्तः ! ऐश्वर्यवन् सेनापते ! आप लोग हमें सुख समृद्धि धारण कराओ।

ह॒ये दे॑वा यू॒यमिद्दा॒पय॑: स्थ॒ ते मृ॑ळत॒ नाध॑मानाय॒ मह्य॑म् ।
मा वो॒ रथो॑ मध्य॒मवाळृ॒ते भू॒न्मा यु॒ष्माव॑त्स्वा॒पिषु॑ श्रमिष्म ॥४॥

भा०—हे दिव्य पुरुषो ! आप लोग ही विद्या आदि गुणों में व्यापक और धन आदि प्राप्त कराने हारे होकर रहो। मुझ ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाले राष्ट्रजन को सुखी करो। आप लोगों का रमण योग्य साधन बीच ही में रह जाने वाला न हो, प्रत्युत सत्य व्यवहार में सिद्धि तक पहुँचावे। और आप लोगों जैसे बन्धुजनों में हम लोग कभी थके मांदे दुःखित और पीड़ित न हों।

प्र व॒ एको॑ मिमय॒ भूर्यागो॒ यन्मा॑ पि॒तेव॑ कित॒वं श॑शा॒स ।
आ॒रे पाशा॑ आ॒रे अ॒घानि॑ देवा॒ मा माधि॑ पु॒त्रे विमि॑व ग्रभीष्ट ॥५॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों में से एक उत्तम शासक ही बहुत से अपराधों को अच्छी प्रकार विनष्ट करने में समर्थ हो, जो वह पिता के समान द्यूत के व्यसनी अर्थात् अनायास दूसरे के धन को छलपूर्वक हरने वाले पर शासन करे, पाश-बन्धन दूर रहें और पाप भी हमसे दूर रहे। पुत्र आदि के रहते मुझ पिता को, पक्षी को व्याध के समान, निर्दयतापूर्वक मत पकड़ो। ऋणादि रहने पर भी पुत्र ऋण चुका सकता है। अतः मुझे दण्ड न देकर पुत्रादि से ऋण लेने की व्यवस्था करो।

अ॒र्वाञ्चो॑ अ॒द्या भ॑वता यजत्रा॒ आ वो॒ हार्दि॒ भय॑मानो व्यये-यम् । त्राध्वं॑ नो देवा नि॒जुरो॒ वृक॑स्य॒ त्राध्वं॑ क॒र्त्ताद॑व॒पदो॑ यजत्राः ॥ ६ ॥

भा०—आज आप लोग हमारे प्रति आदरणीय और अभय आदि देने और सत्संग करने वाले होवो। आप लोगों के हृदय के प्रेम या अभिप्राय को मैं जानूं। क्योंकि सम्भव है कि भयभीत होकर मैं नष्ट हो जाऊं। हे विद्वान् पुरुषो! अतिहिंसक भेड़िये के स्वभाव वाले, चोर डाकू पुरुष के लिये छेदन हिंसन आदि कार्य से हमें बचाओ। हे दानशीलो! आप लोग हमारी आपत्तिकाल से भी रक्षा करो।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥११॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २७। १७॥ इत्येकादशो वर्गः॥

[३०]

गृत्समद ऋषिः॥ १—५, ७, ८, १० इन्द्रः। ६ इन्द्रासोमौ। ९ बृहस्पतिः। ११ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ३ भुरिक् पंक्तिः। २, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ६, ७, ९ त्रिष्टुप्। १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्॥

एकादशर्चं सूक्तम्॥

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम्॥ १॥

भा०—जलों के उत्पादक तथा मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले, सूर्य के लिये ये जलक्रीड़ाएं नहीं करते। दिनोंदिन इन जलों का सबसे प्रथम प्रकट हुआ मेघ भला कितने देश में आ जाता है यह विचारना चाहिये अर्थात् मेघ आदि का स्थान बहुत स्वल्प है, उत्पादक सूर्य बहुत दूर है, सूर्य के स्वार्थ के लिये ये मेघादि नहीं उत्पन्न होते प्रत्युत प्राणियों के उपकार के ही लिये होते हैं। उसी प्रकार सत्यज्ञान वेद और सत्य जगत् के प्रकट करने वाले, सर्वोत्पादक, प्रकृति के व्यापक स्वरूप में परमाणु २ में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के स्वार्थ के लिये ये समस्त प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु सृष्टिरूप होकर क्रीड़ा नहीं कर

रहे हैं। इन प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का प्रथम सर्ग अर्थात् प्रथम विकार जो प्रतिदिन विकृत होता चला जा रहा है भला कितने थोड़े स्थान में परिमित है।

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुषं उवाच।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥

भा०—जो तेजस्वी राजा इस राष्ट्र में उत्तम राष्ट्रप्रबन्ध और अन्नादि ऐश्वर्य को पुष्ट करता है यह भूमि और भूमिवासिनी प्रजा उस राजा को दो कार्यों के लिये कहती है। एक विघ्नकारी बढ़ते हुए शत्रु के हनन के लिये, दूसरे विद्वान् पुरुषों की वृद्धि के लिये। उसके पश्चात् राष्ट्र में भी दो ही कार्य प्रारम्भ होते हैं। उस राजा की प्रीति या मनोकामना के अनुकूल दिन-प्रतिदिन मार्गों को काटती हुईं नदियों के समान मार्ग लांघती हुईं तथा शत्रु को कंपाती हुईं सेनाएं यातव्य शत्रु पर जा चढ़ती हैं।

ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३॥

भा०—सूर्य तीक्ष्ण प्रहार के समान तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त होकर आकाश में ऊपर ठहरता है और मेघ के लिये हननकारी विद्युत् को प्राप्त करता है। मेघ को आच्छादित करता हुआ जल को द्रवित कर देता है। उसी प्रकार शत्रुहन्ता राजा तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से बलवान् होकर, अन्तरिक्ष अर्थात् दोनों सेनाओं के बीच में या ऊंचे आकाश में सबसे ऊंचे पद या स्थान पर स्थित हो। और बढ़ते शत्रु के विनाश के लिये आघातकारी प्रहार करे। शस्त्रवृष्टि करने वाले सैन्य पर अधिकार करता हुआ शत्रु को भगा दे। इस प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा शत्रु पर विजय करे।

बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य जल देने वाले मेघ के विशेष जलमय तथा छिन्न भिन्न द्वारों को, तापकारी व्यापक विद्युत् से आघात करता है, उसी प्रकार हे बड़े सैन्य के स्वामिन् ! बलवान् तथा शस्त्रास्त्र बल के मुख्य व्यूह-द्वारों पर स्थित वीर पुरुषों को बिजली के समान तापकारी अस्त्र से ताड़ित कर। पूर्व विजेताओं के समान ही शत्रु को धर्षण करने वाले अस्त्र-शस्त्र बल से ठीक २ प्रकार शत्रु सैन्य का हनन कर। हे शत्रुहन्तः ! तू इस प्रकार हमारे शत्रु का अवश्य विनाश किया कर।

अव॑ क्षिप दि॒वो अश्मा॑नमु॒च्चा येन॒ शत्रुं॑ मन्दसा॒नो नि॒जूर्वाः॑।
तो॒कस्य॑ सा॒तौ तन॑यस्य॒ भूरे॑र॒स्माँ अ॒र्धं कृ॑णुतादिन्द्र॒ गोना॑म् ॥५॥१२

भा०—हे राजन् ! आकाश से बिजली के समान ऊंचे से शस्त्रास्त्र नीचे की ओर फेंक। जिससे तू उत्तम स्तुतियुक्त होकर शत्रु को विनष्ट कर सके। बच्चों और सन्तानों को बहुत सा ऐश्वर्य देने के लिये हमको गौ आदि पशु और उत्तम भूमियों से समृद्ध कर। इति द्वादशो वर्गः॥

प्र हि क्रतुं॑ वृ॒हथो॒ यं व॑नु॒थो र॒ध्रस्य॑ स्थो॒ यज॑मानस्य चो॒दौ।
इन्द्रा॑सोमा यु॒वम॒स्माँ अ॑विष्टम॒स्मिन्भ॒यस्थे॑ कृणुतमु लो॒कम् ॥६॥

भा०—हे इन्द्र अर्थात् सेनापति या राजन् ! हे सोम अर्थात् ऐश्वर्यवन् वैश्यवर्ग ! आप लोग जिस काम को चाहते हो उसको और उस ज्ञानयुक्त बुद्धिकौशल को प्राप्त करने के लिये उद्यम करो। आप दोनों मिलकर आराधना या साधना करने वाले दानशील पुरुष को चोदना अर्थात् वेदशास्त्र के अनुसार चलाने हारे होकर रहो। तुम दोनों हम सामान्य प्रजाओं की रक्षा करो और इस भय के स्थान में प्रकाश, आलोक, करो।

न मा॑ तम॒न्न श्र॑म॒न्नोत त॑न्द्र॒न्न वो॑चाम॒ मा सु॑नो॒तेति॒ सोम॑म्।
यो मे॑ पृ॒णाद्यो दद॒द्यो नि॒बोधा॒द्यो मा॑ सु॒न्वन्त॒मुप॒ गोभि॒राय॑त् ॥७॥

भा०—हे मनुष्यो ! जो मेरे शरीर को पुष्ट करे, जो मुझे बल ओज,

कान्ति और सुख प्रदान करे, जो मुझे दान दे, विशेष रूप से जागृत रखे, जो ओषधिरस निकालते हुए मुझको उत्तम इन्द्रियों से युक्त करता हुआ प्राप्त हो अर्थात् जिसे बनाते २ आंख, नाक, मुख आदि की शक्ति बढ़े, ऐसी ओषधि आदि पदार्थों का रस प्राप्त कर सेवन करो और जो ओषधि मुझे आकर्षित न करे, मुझमें उसके प्रति अभिलाषा को न जगावे, जो ओषधि मुझमें तप, सहनशक्ति, वीर्य उत्पन्न न करे और जो सुख उत्पन्न न करे, और जिसके बनाने में निषेध कह देवें ऐसी ओषधियों को मत तैयार करो ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् या वायु वर्षणशील मेघ पर आघात करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा सेना से आक्रमण करने वाले, शान्ति को भंग करने वाली सेनाओं के बीच में बलवान्, उत्साहवान् उस शत्रु को भी मारे। उसी प्रकार हे विदुषि स्त्री ! तू हमारे बीच में आ, प्रवेश कर और प्राण के बल से बलवती वाणी और वायु के वेग से बलवती विद्युत् के समान शत्रुओं का धर्षण करती हुई शत्रुओं का विजय कर।

यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥

भा०—हे बड़े राज्य के पालक ! हमारे बीच में जो छुपा हुआ और जो हिंसा करने वाला आततायी हो उसको सब में दण्डनीय रूप से अपराधी घोषित करके तीक्ष्ण शस्त्र से वेध, दण्डित कर । हे राजन् ! तू हथियारों से शत्रुओं का विजय कर । हे राजन् ! तू द्रोह के कारण भी प्रजा में एक दूसरे के मारने वाले को भी पकड़ और कैद में रख ।

अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

भा०—हे शूरवीर सेनापते ! हमारे शूरवीर पुरुषों से मिलकर जो २ बल पराक्रम के कार्य करने योग्य हों उनको कर। शत्रु सदा तुझसे कांपते रहें, उनको मारकर उनके धन हमें प्रदान कर।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम्।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥१३॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! मैं सुख का इच्छुक प्रजाजन तुम्हारे वीर-पुरुषों के सैन्यबल को और विजयेच्छुक पुरुषों में श्रेष्ठ जनों को अन्न आदि सत्कार द्वारा उपदेश करता हूँ। जिससे हम लोग समस्त वीर पुरुषों सहित तथा उत्तम पुत्र, पौत्रादि सन्तानों से युक्त, श्रवणयोग्य ऐश्वर्य को दिनोंदिन प्राप्त करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३१]

गृत्समद ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ जगती। ३ विराट् जगती। ५ निचृज्जगती। ६ त्रिष्टुप। ७ पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१॥

भा०—हे मित्र ! और हे वरुण ! सदा साथ रहने वाले आप दोनों आदित्य के समान तेजस्वी ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचारियों, दुष्टों को रुलाने वाले ३६ वर्ष के ब्रह्मचारियों, और २४ वर्ष के ब्रह्मचारियों सहित, हमारे रमणसाधन यानों की रक्षा कीजिये। जिससे अन्न और यश के इच्छुक, हर्ष के अभिलाषी और जलों या वनों में विहार करने वाले प्रजागण पक्षियों के समान गृहों के भी ऊपर वेग से उड़ा करें।

अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम्। यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग प्रीतियुक्त होकर हमारे वेगवान् रथ को प्रजाओं के बीच ऊपर २ चलाया करो । और जो आप शीघ्रगामी हो तो आप लोग जाने योग्य गतियों से लोकों को पार करते हुए पृथिवी के उच्च प्रदेश में भी हाथों से यन्त्रों को सञ्चालित किया करें ।

उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥

भा०—वह हमारा राजा ज्ञानप्रकाश से सबका देखने वाला, मनुष्यों के बल से सब उत्तम काम करने में समर्थ होता है । वह चौर आदि से रहित रक्षादि साधनों से बड़े दान, भृति, वृत्ति आदि देने और ऐश्वर्य के स्वयं प्राप्त करने के लिये, रथ पर सवार होता है ।

उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् । इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥

भा०—और वह सर्वप्रकाशक सुखदाता परमेश्वर उत्पन्न हुए इस संसार का रचने वाला, शिल्पी के समान इसको बनाने वाला, स्तुति योग्य, अन्न के समान चाहने और शक्ति उत्पन्न करने वाला, वाणी के समान सब अर्थों का प्रकाशक, भूमि के समान सर्वाधार ऐश्वर्यवान्, सबके सेवने योग्य, बड़ी भारी कामना अर्थात् संसार रचने के प्रबल संकल्प से युक्त, सूर्य और पृथिवी, माता और पिता, गुरु और जनक के समान समस्त लोकों का धारक पालक और ज्ञानदाता, अन्न और पृथिवी के समान पुष्टि करने वाला, गुरु की स्त्री के समान और पुर के स्वामी राजा के समान ब्रह्माण्ड को व्यवस्थित रखने वाला और गृहस्थ धर्म को निभाने वाले एक दूसरे के पालक पतिपत्नी के समान जीव संसार के प्रति अति प्रेममय, और सूर्य-चन्द्र के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला, समान रूप से सब पर प्रेमयुक्त होकर, गमनशील अश्वाओं से रथ के

समान इस रमण करने योग्य देह और वेग से चलने वाले समस्त संसार को गति देने वाली महा शक्तियों से चल रहा है।

उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों दिन और रात्रि के समान उत्तम कल्याण और ऐश्वर्य सुख से युक्त, एक दूसरे को स्नेह से देखने वाले और एक दूसरे के गुणों को दर्शाने वाले, परमेश्वर की कामना करने वाले, जंगम प्राणियों और स्थावर ओषधि वनस्पति और पाषाण आदि को उत्तम रूप से कार्य व्यवहारों में लाने वाले होकर रहो। हे पृथ्वी के समान एक दूसरे का आश्रय होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो ! मैं जो आप दोनों को नित्य नूतन वचन द्वारा उपदेश करूं और मानस कायिक वाचिक तीनों प्रकार के बलों और बाल यौवन वार्धक्य तीनों अवस्थाओं और ऋग्, यजुः, साम, तथा मन्त्र, कर्म, और उपासना इन तीनों ज्ञानों से सम्पन्न तुम दोनों की आयु को मैं सुरक्षित और परिवर्धित करता हूँ।

उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग, हमारी शुभकामना करने वाले प्रेमी सज्जनों के समान, आप लोगों के उपदेश की सदा कामना किया करें। वह परमेश्वर मेघ के समान फैला हुआ, आकाश के समान अति सूक्ष्म या सब संसार के आश्रय में स्थित होकर सबको नियम में बांधने वाला, आनन्दमय एकमात्र स्वरूप से विद्यमान, तीनों लोकों में व्यापक, महान् लोकों में भी व्यापक तथा सबका उत्पादक है, वही समस्त प्राणों और प्राण वालों का पालक अन्न प्रदान करता, वही शीघ्र

गति से चलने वाले सूर्य विद्युत् आदि लोकों और पदार्थों का प्रेरक होकर बुद्धिपूर्वक समस्त कार्यों को धारता है।

एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम्।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥७।१४॥

भा०—जिस प्रकार परस्पर मिलकर काम करने वाले शिल्पी लोग, स्तुतियोग्य स्वामी के लिये उत्तम कोटि के प्रयत्नसाध्य पदार्थ बनाते हैं और वे उससे धन अन्न और यश की इच्छा करते और ऐश्वर्य या बल अधिकार की कामना करते हैं, इसी प्रकार यज्ञ, उपासना और दान करने वाले ज्ञानी लोग, अतिस्तुत्य परमेश्वर के लिये उत्तम रूप से हृदय से उठे भावपूर्ण स्तुति वचनों को प्रकट करते हैं। वे ज्ञान की और बल की कामना करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो! मैं आप लोगों के इन उत्तम वचनों को नित्य चाहता और स्वीकार करता हूँ। रथ में लगा अश्व जिस प्रकार बड़े वेग को प्राप्त करके मार्ग व्यापता है, उसी प्रकार निश्चय से तुम जीवगण रमण योग्य देह से विद्यमान देह से देहान्तर में जाने वाले होकर नाना ऐश्वर्य और अन्नादि कर्म फल को भोगा करो।

[३२]

गृत्समद ऋषिः ॥ १, द्यावापृथिव्यौ । २, ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा । ४, ५ राका । ६,७ सिनीवाली । ८ लिङ्गोक्ता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । ३ निचृज्जगती । ४, ५ विराड् जगती । २ त्रिष्टुप् । ६ अनुष्टुप् । ७ विराडनुष्टुप् । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी जिस प्रकार जल प्रदान करतीं, उत्पन्न हुए संसार की रक्षा करती हुए नाना पदार्थ करते हैं, जिनसे बहुत अधिक जीवन प्राप्त होता है, वे स्तुति योग्य हैं। ऐश्वर्य का इच्छुक पुरुष

उनसे सुख प्राप्त करता है। उसी प्रकार हे सूर्य और भूमि के समान माता पिताओ ! आप दोनों सत्यधर्मानुकूल सुख की कामना करने वाले इस मुझ पुत्र के लिये मेरा वचन ग्रहण करते हो। आप दोनों मेरी रक्षा करने हारे हावो। जिस आप दोनों की बड़ी आयु है वे आप दोनों मेरे समक्ष प्रशंसा करने और आदर करने योग्य हैं। आप दोनों के अधीन आप के वसु, धनैश्वर्य आदि का इच्छुक और स्वामी मैं पुत्र इस आदर को धारण करूं।

मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः। मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्वेमहे ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! हे विद्वन् ! मनुष्य के छुपे पाप हमें किसी दिन भी पीड़ित न करें। तू इन दुःखदायी विपत्तियों द्वारा हमें पीड़ित न कर। हमारे परस्पर के मैत्रीभावों को मत टूटने दे, प्रजा में फूट मत पैदा कर। प्रत्युत हमारे उस मैत्रीभाव को तू भी जान और प्राप्त कर। सुख की इच्छा वाले चित्त से तुझसे हम याचना प्रार्थना करते हैं।

अहेळता मनसा श्रुष्टिमावह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्। पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! हे प्रभो ! तू क्रोध और अनादर के भाव से रहित मन से, ज्ञान कराने वाली उत्तम क्रियाओं से और उत्तम वचन से, प्रत्येक अवयव, वर्ण २, और पद २ पृथक् २ रूप से प्रकट करने वाली, स्वयं परिपुष्ट, गौ के समान रस पिलाने वाली, ज्ञान, बल और चारों पुरुषार्थों को पूर्ण करने वाली, श्रवण योग्य वेदबाणी को शीघ्र ही स्वयं धारण कर और अन्यों को धारण करा। हे बहुतों से प्रशंसित विद्वन् ! तुझ ज्ञानवान् को मैं सब दिन प्रेरित करता, दान आदि से बढ़ाता और प्रेम से प्राप्त होता हूँ।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४॥

भा०—मैं उत्तम नाम वाली, तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा से युक्त रात्रि के समान मनोरम स्त्री की उत्तम स्तुति द्वारा प्रशंसा करूं और उसे अपने समीप आदर से बुलाऊं। वह हमारे वचन सुने। वह उत्तम भाग्यवती होकर स्वयं हमारे वचनों को समझे, हमारा अभिप्राय जाने। न टूटने वाली सुई से जिस प्रकार वस्त्र सिये जाते हैं उसी प्रकार वह अपनी अखण्डित बुद्धि से गृहस्थ के कर्मों को सम्पादित करती रहे अर्थात् वह उत्तम २ कर्मों का तांता लगाये रखे। और वही प्रशंसा योग्य, बहुत ऐश्वर्य देने वाले और बहुत से धनों के स्वामी वीर्यवान् पुत्र को उत्पन्न करे।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥

भा०—हे चांदनी के समान मनोरमे! जो उत्तम तेरे उत्तम शिल्प-कार्य और शुभ संकल्पमय मतियां हैं, जिनसे तू सर्वस्व देने वाले पति के लिये बसने योग्य नाना द्रव्य और अन्नादि सुख-सामग्री प्रदान करती है, उनसे हमें सदा ही उत्तम चित्त वाली होकर प्राप्त हो। हे सुभगे! उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यमयी! तू असंख्य समृद्धियों को देती और उनमें रमती और रमाती हुई हमें प्राप्त हो।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रेम-बन्धन से वरण करने वाली, पति द्वारा वरण करने योग्य! हे बहुत सुन्दर केशपाश वाली! जो तू विद्वान् पुरुषों के बीच में से स्वयं अपनी इच्छानुसार एक को प्राप्त होने वाली है, तू ग्रहण करने

योग्य तथा आदर सम्मान से दिये गये द्रव्य को प्रेम से स्वीकार कर। हे उत्तम स्त्री ! हमें उत्तम सन्तान प्रदान कर ।

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥

भा०—जो स्त्री उत्तम बाहुओं वाली, उत्तम अंगुलियों वाली, सुखपूर्वक सन्तान उत्पन्न करने वाली, बहुत से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो, उस प्रजाओं की पालक तथा अन्नादि के बन्धन से वरण करने वाली स्त्री को खान-पान की सामग्री प्रदान करो ।

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—जो प्रेमवश अव्यक्त अस्फुट शब्द कहने वाली, अतिलज्जाशील, जो अति प्रेम वाली, जो सुख देने वाली, चांदनी रात्रि के समान मनोहर और जो उत्तम ज्ञानवाली हो ऐसी ऐश्वर्य वाली और समस्त दुःख वारने वाली स्त्री को आत्मसुख, तृप्ति और कल्याण सुख प्राप्त करने के लिए अपने समीप बुलाऊं। ऐसी स्त्री को स्वीकार करूं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[३३]

गृत्समद ऋषिः ॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ९, १३, १४, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ८ त्रिष्टुप् । २, ७ पंक्तिः । १२, भुरिक् पंक्तिः ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने वाले ! हे वीर पुरुषों, वैश्यों तथा उत्तम शिष्यों के पालन करने वाले सेनानायक ! राजन् ! आचार्य ! सूर्य के समान तथा अच्छी प्रकार तत्व को देखने और अन्यों को दिखाने वाले तुझसे

उत्तम मनन योग्य सुख, ज्ञान आदि हमें प्राप्त हो। तू हमसे कभी न पृथक् हो। हमारे राष्ट्र का वीर पुरुष अश्व पर सवार होकर सब प्रकार से समर्थ हो। हमारा पुत्र ज्ञानवान् पुरुष के अधीन रहकर सब प्रकार से समर्थ बने। हम उत्तम सन्तानों से सन्तानवान् होकर प्रसिद्ध हों।

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों के रुलाने वाले प्रभो! राजन्! दुष्ट रोगों को भगाने वाले वैद्य! हम लोग तेरे से दिये अति शान्तिदायक तथा रोग-नाशक ओषधियों से सौ बरसों तक जीवन का भोग करें। पदार्थों, रोगों और शत्रुजनों को हमसे दूर कर। पाप को भी सर्वथा नाश कर। नाना प्रकारों से आने और सब अंगों में व्यापने वाले दुःखदायी रोगों को विशेष रूप से नष्ट कर।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने वाले! दुःखों को भगाने वाले! तू उत्पन्न हुए संसार के बीच में क्रान्ति से सबसे अधिक प्रशंसायोग्य है। हे शस्त्रास्त्र से सज्जित बाहु वाले पुरुष! तू सब बल वालों में सबसे अधिक बलवान् है। हमें पाप से कल्याणपूर्वक पार कर। और सब प्रकार की पाप के कारण आने वाली अपत्तियों को दूर कर।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों को भगाने वाले वैद्य! तुझे हम कभी क्रुद्ध न करें। हे सर्वश्रेष्ठ! हम तुझे बुरी निन्दा और समान स्पर्द्धा और बराबरी पर बुलाने से कभी कुपित न करें। प्रत्युत नमस्कार और आदरवचनों से सदा सत्कार करें। हमारे वीरों और पुत्रों को उत्तम रोगनाशक उपायों और

ओषधियों से उत्तम सुख प्रदान कर। मैं तुझे व्याधिनाशकों में से सबसे श्रेष्ठ चिकित्सक सुनता हूँ।

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥१६॥

भा॰—जो पुरुष ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न आदि ओषधियों से उत्तम सुख देता और उत्तम उपदेशों से ज्ञान प्रदान करता है, उस को उत्तम स्तुति वचनों से मैं धारण करूं या उसके अधीन रहूँ। वह कोमल हृदय वाला, उत्तम ज्ञान देने वाला और उत्तम मुखाकृति से युक्त हंसमुख, सर्वपालक होकर इस मननकारिणी शक्ति और सर्वज्ञान करने में समर्थ बुद्धि के बल से हमें कष्ट और पीड़ा न दे। इति षोडशो वर्गः ॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।
घृणीव छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥

भा॰—जिस प्रकार वायु से युक्त वर्षण करने वाला मेघ खूब उज्ज्वल अन्न से याचनाशील कृषक जन को खूब तृप्त कर देता है, उसी प्रकार मनुष्यों का स्वामी, बलवान् पुरुष शत्रुओं को टुकड़े २ कर देने वाले बल से ऐश्वर्य की कामना करने वाले मुझ राष्ट्रजन को खूब प्रसन्न और हर्षित करे। सूर्य के ताप से सन्तप्त पुरुष जिस प्रकार छाया का सेवन करता है उसी प्रकार हे राजन्! मैं निष्पाप होकर सब दुःखों को दूर भगाने वाले तेरी सुखमय शरण का सेवन करूं।

क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥

भा॰—हे दुष्टों को रुलाने और प्राणियों के दुःख दूर करने हारे! तेरा सबको सुख शान्ति देने हारा वह हाथ कहां है? जो स्वयं सब रोगों और कष्टों को दूर करने वाला, सन्तप्त पुरुष के ताप की शान्ति करने वाले जल के समान सुखदायक है और जो काम्य भोगों से प्राप्त होने

वाले व्याधि आदि पीड़ाओं को दूर करता है। हे सुखों की वर्षा करने हारे बलवन्! मुझको सदा क्षमा कर वा सब प्रकार से सहनशील, दृढ़ बलवान् बना।

प्र ब॒भ्रवे॑ वृष॒भाय॑ श्वि॒तीचे॑ म॒हो म॒हीं सु॑ष्टु॒तिमी॑रयामि।
न॒म॒स्या क॑ल्मली॒किनं॒ नमो॑भिर्गृणी॒मसि॑ त्वे॒षं रु॒द्रस्य॒ नाम॑ ॥ ८ ॥

भा०—सबको पालने पोषने वाले, काम्य सुखों और ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, उज्ज्वल कान्ति को धारने वाले उस महान् परमेश्वर की मैं बड़ी भारी उत्तम स्तुति करूं। हे विद्वान् पुरुष! तू भी नमस्कारों से उस मलों को शोधने वाले की वन्दना कर। हम उस दुःखहारी के अति-तेजस्वी स्वरूप की स्तुति करते हैं।

स्थि॒रेभि॒रङ्गैः॑ पुरु॒रूप॑ उ॒ग्रो ब॒भ्रुः शु॒क्रेभिः॑ पिपिशे॒ हिर॑ण्यैः।
ईशा॑नाद॒स्य भुव॑नस्य॒ भूरे॒र्न वा उ॑ योषद्रु॒द्राद॑सु॒र्य॑म् ॥ ९ ॥

भा०—नाना रूपवान् पदार्थों का स्वामी, बलवान् और सबका पालक पोषक होकर, तेजोयुक्त सूर्यों और सुवर्ण आदि सम्पत्ति द्वारा स्थायी जगत् के अंग प्रत्यंगों में सुशोभित हो रहा है। संसार के वशकर्त्ता तथा भरण पोषणकारी और दुष्टों को रुलाने हारे उस परमेश्वर से प्राणों में रमण करने वाला परमानन्द तथा महान् विश्वसञ्चालन बल कभी भी नहीं पृथक् होता।

अर्ह॑न्बिभर्षि॒ साय॑कानि॒ धन्वार्ह॑न्नि॒ष्कं य॑ज॒तं वि॒श्वरू॑पम्।
अर्ह॑न्नि॒दं द॑यसे॒ विश्व॒मभ्वं॒ न वा ओजी॑यो रुद्र॒ त्वद॑स्ति ॥१०।१७॥

भा०—परमेश्वर सर्वपूजनीय होने से 'अर्हन्' है। वही जगत् के अन्त करने वाले प्रलयकारी साधनों को और अन्तरिक्ष या जल को, वही सम्पूर्ण सम्पत् को, वही उपास्य विराट् रूप को या 'विश्वरूप' अर्थात् जीव जगत् को धारण करता है। वही इस महान् विश्व की रक्षा करता है। उससे अधिक बलशाली दूसरा नहीं है। इति सप्तमो वर्गः ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

भा०—हे विद्वन् ! तू रथ पर विराजने वाले, प्रसिद्ध और ज्ञानवान्, युवा और बलवान्, सिंह के समान शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाले, घोर शत्रुनाशक पुरुष की स्तुति कर। हे दुष्टों को रुलाने वाले ! तू स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को सदा सुखी कर। तेरी सेनाएं शत्रुजन को हमसे दूर ही छिन्न भिन्न करें।

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार कुमार वन्दना करने योग्य तथा समीप आते हुए पिता को प्रति दिन नमस्कार करता आगे झुकता है, इसी प्रकार हे दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष ! तू भी वन्दनीय और अन्नादि सुखदायी पदार्थों को देने वाले, तथा उपासनीय, सच्चे पालक परमेश्वर को आदर-पूर्वक नमस्कार किया कर। स्तुति पाकर हे परमेश्वर ! तू हमें मार्ग का उपदेश करता है और अपने इस सम्मुख स्थित को रोगों और दुःखों के निवारक औषधों और उपायों का प्रदान करता है।

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

भा०—सुखों की वृष्टि करने वाले प्राणों और वायुओं के समान हे विद्वान् पुरुषो ! जो रोगनिवारक ओषधियां अतिशुद्ध, जो अति अधिक रोगों को शमन करने वाली, जो सुख कल्याणजनक हैं, जिनको हमारा परिपालक वैद्य आदि जन मननशील होकर सबसे उत्तम ग्राह्य जानकर लेता है, वे हमारे और तुम्हारे लिये शान्तिकर और रुलाने वाले रोगों को दूर करने वाली हों। उनको मैं भी प्राप्त करना चाहूँ।

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥

भा०—हे शान्तिजल से स्नान कराने वाले ! रुलाने वाले दुष्ट पुरुष की या दुःखकारी रोग की पीड़ा और वर्जने योग्य पीड़ाएं और अति तीक्ष्ण शस्त्र तथा ज्वरादि की बड़ी भारी पीड़ा और दुर्मति आदि हमसे परे ही रहें । ऐश्वर्यवान् पुरुषों के पुत्रों और पौत्रों के लिये उक्त कष्टों को दूरकर और सबको सुखी कर ।

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—हे जगत् के भरण पोषण करने वाले ! हे सर्वश्रेष्ठ सुखों के बर्षक ! हे ज्ञान देने वाले ! जिस कारण तू न किसी का कोई पदार्थ हर, न कोप या अनादर कर, न किसी का दण्ड वधादि कर, प्रत्युत् हमारा वचन, पुकार सुनता हुआ, और उत्तम ज्ञान का श्रवण करता हुआ, हमें ज्ञान करा । हम उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञान-प्राप्ति और धन-प्राप्ति के संग्राम आदि काम में बहुत उत्तम वचन कहें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३४]

गृत्समद ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृज्जगती २, १०, ११, १२, १३ विराड्जगती । ४, ५, ६, ७, १४ जगती । १५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु-गण मेघ की जल-धारा को आवृत करते हैं, उसी प्रकार विद्वान् भी धारा अर्थात् वाणी को धारण करने वाले या वाणियों की प्रीति के लिये अपने अधीन 'अवर' अर्थात् नव शिष्यों को

धारण करने वाले, तथा वीर पुरुष भी 'धारा' अर्थात् नायक की आज्ञा के अधीन रहने वाले हों। वीर पुरुष वायुओं के समान पराक्रम वाले हों। वे सिंहों के समान भयंकर, शक्तियों और सेनाओं सहित सबका आदर सत्कार करने वाले, अग्निओं के समान दीप्तियुक्त हों। वायुएं जिस प्रकार जलों के सहित होती हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी ऋजु अर्थात् धर्मानुकूल सन्मार्ग पर स्वयं चलने और अन्यों को चलाने हारे हों। वायु-गण जिस प्रकार मेघ को वेग से दूर ले जाते हुए सूर्यरश्मियों को प्रकट करते हैं उसी प्रकार विद्वान्-जन भ्रम या संशय रूप से मेघ को दूर करते हुए, नाना वाणियों को प्रकट करें।

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य॑भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥

भा०—आकाश के नाना भाग किस प्रकार नक्षत्रों से जगमगाते हैं, उसी प्रकार वीर और विद्वान् पुरुष भी तेजस्वी होकर, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले बलों से और आच्छादन या रक्षा करने वाले शरणप्रद उपायों से अन्यों को चेतावें। विद्वान् पुरुष उत्तम अन्न के खाने वाले हों और वीर पुरुष 'खाद' अर्थात् सशस्त्र सेनादल के स्वामी हों। वे मेघ से उत्पन्न वृष्टियों के समान विशेष रूप से चमकें। उपदेष्टा गुरु वाणी के पवित्र गुरुपद पर स्थित होकर पुरुषों को प्रकाशवान् हृदय वाला ज्ञानी बनावे। गर्जनकारी बरसता मेघ अन्तरिक्ष के जलमय अन्तरिक्ष के भाग में वायु-गण को चमकती विजुली धारण करने वाला बनाता है, उसी प्रकार रुद्र अर्थात् पृथिवी के अतिदीप्तियुक्त उच्च पद स्थित होकर, तुम लोगों को सुवर्ण पदकों को छाती पर धारण करने वाला करता है। तब वे सैनिक भी विद्युत् वाली मेघ की वर्षाओं के समान जगमगाते हैं।

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३॥

भा०—संग्राम आदि प्रतिस्पर्धा के कार्यों के अनन्तर जिस प्रकार वायु के समान प्रबल वेग से जाने वाले सवार लोग निरन्तर वेग से चलने वाले अश्वों को सींचते हैं, उनको जल से निहलाते हैं और जिस प्रकार वायु गण मेघों में क्षेपण आदि के कार्यों में व्यापक या विस्तृत देशों को सींचते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वेगवान् पशुओं और पुरुषों को सींचे, उनकी वृद्धि करें, और उनको पुष्ट करें। जिस प्रकार वायुगण नदी के बीच वेगवान् साधन पाल पतवार आदि से नौका को चलाते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग नदी के बीच वेगवान् यानों और रथों से वेगवान् यन्त्रों से वेग से जाते और नाव तथा वेग से चलाते हैं। वायु गण जिस प्रकार सुवर्ण के समान चमकने वाले तेज से युक्त होकर मेघों और वनों को कंपित करते हुए वर्षण करने वाली मेघमालाओं से सेचन करने योग्य अन्न से युक्त क्षेत्र को प्राप्त होते, उसी प्रकार हे विद्वान् व्यापारी जनो! और हे शत्रुगण को मारने वाले वीर पुरुषो! आप लोग भी सुवर्ण के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख वाले, एवं लोहमय शिरस्त्राण, शस्त्रास्त्र पहन कर शत्रुओं को कंपाते हुए, क्रोध से पूर्ण वीर जन और ज्ञान से युक्त विद्वान् होकर, शस्त्रवर्षी सेनाओं और हृष्ट पुष्ट अश्वाओं से, धाराओं से जल सेचने योग्य क्षेत्र के समान शस्त्र वर्षण करने योग्य परराष्ट्र पर प्रयाण करो।

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार जीवन देने वाले वायुगण अन्न या जलवृष्टि के आधार पर समस्त लोकों को धारण करते हैं, और मित्र के समान प्रिय के स्थान को धारण करते हैं, उसी प्रकार अन्यों को जीवन देने वाले विद्वान् पुरुष परस्पर सम्पर्क और प्रेम के आश्रय पर नाना प्रकार के लोकों और प्राणियों को धारण करते, सबका भार अपने पर लेते हैं, और

स्नेही मित्र के स्थान को सदा धारण करते हैं, वे सबके मित्र बने रहते हैं। वे हृष्ट पुष्ट इन्द्रियरूपी अश्वों वाले, नाशरहित धन सम्पदा वाले, ऋजु अर्थात् धर्मानुकूल मार्ग को प्राप्त होते हुए, सब ज्ञानों में धुरन्धर हों।

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः। आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे चमचमाते शस्त्रों वाले वीरो! और देदीप्यान ज्ञान से युक्त विद्वानो! हे क्रोध से युक्त वीरो और हे ज्ञान से युक्त ज्ञानवान् पुरुषो! हे शत्रु को मारने वाले वीरो और वायुवेग से जाने वाले विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार वायुगण गर्जते अन्तरिक्षों वाले, प्रकाश करने वाले, गर्जती मध्यम वाणी वाले अविनाशी आकाश मार्गों से जाते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो तुम दूध से भरे थनों वाली गौओं के समान व्यक्त उपदेश करने वाली वाणियों से युक्त होकर, विनाशरहित धर्ममार्गों से, आकाश से जाने वाले हंसों के समान बन्धनमुक्त या परम हंसों के समान, परम मधुर आनन्दमय प्रभु के परमानन्द प्राप्ति के लिये, रात दिन, निरन्तर उच्च यत्न किया करो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन। अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञान से युक्त विद्वानो! और क्रोध से युक्त वीर पुरुषो! जिस प्रकार वायु गण मेघ के आधार पर अन्नों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी ज्ञानप्रदान करने वाले विद्वान् पुरुष के आश्रय में होकर उत्तम ज्ञानों और धनैश्वर्य को उत्पन्न करो। और स्तुतिबचनों के समान मनुष्यों को उपदेश और शासन करने वाले होकर ऐश्वर्यों और अभिषेकयोग्य पदों को प्राप्त होवो। और हे वीर पुरुषो!

तुम अश्वों की सेना को या राष्ट्र के व्यापक शक्ति को बढ़ाओ, तथा दूध देने वाले थन को लक्ष्य कर अर्थात् बहुत अधिक दूध पाने के लिये गोसम्पदा को बढ़ाओ। हे विद्वान् पुरुषो! तुम लोग भी ज्ञानरस देने वाली वेदवाणी को वृद्धि करो, उसका मनन और पाठ करो। हे विद्वानो! वीर पुरुषो! आप लोग उपदेश करने वाले विद्वान् की और शत्रु की हानि करने वाले वीर पुरुष की वृद्धि के लिये विज्ञान से युक्त बुद्धि को और सुवर्णादि से युक्त धारण शक्ति को बढ़ाओ।

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७॥

भा०—हे वीरो! और विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमें रथ में लगे बलवान् अश्व के समान वेग कार्य में बलवान् उत्तम पुरुष प्रदान करो। दिन प्रति दिन पान करने योग्य ब्रह्मज्ञान का हमें ज्ञान कराओ। स्तुतिशील पुरुषों को इच्छानुसार धन अन्नादि प्रदान करो। बलयुक्त कर्मों में कर्म करने वाले शिल्पी उत्तम वेतन, उत्तम बुद्धि, अभययुक्त सुख, और परायों से न लांघने योग्य बल प्रदान करो।

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार दीप्तिमान् विद्युत् को धारण करने वाले वायुगण उत्तम जल देने वाले होकर क्षेत्र में अन्न डालने वाले कृषक के लिये बड़ी वृष्टि का सेचन करते और बहुत अन्न की वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित वक्षःस्थल वाले और वायु के समान वेग वाले वीर, उत्तम दानशील होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये रथों में वेगवान् साधनों को जब जोड़ते हैं, तब वे अन्नादि कर देने वाले प्रजाजन को बढ़ाने के लिये, बछड़े को दुधार गाय के समान, बड़ी भारी अन्नादि सम्पदा को उनके घरों में सींचते हैं।

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥९॥

भा०—हे वीर और विद्वान् पुरुषो ! जो मनुष्य भेड़िये या चोर के समान प्रजाघातक होकर हम प्रजाओं का शत्रु होकर हमें पकड़े या दबाये रखता है, हे राष्ट्र में बसे और राष्ट्र में बसाने वाले, 'वसु' नाम विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमें हिंसक राजा या चोर पुरुष से बचाओ और उस पर संतापजनक क्रोध आदि या सैन्यचक्र से चढ़ाई करो । हे दुष्टों को रुलाने वाले ! तुम लोग प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष के हनन करने योग्य साधनों को और उन घातकों को मार गिराओ ।

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—वायु के समान बलवान् वीरो ! और विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का वह आश्चर्यजनक नियम-व्यवस्थापन का कार्य जाना जाता है जिससे कि आप्त बन्धुवर्ग और मित्रवर्ग, पृथिवी के जलादि के आश्रय स्थानों को, गौ के स्तनमण्डल के समान दोहते हैं । जो आप का अद्भुत् कर्म स्तुतिशील विद्वान् पुरुष की निन्दा करने वाले का विनाशक होता है । हे अहिंसनीय तथा दुष्टों के रुलाने के पदों पर स्थित पुरुषो ! आप लोगों का वह अद्भु त् कार्य अपनी आयु को क्रम से व्यतीत करने वाले जीर्ण प्राणियों के आयु पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त होने के लिये बाल, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्थाओं से पार पहुँचा देने वाला होता है ।

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥

भा०—हे वीरो ! और विद्वान् पुरुषो ! ज्ञानपूर्वक गमन करने वाले, व्यापक शक्ति वाले, अर्थ और यश के चाहने वाले राजा के उत्तम रीति

से भरण-पोषण और प्रजापालन के कार्य में, हम लोग, अधिक सामर्थ्य वाले, सुवर्ण के समान कान्तिमान् स्वरूप वाले, यज्ञपात्रों को नियम में रखने वाले ऋत्विजों के समान राज्य के प्रजाजनों के और अपने प्राणों और वीर्य आदि को नियम में रखने और पालन करने वाले उन सब आप लोगों को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करें। और अन्न की अकांक्षा करने वाले किसान जिस प्रकार मेघ के लाने वाले मरुतों को चाहते हैं और उससे उत्तम जल और अन्न चाहते हैं, जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान के इच्छुक जन उत्तम आराधनीय ज्ञानप्रवचन चाहते, और उसके लिये उत्तम विद्वानों को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी बृहत् ऐश्वर्य की चाहना करते हुए प्रशंसनीय धन और उत्तम कार्यसाधक बल चाहते हैं।

ते द॒श॒ग्वाः प्र॑थ॒मा य॒ज्ञमू॑हिरे॒ ते नो॑ हिन्वन्तू॒षसो॒ व्यु॑ष्टिषु ।
उ॒षा न रा॒मीर॑रु॒णैरपो॑र्णुते म॒हो ज्योति॑षा शुच॒ता गोअ॑र्णसा ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार उषाएं रात्रियों को उज्ज्वल प्रकाशों से दूर कर देती हैं, उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष अति देदीप्यमान बड़े ज्ञानप्रकाश से युक्त और किरणों तथा जलों से युक्त सूर्य और मेघ के समान पावन और शान्तिदायक, हमारी अन्धकारमय अर्थात् रमण-विलास आदि युक्त अज्ञानरात्रियों को दूर करते हैं, वे दश इन्द्रियों को वश करने हारे, उच्च कोटि के विद्वान् पुरुष उपासना करते और उपास्य परमेश्वर का मनन द्वारा साक्षात् ज्ञान करते हैं। वे उषाकाल के प्रादुर्भावों के अवसरों और विशेष प्रज्ञा के उदय होने के कालों में हमें उत्तम रीति से बढ़ावें, अपना अनुभव हमें बतलावें।

ते क्षो॒णीभि॑रुरु॒णेभि॒र्नाञ्जिभी॑ रु॒द्रा ऋ॒तस्य॒ सद॑नेषु वावृधुः ।
नि॒मेघ॑माना॒ अत्ये॑न॒ पाज॑सा सुश्च॒न्द्रं वर्णं॑ दधिरे सु॒पेश॑सम् ॥१३॥

भा०—घोर गर्जन करने वाले मेघ या प्रबल वायुगण जिस प्रकार शब्दकारिणी विद्युतों और अरुण अर्थात् सब तरफ चमकने वाले प्रकाशों

से जल के स्थानों अर्थात् मेघों में बल प्रकट करते हैं, और उत्तम रूपवान् वरण करने योग्य अन्न आदि सम्पदा को पुष्ट करते और प्रदान करते हैं, उसी प्रकार उपदेश देने वाले विद्वान् गण और दुष्टों को रुलाने और प्रजाओं को सद्-व्यवस्था द्वारा पाप में गिरने से रोकने वाले शासक और वीर जन, शब्द करने वाली वाणियों और आज्ञाओं से, या भूमियों और उसमें रहने वाली प्रजाओं सहित, और प्रजाओं को जीवनमार्ग दर्शाने वाले उत्तम गुणों से, वेद ज्ञान, सत्य, धर्म-व्यवस्था और राष्ट्र और ऐश्वर्य के सदन अर्थात् स्थानों, विद्या के आश्रमों, राजसभाओं और शासकपदों पर वृद्धि को प्राप्त हों। वे बलवान् अश्व सैन्य से, या सबसे बढ़े चढ़े सर्वातिशायी बल और ज्ञान से मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञान की, और शत्रुओं पर शरों की, और प्रजाओं पर उत्तम ऐश्वर्यों और सत्यवचनों की वर्षा करते हुए, सबको अल्हादजनक सुवर्ण रजतादि धातुमय, उत्तम रूप से युक्त सुवर्णादि, तथा वरण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम शोभा, और पद को धारण करें।

ताँ इ॒या॒नो महि॒ वरू॑थमू॒तय॒ उप॒ घेदे॒ना नम॑सा गृणीमसि ।
त्रि॒तो न यान्पञ्च॒ होतॄ॑न॒भिष्ट॑य आव॒वर्त॒दव॑राञ्च॒क्रियाव॑से ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार शरीर, वाणी और मन तीनों को वश करने वाला यजमान अपने काम्ययज्ञ को करने के लिये होता आदि पांच ऋत्विजों को बैठाता है, और अपने अभि मुख बैठे हुओं को यज्ञरूप रथ के चक्र के समान यज्ञकर्म-निर्वाह के लिये सञ्चालित या प्रेरित करता है, और जिस प्रकार उपर्युक्त तीनों पर संयम करने वाला पुरुष शरीर को धारण करने वाले पांच प्राणों को अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने और रक्षण, गति, व्यापार आदि करने के लिये अपने अधीन प्राणों को करके रथ या यन्त्र में लगे चक्रों के समान यथेष्ट घुमाता और चलाता है, उसी प्रकार धन, सैन्य और मन्त्र तीनों प्रकार के बलों को प्राप्त होकर जिन

पांच अपने से छोटे पद पर स्थित, राज्यपदों के धारण करने वाले अधि-कारियों को रक्षादि कार्य के लिये अपने चारों ओर स्थित चक्रव्यूह या सैन्यमण्डल के द्वारा सञ्चालित करे। वह उनको प्राप्त होता हुआ रक्षा करने के लिये बड़े भारी राज्य और सैन्य को सञ्चालित करता है। हम प्रजा लोग भी अपनी रक्षा के लिये इस प्रकार के शत्रु को नमाने वाले बल के निमित्त ही उसकी विनय से स्तुति प्रार्थना करें कि वह हमारी उस बल से रक्षा करे।

यया॒ रध्रं॑ पा॒रय॒थात्यंहो॒ यया॑ नि॒दो मु॒ञ्चथ॑ वन्दि॒तार॑म्।
अ॒र्वाची॒ सा म॑रुतो॒ या वः॑ ऊ॒तिरो॒ षु वा॒श्रेव॑ सुम॒तिर्जि॑गातु १५।२१

भा०—हे विद्वान् लोगो ! जो आप लोगों की रक्षणशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति और सबको तृप्त और प्रसन्न करने की शक्ति है, जिससे साधक और आराधक को पाप से पार कर देने में समर्थ होते हो, और जिससे समस्त निन्दनीय कार्यों को दूर करते, या निन्दक जन से प्रार्थी पुरुष को मुक्त करते हो, अर्थात् उसको निन्दकों के जाल में नहीं पड़ने देते, वह आप लोगों की ज्ञान और मन्त्रमयी पालनकारिणी शक्ति हमें प्राप्त हो, और आप की उत्तम ज्ञानमयी प्रज्ञा बछड़े के प्रति हंभारती गौ के समान प्रेमवती होकर, हमें भली प्रकार सभी कार्यों में प्राप्त हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३५]

गृत्समद ऋषिः ॥ अपान्नपाद्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। १४ त्रिष्टुप्। २, ३, ८ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

उपे॑मसृक्षि वाज॒युर्व॑च॒स्यां चनो॑ दधीत ना॒द्यो गिरो॑ मे।
अ॒पां नपा॑दाशु॒हेमा॑ कु॒वित्स सु॒पेश॑सस्करति॒ जोषि॑ष॒द्धि ॥ १ ॥

भा०—जो पुरुष अन्न को प्राप्त करना चाहता है वह जिस प्रकार

जल को उत्पन्न और प्राप्त करने की क्रिया को करता, और जल को उपाय द्वारा प्राप्त करता है, और वह पुरुष नदी के जल को वश करके अन्न को पुष्ट करता और प्राप्त करता है, उसी प्रकार ज्ञान और बल की इच्छा करने वाला पुरुष वेदवाणी और गुरुप्रवचन के योग्य अध्ययन-अध्यापन और ऊहापोह आदि क्रिया का अभ्यास करे। और वह उपदेष्टा मुझ गुरु का प्रिय हितैषी होकर मेरी वाणियों के उपदेश को धारण करे। जिस प्रकार अन्नार्थी कृषक जलों के न गिरने देता हुआ शीघ्र क्रिया करता हुआ अन्नादि की कृषि को बहुत उत्तम बना लेता है, उसका सेवन भी कर लेता है, उसी प्रकार अपने प्राणों और वीर्यों को न पतित होने देने वाला वीर्यरक्षक ब्रह्मचारी शीघ्र ही ज्ञान और बल की वृद्धि करता हुआ, बहुत उत्तम ज्ञान और शारीरिक बल को प्राप्त करता है, और उसका वह उत्तम रीति से सेवन भी करता है।

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥

भा०—समस्त संसार का चलाने वाला, उसमें व्यापक और उसका स्वामी परमेश्वर, जलों के बीच पादरहित नाव के समान सबको पार उतारने वाला, अपनी महाप्राण शक्ति के महान् सामर्थ्य से समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों और प्राणियों और संसार के समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है। वह ही इस महान् प्राणबल को बहुत रूपों में जानता, धारता और वश करता है। उसी परमेश्वर के वर्णन करने के लिये हम लोग इस अपने हृदय में स्थित सुखजनक और उत्तम रीति से सु-विचारित विचार को वाणी द्वारा प्रकट करें।

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार कुछ नदियां एक साथ मिलकर चलती हैं, और

दूसरी नदियां अकेली ही चलती हैं, और वे सब मिलकर एक महान् समुद्र को पूरती हैं, और सब उसके चारों ओर से नदियें आ मिलतीं और चारों ओर जुड़ी रहती हैं। उसी प्रकार कई प्रार्थना और स्तुतिशील प्रजाएं एक साथ मिलकर प्रभु की उपासना करती हैं और कई अलग २ दूसरी श्रद्धायुक्त प्रजाएं वे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को स्तुतियों से पूर्ण करती हैं, उसकी महिमा बढ़ाती हैं। तथा उस अति पवित्र, देदीप्यमान, प्रकृति के परमाणुओं, लोकों और प्रजाओं के बीच स्वयं नष्ट न होने वाले परमेश्वर को, पवित्र चित्त होकर उपासक प्रजाएं उसके आश्रय पर स्थित हों, उसकी उपासना करें। इसी प्रकार गुणों से समृद्ध स्त्रियां गुणों में समान पतियों को पूर्ण करें। पुरुष स्वयं आधे हैं स्त्रियां मिलकर उसको पूर्ण करती हैं। स्त्रियां दो प्रकार से प्राप्त होती हैं। कुछ स्त्रियां स्वयं इच्छापूर्वक स्वयंवर कर लेती हैं। दूसरी स्त्रियां पिता आदि द्वारा पतियों को प्राप्त होती हैं दोनों दशाओं में वे मान आदर सहित, एवं समान कोटि के विद्या बल गुणों से अनुरूप पतियों को ही वे प्राप्त हों। पुरुष भी शुचि अर्थात् पवित्र, धर्मात्मा, ईमानदार, उज्ज्वल रूप यश वाले, वीर्यों और प्राणों का नाश न करने वाले ब्रह्मचारी, और ज्ञानों के पालक हों। ऐसे पुरुषों को ही स्त्रियां सब प्रकार से अपना आश्रय बनाया करें।

तमस्मे॑रा युव॒तयो॒ युवा॑नं मर्मृ॒ज्यमा॑ना॒ः परि॑ य॒न्त्याप॑ः ।
स शु॒क्रेभि॒ः शिक्व॑भी रे॒वद॒स्मे दी॒दाया॑नि॒ध्मो घृ॒तनि॑र्णिग॒प्सु ॥४॥

भा०—शुद्धजल वाष्प जिस प्रकार मेघ में स्थित विद्युत् को प्राप्त होते हैं, और विद्युत् रूप अग्नि काष्ठों के बिना भी स्वयं प्रकाशमान, तथा दीप्तियुक्त स्वरूप वाला होकर सेचन करने वाले जलों सहित चमकता है, उसी प्रकार आप्त पतियों को प्राप्त करने वालीं, विनयशील, तथा अच्छी प्रकार अपने देहों पर अलंकार धारण करती हुई और रजोधर्मादि के अनन्तर स्नानादि से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर स्त्रियां, उन अपने जवान

पुरुषों को प्राप्त हों। वे पति दाराओं में सेचन करने योग्य वीर्य को पुष्ट करने हारे, परिपक्व-वीर्यवान् सेचन करने योग्य शुद्ध वीर्यों सहित बिना कृत्रिम उपायों के ही स्वभाव से तेजस्वी होकर हमारे बीच ऐश्वर्ययुक्त होकर चमकें और हमें भी उज्ज्वल करें।

अस्मै ति॒स्रो अ॑व्य॒थ्याय॒ नारी॑र्दे॒वाय॑ दे॒वीर्दि॑धिष॒न्त्यन्न॑म्।
कृता॑ इ॒वोप॒ हि प्र॑स॒र्स्रे अ॒प्सु स पी॒यूषं॑ धयति पूर्व॒सूना॑म् ॥५॥२२॥

भा०—इस व्यथा न देने योग्य दिव्य पुरुष के लिये, तीन प्रकार की दिव्य गुणों वाली नारियां अन्न अर्थात् उपभोग्य पदार्थों को धारण करती हैं, वे विवाहेच्छु नव स्त्रियां कृतार्थ अर्थात् पूर्व विवाहित अन्य स्त्रियों के समान ही समान गुणों के पुरुषों को प्राप्त हों। वह नव उत्पन्न सन्तान जो पहले सन्तान उत्पन्न कर चुकी हों ऐसी धाईयों के भी पुष्टिकारक दुग्ध का पान करे। कामशास्त्र की दृष्टि से भिन्न २ शक्तियों के आधार पर पुरुषों तथा स्त्रियों के तीन २ प्रकार हैं। उन्हीं तीन प्रकारों का यहां वर्णन है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अश्व॒स्यात्र॒ जनि॑मा॒स्य च॒ स्व॑र्द्रु॒हो रि॒षः स॒म्पृचः॑ पाहि सू॒रीन्।
आ॒मासु॑ पू॒र्षु प॒रो अ॑प्रमृ॒ष्यं नारा॑तयो॒ वि न॑श॒न्नानृ॑तानि ॥ ६ ॥

भा०—इस गृहस्थ में अश्व के समान बलवान् सन्तान का जन्म हो, और उसको उत्तम सुख प्राप्त हो। हे गृहपति तू द्रोह करने वाले हिंसक पुरुष से सत्संग करने योग्य उत्तम विद्वान् पुरुषों की रक्षा कर किया। पुरियों या किलों में राजा के समान तू भी नगरियों में और गृहस्वरूप किलों में सर्वोत्कृष्ट होकर रह। क्योंकि शत्रुजन जिसे गिरा न सकें ऐसे दृढ़ घर का शत्रु भी नाश नहीं कर सकते। इस घर में असत्याचरण और असत्यभाषणादि बुरे कार्य न हुआ करें।

स्व आ दमे॑ सु॒दुघा॒ यस्य॑ धे॒नुः स्व॒धां पी॑पाय सु॒भ्वन्न॑मत्ति।
सो अ॒पां नपा॑दू॒र्जय॑न्न॒प्स्व॒१॒॑न्तर्व॑सु॒देया॑य विध॒ते वि भा॑ति ॥ ७ ॥

भा०—जिस गृहस्थ के अपने घर में उत्तम दूध दोहने वाली गौ हो वह गोदुग्ध को पीता है, और उत्तम तथा पाक आदि संस्कारों से संस्कृत अन्न का भोग करता है। वह दुग्ध का नाश न करने वाला पुरुष दूध की धाराओं में बल की वृद्धि करता हुआ, विशेष सेवाकार्य करने वाले, वास योग्य धन देने योग्य भृत्यादि के लिये भी विशेष रूप से अच्छा प्रतीत होता है, उनको भी प्रिय मालूम होता है।

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥

भा०—जो गृहस्थ पुरुष दुग्ध आदि पेय पदार्थों के होते सत्य निष्ठ होता और निरन्तर विद्वानों से उपदेश किये गए पवित्र कर्त्तव्यों और तेजादि से अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, उसके ही अन्य उत्पन्न होने वाली सन्तानें शाखाओं के समान फैलती हैं और उत्तम सन्ततियों सहित इसके गृह में नाना प्रकार की बेलें तथा बगीचे आदि होते हैं।

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९॥

भा०—अपने शरीरों में स्थित प्राणों और वीर्यों को विनष्ट न होने देने वाले वीर्यपालक ब्रह्मचारी गृहपति, उपस्थेन्द्रिय का संयम करें। वे कुटिल प्रवृत्तियों के ऊपर होकर, उनका त्याग करके विशेष तेज को धारण करें। बड़े उत्तम स्वभाव और गुणों वाली सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण और रूप वाली सन्तानें उस प्रकार के ब्रह्मचारियों के सर्वोत्तम बड़े भारी सामर्थ्य को स्वयं भी धारण करती हुई उन्हें प्राप्त हों।

हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१०॥२३॥

भा०—जिस प्रकार सुवर्ण के देने वाले या हितकारी और आनन्द-दायक रमणीय पदार्थ देने वाले दानी होते हैं वे इस प्रजाजन को अन्न

प्रदान करते हैं, और जैसे हित और रमणीय सुख देने वाले अग्नि, जल, मेघ, विद्युत् आदि पदार्थ इस प्रत्यक्ष बसे लोक को अक्षय अन्नादि भोग्य पदार्थ देते हैं, और वे तेजोमय सर्वाश्रय सूर्य के आश्रय पर स्थित रहकर यह दान का कार्य करते हैं। वह सूर्य भी स्वयं सुवर्ण के समान कान्ति वाला, तेजःस्वरूप, जलों को किरणों द्वारा आकाश में बांधने वाला, वह ही सुवर्ण के समान वर्ण वाला है, उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी गृहपति भी हो। वह हित रमणीय स्वरूप हो, उत्तम रमणीय पदार्थों के देखने वाला या सौम्य दृष्टि हो, प्राणों का रक्षक तेजस्वी हो। सुवर्णादि ऐश्वर्य से पूर्ण गृह में रहकर प्रकट हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम्।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥ ११ ॥

भा०—प्राणों और वीर्यों का न विनाश करने वाले ब्रह्मचारी का बल और मुख शोभा, और नाम स्थिर होकर बढ़ता है। जिस तेजस्वी स्वरूप को इस प्रकार से सद्गुण और भी अधिक प्रदीप्त करते हैं उसका खाद्य पदार्थ अग्नि के समान ही घृत से युक्त बल तथा पुष्टिकारक हो।

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२॥

भा०—हम लोग बहुतों के बीच में सबकी रक्षा करने वाले, सबके मित्र, इस प्रभु की दानों, उत्तम सत्संगों, और अन्नों से, और नमस्कार द्वारा सेवा करें। गिरि शिखर के समान उन्नत उत्तम पद को अच्छी प्रकार संशोधित करें। चीरने योग्य काष्ठों से अग्नि के समान इसको अन्नों से पुष्ट करें और अर्चना करने योग्य गुणों और सत्कारों और उत्तम वचनों से उसकी स्तुति और अभिवादन करें।

स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वर्षा करने वाला सूर्य उन दिशाओं में 'गर्भ' अर्थात् जल से पूर्ण वायुमण्डल को उत्पन्न करता है, और वही छोटे बालक के समान समुद्रादि से रस का पान करता है, उसको समस्त दिशाएं अपना २ जलरस पिलाती हैं, वह सूर्य वर्षाजलों का उत्पादक होकर, क्षीण तेज न होकर, मानों अग्नि और विद्युत् या प्रकाशरूप से इस जगत् में व्यापता है, इसी प्रकार वे वीर्यसेचक पुरुष भी उन वरण करने वाली सहधर्मचारिणी दाराओं में गर्भ को उत्पन्न करें। वे भी प्रथम बालक रूप में दुग्ध पान करते रहे हैं। उन्हें उनकी माताएं, बछड़ों को गौओं के समान, दुग्ध रस पिलाती रही हैं। वे फिर पौत्र आदि होकर, अक्षीण तेज वाले होकर, दूसरे २ देहों से इस लोक में आते जाते रहे हैं।

अस्मिन्पदे पर॒मे त॑स्थि॒वांस॑मध्व॒स्मभि॑र्वि॒श्वहा॑ दीदि॒वांस॑म्।
आपो॒ नप्त्रे॑ घृ॒तमन्नं॒ वह॑न्तीः स्व॒यमत्कैः॒ परि॑ दीयन्ति य॒ह्वीः ॥१४॥

भा०—सबसे उत्कृष्ट पद पर स्थित, अक्षय और अमोघ वीर्यों से से सब दिनों सूर्य के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुष को स्वयंवरण करने हारी सहधर्मिणी जलस्वभाव होकर, उत्तम रूपों से सुसज्जित होकर, आप से आप गुणों में उत्कृष्ट महान् होकर प्राप्त करती हैं। विवाह बंधन से बांधने वाले उसके लिये घृतयुक्त पुष्टिकारक अन्न को प्राप्त कराती है।

अया॑समग्ने सुक्षि॒तिं जना॒याया॑समु म॒घव॑द्भ्यः सुवृ॒क्तिम्।
विश्वं॒ तद्भ॒द्रं यदव॑न्ति दे॒वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥१५॥२४॥

भा०—हे अग्रणी! नायक! ज्ञानवान् पुरुष! जनों के कल्याण करने और सन्तान को उत्पन्न करने के लिये उत्तम भूमि को प्राप्त होने वाले कृषक के समान और ऐश्वर्यवान्, गुणवान् पुत्रों को प्राप्त करने के लिये उत्तम पापनिवृत्ति के व्रत ब्रह्मचर्यादि को प्राप्त हुए तुझको जो विद्वान्, गुरु आदि पालने और ज्ञान से पूर्ण करते हैं, वह तेरे लिये बड़ा ही कल्याण और सुखजनक है। हम उत्तम पुत्रों से युक्त गृहस्थ जन

भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये तुझे बहुत उत्तम उपदेश करें।
इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३६]

गृत्समद ऋषिः ॥ १ इन्द्रो मधुश्च । २ मरुतो माधवश्च । ३ त्वष्टा शुक्रश्च । ४ अग्निः शुचिश्च । ५ इन्द्रो नभश्च । ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३ जगती ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः । पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१॥

भा०—हे राष्ट्र के पालक ! शासन किया जाता हुआ और बढ़ता हुआ प्रजाजन तेरी वृद्धि के लिये ही भूमियों को बसावे, उनमें बसे । नेता लोग प्रजा के रक्षक मेघों के समान जलधाराओं और झरनों के बहाने वाले पर्वतों द्वारा जलों को प्राप्त करें। हे ऐश्वर्यवान् राजन् ! जो तू सबसे प्रथम, मुख्य रूप होकर सबका स्वामी है वह तू उत्तम रीति से प्रदान किये वा छः हिस्सों में किये गये षष्ठांश कर को उत्तम रीति से या वेदाज्ञा के अनुसार कर लेने वाले अधिकारी या कर देने वाले प्रजाजन से प्राप्त करके, ऐश्वर्य को ओषधिरस के समान प्राप्त कर, उपभोग कर, और राष्ट्र का पालन कर ।

यज्ञैः सम्मिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत । आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार समस्त संसार का भरण पोषण करने वाले सूर्य से उत्पन्न वायुगण, सबको पवित्र करने वाले प्रकाश के बल से जल का पान करते हैं, और वे यज्ञों से अच्छी प्रकार मिलकर भूमि को सेचन करने वाली जलधाराओं और वेग से जाने वाली बिजुलियों से अपने जाने के अन्तरिक्षमार्ग में शोभायमान होते हुए, चाहने वाले कृषकों के निमित्त

उनके अतिप्रिय होते हैं, इसी प्रकार हे उत्तम पुरुषो ! हे नायको ! आप लोग भी सबका धारण पोषण करने वाले राष्ट्र के पति राजा के पुत्र के समान होकर राष्ट्र के सञ्चालक होओ। आप लोग उत्तम आसन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर साधिकार विराज कर, पवित्र व्यवहार से ऐश्वर्य का उपभोग करो, और ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करो। और आप लोग दान, मान, सत्कार, परस्पर सत्संगों से अच्छी प्रकार मिल जुलकर, नाना शस्त्रवर्षिणी और शत्रुनाश करने वाली सेनाओं सहित अति शोभायुक्त होकर और प्रतिष्ठा सूचक चिन्हों, पदकों के बीच अतिप्रिय होकर रहो।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम नाम, ख्याति और प्रशंसा से युक्त होकर अपने आश्रयगृह के समान निर्भय होकर, हमारे पास आओ। उत्तम शासन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष और उपदेष्टा रूप से विराजो, और उत्तम उपदेश, आज्ञाएं प्रदान करो। हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! अज्ञान के विच्छेदक ! तू भी सुख और उत्तम गुणवान् सहयोगी जनों, और उत्पादक विदुषी स्त्रियां, और व्यवहारकुशल विद्वान् तेजस्वी पुरुषों सहित, अन्नों का सेवन करता हुआ तृप्त, सुप्रसन्न होकर रह।

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥

भा०—हे मेधाविन् ! हे उत्तम २ पुत्र, यश, और ऐश्वर्य आदि पदार्थों की कामनाओं को करने हारे ! हे दानशील ! तू सुख देने वाले उत्तम गुणों को धारण कर। और उनका सत्संग कर। तू तीन योनियाँ

अर्थात् माता, पिता, और आचार्य उनकी शिक्षा से शिक्षित होकर मातृमान्, पितृमान्, और आचार्यवान् हो। अपने से उत्कृष्ट पद पर स्थित माननीय पुरुष के समीप जा, उसके सत्संग से ओषधिरसों से युक्त मधु के समान भव-रोगहारी उत्तम ज्ञानरूप मधुर उपदेश का पान कर, और अग्नि के धरने के स्थान चूल्हे से जिस प्रकार अन्न पकाकर उससे तृप्त होते हैं उसी प्रकार प्रति अंग में झुकने वाले शिष्य को धारण करने वाले आचार्य से तेरे अपने सेवन योग्य सेवा शुश्रूषा, और ज्ञानांश से तू तृप्त हो। (२) इसी प्रकार राजा विविध ऐश्वर्यों से प्रजा-राष्ट्र को भरने से विप्र है। वह विजयेच्छुक वीरों को आज्ञा दे, वेतनादि दे। शत्रु, मित्र, उदासीनों के ऊपर विराजे। चढ़ कर आने वाले का मुकाबला करे। ऐश्वर्य रूप मधुर फल को भोगे या ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करे। अग्नि के समान तेजस्वी तथा सेना को धारण करने वाले वीर पुरुष से अपना षष्ठांश प्राप्त करके तृप्त हो।

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥५॥

भा०—उत्पन्न पुत्र जिस प्रकार अपने शरीर से उत्पन्न होता, धनैश्वर्य को बढ़ाने वाला, बल पराक्रम स्वरूप होकर माता पिता के बाहुओं में या गोद में लिया जाता है, वह पिता के द्वारा पालित पोषित होता है, उसी प्रकार हे उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् ! यह पुत्र के समान अभिषेक द्वारा प्राप्त प्रजाजन तेरे शरीर के समान विस्तृत राष्ट्र से उत्पन्न होकर तेरे धनैश्वर्य को बढ़ाने वाला है। वह शत्रुओं का पराजय करने वाला बल पराक्रम स्वरूप होकर सब दिनों तेरी बाहुओं पर पालनीय पुत्र के समान ही रखा जाता है। यह प्रजाजन माता द्वारा जाने गये पुत्र के समान तेरी ही वृद्धि के लिये हो, और तेरी ही वृद्धि के लिये इसका सब प्रकार भरण पोषण किया जाय। और तू ही इसके 'ब्रह्म' अर्थात् धन-और-विज्ञान से

उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य और विज्ञान के स्वामी पुरुषवर्ग से इसका पालन और उपभोग कर, ताकि यह प्रजाजन तृप्त सन्तुष्ट होकर रहे।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥ २५ ॥ ७ ॥

भा०—हे उत्तम गुणों से चमकने वाले राजा रानी के समान स्त्री पुरुषो! आप लोग मेरे ग्रहण करने योग्य ज्ञान के सत्संग योग्य दान का प्रेम से सेवन किया करो। जब ज्ञान का देने वाला विद्वान् अच्छी प्रकार विराजे तब आप दोनों विनयपूर्वक उसके समक्ष आकर उत्तम प्रवचन करने वाले विद्वान् से पूर्व विद्वानों से सेवन की और प्रवचन की गयी वेदवाणियों का अच्छी प्रकार ज्ञान करो। और शान्तिदायक, अन्न के समान मधुर, अप्रकट, शिष्यों के योग्य 'मधु' अर्थात् ब्रह्मज्ञान का अच्छी प्रकार ग्रहण करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[३७]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—४ द्रविणोदाः ५ अश्विनौ । ६ अग्निश्च देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड् जगती ४, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे धनों और ज्ञानों के देने हारे! तू दानशील से प्रीति से दिये दान से अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करके तृप्त और आनन्दित हुआ कर। हे अपनी हिंसा न चाहने वाले और प्रजा के पीड़नादि भी न चाहने वाले प्रजास्थ पुरुषो! वह ज्ञानैश्वर्य का देने वाला पुरुष, घृत को

चाहने वाली अग्नि के समान पूर्ण आसेचन या पुष्टि और दान चाहता है। हे प्रजाजनो ! उसको उसके अभिलषित कामना योग्य पदार्थ प्राप्त कराओ। वह दानशील पुरुष है। हे द्रव्यों के दान देने हारे ! तू दानशील होकर सर्वाधिकार देने वाले विद्वान् से ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करके राजसभा के सदस्यों सहित ऋतुओंनुसार ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का पान, उपभोग और पालन कर।

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो दुदिर्यो नाम पत्यते।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥

भा०—जिसको मैं प्रजाजन पहले उत्तम रूप में स्वीकार करूं उसको यह सब कर आदि प्रदान करूं। वह ही दानशील पुरुष स्तुति करने योग्य है। जो प्रसिद्ध रूप से ऐश्वर्यवान् या पालक बनता है। हे धन और ज्ञान देने हारे ! अपना और प्रजा का विनाश न चाहने वाले प्रजाजनों से उत्तम रूप से प्रस्तुत और नियम किये, अभिषिक्त राजपद के योग्य, तथा मधु के समान प्रजागण से संगृहीत ऐश्वर्य और अन्नादि रस को, राजसभा के सदस्यों सहित, पवित्र व्रतनिष्ठ पुरुष के ग्रहण करके उसका उपभोग और पालन कर।

मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे वनों और सैन्य गणों का पालन करने हारे ! तेरे राज्य के कार्यभार के उठाने वाले कार्यकर्त्ता लोग हृदय में राजा और प्रजा दोनों के प्रति स्नेह को धारण करें। जिन से तू प्रजाओं का नाश न करता हुआ शासन युक्त हो सके। तू इसी प्रकार से बराबर दृढ़ हो। हे शत्रुओं के धर्षण करने में समर्थ ! तू सबसे मेल करके और सब प्रकार से उद्यम

करके, राज्य-कार्यभार को अपने ऊपर उठाकर, नेता या नायक के कार्य से ज्ञानवान् राजसभा के सदस्यों सहित ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम्।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्र को ऐश्वर्य देने और राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं के वेतन देने और राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करने वाला पुरुष, दान देने और कर आदि लेने के कार्य से राष्ट्र का भोग और पालन करे। कण्टकशोधन और धर्म-पालन की पवित्र व्यवस्था से स्वयं सुप्रसन्न रहे अन्यों को प्रसन्न करे। और नायक बनकर इष्ट पदार्थ प्राप्त कराकर, हितकारी अन्न आदि पदार्थ का स्नेह से सेवन करे। ऐश्वर्य और ज्ञान के देने वालों का प्रेमपात्र होकर वह चतुर्थांश का, जो कि सबसे अधिक शुद्ध और सदा बने रहने वाला है, और जो राजा का पालन और त्राण कर सकने के योग्य है, उस चतुर्थ अंश का स्वयं भोग करे।

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम्।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनी-
वसू ॥ ५ ॥

भा०—हे 'वाज' अर्थात् वेग, बल, ऐश्वर्य और संग्राम आदि करने की शक्ति या सेना को बसाने वाले स्वामी जनो! आप दोनों आज वेग-वान् अश्वों सहित जाने वाले, दूर देश में जाने और पहुँचा देने वाले, नायक पुरुषों को ढो ले जाने वाले उत्तम वेगवान् रथ को जोड़ा करो इसमें ही आप दोनों का विविध प्रकार के कष्टों से मुक्त होना सम्भव है। आप दोनों लेने देने योग्य पदार्थों और अन्नों को मधुर पदार्थ से संयुक्त करो। इसीलिये इस प्रकार सुखप्रद स्थान को जाया करो। और इस प्रकार उत्तम ओषधि रस और ऐश्वर्य का सेवन करो।

जोष्यंग्ने स॒मिधं॒ जोष्याहु॑तिं॒ जोषि॒ ब्रह्म॒ जन्यं॒ जोषि॑ सुष्टु॒तिम् ।
विश्वे॑भि॒र्विश्वाँ॑ ऋ॒तुना॑ वसो म॒ह उ॒शन्दे॒वाँ उ॑श॒तः पा॑यया ह॒विः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् अग्रणी नायक ! जिस प्रकार अग्नि समिधा अर्थात् काष्ठ को सुख से लेता, उसको जला देता है, उसी प्रकार तू भी उत्तम दीप्ति या कान्ति के उत्पादक साधन या क्रिया का सेवन कर। अग्नि जिस प्रकार घृत आदि की आहुति चाहता है उसी प्रकार तू भी आदरपूर्वक सत्कार और दान को स्वीकार कर। तू जनों के हितकारी उत्तम अन्न और वेदज्ञान का सेवन कर। और तु उत्तम स्तुतिवचन का सेवन कर। हे प्रजा के बसाने वाले ! तू समस्त गुणों और व्यवहारों की कामना करता हुआ, सब अधिकारियों सहित, कामना करने वाले, तथा अपने से गुणों और अनुभवों में बड़ों को ऋतु अनुसार उत्तम अन्नादि पदार्थों का उपभोग करा। इति प्रथमो वर्गः ॥

[३८]

गृत्समद ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप्
३, ४, ६, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८ स्वराट् पंक्तिः ।
९ भुरिक् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

उदु॒ ष्य दे॒वः स॑वि॒ता स॒वाय॑ शश्वत्त॒मं तद॑पा॒ वह्नि॑रस्थात् ।
नू॒नं दे॒वेभ्यो॒ वि हि धाति॒ रत्न॒मथाभ॑जद्वी॒तिहो॑त्रं स्व॒स्तौ ॥ १ ॥

भा०—वह सब जगत् का प्रकाशक, सूर्य के समान सब जगत् का प्रेरक और उत्पादक परमेश्वर, संसार को उत्पन्न करने के लिये तदनुकूल कर्मशील होकर, और सदा से इस जगत् को उठाने और धारण करने वाला होकर भी, जगत् के सुख दुःख आदि से ऊपर उठा हुआ है, वह क्रीड़ाशील जीवों के लिये रमण करने योग्य जगत् को विरचता है। और

स्वयं उस जगत् को अपनी रक्षा में स्वीकार करके उसे कुशल-क्षेम युक्त दशा में रखता है।

विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥

भा०—सबसे ऊपर विराजने वाला सर्वाध्यक्ष परमेश्वर समस्त जगत् के शीघ्र सञ्चालन और सुख के लिये, अति विस्तृत हाथों वाला होकर, मानो अपनी बाहुओं को दूर २ तक फैला रहा है। इसी कारण जल-धाराएं उसके शासन में रहकर सर्वत्र अति शुद्ध करने वाले होकर सब ओर क्रीड़ा कर रहे हैं, और उसी के शासन में यह गतिमान् वायु भी आकाश में क्रीड़ा कर रहा है।

आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर जिन पुरुषों को व्यापनशील सब प्रकार से शुद्ध उपायों से मुक्त कर देता है, उनमें से निश्चय से अपने समीप आने वाले पुरुष की आत्मा को खूब आनन्दित और हर्षित करता है। और साक्षात् मेघ के समान दयालु आनन्दघन प्रभु स्वरूप को प्राप्त होने वाले पुरुषों की प्रभु को प्राप्त करने की इच्छा को भी यह नियम से पूर्ण करता है। और उस सर्वोत्पादक प्रभु के व्रत उपासना आदि अनुष्ठान करने के अनन्तर ही सब बन्धनों से छुड़ाने वाली मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है।

पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥

भा०—विस्तृत जगत् को व्यापने वाली प्रकृति बार २ इस विस्तृत जगत् को अच्छी प्रकार व्यापती है, और जगत् को सृजती और संहारती है, और उस जगत् के बीच धारण करने में समर्थ परमेश्वर शक्ति से करने योग्य कर्मबल को सब प्रकार से धारण किये रहता है। वह

प्रलयान्धकार को दूर करके समस्त प्रकृतिजन्य संसार के ऊपर शासक रूप से स्थित रहता है। वही ऋतुओं को भी विविध विभागों में बांटता और धारण करता है। वही सबका प्रकाशक और सर्वोत्पादक तथा अति अधिक ज्ञानवान् होकर सर्वत्र व्यापक होकर रहता है।

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५॥२॥

भा०—जिस प्रकार द्वारों में प्रवेश करने वाला अग्नि अर्थात् सूर्य का प्रभावशाली तेज नाना घरों में और समस्त प्राणियों को विशेष रूप से व्यापता है, उसी प्रकार अग्नि के समान चमकने वाला, समस्त जगत् का उत्पत्तिस्थान, तेजःस्वरूप, सब द्वारों अर्थात् मार्गों में व्यापक परमेश्वर नाना लोकों और समस्त जीवसंसार को वश करता है। जिस प्रकार माता अपने पुत्र को सबसे उत्तम पदार्थ देती है और उत्पादक पिता द्वारा इस पुत्र का ज्ञान-शिक्षण आदि कार्य उसके बाद देना अभीष्ट होता है, उसी प्रकार सब जगत् की माता परमेश्वर उत्पन्न जीव संसार को सबसे उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करता है और उस सर्वोत्पादक परमेश्वर द्वारा ही इस जीवसंसार को ज्ञान भी निरन्तर अनुकूल रूप से प्रेरित करता है

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां काम्श्चरताममाभूत्।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष संसार के विषम मार्गों पर विजय करता हुआ, दिग्विजय के इच्छुक वीर राजा के समान, विशेष मान आदरपूर्वक स्थित होकर, शिक्षा प्राप्त करके समावर्त्तन द्वारा लौट आता है। वह समस्त विचरने वाले प्राणियों और सेवकादि का प्रेमपात्र होकर घर में आकार रहे। वह नित्य नियमपूर्वक कार्य करने हारा होकर धर्म के विपरीत कर्म और ज्ञान को, बिगड़े जल के समान त्याग कर प्रकाश रूप में स्थित तेजस्वी सूर्य के व्रत का अनुकरण करे।

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो न किरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥

भा०—हे विद्वन् ! तू समीप प्राप्त प्रजाजनों में प्राप्त करने योग्य सेवनीय अंश को स्थापित कर, मृगगण मरुदेश में जिस प्रकार जल को ढूंढते २ फिरा करते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्य और ज्ञान की खोज लगाने वाले जिज्ञासु लोग ज्ञान-जल से युक्त पुरुष को विविध प्रकार से प्राप्त हों, और खोजी लोग अपने प्राणों के लिये सेवनीय ज्ञानों और प्रकाशों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त हों। ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता, ऐश्वर्यवान् विद्वान् पुरुष के उन नाना व्रतों, नियमों का कोई कभी नाश न करे, नहीं तोड़े।

याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार जगत् को घेर लेने वाला रात्रिकाल का अन्धकार, सूर्यास्त होने पर, शीतल तथा सेवनीय, जलमय समुद्र को और भूभाग को घेर लेता है, और अण्डों से उत्पन्न समस्त पक्षिगण, तथा पशुगण भी अपने गन्तव्य गृहों या बाड़ों में लौट आते हैं, फिर बाद में प्रातःकाल सूर्य सब स्थानों और सब प्राणियों को विशेष रूप से प्रकट कर देता है, उसी प्रकार अज्ञानों का वारक आचार्य ज्ञानमय अन्धकार काल में पालन करता हुआ, शरण में आने वाले शिष्यों से आराधना करने योग्य होकर, सुखदायी तथा प्राणों के लिये हितकर शरण को प्रदान करे। तब 'मार्त्तण्ड' अर्थात् सूर्य के आश्रय पर जीने वाले समस्त जन और चक्षुओं से देखने वाले विवेकी पुरुष अपने गन्तव्य शरण को प्राप्त होते हैं। और वह सबका आज्ञापक तेजस्वी पुरुष सब स्थानों और सब उत्पन्न होने वाले प्राणियों को व्यवस्थित करे। इसी प्रकार परमेश्वर भी प्रलय में सबकी रक्षा करता हुआ सर्गारम्भ में विश्व को प्रकट करता है।

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥

भा०—जिसकी नियम-व्यवस्था को न विद्युत्, न जल, न मेघ, न समुद्र, न वायु और न नियामक सूर्य, न जीवगण और न शत्रुगण ही तोड़ सकते हैं, उस इस साक्षात् सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की हम नमस्कारों से अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करें ।

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥

भा०—ऐश्वर्यमय, सुख कल्याण के दाता, ध्यान करने योग्य, समस्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर का हम स्वयं ज्ञान प्राप्त करें और अन्यों को उसका ज्ञान देने वाले हों । वह सब मनुष्यों से स्तुति किया जाने योग्य पालक प्रभु हम जीवों की और वेदवाणियों की रक्षा करता है । और उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर और समस्त पशु आदि सम्पदाओं के प्राप्त होने पर हम सर्वोत्पादक सर्वप्रकाशक, सर्वप्रद परमेश्वर के प्रिय होकर रहें ।

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आगात् । शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥ ३ ॥

भा०—हे सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर ! तूने हमें आकाश से अन्तरिक्ष के और पृथिवी से वह चाहने योग्य जल, अन्न, सुवर्ण रत्नादि धनैश्वर्य दिया है, वह हमें प्राप्त हो । जो विद्वानों को शान्तिदायक और कल्याणकारी हो, आप्त विद्वान् एवं बन्धुजन के लिये शान्तिदायक हो, बहुत से प्रशंसित विद्योपदेश करने वाले गुरुजन को शान्ति सुख देने वाला हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

[३९]

गृत्समद ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट त्रिष्टुप् । ४, ७, ८ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ५, ६ स्वराट् पंक्तिः ॥

अष्टर्चं सूक्तम्

ग्रावा॑णेव॒ तदिदर्थं॑ जरेथे गृध्रे॑व वृ॒क्षं नि॑धि॒मन्त॒मच्छ॑ ।
ब्र॒ह्माणे॑व वि॒दथ॑ उक्थ॒शासा॑ दू॒तेव॒ हव्या॒ जन्या॑ पु॒रु॒त्रा ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उत्तम दो उपदेशकों की न्याईं उसी अर्थ अर्थात् प्राप्त करने योग्य परम तत्व ब्रह्म का उपदेश करो। जिस प्रकार गीधों का जोड़ा वृक्ष का आश्रय लेता है उसी प्रकार तुम दोनों वृक्ष के समान आश्रयरूप खजाने के स्वामी को सदा प्राप्त करो। यज्ञ में जिस प्रकार दो ब्राह्मण वेदों के सूक्तों के कहने वाले होकर वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों ज्ञान उपदेश करने के अवसर में वेद के उत्तम वचनों के कहने वाले होकर उपदेश करो। और जिस प्रकार युद्धों के अवसरों में संधि-निग्रह कराने में कुशल और जनों के हितकारक तथा बहुत से पुरुषों के त्राण करने वाले दो दूत अपना संदेश कहते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों उत्तम वचनों द्वारा पुकारे जाने योग्य होकर, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले और बहुत पदार्थों के रक्षक एवं बहुत पदार्थों के स्वामी होकर जीवन यापन करो।

प्रा॒त॒र्यावा॑णा र॒थ्ये॑व वी॒राजे॑व य॒मा वर॒मा स॑चेथे ।
मेने॑ इव त॒न्वा॒३॒॑ शुम्भ॑माने॒ दम्प॑तीव क्रतु॒विदा॒ जने॑षु ॥ २ ॥

भा०—हे वर और वधू ! रथ में लगने योग्य दो अश्वों के समान या रथ में लगने वाले चक्रों के समान एक साथ मिलकर प्रातःकाल से ही कार्यों में व्याप्त होकर, वीर्यवान् वीर होकर, न उत्पन्न अनादि दो आत्माओं के समान परस्पर एक दूसरे के ऊपर प्रेमयुक्त होकर, यम नियम जितेन्द्रिय होकर, श्रेष्ठ कार्य और धन को प्राप्त करो। और तुम

दोनों एक दूसरे का मान आदर करने वाले दो स्त्री पुरुषों के समान या मैना नामक दो पक्षियों के समान शरीर से शोभायमान और आदर्श पति-पत्नी के समान दाम्पत्य सम्बन्ध का पालन करने वाले होकर, सब मनुष्यों के बीच यज्ञ आदि उत्तम कर्म और श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ करके परस्पर मिलकर रहो।

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥

भा०—दो सींग जिस प्रकार सबसे आगे बढ़कर विरोधी को मारते या आगे बढ़े रहते हैं उसी प्रकार हे वर वधुओ ! तुम दोनों भी गिरि-शिखरों के समान हमारे बीच में प्रथम, उत्तम, अग्रगण्य होकर जीवन व्यतीत करो। दो खुर या दो पैर जिस प्रकार शरीर के नीचे रहकर वेगों से जाने वाले होते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी परस्पर मिलकर, एक दूसरे का आश्रय होकर, दुःखों के पार जाने के साधनों से जाते हुए और सबका पालन पोषण करते हुए आगे बढ़ो। और प्रतिदिन चकवा-चकवी के समान ही उत्तम सुन्दर वचन बोलने हारे और रथ में जुड़ने वाले उत्तम बैलों के समान शक्तिमान् बलवान् होकर आगे की तरफ बढ़ते जाओ।

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव। श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥

भा०—हे वर-वधुओ ! आप दोनों मिलकर दो नावों के समान हमारे दोनों कुलों को दुःख और कर्त्तव्य सागर से पार करो। रथ में लगे जूओं के समान या जूओं में जुड़े अश्वों के समान, रथचक्र के केन्द्र या नाभी में लगे दण्डों के समान, रथ के बीच भाग में भार के सहने वाले बगलों में लगे दो दण्डों के समान और रथ के ऊपर लगे लोहे के दो हालों के समान हमें संकटों से पार करो। और दोनों दांये बांये चलने

वाले दो कुत्तों के समान रक्षक रहकर हमारे शरीरों का कभी हिंसन न करते हुए, कन्धों पर लगे कवचों के समान हमारे शरीरों का नाश न होने देते हुए हमें विविध प्रकार के नाशकारी विपदा से बचाओ।

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक्। हस्ताविव तन्वे३शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों उत्तर-दक्षिण की या पूर्व-पश्चिम की दो समान जरा से रहित होओ। दो नदियों के समान वेग से जाने या परस्पर मिलकर रहने वाले होओ। दो आंखों के समान एक पदार्थ को एक रूप से देखने वाले, प्रेममय होकर, दर्शनशक्ति से युक्त अर्थात् विवेकी होकर आगे जाओ और हमें आगे ले चलो! और आप दोनों दो हाथों के समान और दो पैरों के समान शरीर के लिये शान्ति कल्याण उत्पन्न करने वाले होकर हमें उत्तम २ धनों ऐश्वर्यों को प्राप्त कराओ। इति चतुर्थो वर्गः ॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥

भा०—मुख के ओठों के समान मधुर वचन बोलते हुए, बच्चों को स्तनों के समान हमें जीवनवृद्धि के लिये पुष्ट करो। दोनों नाकों के समान हमारे शरीर की रक्षा करने हारे और दो कानों के समान हमारे बीच उत्तम रीति से श्रवण करने वाले होकर रहो।

हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥

भा०—तुम दोनों हमारे बीच में दो हाथों के समान शक्ति को धारण करने वाले रहो। और जिस प्रकार आकाश और भूमि अपने बीच समस्त लोकों या धूलकणों या जल को धारते हैं उसी प्रकार आप दोनों ऐश्वर्यों और बल वीर्य को अच्छे प्रकार प्राप्त करो और प्राप्त कराओ।

हे वायु-अग्नि के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो ! आप दोनों के कर्त्तव्यों को बतलाने वाली इन वाणियों को, हथियार के शरण के समान अधिक उज्ज्वल करने वाले गुण और कार्य से आप लोग और अधिक तीक्ष्ण और उज्ज्वल करो।

एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥५॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वामियो ! उत्तम हर्षों और सुखों को चाहने वाले या उत्तम प्रवचनों में हर्षित होने वाले विद्वान् पुरुष, तुम दोनों की शक्तियों और बलों को बढ़ाने वाले साधनों को, वेदोपदेश और ऐश्वर्य को, तथा स्तुति वचन को करें। उनको हे नायक नायिके ! तुम दोनों प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए परस्पर समीप रहकर आगे बढ़ो। हम लोग उत्तम वीरों और वीर्यवान् पुत्र सन्तानादि से युक्त होकर बहुत उत्तम ज्ञान विज्ञान का उपदेश, कथोपकथन और तुम्हारे गुण वर्णन करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[४०]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—६ सोमापूषणावदितिश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१॥

भा०—सोम अर्थात् उत्पादक पिता और 'पूषा' पोषक माता दोनों नाना प्रकार की पशु-सम्पदाओं के और नाना ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले होते हैं। और वे दोनों सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष और पृथिवी के समान विस्तृत घर का आश्रय और उसके समान बीज को धारण कर उत्पन्न करने वाली मातृ शक्ति के भी उत्पन्न करने वाले होते हैं। वे

दोनों समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों के रक्षा करने वाले होते हैं। उन दोनों को विद्वान् लोग कभी नाश न होने वाले सन्तान रूप 'अमृत' का केन्द्र या उत्पत्तिस्थान बनावें, मानें और जानें। प्रजातिरमृतम् । शत० ॥

सोमः—(१) स्वा वै म एषा इति तस्मात् सोमो नाम । शत० ३।९।४।२२॥ वह पुत्रोत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक प्रजा मेरी ही है। ऐसा कहने वाला पुरुष सोम है।

(२) सोमः राज्यम् आदत्त ११।४।३।३॥ राजा वै सोमः ॥ शत० ११।४।३।३॥ सोमो राजा राजपतिः ॥ १४।१।३।१२॥ स यदाह सम्राड् इति सोमं वा एतदाह । गो० पू० ५।१३॥ क्षत्रं सोमः ॥ ऐ० २।३८॥ प्राणः सोमः रा० ७।३।१।२॥ रेतः सोमः कौ० १३।७॥ सोमो रेतोऽदधात् ॥ तै० १।६।२॥ सोमो वै ब्राह्मणः । ता० २२।२६।५॥

पूषा—इयं वै पूषा । इयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च । शत० १४ । ४ । २ । २५ ॥ इयं वै पृथिवी पूषा । शत० २।५।४।७॥ प्रजननं वै पूषा श० ५।२।५।८॥ पशवः पूषा ऐ० २।२४॥ पूषा भागदुघः २।३।९।४।३॥

सोम राजा है, वीर्य है, वीर्यवान् पुरुष है, ब्राह्मण है। इसी प्रकार पूषा पृथिवी है, माता है, पशु-सम्पदा है, और राष्ट्र में करसंग्रही अधिकारी भी पूषा है। देह में—प्राण और अपान सोम-पूषा हैं, शरीर के और पृथिवी में सुवर्णादि के समान रयि हैं। शुक्रबीज और डिम्ब दिव और पृथिवी हैं। उत्पन्न गर्भ भुवन है। कामनाशील स्त्री पुरुष या उत्पादक तत्व 'देव' हैं।

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥२॥

भा०—ये दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे की कामना करते हुए, एक दूसरे के गुणों को प्रकाशित करने वाले सन्तति रूप से उत्पन्न होकर रहें तो सभी विद्वान् जन उनको भी प्रेम करते हैं। वे दोनों अप्रीतिजनक

अन्धकारों अर्थात् शोक दुःखजनक कारणों और काले कर्मों का विनाश करें। इन दोनों सोम और पूषा अर्थात् उत्पादक और पोषक पति पत्नी रूप गृहस्थों के साथ मिलकर, इनके द्वारा ही अज्ञान विपत्तिमय अन्धकार का नाश करने वाला विद्वान् पुरुष और ऐश्वर्यवान् राजा, गृह बनाने वाली भूमि स्वरूप कन्याओं में परिपक्व वीर्य को उत्पन्न होने की व्यवस्था करे। बालविवाहों को सर्वथा रोक दे।

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥

भा०—पुरुष और स्त्री दोनों वीर्य और रज दोनों के आश्रय पर विशेष रूप से बनने वाले, सात धातुओं के चक्रों वाले, विश्व अर्थात् जीव के रहते जिसका नाश नहीं होता ऐसे, योनियों और लोकों में आने जाने वाले, मन के द्वारा संचालित होने वाले, प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान इन पांच प्रकार की रासों या प्रवर्त्तक शक्तियों से युक्त, या नाक, कान, त्वचा, आंख और रसना इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंरूप किरणों से युक्त रमण करने योग्य देह को पुष्ट करें।

दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

भा०—उन पूर्व कहे सोम और पूषा अर्थात् पुरुष और स्त्री दोनों में से एक ज्ञान, ऐषणा, कामना और लोक व्यवहार ऊंचा स्थान करता है, और दूसरा भागी अर्थात् स्त्री पृथिवी में अग्नि के समान या अन्तरिक्ष में विद्युत् के समान अपनी स्थिति करे। वह गृहस्थ का सर्वाश्रय होने से पृथिवी के समान और पालक पोषक होने से अन्तरिक्षगत वायु के समान रहे। वह पति के अन्तःकरण में निवास करने से भी 'अन्तरिक्ष' में रहती है। वे दोनों हमारे लिये स्वीकार करने योग्य बहुत से धनादि बहुत प्रकार के अन्नादि से पूर्ण, ऐश्वर्य की पुष्टि या वृद्धि करने वाले

मुख्य केन्द्र-गृह को हमारे उपकार के लिये बांधें। (२) देह में एक प्राण मूर्धा में रहता है, दूसरा अपान नितम्ब या नाभि से नीचे रहता है, तीसरा 'अन्तरिक्ष' अर्थात् देह के बीच के खोखले भाग में समान रूप से रहता है। वे दोनों इन्द्रियों की रक्षा करने वाले, उत्तम अन्नपाचक, कान्ति के पोषक नाभि भाग को बांधते हैं। उसको दृढ़ करें।

विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑ना ज॒जान॒ विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ॥५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों में से एक पृथिवी सब पदार्थों को उत्पन्न करने से 'सोम' है, वह सब प्रकार के भूतों और प्राणियों को उत्पन्न करती है और दूसरा सबको प्रकाश द्वारा दिखाता हुआ प्राप्त होता है, उसी प्रकार पुरुष और स्त्री दोनों में से माता उत्पादक होने से 'सोम' है, वह समस्त सन्तानों को उत्पन्न करे, और दूसरा पुरुष सब गृहस्थ के कार्य को देखता, उस पर निगरानी रखता हुआ आवे। ऐसे दोनों उत्पादक और पोषक माता पिता मुझ पुरुष के धारण करने योग्य कर्मों की रक्षा करें। हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों के द्वारा हम लोग सब मनुष्यों पर विजय करें, सबसे ऊंचे होकर रहें। (२) अपान सब रसों को उत्पन्न करता, प्राण ज्ञानेन्द्रियों से देखता और वाणी से बोलता है। मेरे देह के कर्म या व्यापार को दोनों चलाते, सब देहों पर उन दोनों के बल से हम ऊंचे रहते हैं।

धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु वि॒श्वमि॒न्वो र॒यिं सोमो॑ रयि॒पति॑र्दधातु।
अव॑तु दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—पोषणकर्त्ता पुरुष सब प्रकार की बाधाओं और बाधक शत्रुओं का नाश करने वाला होकर गृहस्थ के धारण पोषण कर्त्तव्य को बढ़ावे। उत्पादक माता ऐश्वर्य की पालिका होकर ऐश्वर्य को धारण करे। कामना करने हारी, उत्तम गुणों से युक्त स्त्री माता होकर पुत्रों का पालन

करें और वह विरोधी जन से रहित हो। हम उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञानसम्पदा में और युद्धों और यज्ञों में बड़े ज्ञान और वेदादि का उपदेश करें। (२) अपान धारण शक्ति बढ़ाता है, और वीर्य 'रयि' इस जड़ देह का पालक होकर इसका धारण करता है। 'अदिति' अर्थात् अखण्ड चेतनाशक्ति तेजोमयी होने से 'देवी' है. वह निर्बाध, सर्वोपरि. स्वतन्त्र होकर सबको पालती है। हम उसी की खूब चर्चा करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[४१]

गृत्समद ऋषिः ॥ १, २ वायुः। ३ इन्द्रवायू। ४—६ मित्रावरुणौ। ७—९ अश्विनौ। १०—१२ इन्द्रः १३—१५ विश्वेदेवाः। १६—१८ सरस्वती। १९—२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, ११, १३, १५, १९, २०, २१ गायत्री। २, ५, ९, १२, १४ निचृद् गायत्री। ७ त्रिपाद्गायत्री। ८ विराड गायत्री। १६ अनुष्टुप्। १७ उष्णिक्। १८ बृहती ॥ एकविंशत्यचं सूक्तम् ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—हे वायु के समान बलशालिन्! जो तेरे सहस्रों सैनिकों तथा सहस्रों ऐश्वर्यों के स्वामी महारथी पुरुष हैं तू उनके सहित, खूब युद्ध करने वाले सैनिकों या रथों में नियुक्त अश्वों का स्वामी होकर, ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये आ, प्राप्त हो।

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम योद्धाओं से युक्त सेनापते! वा उत्तम यम-नियमों से युक्त उनके पालन करने वाले जितेन्द्रिय! बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष! आप आओ। यह मैं शीघ्र कार्य करने में कुशल सैनिक और

शुद्धचित्त और तेजस्वी शिष्य होकर तेरे द्वार को प्राप्त होता हूँ। और आप भी ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजन तथा स्नान करने वाले स्नातक के गृह को प्राप्त हों। समावर्त्तन काल में स्नातक गुरु को गृह पर बुलाकर आचार्य की पूजा, आदर सत्कार करता है।

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

भा०—मेघ और वायु दोनों जिस प्रकार लक्षों किरणों से युक्त तथा किरणों के आश्रय रूप तेजस्वी सूर्य को प्राप्त होकर भूमि पर आश्रित जल का पान करते हैं, उसी प्रकार हे मेघ और वायु के समान दानशील और बलवान् पुरुषो! आप दोनों, नियम-व्यवस्था वाले प्रबन्धक और वाणी के प्रधान आश्रय अर्थात् आज्ञापक, तेजस्वी पुरुष के समीप आओ। हे नायक नेता पुरुषो! आप पृथ्वी पर स्थित या गौओं से प्राप्त होने वाले शुद्ध बलवर्धक दुग्ध आदि और ओषधिरसों का पान करो।

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

भा०—हे मित्र के समान स्नेही पुरुष! और वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्रीजन! आप दोनों सत्य को बढ़ाने वाले, सत्य से बढ़ने वाले, जल और धन की वृद्धि करने वाले होवो। हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों का यह उत्पन्न सौम्य पुत्र हो। और आप दोनों मेरा ग्रहण करने योग्य वचन श्रवण करें।

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते ५।७।

भा०—हे प्रजाओं के रंजन करने वाले, गुणों से शोभा पाने वाले उत्तम राजा रानी, राजा सचिव, गुरु शिष्यो! एवं स्त्री पुरुषो! आप दोनों परस्पर द्रोह न करते हुए, उत्तम स्थायी तथा सहस्रों स्तम्भों वाले घर तथा सभा-भवन में, विराजो, रहो, आश्रय लो। इति सप्तमो वर्गः॥

ता सुम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचैते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥

भा०—वे दोनों स्त्री पुरुष सूर्य-चन्द्र या सूर्य-विद्युत् के समान तेजस्वी एवं सम्राट् अर्थात् चक्रवर्ती, राजा के समान सबके शास्ता हों। घृतयुक्त अन्न का सेवन करें। अदिति अर्थात् पुत्र के लिये हितकारी एवं एक दूसरे को स्वीकार करने वाले, दान करने योग्य धनैश्वर्य के पालक पति-पत्नी कुटिलता या चोरी, लुका छिपी के भावों से रहित होकर परस्पर किसी प्रकार छल कपट न रखते हुए संगत होवें।

गोमद्ू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले, दुष्टों को रुलाने और मर्यादाओं को पालने वाले होकर, बहुत सी गौवों से युक्त, अश्वों से युक्त तथा मनुष्यों के पालन करने योग्य व्यापार को किया करो।

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥

भा०—हे धनैश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, वर्षणशील उदार पुरुषों को बसाने वाले, बलवान् पुरुषों के बीच में स्वयं रहने वाले वीर पुरुषो ! आप दोनों ! ऐसे मार्ग पर चलें जिस पर न दूर रहने वाला और न बीच में रहने वाला दुष्कीर्त्तियुक्त शत्रु आक्रमण कर सके।

ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥

भा०—हे अश्वादि के आरोही पुरुषों के स्वामियो उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे बुद्धिमानो ! उत्तम आसनों के योग्य ! वे आप दोनों उत्तम सेवा और धन को प्राप्त कराने वाले सुवर्ण के समान दिखलाई देने वाले ऐश्वर्य को हमें प्राप्त कराओ।

इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग म॒हद्भ॒यम॒भी षदप॑ चुच्यवत् ।
स हि स्थि॒रो विच॑र्षणिः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वमार्गप्रकाशक होकर बड़े भारी विद्यमान भय को मुकाबला करके दूर कर देता है। क्योंकि वह ही स्थिर, अन्त तक ठहरने में समर्थ, विविध उपायों को देखने और दिखाने वाला, और विविध प्रजाओं का स्वामी है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्र॑श्च मृळया॑ति नो॒ न नः॑ प॒श्चाद॒घं न॑शत् ।
भ॒द्रं भ॑वाति नः पु॒रः ॥ ११ ॥

भा०—और जब ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर राजा, अपना आत्मा और प्रभु परमेश्वर हमें सुखी करता है, तब हमें पीछे और आगे से भी पाप नहीं लगता, पापाचरण हम तक नहीं पहुँचता और साथ ही हमारे आगे पीछे सर्वत्र सुख कल्याण होता है।

इन्द्र॒ आशा॑भ्य॒स्परि॒ सर्वा॑भ्यो॒ अभ॑यं करत् ।
जेता॒ शत्रू॒न्विच॑र्षणिः ॥ १२ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् सबका द्रष्टा परमेश्वर और और विविध विद्वान् मनुष्यों का राजा सब भीतरी और बाहरी शत्रुओं को जीतने हारा है। वही समस्त दिशाओं से अभय करे।

विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मं हव॑म् ॥
एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत ॥ १३ ॥

भा०—हे समस्त विद्वान् पुरुषो ! उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले पूज्य पुरुषो ! आप लोग आइये। यह उत्तम आसन है इस पर आकर विराजिये। हे अध्यक्ष पुरुषो ! यह वृद्धिशील प्रजाजनों का राष्ट्र है इस पर आप अध्यक्ष रूप से रहें। मेरे उत्तम वचन का श्रवण करें!

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।
एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का यह हर्ष को उत्पन्न करने वाला आनन्द ज्ञानविज्ञान से युक्त है। और विज्ञान और सुखों के देने वाले विज्ञान वृद्ध और धनसम्पन्न पुरुषों के बीच में है। इस कामना योग्य का पान करो, भोगो।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्यो ! हे वीर बलवान् पुरुषगण ! आप लोग ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को अपने में सर्वश्रेष्ठ बनाकर धारण करने वाले, दानशील और स्वयं पुष्ट या सम्पन्न होने पर दान देने वाले, या पोषक राजा, पिता, आचार्य आदि को अन्न, कर आदि देने वाले या भूमि के अनुसार दान देने वाले और भूमि से द्रव्य प्राप्त करने वाले होवो। आप मेरे वचन का श्रवण करो। इति नवमो वर्गः ॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥

भा०—हे शिक्षा देने वाली आचार्याणि और हे मातः ! हे अध्यापन करने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! हे उपदेश करने वालों में सबसे अधिक पूज्य ! हे विद्यादि दान करने वाली स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ ! हे उत्तम ज्ञान वाली ! हम उत्तम ज्ञानोपदेश और प्रवचन से रहित अकुशल, मूर्ख, बालक के समान हैं। हमें उत्तम ज्ञानोपदेश कर।

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञानवाली विदुषी स्त्रि ! तुझ विदुषी के आश्रय पर ही हमारी समस्त आयु और जीवनसुख आश्रित हैं। तू सुख और ज्ञान

देने वाले ज्ञानी पुरुषों के बीच में आनन्दित हो और हमारी सन्तान को उपदेश कर।

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

भा०—हे उत्तम विज्ञानयुक्त विदुषी स्त्रि ! हे ऐश्वर्य अन्न, ज्ञान और बल युक्त ! हे सत्याचरण, उत्तम ज्ञान, धनैश्वर्य अन्नादि को स्वीकार करने वाली ! तू ये उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त कर, सेवन कर। जिन मनन करने योग्य, मन के प्रिय पदार्थों को, विद्वान् होकर आनन्द प्रसन्न रहने वाले विद्वान् जन, विद्वानों में प्रदान करते और स्वयं लेते हैं।

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

भा०—हे सूर्य और भूमि के समान प्रकाशको, सेचको, और उत्पादको ! आप दोनों सत्संग, दान, उपासना आदि उत्तम कर्म और गृस्थादि यज्ञ के कार्य के लिये आगे बढ़ो। आप दोनों को ही हम इस निमित्त अच्छी प्रकार वरण करते हैं और इसी कार्य के लिये अग्रणी नायक का और ग्राह्य ज्ञान और उत्तम अन्न आदि पदार्थ को धारण करने वाले विद्वान् पुरुष का हम वरण किया करते हैं।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥

भा०—सूर्य के समान दोनों ही तेजस्वी और पृथिवी के समान विशाल और सर्वाश्रय होकर, उत्तम ज्ञान और शुभकामना में एक दूसरे का स्पर्श या प्राप्ति या दान प्रतिदान करने वाले, इस नाना सुखों के साधक उत्तम गृहस्थ, सत्संग, उपासना आदि उत्तम कर्म को विद्वान् पुरुषों के बीच में स्थापित करो।

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥ १० ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप दोनों के समीप ही आप की इस उपस्थिति या गृह में, परस्पर द्रोह न करने वाले, परस्पर सत्संग में विराजने वाले वा सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक, वा विद्यादि दान करने में कुशल पुरुष ओषधि अन्न और ऐश्वर्य के पान या उपभोग के लिये आदरपूर्वक विराजें। इति दशमो वर्गः ॥

[४२]

गृत्समद ऋषिः ॥ कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ त्रिष्टुप् ॥
तृचं सूक्तम् ॥

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम्। सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥

भा०—हे शक्तिशालिन् ! वा पक्षी के समान निःसंशय होकर दूर २ तक भ्रमण करनेहारे विद्वन् ! या पक्षी के समान आकाशवत् सर्वोपरि मार्ग से जाने में समर्थ ! खेवट जिस प्रकार नाव को चलाता है, उसी प्रकार आप भी उपदेश करते हुए या आज्ञा प्रदान करते हुए, अधीन शिष्यों के प्रति विद्या का प्रवचन या अध्यापन करते हुए, शिष्य को विद्या में उत्पन्न या निष्णात करने वाली उसे विद्या-सम्बन्ध से नया जन्म देने वाली वाणी का प्रदान करें और आप उसके प्रति शुभ मंगलजनक होवो। कोई किसी प्रकार का भी तिरस्कार सर्वसामान्य से आने वाला तुझे प्राप्त न हो। (२) परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—परमेश्वर ही हमारी अर्थज्ञापक वाणी को प्रकट करता है एवं वेद का उपदेश करता है, वह शक्तिमान् शान्तिदायक होने से 'शकुन' है। पापनाशक कल्याणजनक होने से 'सुमंगल' है। कोई भी 'अभिभा' तिरस्कार या अग्नि आदि उस तक नहीं पहुँचते। वह सबसे परे और ऊंचा है। जीवात्मा जन्म को लेता है।

वाणी बोलता है। अंग देह से युक्त होने से 'सुमङ्गल' है। कोई बाहरी ज्योति या नाशकारी शक्ति या आवरण उस तक नहीं पहुँचता।

'शकुनिः'—शक्नोत्युन्नेतुमात्मानम्, शक्नोति नदितुम् इति वा, शक्नोति तकितुम् इति वा, सर्वतः शंकरोऽस्त्विति वा शक्नोतेर्वा।

'मङ्गलः'—मंगलं गिरतेः, गृणात्यर्थे, गिरत्यर्थान् इति वा, मङ्गल-मङ्गवत्। मज्जयति पापमिति नैरुक्ताः। मां गच्छत्विति वा।

मा त्वा॑ श्ये॒न उद्व॑धी॒न्मा सु॑प॒र्णो मा त्वा॑ वि॒दद्दिषु॑मान्वी॒रो अस्ता॑।
पित्र्या॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ कनि॑क्रदत्सुम॒ङ्गलो॑ भद्रवा॒दी व॑दे॒ह ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन्! प्रजाओं को शान्तिदायक पुरुष! बाज और गरुड़ जिस प्रकार निर्बल पक्षियों को मार डालता है उसी प्रकार बाज के समान आक्रमण करने वाला वेगवान् अश्वारोही शत्रु तुझको न मारे। वेग से जाने वाला रथी भी तुझे न मार सके। बाणादि शस्त्रों से सुसज्जित शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और शस्त्रों को फेंकने में कुशल शत्रु तुझे न पकड़ सके। तू बाप दादों से चली आई सनातन दिशा का अनुसरण करता हुआ, उत्तम आज्ञा और उपदेश करता हुआ, उत्तम कल्याणजनक और सेवन करने योग्य वचन कहता हुआ इस लोक में उत्तम वचन कह।

अव॑ क्रन्द दक्षिण॒तो गृ॒हाणां॑ सु॒मङ्गलो॑ भद्रवा॒दी श॑कुन्ते।
मा नः॑ स्ते॒न ई॑शत॒ माघशं॑सो बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥३॥११॥

भा०—हे शक्तिशालिन्! शान्तिकर! आप घरों के बीच दायें ओर से हमारे बीच विराजकर उपदेश करो। आप उत्तम कल्याणकारी और हितकारी वचन कहने वाले हो। चोर-स्वभाव का पुरुष हम पर शक्तिशाली न हो। पाप की बात कहने या सिखाने वाला पापाचार से शासन करने वाला घोर, क्रूर, हत्यारा हम पर शासन न करे। हम लोग उत्तम वीर्यवान् पुत्रों से युक्त होकर संग्राम और ज्ञान में तुम्हारा बड़ा यश गान करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[४३]

गृत्समद ऋषिः ॥ कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । ३ निचृज्जगती । २ भुरिगतिशक्वरी ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥

भा०—जिस प्रकार पक्षीगण आकाश में चक्कर लगाते हुए ऋतु २ के अनुसार अपनी २ बोली बोलते हैं, उसी प्रकार शक्तिशाली वीर पुरुष और शान्तिकारक विद्वान् जन शिल्पीजन और कर्मनिष्ठ ज्ञानोपदेश करने वाले उत्तम जन, दक्षिण हाथ या आदरणीय स्थान पर विराजकर, ज्ञान और पदाधिकार के अनुसार आज्ञा आदि वचन करते हुए उपदेश दिया करें । वे सान्त्वना देने वालों या साम उपाय के वक्ता दूतों और समत्व का उपदेश करने वालों और साम गायन करने वाले विद्वानों के समान, दोनों प्रकार की अर्थात् ऐहिक और पारमार्थिक, स्वपक्ष और परपक्ष दोनों के अनुकूल या सन्धि और विग्रहयुक्त वाणियों के समान सुख-दुःख दोनों की जनक वाणियों को विवेकपूर्वक कहें । और साम गायन करने वाला पुरुष जिस प्रकार गायत्री और त्रिष्टुभ् छन्दों से उत्पन्न साम को गान करके उत्तम शोभा पाता और श्रोताओं का मन अनुरञ्जित करता है, उसी प्रकार राजदूत 'गायत्र' अर्थात् प्रार्थना स्तुतिकर्त्ता का त्राण करने वाले, और 'त्रैस्तुभं' अर्थात् उत्साहादि त्रिविध शक्तियों से शत्रु का नाश करने वाले राष्ट्रबल को प्राप्त करके, सूर्य के समान चमकता है । इसी प्रकार विद्वान् उपदेष्टा ब्राह्मणवर्ग को और क्षात्रवर्ग को अपने वश करके प्रकाशित हो या उनको अनुरञ्जित करे ।

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन् ! हे शान्ति करने हारे ! विद्वन् ! राजदूत ! उद्गाता जिस प्रकार साम का गान करता है उसी प्रकार तु उत्तम पद से आज्ञा देने वाला होकर समता को उत्पन्न करने वाले तथा शान्तिकारक वचन का उपदेश कर। ब्रह्मा अर्थात् चतुर्वेदवेत्ता का पुत्र या शिष्य जिस प्रकार यज्ञों में वेदमन्त्रों और सूक्तों का उच्चारण और प्रवचन करता है उसी प्रकार तू भी महान् राष्ट्र का सच्चा पुत्र उसको दुःखों से त्राण करने वाला होकर, ऐश्वर्यों के निमित्त और अभिषेक कालों में शासन कर, उत्तम वचन कह। जिस प्रकार वृष्टिकर्त्ता मेघ प्रजायुक्त भूमियों पर आकर गर्जता है उसी प्रकार तू भी सन्तानों से युक्त प्रजाओं और गृहस्थ स्त्रियों को प्राप्त होकर घरों २ में जाकर, हमें सब प्रकार कल्याणकारी वचन का उपदेश किया कर। हे शक्तिशालिन् ! शान्तिकारक ! तू हमें सब प्रकार से धर्मानुकूल पुण्य वचन कहा कर।

आवदँस्त्वं शंकुने भद्रमा वंद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिंकिद्धि नः। यदुत्पतन्वदंसि कर्करिर्यथा बृहद्वंदेम विदथे सुवीराः ३।१२।४।२

भा०—हे शान्तिदायक ! शक्तिशालिन् ! तू जब भी बोले तब २ दूसरों के कल्याणकारी वचन ही कहा कर। और जब तू मौन बैठे तब भी हमारे लिये शुभ संकल्प किया कर। कद्दू का फल जब जल में तैरने वाला हो जाता है, अर्थात् सूख जाता है, तभी वह वाद्य में लग कर सुरीला शब्द करता है, उसी प्रकार तू भी जब उत्तम पद पर आरूढ़ होकर और प्रधान कार्यकर्त्ता होकर बोले तब शुभ ही वचन कह। मदमत्त या गर्वी होकर कुवाच्य मत कर। हम उत्तम वीर और बलवान् पुत्रों से युक्त होकर संग्राम और यज्ञ में तेरे बड़े यश का वर्णन करें। इति द्वितीये मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः॥ इति गार्त्समदं द्वितीयं मण्डलम्॥ इति द्वादशो वर्गः॥

इति द्वितीयं मण्डलम्

अथ तृतीयं मण्डलम्

[१]

गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ६, ११, १२, १५, १७, १९, २० निचृत् त्रिष्टुप् । २, ६, ७, १३, १४ त्रिष्टुप् । १०, २१ विराट् त्रिष्टुप् । २२ ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् । ८, १६, २३ स्वराट् पंक्तिः । १८ भुरिक् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

सोम॑स्य मा त॒वसं॒ वक्ष्य॑ग्ने॒ वह्निं॑ चकर्थ वि॒दथे॑ यज॑ध्यै ।
दे॒वाँ अच्छा॒ दीद्य॑द्यु॒ञ्जे अद्रिं॑ शमा॒ये अ॑ग्ने त॒न्वं॑ जुषस्व ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! सोम अर्थात् वीर्य के बल का मुझको उपदेश कर । ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने तथा संग्राम के कार्य में संग रखने के लिये मुझे कार्यभार उठाने में समर्थ बना । मैं साक्षात् तेजस्वी होकर उत्तम गुणों और शक्तियों को प्राप्त करूं । मैं मेघ के समान दुःखों सन्तापों को शान्त करने वाले को प्राप्त होकर शान्ति प्राप्त करूं । हे विद्वन् ! तु अपने शरीर को प्रेम से रख ।

प्राञ्चं॑ य॒ज्ञं च॑कृम॒ वर्ध॑तां॒ गीः स॒मिद्भि॑र॒ग्निं नम॑सा दुवस्यन् ।
दि॒वः श॑शासुर्वि॒दथा॑ कवी॒नां गृत्सा॑य चित्त॒वसे॑ गा॒तुमी॑षुः ॥२॥

भा०—हम लोग परस्पर के संग और विद्या आदि दान को उन्नति की ओर ले जाने वाला बनावें । जिससे ज्ञान की वाणी बढ़े । अग्नि को जिस प्रकार समिधाओं द्वारा अधिक तीव्र किया जाता है उसी प्रकार सत्संगों और उत्साहजनक वचनों से और नमस्कार और विजय व्यवहार से नेता पुरुष की सब लोग सेवा करें । आकाश से जिस प्रकार मेघ जल प्रदान करते हैं और तेजस्वी सूर्य से जिस प्रकार किरणें प्रकाश देती हैं

उसी प्रकार प्रकाशमय प्रभु या उत्कृष्ट आचार्य से शिक्षा प्राप्त मेधावी, विद्वान् पुरुषों में से विद्वान् लोग नाना ज्ञानों का उपदेश करें। वे उत्तम बुद्धिमान् और बलवान् पुरुष को ज्ञान मार्ग दें।

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्वन्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३॥

भा०—उत्तम बुद्धि से युक्त, ज्ञान और कर्म में पवित्र और उत्तम बलवान्, सबका उत्तम बन्धु के समान प्रेमी विद्वान्, अपने जन्म से, सूर्य के समान तेजस्वी राजा और पृथिवी के निवासी प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है। विद्वान् लोग जलों के बीच प्रकाशक विद्युत् के समान प्रजाओं के बीच गुणों और तेज से दर्शनीय एवं प्रजा के व्यवहारों के देखने वाले पुरुष को अवश्य प्राप्त करें। और उसी को स्वयं आगे बढ़ने वाली प्रजाओं के काम में भी अग्रणी नायक रूप से प्राप्त करें।

अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४॥

भा०—राष्ट्र की सात बड़ी शक्तियां अर्थात् स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य, उत्तम ऐश्वर्य शील, युद्ध में शीघ्रगामी तथा शुभ कर्मों वाले, रोषरहित उज्ज्वल पुरुष को बड़े सामर्थ्य से बढ़ाती हैं। जिनको अपने पुत्र न हों ऐसी भगिनियां जैसे नवजात शिशु को लेने पुचकारने के लिये प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार विद्याओं में व्याप्त विद्वान् जन और अश्वारोही वीर पुरुष और उनकी सेनाएं तथा विजयेच्छुक राजपुरुष और विद्वान् पुरुष उस प्रसिद्ध अग्रणी नायक पुरुष को सब ओर से प्राप्त होते हैं। और जन्म होने पर जिस प्रकार धाइयां बालक का सुन्दर रूप बनाती हैं उसी प्रकार वे राजा बनने पर उसके तेज को बढ़ाते हैं।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥१३॥

भा०—विद्वान् और बलवान् पुरुष, शीघ्रता से कार्य करने में समर्थ शरीर और राष्ट्र के अंगों से ऐश्वर्य को सब प्रकार से बढ़ाता हुआ और शुद्ध आचार विचार और वाणी वाले क्रान्तदर्शी विद्वानों से अपनी बुद्धि और कर्म को पवित्र करता हुआ, जलों के बीच में तेज और जीवन को धारण करने वाले विद्युत् के समान आप्त प्रजाओं के बीच तेज को वस्त्र के समान धारण करता हुआ, उनके जीवनों को और बड़ी अक्षय सम्पदाओं को उत्पन्न करता और बढ़ाता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

ब॒व्राजा॑ सी॒मन॑दती॒रद॑ब्धा दि॒वो य॒ह्वीरव॑साना॒ अन॑ग्नाः।
सना॒ अत्र॑ युव॒तयः॒ सयो॑नी॒रेकं॒ गर्भं॑ दधिरे स॒प्त वाणीः॑॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार न गर्जने वाली तथा अन्तरिक्ष से उत्पन्न जलधाराओं को विद्युत् व्यापता है, उसी प्रकार राजा भी सब प्रकार से स्वयं ऐश्वर्य का भोग न करने वाली, नाश न करने योग्य, उसकी कामना करने वाली, उसके पुत्रतुल्य, उसके शरण में आई हुई, उत्तम वस्त्र आभूषण से आच्छादित प्रजाओं को प्राप्त हो। और वे सनातन से विद्यमान, चार वर्ण और पूर्व के तीन आश्रमों से युक्त, तथा उसको सेवने वाली प्रजाएं, सुन्दर बालक को एक ही गृह में रहने वाली स्त्रियों के समान, एक ही ग्रहण करने योग्य वरणीय नायक का धारण पोषण करें।

स्ती॒र्णा अ॑स्य सं॒हतो॑ वि॒श्वरू॑पा घृ॒तस्य॒ योनौ॑ स्र॒वथे॒ मधू॑नाम्। अस्थु॒रत्र॑ धे॒नवः॒ पिन्व॑माना म॒ही द॒स्मस्य॑ मा॒तरा॑ समी॒ची॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार घृत अर्थात् वर्षा रूप में झरने योग्य जल के आश्रयभूत अन्तरिक्ष में मधुर जलों के बहाने में, इस सूर्य के ७ किरण संघ बना कर कार्य करते हैं, और वे ही नाना रूप वाली अति विस्तृत भूमियों का सेचन करते रहते हैं, उसी प्रकार इस पुरुष के घर पर संघ रूप में बहुत सी संख्या में एकत्र, दूर २ तक फैली हुई, नाना वर्णों वाली,

दुग्धादि सेचन करती हुई गौवें घी और नाना मधुर पदार्थों के बहाने के लिये विद्यमान हों। और उस घर में दर्शनीय गृहपति के माता और पिता दोनों उत्तम आचारों वाले हों।

ब॒भ्रा॒णः सू॑नो सहसो॒ व्य॑द्यौ॒द्दधा॑नः शु॒क्रा र॑भ॒सा वपूं॑षि।
श्चोत॑न्ति॒ धारा॒ मधु॑नो घृ॒तस्य॒ वृषा॒ यत्र॒ वा॑वृ॒धे काव्ये॑न ॥ ८ ॥

भा०—हे बल से उत्पन्न और बल के प्रेरक! जिस प्रकार अग्नि तेजस्वी और बलवान् रूपों को धारण कर चमकता है उसी प्रकार तू भी उज्ज्वल दृढ़ शरीरों को धारण करता हुआ, और पुष्ट करता हुआ विशेष रूप से प्रकाशित हो। तथा जहां क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान और उद्योग से बलवान् पुरुष बढ़ता है वहां मधु और घी आदि सुखकारी पुष्टिकारक पदार्थों की समृद्धियां झरती हैं, अनायास प्राप्त होती हैं।

पि॒तुश्चि॒दूध॑र्ज॒नुषा॑ विवेद॒ व्य॑स्य॒ धारा॑ असृज॒द्वि धेना॑ः।
गुहा॒ चर॑न्तं॒ सखि॑भिः शि॒वेभि॑र्दि॒वो य॒ह्वीभि॒र्न गुहा॑ बभूव ॥९॥

भा०—पालक सूर्य से जिस प्रकार जन्म लेकर मेघ उत्पन्न होता है, और वही सूर्य जिस प्रकार इसकी जलधाराओं को उत्पन्न करता है, और नाना गर्जनाएं भी उत्पन्न करता है, उसी प्रकार यह जीव भी जन्म से ही अपनी पालिका माता के दुग्ध से भरे स्तन को प्राप्त करता है, वह स्वयं इस स्तन की धाराओं को उत्पन्न करता है, नाना चीत्कार आदि को भी उत्पन्न करता है। वह कल्याणकारी मित्रों सहित पहले अपने घर में विचरता है, और बड़ा होने पर दिव्य मित्रों सहित घर से बाहर भी विचरता है। (२) पुत्र के समान शिष्य पालक आचार्य से जन्म लाभ करके ज्ञानरस के धारक वेद को प्राप्त करे। उसके उपदेश की नाना वाणियों का विविध प्रकार से अभ्यास करे। विविध विद्याओं को ग्रहण करे। उत्तम मित्रों सहित बुद्धि मार्ग में विचरते हुए, बुद्धि द्वारा विद्या की दीप्तियों को प्राप्त कर, बड़ी शक्तियों से भी कोई उसे परास्त नहीं करे।

पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये ३ नि पाहि १०।१४

भा०—पुत्र बड़ा होकर अकेला ही पिता के और उत्पन्न करने वाली माता के भी पेट को भरता है। वह पुष्टियों से पूर्ण और पुष्ट करने वाली दूध के धाराओं का पान करे। पति पत्नी होकर रहने वाले और समान रूप से एक दूसरे को प्रेमपाश में बांधने वाले होकर दोनों इस बलवान् तथा शुद्ध पवित्र सन्तान के लिये ही होते हैं। हे पुत्र ! तू भी मननशील पुरुषों के लिये हितकारी होकर उन दोनों का निरन्तर पालन कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥

भा०—शिष्य व्यर्थ में दण्डित या पीड़ित न करने वाले अति विस्तृत ज्ञानवान् गुरु के अधीन रहकर बढ़े और पूर्व विद्वानों से प्राप्त एवं सुपरीक्षित आप्त विद्याएं आगे बढ़ने वाले शिष्य को बल और कीर्त्ति से अवश्य बढ़ाती हैं। वह शम दम आदि से जितेन्द्रिय चित्त होकर, सत्यज्ञान के आश्रय परम प्रभु में सोवे, उसी में रमे। वह स्वयं अन्नादि ऐश्वर्य का भोग करने वाली, स्वयं अपने २ मार्ग या व्यवसाय उद्योग में जाने वाली प्रजाओं के कार्यव्यवहार के आश्रय पर बढ़े।

अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उद्रुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥

भा०—अग्नि के समान तेजस्वी, अन्यों को मार्ग बतलाने हारा विद्वान् नायक किसी से भी और किसी प्रकार भी आक्रमण न करने योग्य होकर समस्त प्रजा का भरण पोषण करने हारा हो। वह बड़ी २ सेना और पूज्य प्रजाओं के समूहों तथा संगतिस्थानों और संग्रामों में भी दर्शन करने योग्य, अपने को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले गुरु के हित के

लिये, तथा अपत्य के समान प्रजाजन के लिये, विद्या और दीप्ति से प्रकाशमान् होकर और ऋजु स्वभाव वाला हो। जो पिता के समान उत्पादक होकर किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार मेघ से जलधाराएं उत्पन्न करता है उसी प्रकार समस्त प्रजाओं के ऊपर प्रकट हो। वह प्रजाओं को अपने आश्रय में धारण करने में समर्थ सर्वश्रेष्ठ नायक और महान् हो।

अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम्।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥

भा०—जो वीर विद्वान् पुरुष उत्तम ऐश्वर्य से युक्त शत्रु को संताप देने की शक्ति को धारण करने वाले वीर पुरुषों के जत्थे के जत्थे उत्पन्न कर देता है, विजय के इच्छुक लोग अपने चित्त से उसको ही प्राप्त प्रजाओं को वश करने हारा, दर्शनीय, विशेष तेजस्वी, रूपवान् जानकर उससे संगत होते हैं, उससे मिल जाते हैं और उस अग्नि के समान सबसे अधिक व्यवहारोपयोगी, गुणों में प्रसिद्ध और बड़े बलवान् की ही पूजा करते हैं। (२) अथवा—वरण करने वाली नवयुवती, सौभाग्यवती होकर जलों के बीच विद्युत् के समान प्राणों के बीच मुख्य, दर्शनीय, विशेष रूपवान् भव्य पुत्र को उत्पन्न करे। जिसको विद्वान् पुरुष चित्त से या ज्ञान से संयुक्त करें।

बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४॥

भा०—बड़ी दीप्तियां तथा अति शुक्ल वर्ण वाली विविध कान्तियां जिस प्रकार दीप्तियुक्त अग्नि को प्राप्त हैं, उसी प्रकार बड़े २ तेजस्वी, वीर्यवान्, विविध विद्याओं से चमकने वाले पुरुष भी, नाना दीप्तियों वाले धर्मात्मा, तथा ज्ञानवान् अग्रणीनायक को एवं परमेश्वर को प्राप्त हों। और जल भरने वाले लोग जिस प्रकार अपनी गुफा में अग्नि का सेवन करते हैं, उसी प्रकार अपने अपार बड़े भारी राष्ट्र में अन्न पूर्ण करते हुए

लोग अपनी राजसभा के बीच में ज्ञानवृद्ध अग्रणी नायक को प्राप्त करें, उसका सत्संग करें। (२) इसी प्रकार अमृत आत्मा का रस दोहन करने वाले 'गुहा' अर्थात् बुद्धि में अपने अपार महान्, समुद्र के समान गम्भीर, सर्वाश्रय अन्तरात्मा में ही उस महान् ज्ञानमय प्रभु को प्राप्त करें।

ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥१५॥

भा०—हे अग्रणी नायक! मैं तुझे प्राप्त होने और कर आदि देने वाला प्रजाजन तुझको स्वीकार करने योग्य नाना ऐश्वर्यों सहित आदर करता और मान पद प्रदान करता हूँ। तुझे खूब चाहता हुआ, तुझसे शुभ मति, उत्तम ज्ञान, और तेरी मित्रता चाहता हूँ। तू स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन के हितार्थ, विद्वान् पुरुषों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों द्वारा, रक्षा आदि उपाय अच्छी प्रकार कर। और दमन करने योग्य सैन्यों से हमारी रक्षा कर। इति पञ्चदशो वर्गः॥

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभिष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥ १६ ॥

भा०—हे उत्तम और प्रकर्षयुक्त नीति वाले राजन्! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले विद्वन्! हम लोग तेरे अधीन वा तेरे समीप शिष्य और भृत्यरूप से रहने वाले और सब प्रकार के धन प्राप्त कराने वाले उत्तम साधनों को धारण करते हुए, उत्तम वीर्य और अन्न ज्ञान और यश से बलवान् और दानशील होकर, विद्वानों के विरोधी अदानशील पुरुषों को नीचा दिखावें।

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान्।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! तू समस्त वेदरूपी काव्यों को जानकर, विद्वानों के बीच में सबको आनन्द देने वाला और सबको ज्ञान देने हारा सब

प्रकार से हो और मन आदि इन्द्रियों को दमन कर जितेन्द्रिय होकर, साधारण प्रजाजनों को बसा और महारथिओं के बीच रमण करने वाला महारथी होकर तू सबको वश करता हुआ विजयेच्छु वीरों और दानशील तेजस्वी पुरुषों का अनुसरण कर।

नि दु॒रो॒णे अ॒मृतो॒ मर्त्या॑नां॒ राजा॑ ससाद वि॒दथा॑नि॒ साध॑न्।
घृ॒तप्र॑तीक उ॒र्वि॑या व्य॑द्यौद॒ग्निर्विश्वा॑नि॒ काव्या॑नि वि॒द्वान् ॥१८॥

भा०—घी से प्रज्ज्वलित होने वाले अग्नि या तेज से चमकने वाले सूर्य के समान तेजस्वी राजा विद्वानों के द्वारा ज्ञात सभी ज्ञानों को जानता हुआ, और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों संग्रामों और यज्ञों को साधता हुआ, मनुष्यों के बीच विशाल घर में अमृत अर्थात् मृत्यु-धर्म से रहित, दीर्घायु होकर विराजे और पृथिवी में विशेष रूप से सूर्य के समान प्रकाशित हो।

आ नो॑ गहि स॒ख्येभि॑: शि॒वेभि॑र्म॒हान्म॒हीभि॑रू॒तिभि॑: सर॒ण्यन्।
अ॒स्मे र॒यिं ब॑हु॒लं सन्त॑रुत्रं सु॒वाचं॑ भा॒गं य॒शसं॑ कृधी नः ॥१९॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू हमें मङ्गलमय मित्रताओं, सौहार्दों सहित प्राप्त हो। और तू सबसे बड़ा, बड़ी पूजनीय ज्ञान और ज्ञान और रक्षाओं से प्राप्त होता हुआ, हमें बहुत सा दुःखों से भली प्रकार तारने वाला, उत्तम वाणी से युक्त, सेवने योग्य, हमारा कीर्त्तिजनक ऐश्वर्य उत्पन्न कर।

ए॒ता ते॑ अग्ने॒ जनि॑मा॒ सना॑नि॒ प्र पू॒र्व्याय॒ नूत॑नानि वोचम्।
म॒हान्ति॒ वृष्णे॒ सव॑नो कृ॒तेमा जन्म॑ञ्जन्म॒न् निहि॑तो जा॒तवे॑दाः ॥२०॥

भा०—हे अग्रणी नायक! इन सेवन करने योग्य और अद्भुत कर्मों को मैं विद्वानों से उत्पन्न तेरे हित के लिये उपदेश करता हूँ। ये बड़े २ ऐश्वर्य सब बलवान् पुरुष के लिये बने हैं। सब जनों में विद्वान् पुरुष ही उत्तम पद पर स्थिर किया जाता है। (२) अध्यात्म में—हे जीव!

पूर्वकाल से आए हुए तुझको तेरे पुराने और नये जन्मों को मैं अच्छी प्रकार बतलाता हूँ। ये सब बड़े २ जन्म उसी देहादि के प्रबन्धक आत्मा के भोग के लिये बने हैं। प्रत्येक जन्म या उत्पन्न देह में उत्पन्न बुद्धि का स्वामी आत्मा निबद्ध होता है।

जन्म॑ञ्जन्म॒न् निहि॑तो जा॒तवे॑दा वि॒श्वामि॑त्रेभिरिध्यते॒ अज॑स्रः।
तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म ॥ २१ ॥

भा०—प्रत्येक जन्म में या प्रत्येक उत्पन्न होने वाले देह में कभी नाश न होने वाला नित्य आत्मा ही, सबके स्नेही या आत्मा के स्नेही विद्वान् पुरुषों ने प्रकाशित किया, जाना और अनुभव किया और जगाया है। उस पूजनीय आत्मा के ही उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने के निमित्त हम सब कल्याणकारक उत्तम चित्त के भाव में रहा करें। (२) राजा, विद्वान् पक्ष में—प्रत्येक कार्य तथा प्रत्येक पदार्थ पर विद्वान् को अधिष्ठाता रूप से स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मति के अधीन रहकर हम उत्तम चित्तभाव में रहा करें।

इ॒मं य॒ज्ञं स॑हसाव॒न् त्वं नो॑ देव॒त्रा धे॑हि सुक्रतो॒ ररा॑णः।
प्र यं॑सि होतर्बृह॒तीरि॒षो नोऽग्ने॒ महि॒ द्रवि॑ण॒मा य॑जस्व ॥२२॥

भा०—हे बलवान् पुरुष! हे उत्तम ज्ञान और कर्म वाले! तू हमारे इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र को विद्वान् वीर और दानशील पुरुषों के अधीन कर। हे दानशील! तू सदा आनन्द प्रसन्न रहता हुआ, हमारी बड़ी २ सेनाओं को अच्छी प्रकार नियम में रख। हे तेजस्विन्! हम प्रजाओं को बड़ा धन और बल दे, प्राप्त करा। (२) हे सर्वशक्तिमन् प्रभो! हमारी इस आत्मा को प्राणों के बीच सुरक्षित रख। तू हम में रमता रह। हमारी बड़ी २ कामनाएं पूर्ण कर। बड़ा भारी ऐश्वर्य तथा ज्ञान दे।

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥२३॥१६॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! राजन् ! तू स्तुति करने योग्य वाणी और भूमि को और बहुत से कर्म करने के आश्रय भूत गवादि पशुओं के दान को, दाता के लिये सिद्ध कर। हमारा पुत्र और पौत्र भी विविध सन्तानों और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध हो। हे अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! तेरी वह शुभ मति और ज्ञान हमारे कल्याण के लिये हो। इति षोडशो वर्गः ॥

[२]

विश्वामित्रः ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १० जगती। २, ४, ८, ६, ९, ११ विराड् जगती। ५, ७, १२, १३, १४, १५, निचृज्जगती च ॥

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति १

भा०—अग्नि के बढ़ाने के लिये जिस प्रकार पवित्र घृत को तैयार करते हैं उसी प्रकार सत्य न्यायाचरण को बढ़ाने वाले सब मनुष्यों के बीच में सबके नायक रूप से विराजमान होने योग्य अग्रणी प्रधान पुरुष को बढ़ाने और उत्पन्न करने के लिये, हम उत्तम प्रगल्भ बुद्धि को और अधिष्ठातृरूप से भोगने योग्य पदवी को उत्पन्न करें। साधारण मनुष्य और विद्वान् पुरुष दोनों वर्ग उस राष्ट्रपति पद को स्वीकार करने वाले नायक को, रथ को औजार के समान, अच्छी प्रकार तय्यार करें।

स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥

भा०—वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष सूर्य और अग्नि के समान ही अपने जन्म या प्रादुर्भाव से ही आकाश और भूमि के समान पालक एवं उपदेश करने वाले माता और पिता या आचार्य कुल दोनों को प्रकाशित करे। वह माता और पिता या मान करने वाली माता और मान अर्थात् ज्ञानदाता आचार्य दोनों का ही स्तुति योग्य और अभिलषित प्रेम पात्र

पुत्र हो। वह अग्नि के समान तेजस्वी होकर 'हव्य' अर्थात् दान और प्रतिग्रह करने योग्य अन्न, द्रव्य रत्नादि को वहन करने हारा, जरारहित, युवा, अन्न से परिपुष्ट, रोग, आदि से न मारे जाने योग्य, अजेय, विशेष दीप्ति को अपने में बसाने वाला, कान्तिमान्, प्रजाओं के बीच विद्यादि गुणों में सबसे ऊपर रहने से अतिथि के समान पूज्य हो।

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३॥

भा०—दानशील, स्वर्गादि सुखों वा काम्यफलों के चाहने वाले जिस प्रकार बलवान्, सबको पार उतारने वाले परमेश्वर के विविध कर्मों को धारण करने वाले यज्ञ या उपासना कार्य में नाना चयन आदि क्रियाओं से दीप्तिमान् अग्नि को उत्पन्न कर लेते हैं, उसी प्रकार क्रिया और प्रज्ञा के सामर्थ्य से बलवान् और ज्ञानवान्, संकट से पार उतारने वाले, प्रधानपद को विशेष रूप से धारण करने वाले शासनकार्य में विद्वान् तथा व्यवहारकुशल पुरुष, नाना ज्ञानोत्पादक विधियों और नाना संज्ञापक पदवियों और घोषणाओं से अग्रणी नायक रूप में दीप्ति से युक्त तेज से चमकने वाले पुरुष को, उत्पन्न करते हैं। और जिस प्रकार युद्ध में जाने वाला योद्धा बड़े वेगवान् अश्व को तैयार करता है उसी प्रकार ऐश्वर्य का सेवन करने की इच्छा वाला मैं प्रजाजन बल से महान् सबको अतिक्रमण करने वाले पुरुष की याचना करता हूँ, ऐसे पुरुष को प्राप्त करूं।

आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम्।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥

भा०—जिस प्रकार ऐश्वर्य का विभाग करने के इच्छुक या उसको चाहने वाले लोग ज्ञानी पुरुष को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सबको आनन्द देने वाले पुरुष के सर्वश्रेष्ठ, लज्जा न दिलाने वाले परम ज्ञान को स्वयं सेवन करने और अन्यों को प्रवचन द्वारा दान करने वाले हम लोग,

सदा पाप मल आदि के भस्म करने वाले तेजस्वी पुरुषों के बीच में दानशील, तेजस्वी और हृदय से शिष्य को चाहने वाले, दिव्य कान्ति से प्रकाशमान, क्रान्तदर्शी प्रज्ञा से युक्त, ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को आचार्य, गुरु और उपास्य रूप से वरण करें।

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ५।१७

भा०—जिस प्रकार यज्ञवेदी में कुशाएं बिछाने हारे याज्ञिक लोग, सुख प्राप्त करने के लिये अपने आगे अग्नि का आधान या स्थापन करते हैं, उसी प्रकार विस्तृत प्रजाओं के स्वामी प्रजास्थ जन, सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये, बल और ऐश्वर्यों को अन्न के समान भोगने वाले अथवा युद्धों में कीर्त्तिमान्, उत्तम दीप्ति और रुचि वाले, विजयेच्छुक सैनिकों के हितकारी, दुष्टों को रुलाने वाले, दान देने और सत्संग करने वाले लोगों की और कर्म करने वाले उद्यमी लोगों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले, अग्रणी नायक को, सबसे पूर्व या सबके समक्ष अध्यक्ष रूप से स्थापित करें। इति सप्तदशो वर्गः॥

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः॥ ६॥

भा०—हे नायक! हे पवित्र करने वाले तेज को धारण करने वाले, हे सुख ऐश्वर्यादि के देने वाले! पृथिवीराज्य को बढ़ाने वाले नेताजन, संगत होने योग्य अवसरों, युद्धों और सभा भवनों में तेरी सेवा करने की इच्छा करते हुए, प्राप्त करने योग्य तेरे ही निवास गृह की शरण लेते हैं। तू उनको धन आदि प्रदान कर।

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन्।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः॥७॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि आकाश और पृथिवी में व्याप्त हो रहा है,

और महान् तथा उत्पन्न और प्रकाशस्वरूप को क्रिया वाले जीव धारण करते हैं, वही अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर जीवन को नाश न होने देने वा यज्ञ के लिये प्राप्त किया जाता है, वह रथ में लगे अश्व के समान देह में अन्न को अंग २ में विभक्त कर देने के लिये पाचन करने के लिये उपयुक्त है, उसी प्रकार प्रज्ञावान् पुरुष माता और पिता दोनों का अच्छी प्रकार पालन करे। बड़े भारी उत्पन्न सुख को पूर्ण करे। कर्मनिष्ठ, श्रमी, उद्योगी लोग उसका धारण पोषण करें। वह परपीड़ारहित पालनादि कार्य के लिये प्राप्त किया जाय। वही संग्राम और वेग के लिये अश्व के समान ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने और विभाग करने या दान देने के लिये, प्रवचन कार्य में, शासन और उपदेश के कार्य में नियुक्त किया जाय।

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम्।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ग्रहण करने और खाने योग्य अन्नों को देने वाले, उत्तम पालक और अहिंसक स्वामी को सदा आदर से नमस्कार करो और दानशील दमन करने में समर्थ और सब गृहों, गृहस्थित प्रजाजनों के हितकर, ज्ञानवान् और ऐश्वर्य की सेवा परिचर्या करो। वह उत्तम महारथी, बड़े भारी राष्ट्र और सत्य ज्ञान और न्याय का देखनेहारा, स्वयं अग्नि के समान तेजस्वी, सब दानशील एवं तेजस्वी पुरुषों में सबसे आगे अध्यक्ष रूप से स्थापित करने योग्य है।

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सर्वव्यापक महान् अग्नितत्व की तीन दीप्ति युक्त ज्वालाएं हैं। वे तीनों कान्तियुक्त और मृत्युभय से रहित होकर सबको पवित्र करती हैं। अथवा उन तीनों को कामना करने हारे निर्भय विद्वान्

प्राप्त होते और साधते हैं। अग्नि के उन तीनों में से एक प्रकार की दीप्ति को मरणधर्मा जीवों में अन्नादि के भोक्ता जाठराग्नि और स्थूलाग्नि रूप से पुष्ट करते हैं और शेष दोनों विद्युत् और सौर-अग्नि सर्वोत्पादक लोक अर्थात् अन्तरिक्ष और सूर्य में प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार महान् तथा युद्धादि में सर्वत्र जाने वाले तेजस्वी पुरुष की तीन शक्तियां अविनाशी और तेजोयुक्त होकर राष्ट्र को शुद्ध पवित्र करें। अथवा मृत्युभय से रहित, कामना वाले प्रजागण उन तीनों को प्राप्त हों। उनमें से एक को मरणशील प्रजाजन में पालन करने वाली अर्थात् राष्ट्रपालक और रक्षक रूप से रखें। और दो समीप के पड़ोसी राष्ट्र को प्राप्त हों अर्थात् उनके मुकाबले पर हों। राजा की शक्ति के तीन भागों में से एक राष्ट्र की रक्षा करे, दो भाग उदासीन और शत्रु राष्ट्रों का मुकाबला कर सकें।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे। स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्यों की सेनाएं तेज की वृद्धि करने के लिये शस्त्र को अच्छी प्रकार चमकाती हैं, उसी प्रकार धनैश्वर्यादि के इच्छुक प्रजागण प्रजागणों के तेज को बढ़ाने के लिये प्रजाओं के 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को धारण और पालन करने में समर्थ, क्रान्तदर्शी, समस्त प्रजाओं के पालक पुरुष को सब प्रकार संस्कृत करें। वह ऊपर के और नीचे के सब स्थानों पदों को प्राप्त करे। अथवा उत्तम बलशाली और अधीन सामन्तों को भी प्रयाण द्वारा वश करे। वह इन सब भुवनों या प्रदेशों के बीच में भीतरी रहस्य भाग को व्याप ले और उसको धारण करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः। वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥

भा०—वह बलवान् जठरों में उत्पन्न जाठराग्नि के समान प्रमुख होकर, नाना प्रकार के ऐश्वर्यों के आधार पर सबका पालन करे और स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हो और सिंह के समान गर्जे। वह सब मनुष्यों का नायक तथा साधारण मनुष्यों से ऊंचा और बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर, कर-प्रदानशील प्रजा को नाना धन और राष्ट्र में बसने का अधिकार और रमणीय हीरा मुक्ता आदि और रमण करने योग्य उत्तम भोग्य पदार्थ विविध रूपों में देता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो।

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं मन्दमानः सुमन्मभिः। स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अनादि काल से आकाश के ऊपर चढ़ जाता है, उत्तम किरणों से सबको सुखी करता, प्राणिमात्र के लिये पुष्ट करता और समान रूप से अपना मार्ग तय कर लेता है, उसी प्रकार सबका नेता पुरुष, सनातन से चले आये दुःखरहित तेज के सर्वोपरि पद को प्राप्त करे और अपने उत्तम विचारों और उत्तम विचारवान् पुरुषों द्वारा प्रजा का कल्याण करता हुआ, तेज और विजय के सर्वोपरि दुःख-रहित पद को प्राप्त करे। और प्राणिमात्र के लिये पूर्व के समान या अपने से पूर्व विद्यमान पिता आचार्यादि के समान पोषक अन्नादि ऐश्वर्य उत्पन्न करता हुआ, जागरणशील, सदा सावधान होकर, समान अर्थात् निष्पक्षपात मार्ग या मान आदर से युक्त मार्ग पर चले।

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्। तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार सत् कारणस्वरूप, यज्ञ के योग्य, विशेष रूप से सर्वत्र पूर्ण प्रशंसा के योग्य, द्युलोक में विद्यमान् विद्युत् को वायु धारण करता है, उस अद्भुत् वेग से जाने वाले, उत्तम दीप्ति युक्त, पीली रश्मियों

वाले अग्निरूप विद्युत् को नये से नये प्रयोगों के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको भूमि पर वेग से जाने वाला वायु के समान बलवान् वीर पुरुष स्थापित करता है उस, सत्य न्यायाचरण और वेद की व्यवस्था से युक्त, दानशील प्रजापति के योग्य, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञान, व्यवहार, विजयकामना में निवास करने वाले, अद्भुत् मार्गों से जाने वाले, पीत वर्ण के बालों के समान मानो तेज को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी वा प्रजाओं के क्लेशों को दूर करने वाले, उत्तम दीप्ति या संहारशक्ति से युक्त नायक को नई २ प्रेरणाओं के लिये प्रार्थना करें, वरें ।

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १४

भा०—स्वयं शुद्ध, अन्यों को भी पवित्र करने वाले, जाने योग्य मार्ग में अति आवश्यक रूप से अपेक्षित या सन्मार्ग में प्रेरणा करने हारे, सुख को या समस्त पदार्थों के विज्ञान को देखने वाले, प्रकाश का ज्ञान कराने वाले, स्वयं प्रकाश में विद्यमान, उषा काल में सूर्य और यज्ञादि के समान स्वयं भोर में जागने और अन्यों को जगाने वाले, आकाश में मस्तकस्थ सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के बीच भी सबके शिरो-देश पर स्थित, शिरोमणि, पूज्य, अग्रणी, अन्य प्रतिद्वन्द्वी से कभी स्पर्धा में न पराजित होने वाले अद्वितीय, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त उस महान् पुरुष को हम लोग आदर सत्कार पूर्वक प्राप्त हों और प्रार्थना करें ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१९॥

भा०—आनन्ददायक, ज्ञान के देने वाले और आश्रय में लेने वाले, शुद्ध पवित्र स्वभाव के, दो भावों से न रहने वाले, सरलस्वभाव, जितेन्द्रिय और दानशील, प्रशंसनीय, सब पदार्थों के स्वयं देखने और

दिखाने वाले, मनुष्यों के हितकारी रूप में दर्शनीय, रथ के समान अद्भुत, गृह के समान सबके शरण योग्य पुरुष को, धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह अद्वितीय होने से 'अद्वयावी' है। विश्वदंष्ट्रा होने से 'विश्वचर्षणि' है। गृह के समान शरण योग्य, सर्वहितकारी, रस रूप होने और रमणयोग्य होने से रथ के समान, चित् रूप होने से 'चित्र' है। हम उसकी प्रार्थना करें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३]

विश्वामित्र ऋषिः॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २, ३, ४, ६, ८, ६ जगती। ७, १० विराट् जगती। ११ भुरिक् पंक्तिः॥
एकादशर्चं सूक्तम्॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत्॥१॥

भा०—बुद्धिमान् पुरुष सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे, बड़े बलवान्, शिक्षा का उपदेश करने वाले पुरुष के हितार्थ धरने योग्य स्थानों, गृहों, और लोकों में नाना प्रकार के रत्न और रमण करने योग्य पदार्थों को तैयार करें। अग्रणी, ज्ञानी, विनीत पुरुष कभी नाश को न प्राप्त होकर, दीर्घायु होकर विद्वानों की सेवा करे और सन्मार्ग से चलता हुआ सनातन से चले आये धर्मानुकूल कर्त्तव्यों को कभी दूषित न करे, उनमें दोष न आने दे।

अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः॥२॥

भा०—आकाश और भूमि के बीच संतापकारी, अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य गति करता है, उसी प्रकार अधिकार को देने और प्राप्त करने वाला, सबके समक्ष आदर से साक्षी रूप में स्थापित किया हुआ

मननशील पुरुष भी आसन पर विराजकर, राजवर्ग और प्रजावर्ग या वादी-प्रतिवादी या मित्रवर्ग-शत्रुवर्ग दोनों के बीच में दूत के समान सबका कार्य साधने हारा, और दुष्टों का संतापजनक और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारा होकर प्राप्त हो । और जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि बड़े भारी महल को अपने प्रकाशमान किरणों से जगमगा देता है, उसी प्रकार प्रेरित या प्रार्थित बुद्धि और कर्त्तव्यों को अपने में धारण करने वाला अग्रणी मुख्य पुरुष, विद्वानों द्वारा और अपने उत्तम गुणों से, बड़े भारी निवासयोग्य सभाभवन और राष्ट्र को भी अलंकृत करता और अपने वश करता है ।

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः । अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिस प्रकार काष्ठसञ्चयादि द्वारा और नाना कर्मकाण्ड द्वारा, यज्ञों को बतलाने वाले और यज्ञ को साधने वाले अग्नि को आदर और श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित करते हैं, उसके आश्रय पर सब कार्य करते और उसके आश्रय यज्ञशील पुरुष सब सुखों की कामना करते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष परस्पर के सत्संगों, मैत्रीभावों, व्यवहारों और लेने देने के कार्यों के संज्ञापक, और यज्ञ, ऐश्वर्य लाभ और संग्राम के साधने वाले ज्ञानवान् नायक राजा को, अपने २ ज्ञानों और कर्मों के द्वारा आदरपूर्वक सेवा करें, उसका मान करें । जिसके आश्रय रहकर ज्ञान, कर्म और वाणियों को सभी लोग अच्छी प्रकार धारण करते हैं उसी के आश्रय दानशील और मित्रभाव से रहने वाला पुरुष भी नाना सुखों को चाहता है ।

पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् । आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥ ४ ॥

भा०—वह परमेश्वर अग्नि के समान स्वयंप्रकाश, सब श्रेष्ठ कर्मों, सद्व्यवहारों, सत्संगों, पूज्य पुरुषों और सब आत्माओं का पिता है। वह महान् शक्तिमान् संसार के समस्त भूगोलों को गति देने वाला, सब प्राणियों के प्राणों में भी रमण करने वाला, प्राणों का प्राण, विद्वानों को विज्ञान से युक्त करने से विमान के समान संसार महासागर से पार करने वाला और विद्वान् पुरुषों के लिये ज्ञानमय है। वह नाना रूपों से सूर्य पृथिवी के समान चेतन और अचेतन, प्रकाशवान् अप्रकाशवान्, सत्-त्यत्, प्राण रयि आदि में प्रविष्ट है, व्यापक है। वह बहुतों को प्रिय लगने हारा, क्रान्तदर्शी, नाना तेजों और लोकों से जीवों का कल्याण करता और सुखी बनाता है। (२) इसी प्रकार बलवान् पुरुष भी सब सत्संगों, सद्व्यवहारों, मैत्री भावों का पालक, विद्वानों के मान का पात्र, ज्ञानवान् होकर, प्रजा और शासकवर्ग दोनों में मध्यस्थ होकर सर्वप्रिय हो और अपने पराक्रम से भी सबको सुखी करे।

चन्द्रम॒ग्निं च॒न्द्रर॑थं॒ हरि॑व्रतं वैश्वान॒रम॑प्सु॒षदं॑ स्व॒र्विद॑म्।
वि॒गा॒हं तू॒र्णिं तवि॑षीभि॒रावृ॑तं॒ भूर्णिं॑ दे॒वास॑ इ॒ह सु॒श्रियं॑ दधुः ॥५॥२०

भा०—विद्वान् पुरुष सबको आनन्द देने वाले, सुवर्ण के समान आल्हादजनक, सुवर्ण के बने रथ वाले वा चन्द्र के समान रमणीय रूप वा चन्द्रवत् सर्वाल्हादक एवं शान्तिकारक गुणों से युक्त, वेगवान् अश्वों और विद्वानों के वरण करने वाला, सब नायकों के अग्रणी, विद्युत् के समान प्रजाओं में अध्यक्ष पद पर विराजने वाले, सबको प्राप्त करने सबको सुख देने वाले, युद्ध में परसैन्यों का मथन करने हारे, अति वेगवान्, बलवती सेनाओं से घिरे हुए, सबके पालक, उत्तम लक्ष्मी और कान्ति से युक्त पुरुष को नायक रूप से इस राष्ट्र में धारण करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह प्रभु सर्वाल्हादक होने से 'चन्द्र' है। आनन्दमय रस होने से 'चन्द्ररथ' है। दुःखहारी शीलवान् होने से 'हरिव्रत' है।

सर्वव्यापक होने से 'विगाह' है। वह बलवती समस्त शक्तियों से युक्त सर्वपालक सर्व सम्पदाओं का स्वामी है। उसको सब देव, सूर्यादि तथा विद्वान् जन अपने में धारण करते हैं। इति विंशो वर्गः ॥

अ॒ग्निर्दे॒वेभि॒र्मनु॑षश्च ज॒न्तुभि॑स्तन्वा॒नो य॒ज्ञं पु॑रु॒पेश॑सं धि॒या ।
र॒थीर॒न्तरी॑यते॒ साध॑दिष्टिभिर्जी॒रो दमू॑ना अभिशस्ति॒चात॑नः ॥६॥

भा०—वह अग्रणी नायक पुरुष, अग्नि के समान तेजस्वी होकर, बुद्धि और कर्म के द्वारा दानशील, तेजस्वी, कामनावान् मनुष्यों से, मननशील पुरुषों के नाना रूपों का परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव विस्तृत करता हुआ, रथों का स्वामी, उत्तम उपदेशों को साधने वाले पुरुष के साथ मिलकर विजयी, दमनशील, हिंसाकारी शत्रुओं का नाश करने वाला राष्ट्र के भीतर प्रवेश करे ।

अग्ने॒ जर॑स्व स्वप॒त्य आयु॑न्यू॒र्जा पि॑न्वस्व॒ समिषो॑ दिदीहि नः ।
वयां॑सि जिन्व बृह॒तश्च॑ जागृव उ॒शिग्दे॒वाना॒मसि॑ सु॒क्रतु॑र्वि॒पाम् ॥७॥

भा०—हे विद्वन् तेजस्वी पुरुष ! तू उत्तम सन्तान के प्राप्त होने पर उसमें उत्तम उपदेश कर। और उत्तम अन्नरस से हमें तृप्त कर। हमें सन्मार्ग में चला, अथवा हमें प्रेम से चाह। उत्तम अन्नों और बलों को दे और स्वयं प्राप्त कर। अपने से बड़ों को अन्नादि से तृप्त प्रसन्न किया कर। हे जागरणशील, सदा सावधान जितेन्द्रिय ! तू ज्ञानादि के दाता पुरुषों के बीच में उनको चाहने वाला और विद्वानों के बीच उनके उत्तम ज्ञान और कर्म को धारण करने वाला हो। (२) वह परमेश्वर पुत्र रूप मनुष्यों को उपदेश करता, अन्न से पालता, वृष्टियां प्रदान करता, सब बलों और जन्तुओं को बढ़ाता, सबको धारण करता है, वह सब में तेजस्वी, विद्वानों में भी सर्वोत्तम, ज्ञानवान् है। सदा जागृत प्राणरूप रहने से 'जागृवि' है।

विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम्। अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥

भा०—श्रेष्ठ पुरुष, समस्त प्रजाओं के पालक, महान्, अतिथि के समान सत्कार करने योग्य, सबको नियम में रखने वाले, उत्तम कर्मों और बुद्धियों के बीच में आत्मा के समान उनका नियन्ता और विद्वानों और हिंसा न करने वाले बलवान् पुरुषों के बीच में स्थित होकर उनको भी नियम में रखने वाले, देह में चेतन आत्मा के समान स्वयं भी चित्-स्वरूप व अन्यों को ज्ञान देने वाले, सब पदार्थों के ज्ञाता वा सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामी परमेश्वर और राजा की सभी लोग अपनी वृद्धि करने के लिये उसके सेवनीय गुणों द्वारा स्तुति करते हैं।

विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः। तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥ ९ ॥

भा०—ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष, विशेष दीप्ति से युक्त, दानशील, तेजस्वी, विजयेच्छुक, उत्तम रणशील और बल से उत्तम शोभायुक्त रथसैन्य का स्वामी होकर, भूमियों पर विजय करता है। दमन के कार्य में बहुत से प्रजाजनों का पोषण करने वाले उस नायक के कर्त्तव्यों और नियमों का हम गृह में बहुत सी सन्तानों का पोषण करने वाले होकर, उत्तम व्यवहारों और पापादि बुरे कार्यों के त्याग से सब प्रकार से पालन करें।

वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण। जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥ १० ॥

भा०—हे समस्त लोकों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे प्रधान

नायक ! और परमेश्वर मैं तेरे उन धारण करने योग्य तेजों, उत्तम गुणों और चरित्रों को जानना चाहता हूँ। हे विशेष रूप से सबके देखने हारे ! जिनसे तू सर्वत्र या स्वयं समस्त सुखों को प्राप्त करने और अन्यों को भी सुख प्राप्त कराने और शत्रुओं को ताप देने और अधीनों को उपदेश और प्रकाश देने में समर्थ है। तू ही अधीनों को उपदेश और प्रकाश देने में समर्थ है। तू ही सूर्य या अग्नि के समान प्रकट और प्रसिद्ध होकर समस्त लोकों और प्राणियों को और आकाश और पृथिवी को पालता और पूर्ण करता है। हे विद्वन् ! तू स्वपक्ष और परपक्ष, एवं शासकवर्ग और प्रजा-वर्ग दोनों को पूर्ण करता है। हे ज्ञानवन् ! तू स्वयं अपने महान् सामर्थ्य से उन सब लोकों को व्याप रहा है, सबको अपने अधीन कर रहा है।

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥२१॥

भा०—सबके सञ्चालक, सर्वहितकारी, प्रधान पुरुष का दुःख नाश करने वाली क्रियाओं से बड़ा भारी ऐश्वर्य प्राप्त होता है। तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार बड़े भारी तेजःसामर्थ्य से आकाश और भूमि को बहुत जल से पूर्ण करता है, उसी प्रकार अकेला ज्ञानवान् पुरुष अपने शुभ कर्म करने की इच्छा और संकल्प से बहुत वीर्यवान् माता और पिता या पिता और गुरु दोनों पालकों का मान आदर करता हुआ प्रसिद्ध होता है। (२) परमेश्वर अपनी महान् शक्तियों से महान् ब्रह्माण्ड को गति देता है। वही सबका कर्त्ता, अपनी ज्ञान और कर्मशक्ति से एक अद्वितीय, बड़े भारी उत्पादक वीर्य और बल से सब जगत् के पालक सूर्य और पृथिवी दोनों को महान् बनाता हुआ प्रकट होता है। इति एकविंशो वर्गः ॥

[४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ स्वराट् पंक्तिः । २, ३, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी पुरुष! जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक समिधा पाकर प्रज्वलित होता है उसी प्रकार तू भी शुभ चित्त और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर, प्रत्येक ज्ञानदीप्ति से स्वयं ज्ञानवान् हो और हमें भी ज्ञानवान् कर। प्रत्येक कान्ति और पवित्र कार्य से हमें शुभ ज्ञान और नाना ऐश्वर्य प्रदान कर। हे विद्वन्! तू सत्संग और मैत्रीभाव के लिये विद्वान् पुरुषों को धारण कर। अथवा ज्ञान प्रदान के लिये विद्या की कामना करने वाले शिष्यगण के प्रति विद्या-दान करने के प्रयोजन से प्रवचन द्वारा विद्या का उपदेश कर। और तू मित्र होकर अपने मित्ररूप हमको उत्तम चित्त से युक्त होकर प्राप्त हो और ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान कर।

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् तीन सवन रूप से अग्नि में दिन में तीन बार यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार जिसको विद्वान् पुरुष प्रतिदिन तीन बार सत्संग करें वह विद्वान् अग्रणी पुरुष सर्वश्रेष्ठ, मृत्यु दुःख से बचाने वाला, सबका स्नेही, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी हो। वह प्राण के समान हमारे शरीरों का नाश न होने देने हारा विद्वान्, घृत के आश्रय में स्थित, तथा नाना कार्य करने वाले हमारे इस शरीर और समाजरूप को मधुर अन्नों उत्तम सुखों और परिणामों से युक्त करे।

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३॥

भा०—कष्टों को अन्धकार के समान दूर करने और सबसे वरण करने योग्य दीप्ति, अन्नों और भूमियों के दान देने, सत्संग और मैत्रीभाव

की वृद्धि के लिये, सर्वश्रेष्ठ दानशील पुरुष को प्राप्त होती है। और वह सर्वश्रेष्ठ दीप्ति बलवान्, मेघ के समान वर्षणशील को भी नमस्कार आदि आदर योग्य वचनों से स्तुति करने के लिये प्राप्त हो। वह स्वयं इच्छावान् होकर सब से बड़ा दानशील, सत्संगयोग्य एवं सुहृद् होकर विद्वान् पुरुषों को दान करे, सत्संग दे और मित्रभाव से मिले।

ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हे राजा प्रजाजनो ! तुम दोनों के परस्पर हिंसा से रहित कार्य में तुम दोनों के ऊपर उच्च कोटि का उपदेश करने हारा विद्वान् नियत किया जावे। जिससे सर्वश्रेष्ठ प्रकाश सबको प्राप्त हों। आकाश के बीच में सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश का देने वाला गुरु और राष्ट्र को वश करने वाला राजा उच्चासन पर विराजे। हम लोग विद्वानों का विशेष सत्कार करने वाला तथा उनके मान को बढ़ाने वाला आसन बिछावें।

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥५॥२२॥

भा०—सात प्रकार के ग्रहण करने योग्य और दान देने योग्य पदार्थों को, यज्ञ के सप्त होत्र आदि कर्मों के समान, इच्छापूर्वक स्वीकार करते हुए, सत्यज्ञान, अन्न तथा ऐश्वर्य के द्वारा समस्त राष्ट्र को व्यापते हुए, अपने विपक्ष का मुकाबला करें। तुम संग्रामों में कीर्त्तिमान् वीर पुरुषों से बने स्वरूप को धरने वाली पूर्व से ही तैयार, सुशिक्षित सेनाएं प्राप्त करो। इस परस्पर के मैत्रीभाव से व्यवस्थित राष्ट्र को प्राप्त होओ। राष्ट्र की 'सप्तहोत्र' सात प्रकृतियां हैं। (२) अध्यात्म में—देहगत सात प्राण या सर्पणशील प्राण 'सप्तहोत्र' हैं। उनको मानस् बल से वश करते हुए सत्य के बल से 'विश्व' अर्थात् आत्मतत्व को प्राप्त होते हैं। 'नृ'

अर्थात् आत्मा को रूपवान् करने वाली पूर्व की वासनाएं ही प्राप्त होने योग्य देहों में प्रकट होकर इस आत्मा को विविध भोगों में प्राप्त होती हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार स्वरूप में भिन्न २ प्रकार के रूपों वाले दिन और रात्रि मानो परस्पर मुस्कराते हैं, विकसित होते हैं, उसी प्रकार शरीरों में विभिन्न २ प्रकार के रूप, रुचि और कान्ति और रचना वाले स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को चाहने वाले और एक दूसरे के सदा समीप रहते हुए, एक दूसरे का कल्याण और सुख करते हुए मुस्कराया करें, सदा प्रसन्नवदन होकर रहें। जिससे महान् गुणों और तेजों से युक्त होकर स्नेही मित्र, वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और विद्वान् शिष्यों से युक्त आचार्य, प्राणों के बल से युक्त शत्रुहन्ता बलवान् भी हमें प्रेम से स्वीकार करे।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥

भा०—दिव्य गुणों को धारण करने वाले तथा एक दूसरे को सुख देने वाले स्त्री पुरुष राष्ट्र में मुख्य हैं, उनको अच्छी प्रकार कार्य दक्ष करता हूँ, क्योंकि उनके आश्रय पर ही देश देशान्तर में भ्रमण करने वाले, प्रेम-सम्पर्क के योग्य विद्वान् जन अपनी धारणाशक्ति से स्वयं प्रसन्न होते और औरों को तृप्त करते हैं। वे व्रतों का पालन करने हारे, अपने व्रतों का ही चिन्तन करते हुए, तथा सत्य वेदज्ञान का उपदेश करते हुए, सत्य धर्म का पालन और सत्यस्वरूप परमेश्वर का ही उपदेश करते हैं।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सर्वप्राणिसमूह के पालक-पोषक सूर्य की दीप्ति, उसकी अन्य पालक पोषक ताप विद्युत् आदि शक्तियों के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर, इस अन्तरिक्ष और इस भूलोक को प्राप्त होती है, उसी प्रकार प्रजा का भरण पोषण करने वाले मुख्य पुरुष की प्रजापालक नीति, 'भरत' अर्थात् अन्य प्रजापोषक पुरुषों की शक्तियों या सेनाओं और सभाओं से समान प्रीति से युक्त होकर, इस लोक अर्थात् प्रजाजन पर विराजे, उत्तम पद प्रतिष्ठा प्राप्त करे। 'देव' अर्थात् विद्वान् और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर पृथिवी, अर्थात् पृथिवी-निवासिनी प्रजा इस लोक पर प्रतिष्ठा से विराजे। अग्नि के समान तेजस्वी नायक मनन शील पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर विराजे। 'सरस्वती' अर्थात् वेदवाणी का अभ्यास करने वाले विद्वानों से युक्त उत्तम ज्ञानवाली विद्वत्-सभा इस लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करे। इस प्रकार तीनों देवियां हमें प्राप्त होकर इस लोक में आदरपूर्वक विराजें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद के आप्री सूक्त।

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

भा०—हे दानशील कारीगर! तू दुखों और सकटों से पार उतारने वाला तथा पोषण करने वाला बल प्रदान करता हुआ हमें दुःख बंधनों से मुक्त कर, जिससे वीर्यवान्, कर्मकुशल, उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् उपदेष्टा का संगलाभ करने और शस्त्रास्त्र में कुशल, उत्तम ज्ञानदाता जनों की कामना करने वाला पुत्र, शिष्य और प्रजाजन उत्पन्न हो सके।

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

भा०—हे सेवन करने योग्य उत्तम भोग्य ऐश्वर्यों के पालन करने हारे, एवं महावृक्ष के समान अपने से सेवन करने वाले आश्रित जनों के

पालक ! राजन् ! विद्वन् ! तू देव अर्थात् विद्वान् वीर और कामनाशील पुरुषों को अपने अधीन कर, उनको योग्य मार्ग पर चला। और उनको अपने समीप रखकर योग्य बना। अग्नि जिस प्रकार 'हवि' अर्थात् चरु को वायु आदि तत्वों तक छिन्न भिन्न करके पहुँचाता है और लोक में रोगनाशक होकर शान्ति उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अग्रणी नायक, विद्वान् और स्वामी पुरुष, ग्रहण करने योग्य अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को भी शान्तिदायक होकर, प्रचुर मात्रा में दे। वह ही दानशील होकर अधिक सत्याचरणशील, ईमानदार और सत्य के बल से स्वयं और अन्यों को तराने वाला होकर दान करे और अन्यों से मित्रभाव से वर्त्ते। जिससे वह दिव्य पुरुषों, विद्वानों के बीच में उत्तम जन्मों को प्राप्त करे।

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादय-न्ताम् ॥ ११ ॥ २३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाशक तेजस्विन् ! सूर्य या अग्नि जिस प्रकार प्रदीप्त होकर प्रकाशयुक्त किरणों और वायु से प्रकट होता है, उसी प्रकार तू भी अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र सहित शत्रुनाशक वीर सेनापति सहित तथा अति शीघ्रगामी विजय कामना वाले वीर पुरुषों सहित और रथसैन्य सहित हमारे पास प्राप्त हो। और हमारे बीच वृद्धि तथा प्रतिष्ठायुक्त प्रजाजन पर उपविष्ट हो। इसी प्रकार उत्तम पुत्रों की पूज्य माता के समान उत्तम रीति से प्रजाओं को मानव-कष्टों से त्राण करने वाली अटूट शक्ति, हमारे वृद्धिशील राष्ट्र पर विराजे। दानशील और ऐश्वर्य के इच्छुक वीर और दानशील धनी और ज्ञानी पुरुष उत्तम वाणी, उत्तम दान और उत्तम स्तुति प्रार्थना से दीर्घायु होकर, स्वयं भी तृप्त हों और हमें भी खूब तृप्त, आनन्द प्रसन्न करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ११ भुरिक् पंक्तिः । ३ पंक्तिः । ६ स्वराट पंक्तिः । ४ त्रिष्टुप् । ५, ७, १०, निचृत् त्रिष्टुप् । ८, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥

भा०—दीप्तिमान् सूर्य जिस प्रकार प्रभात वेलाओं में सब सोते हुए प्राणियों को जगाता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् विद्वान् स्वयं ज्ञानवान् मेधावी, सर्व विद्याओं से पूर्ण, क्रान्तदर्शी पुरुषों के चरण चिन्हों पर चलनेहारा होकर सबको जगावे और स्वयं भी प्रत्येक ज्ञान का ज्ञाता हो । वह विस्तृत ज्ञान और बल से युक्त होकर विद्वानों के प्रिय तथा उत्तम गुणों के इच्छुक पुरुषों द्वारा प्रकाशित होकर, कार्यों के भार को वहन करने में समर्थ विद्वान्, अन्धकार के समान अज्ञान को दूर करके ज्ञान के द्वारा मार्गों को खोले ।

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य सन्दृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार भौतिक अग्नि काष्ठसमूहों से बहुत बढ़ता है उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष विद्याओं का उपदेश करने वाले वेद के सूक्तों, उत्तम वेदवाणियों से खूब अच्छी प्रकार बढ़ता है । और उत्तम उपदेष्टाओं के बीच में उत्तम वचनों से आदर करने योग्य है । वह सत्य ज्ञान को अच्छी प्रकार दिखलाने वाली, सनातन से चली आई वेदवाणियों का अभ्यास करना चाहता हुआ, विशेष रुचि के अनुसार स्वयं सेवा किया जाकर, कामनाशील शिष्यजनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है । (२) परमेश्वर ज्ञानमय सर्वप्रकाशक है । वह वेदवाणियों द्वारा महान् है । वह स्तुतिकर्मों के वचनों से स्तुत्य है । वह पूज्य उपासित होकर

ज्ञानदर्शक सनातन वेदवाणियों को प्रभातों के सूर्य के समान, प्रकाशित करता है।

अधा॑ह्य॒ग्निर्मानु॑षीषु वि॒द्व१॒॑पां गर्भो॑ मि॒त्र ऋ॒तेन॒ साध॑न् ।
आ ह॑र्य॒तो य॑ज॒तः सान्वं॑स्थादभू॑दु॒ विप्रो॒ हव्यो॑ मती॒नाम् ॥ ३ ॥

भा०—जलों के बीच में विद्युत् जिस प्रकार गतिशील बल से सब कार्यों को साधता हुआ स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों की इन प्रजाओं में, कर्मों और ज्ञानों और आप्त प्रजाओं के बीच में सुरक्षित, प्रजाओं का सुहृत्, उनको मरण से बचाने वाला, प्राणों के बीच विद्यमान आत्मा के समान, स्थापित किया जाना चाहिये। वह सत्य ज्ञान और न्याय के अनुसार सब कार्यों को साधता हुआ, कान्तियुक्त, दानशील तथा सत्संग के योग्य और पूज्य होकर, शैल-शिखर के समान उन्नत पद और सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त पद पर विराजे और वह विशेष विद्याओं से पूर्ण, विद्वानों और मननशील पुरुषों के बीच में वरण या स्वीकार करने योग्य हो। परमेश्वर सबके भीतर प्राणों का प्राण और सूक्ष्म प्रकृति के परमाणुओं के भीतर व्यापक, ज्ञान से प्राप्त किया जाता है। वह सर्वपूज्य कान्तिमान् परमसेव्य पद पर विराजता और विशेष रूप से पूर्ण होकर मननशील विद्वानों से स्तुत्य है।

मि॒त्रो अ॒ग्निर्भ॑वति॒ यत्समि॑द्धो मि॒त्रो होता॒ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।
मि॒त्रो अ॑ध्व॒र्युरि॑षि॒रो दमू॑ना मि॒त्रः सिन्धू॑नामु॒त पर्व॑तानाम् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार खूब प्रदीप्त अग्नि मनुष्य के मित्र के समान सहायकारी होता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष जो ज्ञानों और गुणों में अच्छी प्रकार प्रकाशित हो जाता है वह स्नेही मित्र के समान सबका सुहृत् हो। वह सबको मरने से बचाने वाला, ज्ञान और अन्न का देनेहारा सर्वश्रेष्ठ और कष्टों का वारण करने वाला, सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का स्वामी हो। वही सबका स्नेही सुहृद् होकर सब किसी की भी हिंसा या

पीड़ा की कामना न करता हुआ, अहिंसा-व्रती, स्वयं दृढ़ इच्छाशक्ति से सम्पन्न और सबको प्रेरणा करने में समर्थ, तथा मन इन्द्रियों को जीतने में समर्थ हो। वही नदियों के समान वेग से जाने वाली सेनाओं या प्रजाओं और पर्वतों के समान अभेद्य, दृढ़ एवं पालन शक्तियों से युक्त बड़े २ शासक जनों का भी मित्र, सहायक हो जाता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—हृदय में अतिदीप्त प्रकाशवान् परमेश्वर ही परम मित्र है। वह सब कुछ देता, सर्वश्रेष्ठ, सर्वैश्वर्य का स्वामी, अहिंसक, पालक, प्रेरक, दमनकर्त्ता, प्राणों, जलों, प्रकृति के परमाणु और पर्वतों और पालकतत्वों का मापक और पालक है।

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य। पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥२४॥

भा०—जिस प्रकार अग्नितत्व गमनशील पृथिवी के सर्वश्रेष्ठ तथा प्रिय अन्न आदि की रक्षा करता है, वही सूर्य के गमन या कार्य की रक्षा करता है, वही सात विभागों में विभक्त वायु की रक्षा करता, वह सब दिव्य पदार्थों के स्वरूप को नाश होने से बचाता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष अपने प्रिय मित्र पुत्र आदि को पाप से बचावे। वही जाने वाले मार्गगामी पुरुष के आगे रखने योग्य पद या मार्ग की रक्षा करे। वही स्वयं महान् होकर सूर्य के कर्त्तव्य अर्थात् उसके समान प्रकाशक, तेजस्वी, पालक आदि होने के उत्तम कर्त्तव्य का पालन करे। वह नाभि या केन्द्र में विराज कर शिर के समान सात मुख्य अंगों से युक्त राज्य का पालन करे। वह अग्रणी महान् दर्शनीय तथा बिस्तृत सामर्थ्यवान् होकर, सब व्यवहारकुशल विद्वानों और ऐश्वर्य के इच्छुक तथा दानशीलों और विद्यादाताओं के हर्ष की और उनके सन्तोषकारक व्यवहारों की, उनके उपमा या तुल्यता देने वाले कर्त्तव्यों की रक्षा करे। अध्यात्म में—आत्मा भोक्ता पार्थिव शरीर के प्रिय श्रेष्ठ प्राप्तव्य ज्ञान की रक्षा करता, बड़े प्रेरक प्राण की रक्षा करता, वह सात शीर्षण्य प्राणों से युक्त प्राण को

नाभि में रखता और देवों अर्थात् प्राणों के हर्षहेतु और ज्ञान चेतना के देने वाले सामर्थ्य को रखता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—ऋतु अर्थात् जल को उत्पन्न करने वाला मेघ या स्रोत जिस प्रकार उत्तम, सुन्दर और वेग से चलने वाले जल को उत्पन्न करता है, और जिस प्रकार खूब दीप्तिमान् अग्नि या सूर्य उत्तम स्वरूप को दिखलाता है, उसी प्रकार समस्त ज्ञानों को और जानने योग्य पदार्थों को जानता हुआ, सत्य ज्ञान से प्रकाशित एवं महान् तेजस्वी पुरुष, अपना सुन्दर नाम, कीर्त्ति, यश करे और उत्तम व्यापक शासन करने में समर्थ हो। घी जिस प्रकार सोने वाले या आराम से रहने वाले पुरुष के चर्म की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि सोते हुए पथिक के स्थान की जंगली प्राणियों से रक्षा करता है, उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी पुरुष, प्राप्त हुए सोते हुए, असावधान प्रजाजन के शरीरों की उनके प्राप्त करने योग्य सुखों की और उनके गृहादि स्थानों की और स्वयं अपने तेजोयुक्त पद की विना प्रमाद के रक्षा करे।

आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार घृत से युक्त यज्ञस्थान में स्थित रहती है और जिस प्रकार विद्युत् बड़े शब्द करने वाले जल से युक्त मेघरूप आश्रयस्थान में स्थित रहती है, उसी प्रकार अग्रणी पुरुष जल और घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों से युक्त घर को प्राप्त कर उसमें रहे और नायक पुरुष जल सम्पदा से युक्त राष्ट्र पर शासक बनकर रहे और स्वयं कामनाशील होकर विस्तृत उपदेश करने वाले और चाहने वाले प्रेमी विद्वान् पुरुष को प्राप्त हो। स्वयं चमकता हुआ, शुद्ध पवित्र, निश्छल आचरण से

युक्त, महान्, सबको पवित्र करता हुआ, बार २ आकाश और भूमि को या माता और पिता दोनों को अतिस्तुत्य बनावे। (२) जीव तेजस्वरूप परम आश्रय प्रभु की कामना करता हुआ उसकी ओर प्रस्थित हो, वह स्वयं प्रकाश, पवित्र होकर बार २ जन्म लेकर नये से नये मां-बाप बना लेता है ।

सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८ ॥

भा०—स्वयं उत्पन्न होने वाली नदियां या अन्नादि उत्पन्न करने वाली जलधाराएं जिस प्रकार नीचे की ओर बहते जल से शोभा को प्राप्त होती हैं और वे जल से बढ़ती हैं, उसी प्रकार अग्रणी विद्वान् पुरुष सभासदों से वरण करने योग्य या विराजने के उच्चआसन के योग्य और गुणों में प्रसिद्ध होकर, ताप तेज को धारण करने वाली सेनाओं से धारण किया जाता है और वह उनके सहयोग में ही रोषयुक्त होकर प्रचण्ड हो जाता और शत्रुओं पर प्रहार करता है। क्योंकि वे ही उसकी उच्च आसन पर अभिषेक करने हारी होकर और नीचे विनय से जलधाराओं के समान सुशोभित होती हुईं, उसको जलाभिषेक से बढ़ातीं और स्वयं भी बढ़ती हैं और वह अग्रणी नायक मां-बाप के गोद में बालक के समान माता भूमि और सैन्यबल दोनों की उपस्थिति, सन्निधि, रक्षा में स्वयं अपने को बढ़ावे और प्रजा की भी रक्षा करे ।

उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथ्वी पर अग्नि काष्ठ के संग से बड़ा होकर खूब चमकता है, उसी प्रकार जलसेचनकाल अर्थात् वर्षणकाल में भी अन्तरिक्ष में वही अग्नि विद्युत्रूप से अति दीप्ति से या वायु के संघर्षण-रूप उद्दीप्त कारण से उत्तम रीति से चमकता है, वह अग्नि सूर्यरूप में

भी परम आकाश के बीच में अच्छे तेज से महान् होकर वृष्टिसेचन के लिये उत्तम रीति से या सबसे ऊपर चमकता है। वही अग्नि सबका मित्र, सबको अभीष्ट, अपने उत्पादक कारण अरणि, काष्ठ, अन्तरिक्ष और परमाकाश में जीवित और स्थित और गति करता हुआ, तापवान् होकर महान् यज्ञ करने के लिये दिव्य पांचों भूतों, तेजस्वी लोकों और प्रकाशमय किरणों को धारण करता है। (२) नायक पक्ष में—प्रशंसित एवं सबके समक्ष प्रस्तुत किया गया, गुणों में महान्, रूप में आकाश में सूर्य के समान पृथिवी के केन्द्र में स्थित होकर सबसे ऊपर चमके। वह सर्वस्नेही, अग्रणी, पृथ्वी माता पर रहने हारा, वायु के समान बलवान्, दुष्टों का सन्तापकारी होकर, विजिगीषु वीरों के संगत होने या मिलाये रखने के लिये सब पर हुकूमत करे।

उदु॑स्त॒म्भीत्स॒मिधा॒ नाक॑मृ॒ष्वो॒३॑ऽग्निर्भव॑न्नुत्त॒मो रो॑च॒नाना॑म् ।
यदी॒ भृगु॑भ्यः॒ परि॑ मात॒रिश्वा॒ गुहा॒ सन्तं॑ हव्य॒वाहं॑ समी॒धे ॥१०॥

भा०—अन्तरिक्षगत वायु जलाने वाले काष्ठ आदि से, घर में रखे तथा अन्नादि देने वाले अग्नि को प्रदीप्त करता है, तो भी महान् अग्नि अर्थात् सूर्य सब प्रकाशमान चन्द्रादि पिण्डों के बीच में सबसे उत्तम होता हुआ, अपने तेज से पूर्ण आकाश को सर्वोपरि रहकर थामने में समर्थ है, उसी प्रकार इन्द्रियों को पोषण करने वाले गौण प्राणों से भी श्रेष्ठ प्रमाता आत्मा के आश्रय रहकर श्वास लेने या देह को प्राणवान् करने हारा मुख्य प्राण इस देह में रहने वाले या बुद्धितत्व में व्यापक भोग्य पदार्थों के ग्रहीता जीवात्मा को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है। तो भी परमेश्वर चमकने वाले सूर्यादि वा कामनाशील आत्माओं में सबसे उत्तम होता हुआ, उत्तम तेज से, दुःखादि बाधा से रहित परम आनन्दमय स्वरूप को सर्वोपरि स्थायीरूप से बनाये रहता है।

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध ।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो विजा॒वाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥११॥२५॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० ३। सू० १। मन्त्र २३ ॥) इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ निचृतत्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् ६, ११ भुरिक पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥

भा०—हे क्रियाशील विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार कहे गये मननशील शिल्पी लोग, दानशील स्वामी की कामना करते हुए, दानशील स्वामिजनों को अच्छी लगने वाली शिल्पक्रिया को करते हैं और वह शिल्पक्रिया वेग से युक्त, या ऐश्वर्य से युक्त, दक्षिणा या मजदूरी पैदा करने वाली और उत्तम रूप से प्रकट होकर, अग्रणी तेजस्वी पुरुष को अन्न, सुख आदि पदार्थ पूर्ण करती हुई प्राप्त होती है और जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता लोग परमेश्वर की उपासना करते हुए मन्त्रों द्वारा प्रेरित होकर ईश्वरोपासनायुक्त वाणी को और यज्ञक्रिया करते हैं और दक्षिण दिशा से लाई जाकर घृत से युक्त 'जुहू' नाम स्रुक् पूर्व की ओर अग्नि को लक्ष्य करके आगे बढ़ती है, उसी प्रकार हे क्रियाशील पुरुषो ! आप लोग भी मननशील पुरुष से उपदेश किये जाकर, उत्तम गणों और ज्ञानदानशील विद्वानों की कामना करते हुए, उनको मन से चाहते हुए विद्वान् दानी और ज्ञानदाता गुरुजनों की पूजा सत्कार क्रिया को अच्छी प्रकार किया करो और ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष के सुख के लिये तेज और पौष्टिक पदार्थ को प्राप्त करने वाली क्रिया शक्ति को धारण करने वाली, बल, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम गमन या आचरण वाली, उत्तम सत्कार रूप किया, ज्ञानवान् एवं नायक पुरुष के मान आदर के लिये अन्नादि प्राप्त कराती हुई प्राप्त हो ।

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य प्रकट होकर आकाश और पृथिवी दोनों का पूर्ण करता और पालन करता है और वह अपने महान् सामर्थ्य से आकाश और पृथिवी से भी अधिक बढ़ जाता है और सात ज्वाला वाली अग्नियां भी उसी के अंश कहाती हैं, उसी प्रकार हे अग्रणी नायक ! तू प्रसिद्ध होकर उत्तम उपदेश करने वाले पिता और गुरु दोनों को पूर्ण कर और पालन कर और हे सर्वोत्कृष्ट दानशील ! तू अपने महान् ज्ञान और बल के सामर्थ्य से सूर्य और पृथिवी, ज्ञानी और अज्ञानी दोनों से बढ़ जा । सात छन्दों वाली वाणियों के जानने वाले, एवं कार्य भार वहन करने वाले पुरुष तेरे ही अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें, तेरे ही शिष्य भृत्यादि कहावें ।

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥

भा०—जब मनुष्य प्रजाएं विजयेच्छुक पुरुषों की कामना करती हुई और नाना प्रकार के अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों से युक्त होकर, देह में वीर्य के समान बलकारी तथा गृह में दीप्त ज्वाला के समान प्रकाशक तुझको चाहती हैं, तो ज्ञानप्रकाश से युक्त विद्वान् जन और पृथिवी के समाए आश्रय वाली सामान्य प्रजा और यज्ञशील, संगठन के अंग भूत, शासक लोग भी, दुष्टों के दमन के लिये सबको वश करने वाले तुझको ही सर्वोच्च पद स्थापित करते हैं ।

महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥

भा०—महान् पुरुष कान्तिमान् होकर, चाहने वाले उभय पक्षों के बीच एक साथ बैठने के सभाभवन में स्थिर रहकर अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा

पद पर विराजे और विशाल शक्ति और वाणी वाले नायक के अधीन स्त्री और पुरुष दोनों ही उन्नति की ओर बढ़ने वाले, समान भाव से एक दूसरे को और पुत्रादि का पालन करने वाले जरा अर्थात् वृद्धावस्था से रहित, कामनादि से युक्त, अथवा अति शुद्ध, समान भाव से एक दूसरे का वरण करके एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले और अङ्गाङ्गी भाव से दायें बायें होकर, एक शरीर सा बनाकर एक दूसरे के पूरक होता, सन्तान को दुग्धादि पिलाने हारे हों ।

व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥२६॥

भा०—हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन् राजन्! परमेश्वर! तुझ महान् के बड़े २ कर्म नियम हैं। तू अपनी क्रिया और ज्ञान सामर्थ्य से आकाश और भूमि दोनों को विस्तृत कर रहा है तू प्रसिद्ध होता हुआ दुष्टों का संतापजनक और भक्तों से उपासित होता है। हे बलवन्! तू सब मनुष्यों का नायक हो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥

भा०—हे विद्वन् पुरुष! केश वाले दो लाल घोड़ों को रथ की धुरा में जिस प्रकार रासों से जोड़ा जाता है, उसी प्रकार तू नाना क्लेशों के सहने वाले, स्नेह को बढ़ाने वाले, परस्पर स्नेही, एक दूसरे के प्रति अनुराग से रक्त स्त्री पुरुषों को योग्य वाणियों से सत्याचरण और ज्ञान के धारण करने के कार्य में लगा, नियुक्त कर, और हे मार्गों का प्रकाश करने और सुखों को देने वाले! तू सत्फलों की कामना करने वाले सब विद्वान् पुरुषों को सत्कर्म में लगाने वाली उत्तम वाणियों से ही उत्तम उद्देश्यों तक ले जा और हे प्रज्ञावान् पुरुष! तू स्त्री पुरुषों को उत्तम रीति से परस्पर की हिंसा से रहित, सौम्य स्वभाव वाला, यज्ञशील, परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव से युक्त बना।

द्विवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानशील विद्वन् ! हे नायक ! सूर्य के प्रकाशों के समान तेरे प्रकाश, तेरी रुचियां, कामनाएं सबको अच्छी प्रतीत हों। जिस प्रकार विशेष रूप से चमकने वाली और अपने से पूर्व प्राप्त उषाकालों के अनन्तर स्वयं प्रकाशित होता है, उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी प्राचीन काल से प्राप्त, विविध ज्ञानों का प्रकाश करने वाली, पापों का दाह करने वाली वेदवाणियों को प्राप्त करके सुशोभित हो। जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलों को चमकाती है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी सत्कर्म करके प्रकाशित हो। जंगलों में जिस प्रकार अग्नि कमनीय वृक्षों को भी जला देता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी सेवन करने योग्य विषयों में कामना योग्य वासना का भस्म करने हारा हो। ऐसे ज्ञानप्रद, उत्तम पदार्थों के स्वीकर्त्ता, त्यागी, स्तुत्य, सबके हर्षजनक पुरुष के कर्म की विद्वान् लोग स्तुति करते हैं।

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति द्विवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आ येमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥

भा०—हे अग्रणी ! जो विद्वान् और शक्तिमान् पुरुष, विशाल, आकाश में सूर्य या वायु के समान, अपने भीतर निवास करने वाले विशाल आत्मा में हर्ष को प्राप्त होते हैं और जो सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त ज्ञानप्रकाशक पुरुष हैं और उत्तम रीति से यज्ञ करने हारे वा सुगृहीत नाम वाले और प्रजाओं की रक्षा करने हारे, संगति और मैत्री से युक्त हैं, वे रथ में लगने योग्य अश्वों के समान अपने को नियम में रखें।

एभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! तू उन उक्त वीरों के साथ एक समान रथ वाला होकर और नाना रथों सहित आगे बढ़ । वे अश्वों और अश्वारोहियों के समान विशेष रूप से सामर्थ्यवान्, एवं किरणों के समान व्यापने वाले हों । हे नायक ! तू उन कामनावान्, विजयशील, तेजस्वी, पालन करने वाली शक्ति से युक्त, ३३ प्रधान पुरुषों को उनके अपने देह को धारण करने योग्य अन्न और वेतन देकर धारण कर और उनको सन्तुष्ट कर । इन ३३ देवों के वर्णन का स्पष्टीकरण देखो । ऋ० १ । १३८ । ११ ॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

भा०—जिस महान् पुरुष के सूर्य और पृथिवी के समान विशाल माता या पिता और गुरु, उत्तम उपदेश करने वाले, प्रत्येक सत्संग के अवसर पर उसकी वृद्धि के लिये उपदेश करते हैं और वे दोनों अति पूज्य, सुन्दर शुभ रूप वाले, सत्यज्ञानों से पूर्ण, सत्याचरण वाले होकर, ज्ञान में उत्पन्न विद्वान् के समीप उसके अहिंसनीय दृढ़ रक्षकों के समान रहते हैं, वही उत्तम ज्ञान को लेने वाला पुरुष है ।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।११।२७।८।२

भा०—व्याख्या देखो (३ । १ । २३) ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति द्वितीयोष्टकः ॥

इति श्रीविद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीपण्डित-जयदेवशर्म-विरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये द्वितीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

---

४. पातञ्जल योगप्रदीप—लेखक श्री स्वामी ओमानन्दजी महाराज। २०×२६=८ पेजी के लगभग ८०० पृष्ठ तथा योगासनों के अनेक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य १२)

५. क्या वेद में इतिहास है?—ले० पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार। इस विषय पर युक्ति एवं खोजपूर्ण कोई प्रामाणिक ग्रंथ नहीं था। उसी विषय की महान् कमी को विद्वान् लेखक ने इसमें पूरा किया है। मूल्य २॥)

६. 'वेदोपदेश'—रचयिता—श्री स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ—यह पुस्तक "वैदिक राष्ट्रगीता" कहलाने योग्य है। इस पुस्तक के पाठ से मातृभूमि, प्रजाप्रेम और स्वराज्य सुख के उत्तम भाव हृदय में जागृत होते हैं। मूल्य १)

७. कर्म-मीमांसा—ले० आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री। इसमें पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी दृष्टियों से कर्म के विविध विषयों और कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर विचार किया गया है। दर्शन के विद्यार्थियों, जन साधारण तथा विज्ञजनों सभी के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य २।)